विषय-प्रवेश

जिन सामाजिक परिस्थितियो में दार्शनिक विचार उत्तरी अमरीका में पनपे हैं, वे मनुष्य के इतिहास में अद्वितीय हैं। अगर उनकी कुछ तुलना की जा सकती है, तो रोम-साम्राज्य की अन्तिम शताब्दियो से। इस महाद्वीप पर सारी दुनिया से आये हुए लोग मिले है और एक राष्ट्र का निर्माण करने मे सफल हुए हैं। एक अन्तर्राष्ट्रीय राज्य और बहुदेशीय लोग। दूरस्थ क्षेत्रो और युगो की बौद्धिक परम्पराएँ एक जगह मिली है और शीघ्र ही एक साथ बढ़ी हैं। अमरीकी विचार की सारी जाली, बाहर से आई हुई सामग्री से बनी है, लेकिन बुनाई देशी है और अब उसमे जो प्रतिरूप उभर रहे हैं, उनमें कई पीढियो की प्रयोगात्मक अभिकल्पना के सामूहिक प्रभाव दिखाई पड़े रहे हैं।

स्पेनी धर्म-प्रचारक, अमरीकी आदिवासियो के साथ सम्पर्क और व्यापार के फ्रासीसी प्रयास, शुद्धतावादी पवित्र प्रजाधिपत्य, डच और अँग्रेज लोगो के बगान, कई देशो के लोगो द्वारा बसायी गयी नयी बस्तियाँ, अफ्रीकी 'आध्यात्मिक गीत, एशियाई दर्शन और आत्मज्ञान, सुदूर पूर्व की ललित कलाएँ, जर्मन परात्परवाद, इग्लिस्तानी अनुभववाद और साम्राज्यवाद, इटालवी वास्तुकला और सगीत, यूनानी रूढ़ (आर्थोडॉक्स) धर्म-समुदाय, जेसूट लोगो के स्कूल, प्रोटेस्टेन्ट धर्मशास्त्र, यहूदी कानून और पैगम्बर—अमरीकी मनीषा के इतिहास के निर्माण मे इन सभी का और अन्य बहुतो का हाथ रहा है। यहाँ विश्व के सास्कृतिक चौराहे पर हमें विचारो, मूल्यो और आशाओ को भौंचक्का कर देने वाली बहुलता के लिए तैयार रहना चाहिये।

अमरीकी लोग अपनी बौद्धिक परम्पराओ के बारे में आचलिक सन्दर्भो में सोचने के आदी हैं, क्योंकि यद्यपि 'राज्य' एक राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे में जुड़े हुए हैं, किन्तु देश के अन्दर कई विशिष्ट सास्कृतिक अचल पहचाने जा सकते हैं, जिनमे से हर-एक अमरीकी विरासत को अपने विशिष्ट विचार और 'स्थानीय ग' प्रदान करता है। न्यू-इगलैण्ड, जो भौगोलिक दृष्टि से देश के उत्तर-पूर्व में एक छोटा-सा कोना है, शुद्धतावाद और परात्परवादी भाववाद का घर है—दो भिन्न स्रोतो से निकली परम्पराएँ, जो एमर्सन के व्यक्तित्व और परिवेश में मिल कर रोमानी व्यक्तिवाद की अमरीकी अभिव्यक्ति बन गयी। वर्जिनिया और उसके दक्षिणी पडोसियो से गणतान्त्रिक और लोकतान्त्रिक आदर्शो तथा बहुदेशीयता के सद्गुणो मे देश के सस्थापको का प्रबुद्ध विश्वास

आया और दक्षिण की बगान व्यवस्था ने एक प्रान्तीय खेतिहरवाद और गुलामी पर आधारित अर्थतन्त्र को जन्म दिया। इन दोनो क्षेत्रो के बीच, मध्य और पूर्वी औद्योगिक क्षेत्र मे, हम प्राकृतिक विज्ञानो, प्रविधियो और पूँजीवाद का घर पाते हैं। मिसीसिपी घाटी के चौड़े मैदानो ने, जिसका कृषि-धन स्वतन्त्र किसानो ने निर्मित किया, एक विशिष्ट घरेलू सस्कृति और लोकतान्त्रिक संस्थाओ को विकसित किया, जो विशाल खुले इलाको के और अधिक खुले हुए समाज के अनुकूल थी। यहाँ सेण्ट लुई, मिसौरी में और उसके आस-पास, देश के भौगोलिक केन्द्र मे, एक आदर्शवादी राष्ट्रवाद का विकास हुआ, जिसने उत्तर और दक्षिण के बीच गृह-युद्ध के सकट के समय और बाद में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। निकटतम अतीत मे, प्रशान्त महासागर के तट पर एक अलग सास्कृतिक क्षेत्र का निर्माण हुआ है। प्राची की ओर खुले इस क्षेत्र ने प्राची के कुछ विचार भी ग्रहण किये और पश्चिम (पश्चिमी अमरीका) को राष्ट्रीय सस्कृति का एक अभिन्न अग बनाया।

इस बहुलता के साथ आगामी पृष्ठो मे न्याय कर सकना स्पष्टत असम्भव है। मुझे बाध्य होकर, जैसा हर इतिहासकार को करना पड़ता है, सामग्री और परम्परा के अनन्त समूह से ऐसी विचार-धाराएँ चुननी पड़ी हैं, अमरीकी दिमागो पर जिनका जीवन्त प्रभाव दीर्घजीवी प्रतीत होता है। और अपनी इतिहास-पुस्तक के इस सस्करण के लिए मैंने केवल अमरीकी विचार के सारभूत तत्व चुने हैं। अमरीका मे कोई भी विदेशी पूर्णत विजातीय नही होता। उसकी सस्कृति का हमारी सस्कृति पर कुछ प्रभाव पहले से ही है। फिर भी, अमरीकी दर्शन के विषयो और शब्दावली मे बहुत कुछ ऐसा है जिसे ऐतिहासिक सन्दर्भ मे रख कर अधिक बोधगम्य बनाने की आवश्यकता है।

सयुक्त राज्य का राजनीतिक रूप-निर्धारण ऐसे काल मे हुआ, जिसे परम्परानुसार प्रबुद्ध-काल कहा जाता है। फलस्वरूप, हमारी राष्ट्रीय सस्थाओ के ढाँचे को प्रबुद्ध-काल के उन विचारो के सन्दर्भ में समझा जा सकता है, जो कई सस्कृतियो मे व्यक्त हुए हैं और बहुत कुछ सार्वत्रिक हैं। किन्तु हमारी राष्ट्रीय संस्थाओ के इस निर्माण-काल के पहले और बाद में भी, स्थानीय परम्पराएँ रही है, जो उतनी सार्वत्रिक नही हैं, किन्तु अमरीकी विचारो के गठन मे फिर भी जिनका महत्वपूर्ण योग है—मिसाल के लिए न्यू-इगलैण्ड के शुद्धतावादियो का प्लेटोवाद, दक्षिण और पश्चिम के खेतिहर आदर्श, जैकसन का उग्र लोकतन्त्र, पापुलिस्ट आन्दोलन (अठारहवी सदी के अन्तिम भाग में अर्थतन्त्र पर सार्वजनिक नियन्त्रण और आर्थिक समानता के समर्थक), विभिन्न पन्थो के धर्मोपदेश, प्रकृति और समाज के विकासवादी दर्शन, सामाजिक संगठन और व्यवस्था के

विनिर्माणात्मक आदर्श। विचारो के जो आन्दोलन इनसे सम्बद्ध हैं, उन्हें ऐसे लोगो के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से, जो इनके साथ-साथ ही बडे नही हुए, उनकी ऐतिहासिक व्याख्या आवश्यक है।

किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुभूति, इस कारण कि अमरीकी चेतना इससे सर्वाधिक परिचित है, यह है कि उन्नीसवी सदी के मध्य मे अमरीकी जीवन और विचार को एक गम्भीर सकट का सामना करना पड़ा। सकट बीत गया, लेकिन जिन समस्याओ से सकट उत्पन्न हुआ था, वे अब भी उत्तर और दक्षिण के मन और नैतिकता पर छाई हुई है। राजनीतिक और आर्थिक सकट रक्तपात और कटुता के द्वारा समाप्त हुआ, किन्तु स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की गम्भीर समस्याएँ—जो अपनी प्रकृति मे ही ऐसी हैं कि उनका कभी कोई स्थायी हल नही हो सकता और हर पीढी मे उनका पुन. निरूपण और पुन: अध्ययन करना पड़ेगा—आज भी अमरीकियो को उद्वेलित कर रही हैं। उनके गृह-युद्ध के अनुभव ने अमरीकियो को यह भावना प्रदान की है कि वे केवल किसी विद्रोह-मात्र से नही, वरन् एक क्रान्ति से गुज़र कर निकले है और यह कि व्यावहारिक और दार्शनिक, दोनो प्रकार की समस्याएँ धैर्य के साथ और शान्तिपूर्ण उपायो से सुलझायी जाएँगी। देश मे शान्ति बनाये रखने के इस स्पष्ट निश्चय के ऊपर, विश्व सघर्षों से निपटने के लिये कोई तर्कसगत उपाय खोजने का अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास छाया रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो और विदेशी नीतियो के प्रति विशिष्ट अमरीकी दृष्टिकोणो के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना अन्य देशो के पाठको के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। राजनीति में अमरीकी नीतिज्ञता और धर्मसन्देशवाद के भी, बहुताश को एक शताब्दी पूर्व के अमरीकी सकट और क्रान्ति के सन्दर्भ मे समझना चाहिये, जिसकी छाया हमारे विचारो को गम्भीरता और मर्यादा प्रदान करती रहती है। इसके फलस्वरूप अमरीकी लोग विश्व-युद्धो की व्याख्या उन लोगो की अपेक्षा कुछ भिन्न रीति से करते है, जो समझते है कि वे इस समय एक क्रान्तिकारी स्थिति मे है।

अमरीकी दर्शन के इतिहासकार के लिए, ज्ञान, मूल्य और नैतिकता सम्बन्धी अमरीकी सिद्धान्तो के पिछले दिनो दिखाई पडने वाली प्रवृत्तियो का स्पष्टीकरण शायद सबसे कठिन कार्य है। बीसवी शताब्दी में, अमरीकी दार्शनिक विचारधारा मे एक ऐसी प्रवृत्ति और ऐसा स्वर विकसित हुआ है जिसकी विशिष्टता महत्वपूर्ण है। उस जैसी कोई चीज अन्यत्र कही नही है। किन्तु इसने बहुतेरे तत्व है, जिनमें से कई यूरोप से लिये गये है। आशिक रूप मे यह अमरीकी दार्शनिको की उस पीढी के कार्य की परिणति है जो अब जीवित नही है, किन्तु जिसके विचार जीवित दार्शनिको के कार्य के मूल मे है। विलियम जेम्स, सी० एस० पीयर्स,

आया और दक्षिण की बगान व्यवस्था ने एक प्रान्तीय खेतिहरवाद और गुलामी पर आधारित अर्थतन्त्र को जन्म दिया। इन दोनो क्षेत्रो के बीच, मध्य और पूर्वी औद्योगिक क्षेत्र मे, हम प्राकृतिक विज्ञानो, प्रविधियो और पूँजीवाद का घर पाते हैं। मिसीसिपी घाटी के चौडे मैदानो ने, जिसका कृषि-वन स्वतन्त्र किसानो ने निर्मित किया, एक विशिष्ट घरेलू सस्कृति और लोकतान्त्रिक संस्थाओ को विकसित किया, जो विशाल खुले इलाको के और अधिक खुले हुए समाज के अनुकूल थी। यहाँ सेण्ट लुई, मिसौरी मे और उसके आस-पास, देश के भौगोलिक केन्द्र मे, एक आदर्शवादी राष्ट्रवाद का विकास हुआ, जिसने उत्तर और दक्षिण के बीच गृह-युद्ध के सकट के समय और बाद में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। निकटतम अतीत मे, प्रशान्त महासागर के तट पर एक अलग सास्कृतिक क्षेत्र का निर्माण हुआ है। प्राची की ओर खुले इस क्षेत्र ने प्राची के कुछ विचार भी ग्रहण किये और पश्चिम (पश्चिमी अमरीका) को राष्ट्रीय संस्कृति का एक अभिन्न अग बनाया।

इस बहुलता के साथ आगामी पृष्ठो में न्याय कर सकना स्पष्टत. असम्भव है। मुझे बाध्य होकर, जैसा हर इतिहासकार को करना पड़ता है, सामग्री और परम्परा के अनन्त समूह से ऐसी विचार-धाराएँ चुननी पड़ी हैं, अमरीकी दिमागो पर जिनका जीवन्त प्रभाव दीर्घजीवी प्रतीत होता है। और अपनी इतिहास-पुस्तक के इस सस्करण के लिए मैने केवल अमरीकी विचार के सारभूत तत्व चुने हैं। अमरीका मे कोई भी विदेशी पूर्णत विजातीय नही होता। उसकी सस्कृति का हमारी सस्कृति पर कुछ प्रभाव पहले से ही है। फिर भी, अमरीकी दर्शन के विषयो और शब्दावली में बहुत कुछ ऐसा है जिसे ऐतिहासिक सन्दर्भ मे रख कर अधिक बोधगम्य बनाने की आवश्यकता है।

सयुक्त राज्य का राजनीतिक रूप-निर्धारण ऐसे काल मे हुआ, जिसे परम्परानुसार प्रबुद्ध-काल कहा जाता है। फलस्वरूप, हमारी राष्ट्रीय सस्थाओ के ढाँचे को प्रबुद्ध-काल के उन विचारो के सन्दर्भ मे समझा जा सकता है, जो कई सस्कृतियो मे व्यक्त हुए हैं और बहुत कुछ सार्वत्रिक हैं। किन्तु हमारी राष्ट्रीय संस्थाओ के इस निर्माण-काल के पहले और बाद मे भी, स्थानीय परम्पराएँ रही है, जो उतनी सार्वत्रिक नही है, किन्तु अमरीकी विचारो के गठन में फिर भी जिनका महत्वपूर्ण योग है—मिसाल के लिए न्यू-इंगलैण्ड के शुद्धतावादियो का प्लेटोवाद, दक्षिण और पश्चिम के खेतिहर आदर्श, जैफ़र्सन का उग्र लोकतन्त्र, पापुलिस्ट आन्दोलन (अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में अर्थतन्त्र पर सार्वजनिक नियन्त्रण और आर्थिक समानता के समर्थक), विभिन्न पन्थो के धर्मोपदेश, प्रकृति और समाज के विकासवादी दर्शन, सामाजिक सगठन और व्यवस्था के

विनिर्माणात्मक आदर्श। विचारो के जो आन्दोलन इनसे सम्बद्ध है, उन्हें ऐसे लोगो के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से, जो इनके साथ साथ ही बडे नही हुए, उनकी ऐतिहासिक व्याख्या आवश्यक है।

किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुभूति, इस कारण कि अमरीकी चेतना इससे सर्वाधिक परिचित है, यह है कि उन्नीसवी सदी के मध्य में अमरीकी जीवन और विचार को एक गम्भीर सकट का सामना करना पड़ा। सकट बीत गया, लेकिन जिन समस्याओ से सकट उत्पन्न हुआ था, वे अब भी उत्तर और दक्षिण के मन और नैतिकता पर छाई हुई है। राजनीतिक और आर्थिक संकट रक्तपात और कटुता के द्वारा समाप्त हुआ, किन्तु स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की गम्भीर समस्याएँ—जो अपनी प्रकृति मे ही ऐसी हैं कि उनका कभी कोई स्थायी हल नही हो सकता और हर पीढी मे उनका पुन. निरूपण और पुन: अध्ययन करना पड़ेगा—आज भी अमरीकियो को उद्वेलित कर रही हैं। उनके गृह-युद्ध के अनुभव ने अमरीकियो को यह भावना प्रदान की है कि वे केवल किसी विद्रोह-मात्र से नही, वरन् एक क्रान्ति से गुज़र कर निकले है और यह कि व्यावहारिक और दार्शनिक, दोनो प्रकार की समस्याएँ धैर्य के साथ और शान्तिपूर्ण उपायो से सुलझायी जाएँगी। देश मे शान्ति बनाये रखने के इस स्पष्ट निश्चय के ऊपर, विश्व संघर्षो से निपटने के लिये कोई तर्कसगत उपाय खोजने का अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास छाया रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो और विदेशी नीतियो के प्रति विशिष्ट अमरीकी दृष्टिकोणो के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना अन्य देशो के पाठको के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। राजनीति में अमरीकी नीतिज्ञता और धर्मसन्देशवाद के भी, बहुतांश को एक शताब्दी पूर्व के अमरीकी सकट और क्रान्ति के सन्दर्भ मे समझना चाहिये, जिसकी छाया हमारे विचारो को गम्भीरता और मर्यादा प्रदान करती रहती है। इसके फलस्वरूप अमरीकी लोग विश्व-युद्धो की व्याख्या उन लोगो की अपेक्षा कुछ भिन्न रीति से करते है, जो समझते है कि वे इस समय एक क्रान्तिकारी स्थिति मे है।

अमरीकी दर्शन के इतिहासकार के लिए, ज्ञान, मूल्य और नैतिकता सम्बन्धी अमरीकी सिद्धान्तो के पिछले दिनो दिखाई पडने वाली प्रवृत्तियो का स्पष्टीकरण शायद सबसे कठिन कार्य है। बीसवी शताब्दी में, अमरीकी दार्शनिक विचारधारा में एक ऐसी प्रवृत्ति और ऐसा स्वर विकसित हुआ है जिसकी विशिष्टता महत्वपूर्ण है। उस जैसी कोई चीज अन्यत्र कही नही है। किन्तु इसमें बहुतेरे तत्व है, जिनमे से कई यूरोप से लिये गये हैं। आंशिक रूप मे यह अमरीकी दार्शनिको की उस पीढ़ी के कार्य की परिणति है जो अब जीवित नही है, किन्तु जिसके विचार जीवित दार्शनिको के कार्य के मूल में है। विलियम जेम्स, सी० एस० पीयर्स

जोसिया रॉयस और जान डुई (केवल सर्वप्रमुख नाम ही लें) की क्रान्तिकारी पीढ़ी के श्रम ने इस समय तक उस वस्तु का निर्माण कर दिया है, जिसे आमतौर पर अमरीकी दर्शन के रूप में जाना जाता है। दर्शन और दार्शनिक शिक्षा में राष्ट्रव्यापी रुचि उत्पन्न करने वाले ये व्यक्ति अमरीकी संस्कृति के चार भिन्न अचलों के प्रतिनिधि थे। किन्तु वे आचलिक व्यक्तित्व नही रह गये। वल्कि वे अपने को अमरीकी दार्शनिक भी नही समझते थे। ये वहुदेशीय आत्माएँ थी, जो यूरोप के दार्शनिक आन्दोलनो के समकक्ष थी और यूरोपीय विचार की सार्वत्रिक समस्याओं के सन्दर्भ में कार्यरत थी। रसेल, ह्वाइटहेड और जी० ई० मूर, आइन्सटीन, बर्गसन, हुसर्ल और फ्रॉयड, पॉइन्करे, कार्नेप, कॅसिरर, मैरिटेन, सान्तायना, टी० एस० इलियट, हैरोल्ड लास्की, कोर्केगाई, उनामुनो और टिलिच की रचनाओं के द्वारा अटलाण्टिक पार से जो नवीन उद्दीपन मिला, उसके अभाव में एक विशिष्ट अमरीकी विचार का यह उदय सम्भव न होता। कई प्रकार की 'सैद्धान्तिक वायु' पिछले दिनो 'अमरीकी मच' पर वढ़ी है—वह मच जिसका निर्माण नई सदी के आरम्भ-काल के महान् अमरीकियो ने किया और फिर पिछले दशको के विश्वव्यापी तूफानो के लिये खुला छोड़ दिया। यद्यपि ये हवाएँ अलग-अलग क्षेत्रों से आती हैं और विभिन्न प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करती हैं, किन्तु वे एक विशिष्ट अमरीकी अनुक्रिया का सृजन करने में भी सहायक हुईं। जो विचार-व्यवस्थाएँ और खोज की दिशाएँ इस समय सयुक्त राज्य मे उपस्थित हैं, उनमें इतनी काफी सत्यनिष्ठा और सार्विकता है कि देश और विदेश में सामान्यतः उनकी ओर ध्यान दिया जाये।

विषय क्रम

गये। धर्म के क्षेत्र में पोप के निरंकुश अधिकारो को चुनौती देने वाले सुधारवादी आंदोलन चले जो मुख्यत: जर्मनी, हालैंड, फ्रास, स्विट्ज़रलैंड और इगलिस्तान में फैले। इस प्रोटेस्टेन्ट सुधारवादी आदोलन की कई धाराएँ बनी। सर्वप्रमुख धारा के मूल प्रवर्त्तक जान कालविन थे। ये धर्म को चर्च (धर्म-सगठन, के माध्यम से ईश्वर और मनुष्य के बीच एक प्रकार का समझौता (प्रसविदा) मानते थे। गिरजा-क्षेत्र का कार्य-सचालन करने वाली अग्रेजो की परिषद् (प्रेस्बिटरी) के नाम पर ये प्रेस्बिटीरियन कहलाए। धर्म को पूर्णत. शुद्ध करने मे विश्वास करने के कारण इन्हे शुद्धतावादी भी कहा गया। फ्रास मे आरम्भ में इन्हे ह्यूजीनाट कहा गया (सभवत नेता के नाम पर)। बाद मे सारे यूरोप मे इस मत के लिए 'सुधारवादी चर्च' का प्रयोग होने लगा।

दूसरी धारा आनाबैप्टिस्ट (पुन बपतिस्मावादी) लोगो की थी, जिसका प्रसार मुख्यत: जर्मनी मे सोलहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ। इसके नेता मुन्जर नाम के एक पादरी थे। इस आन्दोलन के समर्थको ने कई बार राज्य-शक्ति के विरुद्ध विद्रोह किये जो असफल रहे। सुधारवादी आन्दोलनो मे यह एक पराकाष्ठावादी आन्दोलन था जिसे सुधारवाद का वामपक्ष कहा जा सकता है। ये निजी आस्था को मानते थे और धर्म-समुदाय मे स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्त को सामुदायिक सम्पत्ति की सीमा तक ले जाते थे। शैशव में हुए बपतिस्मा की वैधता को न स्वीकार करने के कारण विरोधियो ने इन्हे पुनः बपतिस्मावादी कहा।

तीसरी धारा धर्मसदेशवादियो (एवाजेलिस्ट) की थी। ये अधिक व्यक्तिवादी थे और इनके विचारो मे रहस्यवाद का भी पुट था। इसके प्रमुख नेता चार्ल्स वेसली, जान वेसली और जार्ज व्हाइटफील्ड थे। ये ईसा मे विश्वास को ही मुक्ति का मार्ग मानते थे। धर्म-सदेश के प्रचार द्वारा इस विश्वास को फैलाना इनका उद्देश्य था। प्रेम अथवा शान्ति को ये विश्वास का माध्यम मानते थे। वैयक्तिक शुचिता मे विश्वास करने के कारण ये पवित्रतावादी (पायटिस्ट) भी कहलाए।

इन मुख्य धाराओ के अन्तर्गत भी बहुतेरी उप-धाराएँ थी। नाना प्रकार के भेद-विभेदो ने बहुसख्यक सम्प्रदायो को जन्म दिया। वस्तुत हर विचारधारा के अन्दर विभिन्न प्रभाव कन्धे लड़ाते थे और ज़रा-ज़रा से अन्तर नयी धाराओ और सम्प्रदायो को जन्म देते थे। सामाजिक दर्शन के क्षेत्र से एक उदाहरण लें, तो सामाजिक अनुबन्ध (सोशल कान्ट्रैक्ट) सिद्धान्त के तीन मुख्य प्रवक्ताओ मे रूसो और लॉक ने जहाँ विद्रोहो को प्रेरणा दी, वहाँ हॉब्स राजतन्त्र के समर्थक थे। विचार के हर क्षेत्र मे ऐसी ही स्थिति थी।

अमरीकी इतिहास पुन' जागरण-काल के अन्त और आधुनिककाल के आरम्भ से शुरू होता है। अमरीकी इतिहास और विचार-धारा पर सबसे अधिक प्रभाव

शुद्धतावादियो का पडा। ये राज्य को एक प्रकार का लोकतान्त्रिक धर्मराज्य बनाना चाहते थे, जो ईश्वरीय (धार्मिक) नियमो के आधार पर सचालित हो। इस विचारधारा के वहुत से लोग, कभी-कभी तो पूरे के पूरे गाँव, मुख्यत इंग्लिस्तान और हालैड से जाकर, रूढ धर्म और राज्य के क्रोध से बचने के लिए, न्यू-इगलैड (अमरीका में न्यूयार्क के उत्तर में बसे पाँच राज्यो का क्षेत्र) मे बस गये थे।

धर्मशास्त्र और तर्कबुद्धि, इनके टकराव से ही आधुनिककाल की एक मुख्य प्रवृत्ति, अनुभववाद का विकास हुआ, अर्थात् जो कुछ प्रयोग अथवा अनुभव से सिद्ध हो सके, वही मान्य है, अन्य कुछ नही।—अनुवादक]

• •

न्यू-इंगलैंड के शुद्धतावादियों की प्लेटोवादी परम्परा

अमरीकी दर्शन का अध्ययन शुद्धतावादी चर्च-प्रधानतावाद (प्युरिटन स्कॉलेस्टिसिज्म) की एक शाखा से आरम्भ करना अच्छा होगा। यह विचारधारा अशतः कैम्ब्रिज (इगलिस्तान) से और अशतः यूरोप मे अपने मुख्य केन्द्र हालैंड से, बनी-बनायी ही न्यू-इंगलैंड ले आयी गयी थी। मॅसाचुसेट्स को सर्वप्रथम बसाने वाले धर्म-समुदायवादियो[1] के पास एक असाधारणत. विद्वतापूर्ण विचार-दर्शन था। जब रूढ़ धर्म से अपनी असहमतियो के कारण वे सताये जा रहे थे, तब यह दर्शन उन्हे सहारा देने वाले दैवी संदेश का काम देता था। जब अमरीकी वन्य-प्रान्त में उन्होने अपने को ईश्वर की कृपा से वंचित लोगो[2] के बीच पाया तब भी वह एक दैवी सदेश का काम देता रहा। लेकिन अन्तत. उनके धर्म पर

---

१. काग्रेगेशनलिस्ट—गिरजाघरो के निश्चित क्षेत्रो में बसे हुए धर्म-समुदायों को स्वायत्त अधिकार प्रदान करने के सिद्धान्त को मानने वाले।—अनु०

२. एक प्रचलित धारणा के अनुसार, यहूदियो, ईसाइयो और मुसलमानों को ईश्वर ने पैगम्बर (मूसा, ईसा, और मोहम्मद) तक धर्म-पुस्तक (ओल्ड-टेस्टामेन्ट, न्यू टेस्टामेन्ट, कुरान) प्रदान करने की कृपा की। संसार के अन्य सभी लोग ऐसी कृपा से वंचित रहे।—अनु०

आधारित राज्य सगठनो के लिए एक वैधानिक सिद्धान्त बन गया, आस्था की वस्तु न रह जाने पर भी बहुत दिनो तक उनकी कल्पना पर छाया रहा।

धर्म-समुदायवादी शुद्धतावाद की परम्परा का स्रोत हमे पुन. जागरणकालीन प्लेटोवाद मे, और विशिष्टत पीटर रेमुस (१५१५-७२) मे मिलता है। वे एक फ्रांसीसी मानववादी[1] और प्लेटोवादी थे। उन्होने अरस्तूवादी शास्त्रीयता के तर्क और भाषा-प्रयोग की बडी तीखी आलोचना की, विशेषत' उसके पदार्थ-निरूपण और विधेय रूपो[2] की, जो उन्हे बिल्कुल व्यर्थ प्रतीत हुए। १५६१ में उन्होने काल्विनवाद[3] स्वीकार कर लिया और नाइम्स की धर्म सगोष्ठी[4] (१५७२) मे प्रेस्बिटीरियन[5] मत के विरुद्ध एक शुद्ध धर्म समुदायवादी सिद्धान्त का समर्थन करने के कारण उन्हे काफी कुख्याति मिली। प्रेस्बिटीरियन लोगो ने उनके सिद्धान्त को अत्यधिक 'लोकतान्त्रिक' और इस कारण 'बिल्कुल वाहियात और घातक'

---

१. पुन. जागरणकाल में, धर्मशास्त्रो की सीमा लाँघ कर यूनानी और रोमी रचनाओ का अध्ययन करने वालो के लिए प्रयुक्त। अंग्रेजी में 'ह्यू मनिस्ट'।—अनु०

२. अरस्तू के दार्शनिक विचारो का आधार एक मूल-विभाजन है। इसमे एक ओर तो मूल तत्व (पदार्थ) हैं जिनमें सृष्टि की सभी वस्तुओ का वर्गीकरण किया जा सकता है। अरस्तू के अनुसार ये मूल तत्व हैं—वस्तु, परिमाण, गुण, सम्बन्ध, स्थान, काल, मुद्रा, अधिकार, क्रिया, और आवेग। दूसरी ओर विधेय अर्थात् वे सभी बातें हैं जो उक्त पदार्थो के बारे में कही जा सकती हैं। अंग्रेजी में 'कैटेगोरीज' और 'प्रेडिकेबिल्स''—अनु०

३. जान कॉल्विन (१५०६-१५६४)—शुद्धतावादी विचारधारा के मूल प्रवर्तक, जिन्होने ईश्वर द्वारा उद्धार के लिए विशिष्ट व्यक्तियो के चयन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त शुद्धतावादियो में यह भावना उत्पन्न करने मे सहायक हुआ कि वे ईश्वर के चुने हुए दूत हैं।—अनु०

४. प्रेस्बिटीरियन मत की धर्म-सगोष्ठी (सायनाड) जिसमे सम्बन्धित क्षेत्र (अंचल, प्रान्त या देश) के धर्माधिकारी और अग्रज भाग लेते हैं। नाइम्स नगर फ्रान्स में प्रोटेस्टेन्ट मतानुयायियो का एक गढ था जहाँ फ्रान्स मे प्रोटेस्टेन्ट मत काफी फैल जाने के बाद उनकी एक संगोष्ठी हुई।

५. प्रेस्बिटीरियन—शुद्धतावादियों का सम्प्रदाय जो गिरजाक्षेत्र के सभी लोगों द्वारा नहीं, वरन् समान अधिकार वाले अग्रजो द्वारा शासन के सिद्धान्त को मानता था। इसका प्रसार मुख्यत. स्कॉटलैंड में हुआ।—अनु०

कह कर उसकी भर्त्सना की। सेन्ट बार्थो-लोम्यू के हत्याकाड[1] में उनकी हत्या हो गयी। इस प्रकार उनके जीवन और उनकी मृत्यु, दोनो ने ही उन्हे एक प्रोटस्टेन्ट सन्त और शहीद बनाने मे योग दिया। दर्शन में उनकी मुख्य देन यह थी कि प्लेटो के विचारो पर आधारित एक प्रकार के द्वन्द्ववाद या द्वैत को उन्होने शास्त्रीय और अरस्तूवादी 'प्रत्यक्ष प्रमाण के तर्क' से अधिक मौलिक और उपयोगी बता कर उसे पुनर्जीवित और व्यवस्थित किया। वे तर्कशास्त्र को प्रमाण के विज्ञान की अपेक्षा प्रमाण की कला मानते थे—मनुष्य की सहज बुद्धि को अनुशासित करने की कला। द्वन्द्व या व्यवस्थित द्वैत के द्वारा उन्होने अन्तर और विवेक की कला सिखाई। तार्किक विश्लेषण की इस कला को उन्होने आविष्कार कहा। तर्कशास्त्र की दूसरी शाखा को उन्होने निर्णय या विन्यास कहा जो उन सभी को जोडने की कला है जिन्हे द्वन्द्व अलग करता है। रेमुस ने अपनी विचार-व्यवस्था का समर्थन मुख्यत उसके शैक्षणिक मूल्य के आधार पर किया। लेकिन उनके कुछ शिष्यो ने विशेपत मेसान्श्यन के जर्मन छात्रो मे, जे०, एच० अलस्टेड नामक एक छात्र ने द्वन्द्वात्मक विधि का विकास कलाओ और विज्ञानो के हर क्षेत्र मे एक विश्व-कोष के रूप मे किया। अल्स्टेड का 'एन्साइक्लोपीडिया' (विश्व-कोष, १६३०) शुद्धतावादी दर्शन का एक लोकप्रिय ग्रन्थ बन गया। इसमे शिक्षाशास्त्र के अतिरिक्त तीन अन्य मूल-विपय माने गये— 'डाइडैक्टिया: हैक्सिलाजिया' दिमाग के गठन और आदतो का ज्ञान, 'टेक्नोलाजिया, द्वन्द्वात्मक विधि से प्रस्तुत कलाओ की व्यवस्था जिससे मूल सम्बन्धो और ज्ञान की एकता का पता चले, और 'आर्चिलॉजिया' ज्ञान और अस्तित्व दोनो के ही आद्य-स्वरूपो, लक्ष्यो और सिद्धान्तो का शास्त्र, जो मोटे तौर पर प्लेटो की विचार-व्यवस्था के समान है। ज्ञान-प्राप्ति, या सभी विषयो को अपनी परिधि मे लेने वाले दर्शन का सामान्य लक्ष्य था मनुष्य की सहज (अकृत्रिम) बुद्धि को अनुशासित (कृत्रिम) तर्कशीलता मे परिवर्तित करना जब तक कि मनुष्य का दिमाग ईश्वर का एक प्रतिरूप न बन जाए।

सर विलियम टेम्पिल ने १५८० मे रेमुस की विचार-व्यवस्था को कैम्ब्रिज

---

१. सेन्ट बार्थोलोम्यू दिवस, २४ अगस्त, १५७२ को आरम्भ हुआ, फ्रांस मे प्रोटेस्टेन्ट मतानुयायियो का हत्याकांड। इस घटना के पीछे मुख्यतः रानी कैथराइन मेडिसी का हाथ था। हत्याकाड पेरिस में १७ सितम्बर तक चलता रहा और देश के अन्य भागो मे भी फैला जहाँ ३ अक्तूबर को समाप्त हुआ। अनुमान है कि इसमें लगभग पचास हजार प्रोटेस्टेन्ट (जो फ्रांस में ह्यूजोनॉट, कहलाते थे) मारे गये।—अनु०

विश्वविद्यालय मे प्रविष्ट कराया, जहाँ उसने कैम्ब्रिज के प्लेटोवाद की अभिवृद्धि मे सहायता दी। यह विचार-व्यवस्था धर्म-समुदायवाद के समर्थको का आधार वन गयी। कैम्ब्रिज में शुद्धतावाद के प्रतिनिधि थे अलेक्ज़ेन्डर रिचर्ड्सन, जार्ज डौनामे, ऐन्थनी बुटन, और विशेषतः विलियम एम्स, जिनकी रचनाएँ प्रारम्भिक न्यू-इगलैड के प्रिय दर्शन-ग्रन्थ बनी। १६७२ मे एम्स ने रेमुस की रचना 'डाइलेक्टिक्स विद कमेन्टरी' (द्वन्द्ववाद, टीका सहित) का एक सस्करण प्रकाशित किया। उसी वर्ष मिल्टन ने अपनी पुस्तक 'इन्स्टियूशंस ऑफ दि आर्ट आफ लाजिक बेस्ड आन दी फिलासफी आफ पीटर रेमुस (पीटर रेमुस के दर्शन पर आधारित तर्ककला की स्थापनाएँ) प्रकाशित की। रेमुस के दर्शन और प्रसविदात्मक धर्मशास्त्र[1] को लोकप्रिय बनाने वाले अन्य शुद्धतावादी धर्मशास्त्री थे विलियम पर्किन्स, जॉन प्रेस्टन और थामस हुकर।

न्यू-इंगलैड आने के पहले, हुकर ने कैम्ब्रिज मे रिचर्ड्सन से रेमुस का दर्शन पढा था। न्यू-इगलैड जाकर वे इस विचार-व्यवस्था के सर्वाधिक जानकार प्रतिपादक वने और न्यू-इगलैड के पादरियो के एक पर्याप्त शिक्षित समूह के साथ मिलकर कई दशको तक धर्म-समुदायवाद का दार्शनिक समर्थन करते रहे। न्यू-इंगलैंड मे इस दाशनिक शुद्धतावाद ने एक निश्चित वौद्धिक परम्परा का निर्माण किया जिसके मुख्य अग थे धर्म-तन्त्रीय नगरो का सिद्धान्त और 'टेक्नोलाजिया' (कलाओ की व्यवस्था) का शास्त्रीय विकास।

यूरोप मे रेमुस के दर्शन और प्रसविदात्मक धर्मशास्त्र का प्राथमिक लक्ष्य सामान्य व्यक्ति को ऐसे वौद्धिक औज़ार प्रदान करना था जिससे वह पादरियो के विशेषाधिकार, सस्कार-विधियो की आवश्यकता और प्रतिष्ठित सस्थाओ की शक्ति को समाप्त कर सके। इगलिस्तान में धर्म-समुदायवादी अधिक से अधिक यही आशा कर सकते थे कि इगलिस्तानी चर्च[2] के मान्य और प्रतिष्ठित अगो के रूप मे गिरजा-क्षेत्रो को प्रसविदात्मक सिद्धान्तो के आधार पर अपना सगठन करने की अनुमति मिल सकेगी। यद्यपि वे काल्विन के सिद्धान्तो का प्रचार करते रहे कि सभी राज्यो को पवित्र प्रजाधिपत्य (होली कामनवेल्थ) वन जाना चाहिए, किन्तु अपने कार्यक्रम पर वे अमल नही कर सकते थे। इसके विपरीत, न्यू-इगलैंड

---

१ धर्म को चर्च (धर्म-संगठन) के माध्यम से ईश्वर और मनुष्य के बीच एक प्रकार का समझौता मानने वाला सिद्धान्त। अंग्रेजी में 'कवेनान्ट थियालोजी'।—अनु०

२. इंगलिस्तान की रानी एलिजाबेथ प्रथम द्वारा स्थापित धर्म-संगठन जिसमें इंगलिस्तान का राजा ही चर्च का भी प्रधान होता है।—अनु०

मे छोटे-छोटे स्वतन्त्र समुदायो, नगरो या गिरजा-क्षेत्रो को प्रसविदाओ या सामाजिक अनुबन्धो के द्वारा ईसा के छोटे-छोटे राज्यो या धर्मतन्त्रो के रूप में संगठित करना संभव था, जिनमें लोगो द्वारा चुने गये दडाधिकारी और पादरी ईश्वरीय नियमो को लागू करने के लिए सयुक्त रूप से उत्तरदायी हो। जोनाथन मिचेल ने १६६२ में कहा कि "बाद मे सम्पूर्ण समाजो मे ईसा के राज्य का निर्माण...हमारा उद्देश्य था और इस देश मे हमारी रुचि का आधार था। यद्यपि आन्तरिक और अदृश्य राज्य के प्रति, जो उसका विपय-क्षेत्र था, आदर के साथ।" और प्रोफेसर पेरी मिलर की टीका बडी उपयुक्त है। 'सत्रहवी शताब्दी के ईसाई-जगत् मे न्यू०-इगलैंडवासियो को अनुपम बनाने वाला, सभी सुधारवादी धर्म-सगठनो से उनको अलग करके, उन्हे वस्तुत एक विशिष्ट समाज बनाने वाला उनका यह स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त था कि "ईश्वरीय अनुकम्पा की प्रसविदा, राजनीति मे दृश्यमान् चर्च-मार्ग की एक चर्च-प्रसविदा से आवृत्त है।[1]" यद्यपि न्यू-इगलैंड के धर्मशास्त्रियो ने अपनी पीठिकाओ से दैवी आदेश जारी करने की आदत डाल ली और एक विशेषाधिकारयुक्त वर्ग का स्थान और शक्तियाँ ग्रहण कर ली, किन्तु सामान्य व्यक्ति आगे चल कर अपने प्रसविदात्मक अधिकारो को मनवा सके और उन्होने धीरे-धीरे पादरियो द्वारा सचालित धर्मतन्त्रो को क्षीण करके उन्हे लोकतन्त्र का रूप दिया। नि.सन्देह, पादरियो ने अधर्म की वृद्धि के खिलाफ आवाज़ उठाई, किन्तु युवा पीढी ने, जिसमे युवा पादरी भी थे, इस चीख-पुकार की ओर विशेष ध्यान नही दिया। दूसरे शब्दों मे जो चीज यूरोप में मुख्यतः पादरियो के विशेषाधिकारो के विरुद्ध मध्यम-वर्ग का विद्रोह थी, वह अमरीका में स्वतन्त्र राजनैतिक समुदायो के निर्माण का ठोस आधार बन गयी। इन समुदायो मे पादरियो की शक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो गयी और प्रतिष्ठा भी वही तक बनी रही जहाँ तक उन्होने स्वयं 'सामान्य' लोगो के दृष्टिकोण को अपना लिया। न्यू-इगलैंड के नगर न मात्र व्यापारी साहसिको के पूजी विनियोग थे,न पवित्र प्रजाधिपत्य। वे दोनो होने का दावा करते थे, लेकिन धीरे-धीरे एक विशिष्ट प्रकार की स्वतन्त्रता का विकास हुआ, जिसमे प्लेटोवादी आदर्शवाद और यान्की (न्यू-इगलैंडवासियो का व्यग्यनाम) व्यापारिक समृद्धि का मिश्रण था। ईश्वरीय 'चयन' और विधान, स्वतन्त्र प्रजाधिपत्यो का विचार दर्शन या मान्यता का आधार बन गया।

इस शुद्धतावादी प्लेटोवाद से ईश्वरवाद (डाइज़म)[2] और प्राकृतिक धर्म

१. पेरी मिलर 'दी न्यू-इगलैंड माइन्ड' (न्यूयार्क १६३६), पृ० ४४७।

२. प्राकृतिक धर्म का सिद्धान्त, अर्थात् ईश्वर में विश्वास किन्तु धर्मशास्त्रो के ईश्वर प्रदत्त होने में नहीं।—अनु०

की ओर सक्रमण आसानी से, धीरे-धीरे और बहुत कुछ अचेतन रूप मे हुआ। कारण यह था कि शुद्धतावादी स्पष्टत बाइबिल के श्रुतनियमो और प्रसविदा पर उतने निर्भर नही थे जितना वे स्वय मानते थे। उनकी विचार-व्यवस्था आरम्भ से ही बाइबिल पर आधारित होने की अपेक्षा वास्तविक रूप मे दार्शनिक अधिक थी।

जब न्यू-इगलैंड मे सर्वप्रथम अधिक लोकतान्त्रिक शासन के हित मे, दडाधिकारियो और पादरियो के विरुद्ध 'प्रकृति-प्रदत्त' अधिकारो को मनवाने का प्रयास किया गया, तो गवर्नर विन्थ्रॉप ने उसका प्रभावकारी उत्तर दिया और शुद्धतावादी दर्शन के सन्दर्भ मे 'प्राकृतिक स्वतन्त्रताओ' के समर्थन को 'भ्रष्ट स्वतन्त्रताओ' का समर्थन कह कर उसकी निन्दा की।

स्वतन्त्रता के दो रूप है, प्राकृतिक (हमारी प्रकृति अब जैसी भ्रष्ट है, मेरा तात्पर्य उससे है) और नागरिक या सघीय। पहले प्रकार की स्वतन्त्रता मनुष्य और पशुओ व अन्य प्राणियो के लिए समान है। इसमें मनुष्य को मनुष्य के साथ अपने सहज-सम्बन्ध मे जो कुछ भी चाहे करने की स्वतन्त्रता होती है। यह अच्छाई और बुराई दोनो की स्वतन्त्रता है। यह स्वतन्त्रता सत्ता से बेमेल और असगत है और अधिकतम न्यायपूर्ण सत्ता द्वारा भी, जरा मे भी अकुश को नही सह सकती। इस स्वतन्त्रता को कायम रखने और इसका उपभोग करने मे मनुष्य मे बुराई बढती है और धीरे-धीरे वह विवेकहीन पशुओ से भी गया-गुजरा हो जाता है—पूर्ण उच्छृखलता से सभी का ह्रास होता है (Omnes sumus licentia deteriores)। यह सत्य और शान्ति का वह महान् शत्रु है, वह जगली पशु है, जिसे सयमित और शमित करना सभी ईश्वरीय विधानो का लक्ष्य है। दूसरे प्रकार की स्वतन्त्रता को मैं नागरिक या सघीय कहता हूँ। ईश्वर और मनुष्य के बीच की प्रसविदा के सन्दर्भ मे, नैतिक नियमो मे, और मनुष्यो की आपसी राजनैतिक प्रसविदाओ और सविधानो के सन्दर्भ में इसे नैतिक स्वतन्त्रता भी कहा जा सकता है। यह स्वतन्त्रता सत्ता का समुचित लक्ष्य और उद्देश्य है, और उसके बिना नही रह सकती। यह केवल अच्छाई, न्याय, और ईमानदारी की स्वतन्त्रता है। इस स्वतन्त्रता का, (न केवल अपनी सम्पत्ति बल्कि) आवश्यकता पडे तो अपने जीवन को भी खतरे में डालकर आपको समर्थन करना है। 'यह स्वतन्त्रता एक रूप में सत्ता के अधीन रह कर ही कायम रखी और उपयोग की जाती है। यह उसी प्रकार की स्वतन्त्रता है जिसके द्वारा ईसा ने हमे मुक्त किया है।'[1]

---

१. जान विन्थ्राप, हिस्टरी आफ न्यू-इगलैंड, जेम्स केन्डाल होस्मर द्वारा सम्पादित (न्यूयार्क, १९०८) खंड २, पृष्ठ २३८-२३९।

हान्स का भी यही उत्तर होता। फिर भी, ये नागरिक या प्रसविदात्मक स्वतन्त्रताएँ अधिकाधिक सामने आयी। जान वाइज ने शुद्धतावादी दृष्टि का भेद खोल दिया। जब उन्होने दर्शित किया कि अगर 'मनुष्य की नैतिक अधमता का विचार छोड दिया जाए' तो 'ईसाई स्वतन्त्रता' के प्रसविदात्मक धर्मशास्त्र के समकक्ष धर्म-निरपेक्ष सामाजिक-अनुबन्ध के सिद्धान्त को, जैसी पुफेनडॉर्फ ने उसकी व्याख्या की थी, रखा जा सकता था। भ्रष्टता की चेतना के क्रमिक ह्रास और अग्रेज व्यापारिकता के विरुद्ध बढती हुई खीझ के साथ-साथ लॉक के 'निबन्धो' (ट्रीटाइजेज) का न्यू-इगलैड मे अधिकाधिक स्वागत हुआ और अन्तत विद्रोह का औचित्य सिद्ध करने के लिए उनका उपयोग किया गया।

सामाजिक सिद्धान्त के साथ जो बात हुई वही प्राकृतिक दर्शन के साथ भी हुई। कैम्ब्रिज का प्लेटोवाद न्यूटन के विज्ञान के उदय के साथ निकट से सम्बद्ध था और जब १७०० के लगभग बेकन, न्यूटन और लॉक की रचनाएँ न्यू-इगलैड मे उपलब्ध हुई, तो उन्होने शीघ्र ही रेमुसवादी ग्रन्थो की पुरानी पड चुकी भौतिकी और खगोल-विद्या का स्थान ले लिया।

प्रेम का पवित्रतावादी[1] सिद्धान्त

शुद्धतावादी चर्च-नगरो की पूर्ण स्थापना होने के पहले ही उनमे पवित्रतावादियो के व्यक्तिवादी समूह घुस आये, जिन्हे धर्मशास्त्री आमतौर पर केवल 'विप्रतिपेधवादी'—धार्मिक अराजकतावादी कहते थे, और अपनी सामुदायिक आस्था का पूर्ण नकार मान कर जिनसे भय खाते थे। पहले क्वेकर[2] और आनाबेप्टिस्ट[3] लोग आये, फिर मेथॉडिस्ट[4]। ये सभी 'उत्साह'

१. पायटिज्म—प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायो में श्रद्धा, शुचिता, या भावनात्मकता की वृद्धि के लिए सत्रहवी शताब्दी मे आरम्भ आन्दोलन।—अनु०

२ जार्ज फाक्स द्वारा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में स्थापित मत जिसका वास्तविक नाम 'मित्र-समाज' है। इनके मुख्य सिद्धान्त हैं—भाषा-भूषा की सादगी और शान्तिमय आचरण।—अनु०

३. शैशवकालीन बपतिस्मा की वैधता अस्वीकार करने के कारण पुन. बपतिस्मावादी कहलाते है। प्रोटेस्टेन्ट सुधारवाद की एक पराकाष्ठा पूर्ण शाखा। ये निजी आस्था और समानता को मानते हैं। यह आन्दोलन मुख्यत जर्मनी में चला जहाँ इसके समर्थको ने कई विद्रोह भी किये।—अनु०

४. मोटे तौर पर धर्म-सदेशवादियो के लिए प्रयुक्त।—अनु०

या पुनरुत्थान को और वैयक्तिक श्रुति को मानते थे। खतरे को समझकर शुद्धतावादी लोग 'स्नेह उत्पन्न करने' या धार्मिक भाव-प्रवणता के विरुद्ध सौम्यता और ज्ञान पर ज़ोर देने लगे।

व्यक्तिवाद और धर्म-सघवाद का मूलसघर्ष 'महान् जागरण' के काल में ज़ोर से फैला जब यूरोपीय पवित्रतावाद और धर्म-सदेशवाद[1] अमरीका पहुँचे और उन्होने जनसख्या के बड़े हिस्से को शीघ्र ही प्रभावित कर लिया। शुद्धतावादियो मे इस सघर्ष को सबसे अधिक तीव्रता से अनुभव करने वाले और सबसे अधिक तेज़ी से उसका उपाय करने वाले जोनाथन एडवर्ड्‌स थे। उन्होने रेमुसवाद और कैम्ब्रिज के प्लेटोवाद का अध्ययन येल कालेज मे किया था (सभवतः सैमुएल जॉन्सन के शिष्य रूप में, जो कुछ समय तक उनके अध्यापक थे)। किन्तु जिन दिनो वे कालेज में थे, तभी डमर पुस्तकालय यूरोप से आया, जिसमे 'नव-ज्ञान' की मुख्य पुस्तकें थी, और उन्होने तथा जान्सन ने बडी उत्सुकता से उन्हे पढा। दो दार्शनिक रचनाओ ने उन्हे विशेषत· प्रभावित किया, लॉक का 'एसे' (निवन्ध) और हेचसन की पुस्तक, 'ऐन एन्क्वायरी इन टु दी ओरिजिनल आफ अवर आइडियाज़ ऑफ ब्यूटी ऐन्ड वर्चू' (सौन्दर्य और सद्‌गुण सम्वन्धी हमारे विचारो के मूलस्रोत की एक खोज)। पहली पुस्तक उन्होने १७१७ मे पढी जव वे कालेज में ही थे, और दूसरी १७३० के लगभग जव वे नार्थम्पटन मे एक युवा पादरी थे। उनका निजी धार्मिक द्वन्द्व १७२२-२५ के वर्षों में सवसे अधिक तीव्र था और १७३४ मे उनके गिरजा-क्षेत्र मे 'पुनरुत्थान' या 'जागरण' शुरु हो गया। इन वर्षों मे उन्होने 'नये' दार्शनिकों के साथ-साथ एक अन्य रचना को भी वार-वार पढा, जिससे शुद्धतावादी धर्मशास्त्री परिचित थे, किन्तु जो एडवर्ड्‌स के लिए विशेष महत्वपूर्ण वन गयी—पेट्रोवान मास्ट्रिख्ट की 'थ्योरेटिको-प्रैक्टिका थियालाजी, (सैद्धान्तिक-व्यावहारिक धर्मशास्त्र), जो एक लोकप्रिय अंग्रेजी सस्करण मे भी उपलब्ध थी। वान मास्ट्रिख्ट हालैंड के प्रमविदात्मक धर्मशास्त्रियो से निकट मे सम्बद्ध होने पर भी, हालैंड मे पवित्रतावाद के सस्थापको में से थे। इस यूरोपीय पवित्रतावाद ने एडवर्ड्‌स को धर्मशास्त्र के क्षेत्र मे 'महान् जागरण' के अग्रेज और अमरीकी पवित्रतावाद के लिए तैयार कर दिया। शीघ्र ही एडवर्ड्‌स 'नव-ज्योनियो' के—ऐसे शुद्धतावादी जिनका झुकाव धार्मिक व्यक्तिवाद की ओर था और जिन्होने पुनरुत्थान मे भाग लिया, वौद्धिक नेता वन गये। उन्होंने एक दर्शन का निर्माण किया जो निजी तीव्रता और समकालीन वौद्धिक धाराओं के श्रेष्ठ निरूपण की दृष्टि से अत्यधिक प्रभावशाली था। अगले अध्याय

१. एवान्जेलिकलिज़्म—ईसा मे भक्ति के प्रचार का आन्दोलन।—अनु०

मे हम देखेगे कि वैज्ञानिको के रूप मे लॉक और न्यूटन के प्रति उनका क्या दृष्टिकोण था। यहाँ हमारा सम्बन्ध उनके द्वारा पवित्रतावादी प्रभाव के अन्तर्गत शुद्धतावादी परम्परा के सशोधन से है।

लॉक के इस सिद्धान्त से कि भावन के सरल विचार ही चिन्तन का मूल स्रोत है और हचेसन के नैतिक भावना के सिद्धान्त से सकेत ग्रहण करके, एडवर्ड्स ने कहा कि ईश्वर का अनुभव एक प्रकार के भावानुभव द्वारा ही हो सकता है, 'मनुष्य के प्रति ईश्वरीय विधानो का औचित्य सिद्ध करने' के द्वारा नही, जैसा शुद्धतावादियो और अन्य तर्कनावादी धर्म-शास्त्रियो ने करने की चेष्टा की थी। उन्हे याद था कि युवावस्था मे किस प्रकार उनका मन ईश्वर की पूर्ण सर्वशक्तिमत्ता के सिद्धान्त का विरोध करता था, जव तक कि 'ईश्वर मे एक आन्तरिक, मधुर आनन्द' उन पर नही छा गया। उनका अपना प्रभावशाली वर्णन उद्धृत करने योग्य है—

"वचपन से ही मेरे दिमाग में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सिद्धान्त के विरुद्ध आपत्तियाँ भरी थी, कि वह जिसे चाहे अनन्त जीवन के लिए चुन ले और जिसे चाहे अस्वीकार कर दे, हमेशा के लिए नष्ट होने को, अनन्तकाल तक नरक-यातना सहने को छोड दे। मुझे यह एक भयानक सिद्धान्त प्रतीत होता था। लेकिन मुझे वह समय अच्छी तरह याद है जब ईश्वर को इस सर्वशक्तिमत्ता के प्रति और अपनी निर्बाध इच्छा के अनुसार अनन्तकाल के लिए मनुष्यो की व्यवस्था करने में, उसके न्याय के प्रति मै आश्वस्त और पूर्णतः सन्तुष्ट हो गया। किन्तु मैं यह नही वता सकता था कि कैसे या किस माध्यम से मै इस प्रकार आश्वस्त हो गया। उस समय और बहुत समय बाद तक मुझे कल्पना भी नही थी कि इसमे ईश्वरीय प्रेरणा का कोई असाधारण प्रभाव था। केवल इतना ही कि अब मै अधिक दूर तक देख पाता था, और मेरी तर्कबुद्धि उसके न्याय और औचित्य को समझ गयी थी। और इससे उन सभी शकाओ और आपत्तियो का अन्त हो गया। उस दिन से आज तक ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सम्बन्ध में मेरे दिमाग में एक आश्चर्यजनक परिवर्त्तन आया है। ऐसा, कि विल्कुल पूर्ण अर्थ मे, कभी कोई शका इस वारे में उठी ही नही कि ईश्वर जिस पर दया करना चाहे दया करे और जिसे चाहे उससे सख्ती करे। स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध मे ईश्वर की पूर्ण सर्वशक्तिमत्ता और न्याय के सम्बन्ध में मेरा दिमाग उतना ही आश्वस्त प्रतीत होता है जितना किसी दृष्टिगोचर वस्तु के सम्बन्ध मे। कम से कम, कुछ समयो पर ऐसा ही होता है। किन्तु प्रथम विश्वास के वाद, ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सम्बन्ध मे वहुधा मुझे विल्कुल भिन्न प्रकार का अनुभव होता है। उस समय के वाद वहुधा मुझे न केवल विश्वास हुआ

है, उसका सम्बन्ध केवल परिकल्पना से है, लेकिन दूसरी बात का सम्बन्ध हृदय से है। जब हृदय मे किसी वस्तु के सौन्दर्य और अनुकूलता की अनुभूति होती है, तो अवश्य ही उसे ग्रहण करने में हृदय को सुख मिलता है।''[1]

एडवर्ड्स को विश्वास था कि लॉक जिस प्रकार के प्रमाण की माँग कर सकते थे, वैसे आनुभविक प्रमाण इस बात के लिए उनके पास बहुतेरे थे कि मनुष्यो को ईश्वर मे आनन्द मिलता है। किन्तु वे इस बात की ओर भी इंगित करते हैं कि ईश्वर के प्रति प्रेम या 'धर्म की वस्तुओ' मे मिलने वाला सुख स्वाभाविक भावनाएँ नहीं हैं, क्योकि प्रयुक्त होने वाले साधन स्वाभाविक नही है। लॉक का अनुसरण करते हुए, एडवर्ड्स का विश्वास था कि स्वाभाविक 'सकल्प-क्रिया' में सकल्प 'समझ के अन्तिम आदेश' द्वारा निर्णीत होता है। इसके विपरीत, इस अलौकिक भावना मे, ईश्वर की महिमा की अनुभूति या ग्राह्यता से उसकी समझ उत्पन्न होती है। इस प्रकार एडवर्ड्स ने अलौकिक या पवित्र प्रेम के लिए बडे ध्यानपूर्वक एक अनुभववादी तर्क निर्मित किया।

किन्तु अनुभववादी दृष्टिकोण से ही सन्तुष्ट न रहकर उन्होने उसी विचार को एक प्लेटोवादी रूप दिया। उन्होने न केवल पवित्रतावादियो की भाँति कहा कि ईश्वर तक 'हृदय' के द्वारा ही पहुँचा जा सकता है, 'दिमाग' के द्वारा नही, बल्कि यह भी कि यह 'पवित्र' या अलौकिक प्रेम, अखिल सृष्टि के प्रति प्रेम है। उन्होने इसे 'अस्तित्व मात्र के प्रति उदारता' या 'अस्तित्व को अस्तित्व की सहमति' कहा। सारे प्राकृतिक या नैतिक सद्गुण केवल इस 'सच्चे सद्गुण' की प्रतिछाया और परिणाम हैं। इसका आधार निरपेक्षता के मानवीयतावादी रूप मे कोई 'नैतिक भावना' नहो है, वरन् स्वय अस्तित्व की उत्कृष्टता, अस्तित्व के अगो मे अनुपात और सामजस्य की उत्कृष्टता है। फलस्वरूप, ''दिमागो में मिलने वाला सम्पूर्ण प्राथमिक और मौलिक सौन्दर्य या उत्कृष्टता, प्रेम है। और उनमें हमें जो कुछ मिलता है, सबको अन्तत इस रूप मे देखा जा सकता है।''[2]

एडवर्ड्स ने दिव्य कला की धारणा पर आधारित रेमुस के प्लेटोवाद को, प्लेटोनी प्रेम के एक पवित्रतावादी संस्करण के रूप मे पुन. निर्मित किया। उन्होने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि उनका 'पवित्र-प्रेम' या उदारता, भावुकता या मात्र भावप्रवणता नहीं है। यह आनुभविक और अनुभववादी 'भावना' है। और निश्चय ही, यह न क्वेकर लोगो की प्रेरणा है, न धार्मिक पुनरुत्थानो के

---

१. वही, पृष्ठ १०७।
२. 'नोट्स आन दी माइन्ड'।

आनन्दोन्माद भरे 'अनुराग'। एडवर्ड्स का 'धार्मिक अनुराग पर निबन्ध' (ट्रीटाइज आन रेलिजस ऐफेक्शन्स) बहुत ही आलोचनापूर्ण है, और 'ईसाई व्यवहार' या व्यावहारिक पवित्रता सम्बन्धी उनकी धारणा न रहस्यवाद है, न उत्साह। यह सौन्दर्य की प्लेटोनी भावना और सवेदनशीलता से मिश्रित शुद्धतावादी सौम्यता है।

लेकिन न्यू-इगलैंड के शुद्धतावादियो के लिए, इसके अर्थ और परिणाम उद्वेलित करने वाले थे। जब नार्थम्पटन के युवा एडवर्ड्स ने ओस्टन के अभिजात-वर्ग के समक्ष 'मनुष्य की निर्भरता मे ईश्वर की महिमा' का उपदेश किया, तो इसका जबरदस्त प्रभाव पड़ा। काल्विनवादी रूढियाँ—पूर्ण और निरकुश निर्णयो का सिद्धान्त, मूल भ्रष्टता का सिद्धान्त, पूर्वनिर्णय, नरकदंड और उद्धार का सिद्धान्त—एक पवित्र प्रजाधिपत्य की प्रसंविदा के रूप मे नही, वरन् ईश्वर के प्रति प्रेम की एक 'आन्तरिक' या 'सवेदनात्मक' अभिव्यक्ति के रूप मे पुनर्जीवित हो, इसमें ताजगी भी थी और परेशानी भी। 'नव-ज्योतियो' और 'पूर्व ज्योतियो' का अन्तर अधिकाधिक स्पष्ट होने के साथ, शुद्धतावाद और पवित्रतावाद में मेल बिठाने की एडवर्ड्स की चेष्टा अधिकाधिक अव्यावहारिक सिद्ध हुई। जब उन्होने, और उनसे भी कम चतुराई के साथ उनके शिष्यो बेलामी, एम्मॉन्स और हापकिन्स ने 'अर्ध-प्रसविदा' की लोकप्रिय धारणा का खडन करके न्यू-इंगलैड के धर्म-समुदायो मे नियमबद्ध समागम और धार्मिकता या पुनरुद्धार की सार्वजनिक स्वीकृति की परम्परा को फिर से चलाना चाहा, तो वे एक अलोकप्रिय अल्पसख्यक समूह रह गये और अन्त मे वे केवल काल्विनवादियो का एक छोटा-सा गुट रह गये जिसमें दार्शनिक विद्वत्ता तो थी, लेकिन जो समाज में अलोकप्रिय था। आत्मरक्षा के लिए, और 'पवित्र-प्रेम' के हित में, एडवर्ड्स के समर्थको को प्रेस्बिटीरियन लोगो से सम्बद्ध होना पडा। प्रेस्बिटीरियन लोगो ने उनके दर्शन को भ्रष्ट किया, उनके पवित्रतावाद का स्वागत किया, उनके व्यक्तिवाद के स्थान पर (जेफर्सन के उपर्युक्त शब्दो मे) प्रोटेस्टेन्ट जेसूटिज्म[1] के एक प्रेस्बिटीरियन रूप को, 'राजनीति में एक ईसाई दल'[2] का केन्द्रीभूत सगठन बनाने की चेष्टा को ले आये। न

१. जेसूट—सोलहवी शताब्दी मे इग्नेशियस लोयोला द्वारा स्थापित एक संगठन (ईसा का समाज) के सदस्य, जिनका लक्ष्य धर्मतन्त्रो की स्थापना करना था।—अनु०

२. देखिए, एज़रा स्टाइलस एली की पुस्तिका 'दी ड्यूटी ऑफ क्रिश्चियन फ्री, मेन टु एलेक्ट क्रिश्चियन रूलर्स' (१८२७), जोसेफ ब्लॉ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलासफिक ऐड्रेसेज़,' १७००-१६०० (न्यूयार्क, १६४६) में पुन मुद्रित, पृष्ठ ५५१-५६२। इसके अतिरिक्त जोसेफ ब्लॉ, 'दी क्रिश्चियन पार्टी इन पालिटिक्स' रिव्यू आफ रेलिजन IX (सितम्बर, १६४६) भी देखिए।

भाववाद सम्बन्धी अपनी धारणा मे कुछ परिवर्तन किया और कारणता के एक भाववादी सिद्धान्त पर जोर दिया। दी ग्रेट क्रिश्चियन डाक्ट्रिन आफ ओरिजिनल सिन डिफेन्डेड (मूल पाप के महान् ईसाई सिद्धान्त का समर्थन) में, जिसका प्रकाशन १७५८ मे जाकर हुआ, उन्होने आवश्यक सम्बन्ध के विचार का खण्डन किया, जेसा लगभग उसी समय ह्यूम भी कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि एडवर्ड्स ने अपनी आलोचना का विकास ह्यूम से अलग, स्वतन्त्र रूप में किया और निश्चय ही उनके लक्ष्य बिल्कुल भिन्न थे। उन्होने सारे 'माध्यमिक कारणो' का विरोध किया और सारी कारणता को सीधे ईश्वर के 'निरकुश विधान' मे आरोपित किया। ईश्वर जगत् मे एकमात्र 'कर्त्ता' है। भौतिक वस्तुएँ उसके द्वारा माध्यम के रूप मे प्रयुक्त होती हैं, लेकिन दरअसल, भौतिक वस्तुएँ 'प्रभावी कारणो' के रूप मे कार्य नही करती।

" ..पूर्व अस्तित्व अगले क्षण मे या देश-विस्तार के अगले अग मे नये अस्तित्व का उचित कारण नही हो सकता, जैसे उस सूरत मे कि वह (पूर्व-अस्तित्व) एक युग पहले या एक हजार मील की दूरी पर रहा होता और बीच के देश-काल मे कोई अस्तित्व न होता। अत सर्जित पदार्थों का अस्तित्व, हर पूर्वापर क्षण मे ईश्वर के निमित्त, सकल्प और शक्ति का परिणाम ही हो सकता है।

"....इनमे निश्चय ही यह नतीजा निकलेगा कि ईश्वर द्वारा सर्जित वस्तुओ का परिरक्षण सम्पूर्ण रूप मे एक निरन्तर सृजन के समान है, या ईश्वर द्वारा शून्य मे से उन वस्तुओ के, उनके अस्तित्व के हर क्षण मे सृजन के समान है।[1]

" ..प्रकृति का सारा क्रम और जो कुछ भी उसके अन्तर्गत आता है, उसके सारे नियम और विधियाँ, समरूपता और नियमितता, निरन्तरता और गमन, एक निरकुश का विधान है। इस अर्थ मे, जगत् और उसके सारे अगो के अस्तित्व का ही जारी रहना, और निरन्तर अस्तित्व का ढग भी पूर्ण तरह एक निरकुश विधान पर निर्भर है। कारण कि अगर पिछले क्षण मे ध्वनि या प्रकाश या रग या प्रतिरोध, या गुरुत्व या विचार, या चेतना या कोई अन्य निर्भर वस्तु थी, तो यह भी बिल्कुल आवश्यक नही कि अगले क्षण भी ऐसा ही हो। सारा निर्भर अस्तित्व, जो कुछ भी है, एक सतत गति मे है, हर समय गुजरता है और वापस आता है, हर क्षण नया होता है, जैसे वस्तुओ के रग उन पर पड़ने वाले

---

१ डाक्ट्रिन आफ ओरिजिनल सिन डिफेन्डेड [illegible] की पुस्तक, पृष्ठ [illegible]-३३४।

प्रकाश से हर क्षण नये होते है। और सब कुछ समरूप में ईश्वर से आता है, जैसे सूर्य से प्रकाश। हम उसी (ईश्वर) मे जीवित हैं, गतिशील हैं, और अपना अस्तित्व रखते है।"[१]

एडवर्ड्स का सिद्धान्त कि ईश्वर सब कुछ का सृजन करने वाला है, केवल परम्परागत काल्विनवाद की ओर उनकी वापसी ही नही था, बल्कि न्यूटन और लॉक के विचारो पर आधारित, हर वस्तु में ईश्वर की व्याप्ति के पक्ष मे एक ठोस तर्क था। यह सिद्धान्त वस्तु (मैटर) के अस्तित्व से इनकार नही करता था। इसका कथन था कि वस्तु का अस्तित्व और क्रियाशीलता ईश्वर मे ही होती है। यह पदार्थ या पदार्थों के अस्तित्व से इनकार करता था, क्योकि ईश्वर पदार्थ से अधिक कुछ है। ईश्वर अस्तित्व है, निरन्तर सृजनशील है। और यह यान्त्रिक कारणता या आवश्यक सम्बन्धो से इनकार करता था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि एडवर्ड्स के अनुसार मानवीय सकल्पो का अस्तित्व भी ईश्वरीय सकल्प मे है, और वे ईश्वर में ही क्रियाशील होते है। एडवर्ड्स के भाववाद का तात्कालिक प्रतिवादी स्वर भौतिकवाद का नही, आर्मिनियनवाद[२] का था। एडवर्ड्स के भाववाद का विरोधी बर्कले[३] का भाववाद था।

अमरीकी दर्शन में इस समय असारवादी सिद्धान्तो के प्रादुर्भाव का अधिक व्यापक महत्व इस बात मे है कि वे मुख्य प्रश्न जिनसे इन सिद्धान्तो का जन्म हुआ, नये प्रश्नो के समक्ष गौण हो गये। अमरीका मे भाववाद का प्रसार वास्तव में एक शताब्दी बाद जाकर हुआ और असारवादी भाववाद का सबसे कम।

---

१. वही, पृष्ठ ३३६-३३७।

२. हालैण्डवादी प्रोटेस्टेन्ट धर्मशास्त्री आर्मिनियस के सिद्धान्त, जिन्होने काल्विन का, विशेषत ईश्वर द्वारा पूर्वनिर्णय के सिद्धान्त का विरोध किया।

३ बर्कले: आयरवासी दार्शनिक (१६८५-१७५३), जो कुछ वर्ष रोड आइलैंड मे भी रहे।—अनु०

दूसरा अध्याय

अमरीका का प्रबुद्ध काल

दर्शन सत्तारूढ़

प्रबुद्धता की दार्शनिक परिभाषा नही की जा सकती, विशेषत अमरीका मे, जहाँ इसका रूप सबसे कम साहित्यिक और सबसे अधिक सक्रिय था। इस देश मे मानवी तर्क-बुद्धि का कोई व्यवस्थित निरूपण नही हुआ—न कोई विश्वकोष, न कोई विचार-दर्शन, न कोई विचार-व्यवस्था। फिर भी, हमारे इतिहास का कोई अन्य काल ऐसा नही है जिसमे लोगो की सार्वजनिक रुचियो का इतना निकट सम्बन्ध दार्शनिक प्रश्नो से रहा हो। अमरीका मे क्रान्तिकारी पीढी के बौद्धिक जीवन को समुचित रूप मे समझने के लिए हमे शास्त्रीय ग्रन्थो या धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र की व्यवस्थाओ या मननशील एकान्त की रचनाओ को न देखकर, सार्वजनिक जीवन के केन्द्र पर—राजकीय दस्तावेजो और राजनैतिक मचो, समाचार-पत्रों और भाषण पीठिकाओ पर—नजर डालनी होगी। अमरीका मे कभी भी दार्शनिक विचार और सामाजिक कार्य मे इससे अधिक निकट सम्बन्ध नही रहा। यद्यपि अधिकाश दार्शनिक विचार तात्कालिक ही थे, विशिष्ट समस्याओ के सार्वभौमिक हल खोजते थे, फिर भी प्रबुद्ध-काल के विचारो को केवल युक्तिकरण कह कर छोड देने से काम नही चलता। उस समय अमरीकी जीवन का सर्वप्रमुख तथ्य यह था कि न केवल ससार की आँखें और आशाएँ अमरीका पर केन्द्रित थी, बल्कि अमरीकी सार्वजनिक जीवन के नेता स्वय भी अपनी रुचियों और कार्यों मे अगर सार्वभौमिक नही तो अधिक व्यापक पक्षो के सम्बन्ध मे सचमुच चिन्तित थे। उनमे सचमुच 'मनुष्य-जाति के मतो का उचित आदर' था। यह देख कर आश्चर्य होता है कि अपनी समस्याओ को समझने के लिये वे अतीत और भविष्य मे कितनी दूर तक देखते थे।

इतिहास का निर्माण कभी भी इससे अधिक चेतना और अन्तर्विवेक के साथ नही किया गया था और प्राचीन यूनान के बाद ऐसे अवसर बहुत कम आये थे जब दर्शन को सार्वजनिक उत्तरदायित्व वहन करने के अवसर इससे अधिक मिले हो।

अमरीकी प्रबुद्ध-काल के बारे में तटस्थ भाव से लिखना या पढना असम्भव है, क्योकि उसमे एक राष्ट्र के रूप मे हमारे उत्तराधिकार का मर्म और शेष मानवता के साथ हमारे गम्भीरतम सम्बन्ध निहित हैं। अमरीका उस समय दोहरे अर्थ मे एक सर्वदेशीय सीमान्त-क्षेत्र था। एक तो यूरोपीय विचारको की कई पीढियो के विचार और मनोवेग इसमे एकत्र होकर क्रियाशील हुए। दूसरे इसने उन साहस-पूर्ण राजनैतिक, धार्मिक और नैतिक प्रयोगो मे अगुआई की जिनमे उसके बाद से सारा विश्व ही भाग लेता रहा है। दर्शन के इतिहासकार को इसमें कुछ झंझट होती है कि वह प्रबुद्ध-काल के दर्शन की सर्वदेशीय और विशिष्ट अभिव्यक्तियो के रूप मे जॉन आडम्स, बेन्जामिन फ्रैंकलिन, थॉमस जेफरसन और जेम्स मैडिसन की ओर सकेत करे और फिर यह स्वीकार करने को बाध्य हो कि उनकी रचनाएँ घिसी-पिटी बातो से और उनके दिमाग भ्रामक धारणाओ से भरे पडे हैं। उनकी कोई विचार-व्यवस्थाएँ नही थी और जिन बिखरे हुए विचारो पर उन्होने अमल किया, उनमे से अधिकाश सचेत रूप मे उधार लिए हुए थे। पठन-पाठन के लिए वे अच्छी सामग्री नही हैं, लेकिन इसके बावजूद, वे अमरीकी दर्शन के चिर-प्रतिष्ठित प्रतीक होने के अलावा, अभी भी जीवन्त शक्तियाँ है। इन परिस्थितियो मे अमरीकी प्रबुद्ध-काल को, तथ्य और विचार दोनो मे ही, एक 'यशस्वी क्रान्ति' के रूप मे प्रस्तुत न कर पाना, निश्चय ही इतिहासकार की ही असफलता होगी, स्वय प्रबुद्धता की नही।

फिर भी, एक अर्थ मे यह प्रबुद्धता बुरी तरह असफल रही। उसके विचार शीघ्र ही अमान्य या भ्रष्ट हो गये। भविष्य की उसकी योजनाएँ दफन कर दी गयी और उसके तत्काल बाद ही उसके आदर्शो और मान्यताओ के विरुद्ध एक गहरी और आवेशपूर्ण प्रतिक्रिया आई। उसके महान् विषय-प्राकृतिक अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता, उदार धर्म, स्वतन्त्र विचार, सार्वभौमिक प्रगति और प्रबुद्धता —कितनी जल्दी उनका स्वर खोखला पड गया था। कितना व्यापक भ्रम-विनाश था। वर्जिनिया के एक भूस्वामी ने १८५० के लगभग लिखा कि 'जन-अधिकारो के प्रत्यक्ष विरोधियो की शक्ति अगर उनकी इच्छाओ के अनुरूप होती, तो वे जितनी (बुराई) कर सकते थे,' लोकतान्त्रिक सिद्धान्त 'उससे अधिक बुराई का कारण रहे है। ..बालिग मताधिकार पर आधारित सरकार, सबसे खराब,

लोगो द्वारा 'सबसे खराब' लोगो की सरकार होगी।'[1] १८५५ मे जेफरसन को श्रद्धाजलि देते हुए, एक जर्मन उदारवादी ने अमरीकी सस्कृति में स्वतन्त्रता के पूर्ण ह्रास पर शोक प्रकट किया।[2] और १८५९ में लिंकन ने लिखा —

"जेफरसन के सिद्धान्त स्वतन्त्र समाज की परिभाषाएँ और स्वयसिद्ध सिद्धान्त है। फिर भी उनसे इनकार करने और बचने मे सफलता का बडा दिखावा किया जाता है। एक उन्हे वडे जोश से 'चमक-दमक भरी सामान्यता' कहता है। दूसरा ढिठाई से उन्हे 'स्वयसिद्ध झूठ' कह देता है। अन्य लोग छल भरा तर्क देते है कि वे (सिद्धान्त) 'उच्च जातियो' पर लागू होते है। ये अभिव्यक्तियाँ. वापस आती हुई निरकुशता के अग्रदूत हैं, सफरमैना है।"[3]

किन्तु इस प्रतिक्रिया से यह प्रमाणित नही होता कि प्रवुद्ध-काल सचमुच प्रवुद्ध नही था। इसके विपरीत हमे अमरीकी दार्शनिको मे उन महान् दिनो की स्मृति मे वापस जाने की प्रवृति अधिकाधिक और कामनाभरे रूप मे मिलती है, और कोई भी अमरीकी विचारक, जो केवल प्राध्यापक ही नही है, कभी-भी कुछ विचारमग्न हो कर उस उपयोगिता और स्वतन्त्रता की इच्छा किये विना नही रह सकता, जो इस समय दर्शन को प्राप्त थी।

परहित

प्रवुद्ध-काल का आरम्भ आत्मतोष मे हुआ और अन्त भय में। उनकी प्रारम्भिक अवधियो में, धर्मशास्त्रीय आशावाद ने सार्वभौमिक परहित में विश्वास उत्पन्न हुआ। अमरीका में इस विशेषता को काटन मेथर ने प्रमुखता प्रदान की,

---

१. ऐवरी ओ. क्रैवेन, एडमन्ड रफिन, सदर्नर (न्यूयार्क, १९३२), पृष्ठ ४८, इसी प्रकार जार्ज फिट्ज़ह्यू, सोशियालॉजी फार दी साउथ (रिचमण्ड, १८५४), विशेषत १९वां अध्याय।

२. जे. बी. स्टालो, रेडेन अबन्डलुन्जेन उंड ब्रीफे (सिन्सिनाटी, १८९३) पृष्ठ १६।

३. एल्बर्ट एलेरी बर्ग द्वारा सम्पादित दी राइटिंग्स आफ थॉमस जेफरसन (वाशिंगटन, १९०३) में उद्धृत, खण्ड (१) पृष्ठ १६-१७।

जो एक वृद्ध आडम्बर-प्रिय धर्मशास्त्री थे और 'भलाई करना' अपने पेशे का कर्त्तव्य समझते थे। उन्होने न केवल 'भलाई करने के निवन्ध' (एसेज़ टु डू गुड) लिखे, वल्कि घर-घर जाकर, जहाँ भी उन्हे बुराई का सन्देह होता वहाँ 'भलाई करते'। अपने अन्त करण से प्रेरित होकर वे हर बात मे दखल देते। उदारता और 'ईसाई प्रेम' सम्बन्धी एडवर्ड्स की धारणा मे विषय ईश्वर है, और लाभ स्वय अपनी आत्मा को होता है। किन्तु अधिक कट्टर शुद्धतावादियो ने उदारता को दूसरो की भलाई करने के अर्थ मे समझा। उनकी यह कल्पना थी कि स्वय ईश्वर की रुचि अपने यश से अधिक अपने प्राणियो के सुख मे है। मेथर की रचना 'क्रिश्चियन फिलासफर' इस दम्भ की सर्वप्रथम अमरीकी अभिव्यक्तियो मे से है, जो प्रकृति मे औचित्य और उद्देश्य के तर्क पर आधारित है। वटलर की रचना 'एनालॉजी आफ रेलिजन' (धर्म का सादृश्य) और पेली की रचना 'नेचुरल थियालॉजी' (प्राकृतिक धर्मशास्त्र) को सोद्देश्यता के तर्क की व्यवस्थाओ के रूप मे सामयिक लोकप्रियता मिली। सार्वभौमिक ईश्वरीय विधान मे विश्वास न्यू-इगलैंड के समृद्ध 'विशिष्ट वर्ग' मे अधिकाधिक मान्य हुआ। वोलास्टन की रचना 'नेचुरल रेलिजन' (प्राकृतिक धर्म) को बहुत लोगो ने पढा और उसकी प्रशसा की। सैमुएल जॉन्सन ने उसे अपनी रचना 'एथिका' (नीति) का आधार बनाया। वोलास्टन का अनुसरण करते हुए उन्होने कहा कि ईश्वर हर वस्तु के साथ वैसा ही व्यवहार करता है, जैसी वह सचमुच है, 'सत्य के अनुसार', और इसलिये मनुष्य के साथ उसका व्यवहार सुख (नि सन्देह अनन्त) के लिए उत्पन्न किये गये प्राणी के रूप में होता है।

"हमे चाहिये कि सवेदनशील और तर्कनापरक, सामाजिक और अनश्वर प्राणियो के रूप मे हम अपनी सारी प्रकृति और कालावधि को ध्यान मे रखे। अत यह (हमारा ध्यान) कालक्रम मे, और अनन्त काल तक सारी मानवीय प्रकृति, और सारी नैतिक व्यवस्था की भलाई और सुख होगा। फलस्वरूप, पशु-शरीर की भलाई, या इन्द्रिय-सुख, केवल काल्पनिक है, और जहाँ तक वह आत्मा की भलाई और सुख से मेल नही खाता, वहाँ तक वह भला नही रह जाता, वल्कि उसकी प्रकृति बुराई की हो जाती है। यही बात निजी भलाई के वारे मे भी है, जहाँ तक सार्वजनिक भलाई से उसका मेल न हो और सासारिक भलाई के वारे में भी, जहाँ तक शाश्वत से उसका मेल न हो। . और यह हमारी भलाई और सुख सम्पूर्णत', अवश्यमेव सत्य और वस्तुओ की प्रकृति के समरूप है, या वस्तुएँ, अनुराग और कार्य वास्तव मे जैसे है, उसी रूप मे उन्हे देखने पर उनके समरूप हैं, वल्कि उनका परिणाम हैं। कारण कि उन्हे वास्तविक रूप में देखने का अर्थ यह मानना है कि वे समुचित हैं, और यह उनकी प्रकृति ही है

कि वे हमारी बौद्धिक, सामाजिक और अनश्वर प्रकृति को उसकी सम्पूर्णता मे अन्ततः सुखी बनायें।''[१]

बेन्जामिन फ्रैकलिन ने न केवल वोलास्टन की पुस्तक पढी थी, बल्कि जब वे कुछ दिनो के लिए लन्दन मे थे, तो उन्होने उसकी छपाई मे भी काम किया था। उन्हे ऐसी आत्मतुष्टि हास्यास्पद लगी और अपनी रचना 'डिसर्टेशन आन लिबर्टी ऐण्ड नेसेसिटी, प्लेजर एण्ड पेन' (स्वतन्त्रता और आवश्यकता, आनन्द और पीडा पर निबन्ध) में उसका मज़ाक उडाने मे प्रशसनीय सफलता मिली। फ्रैंकलिन सासारिक मानवीयता के एक अपरिष्कृत और वैचित्र्यमय, किन्तु प्रभावशाली प्रतिरूप थे। उन्होने पूरी तरह और प्रभावकारी रीति से अपने को जनसेवा मे और उपयोगी योजनाओ में लगाया। उनकी 'सद्गुण की कला' और 'पुअर रिचर्ड' जिन्हे आमतौर पर मितव्ययिता और पूँजीवादी नैतिकता का निरूपण माना जाता है, उनके अपने मतानुसार 'भलाई करने के प्रयास' थे। फ्रैंकलिन को अमरीका मे सचमुच एक क्रान्तिकारी आकृति बनाने वाली चीज़ थी, उनके विचार और नैतिकता की पूर्ण सासारिकता। याकी (न्यू-इगलैंड-वासियो का व्यग्य-नाम) आत्मतुष्टि को बहुत कुछ अपने अन्दर बनाये रखने के अलावा, उन्होने क्वेकरो की आत्मतुष्टि का भी कुछ अश प्राप्त कर लिया। शुद्धतावादी सद्गुणो के आर्थिक मूल्य के सम्बन्ध में उनके अन्दर आत्मतुष्टि की भावना थी। लेकिन उन्होने उन पर से पवित्रता का आवरण उतार कर उन्हे एक पूर्णत. उपयोगितावादी आधार पर प्रतिष्ठित किया। 'पुअर रिचर्ड्स अल्मनक' (पुअर रिचर्ड पचाग) के पाठक को कभी यह सन्देह नही होगा कि उसमे प्रस्तुत कहावतो ज्ञान और सरल समझ बौद्धिक सघर्ष और श्रमसाध्य मुक्ति की उपलब्धि थी। सारी बाते बहुत ही सामान्य और सादगी भरी लगती है। किन्तु फ्रैंकलिन की 'आत्मकथा' या उसे भी अधिक, ईश्वरवाद (डाइज्म) पर उनकी प्रारम्भिक रचनाओ को पढकर हम देख सकते हैं कि उस धर्मशास्त्रीय वातावरण और आडम्बर के बीच सरल समझ की उनकी खोज के पीछे कितनी प्रबुद्धता, सस्कार और आलोचनात्मक ईमानदारी थी।

"हम कभी-कभी विवाद करने और बहस करना हमें बड़ा प्रिय था। जो विवाद की प्रवृत्ति बहुधा बडी बुरी आदत बन जाती है। बातचीत मे कटुता लाने और उसे बिगाडने के अतिरिक्त उससे ऐसे लोगों के प्रति क्षोभ और शायद

१. हर्बर्ट और कैरोल श्नाइडर द्वारा सम्पादित, 'सैमुअल जानसन, प्रेसिडेन्ट आफ किंग्स कालेज, हिज कैरियर एण्ड राइटिंग' (न्यूयार्क, १६२६) खण्ड २, पृष्ठ [illegible]।

शत्रुता उत्पन्न होती है, जिनसे मित्रता हो सकती है। धार्मिक विवाद पर अपने पिता की पुस्तकें पढकर मुझे यह आदत पड गयी थी। तबसे, मैंने देखा है कि समझदार व्यक्ति इसमें बहुत कम पडते है, सिवाय वकीलो, विश्वविद्यालयो के लोगो, और आमतौर पर एडिनबरा (स्कॉटलैंड की राजधानी—अनु०) मे पले हुए सभी प्रकार के लोगो के।

"मुझे विश्वास हो गया कि सत्य, ईमानदारी और निष्ठा ..जीवन मे सुख के लिए अधिकतम महत्व की है।"[1]

इस प्रकार फ्रैंकलिन ने शुद्धतावादियो मे धीरे-धीरे आ रहे एक दार्शनिक परिवर्तन को पूर्ण और प्रकट रूप दिया। बहुत-कुछ सचेत रूप मे वे समझने लगे कि 'शुद्धतावादी नैतिकता' की एक धर्मशास्त्रीय अभिव्यक्ति होने के अलावा, उसका एक उपयोगितावादी आधार भी था। न्यूइगलैंड-वासियो का शुद्धतावादी होना उनके काल्विनवाद के कारण जरूरी नही था, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है, बल्कि न्यूइगलैण्ड का निर्माण करने की उनकी इच्छा के कारण जरूरी था। 'पीडित अन्तरात्मा' या पाप की भावना का, जो आमतौर पर पतन और भाग्य के पूर्व-निर्धारण के काल्विनवादी सिद्धान्तो का फल समझी जाती है, प्रत्यक्ष और मुख्य कारण नयी बस रही बस्तियो के जीवन की कठोर आवश्यकताओ में मिलेगा। पादरी ध्यान रखते थे कि जो कुछ करना जरूरी हो, ईश्वर उसके लिए आदेश दे, और जो बाधा आये, उसे निषिद्ध घोषित करे।

बेन्जामिन फ्रैंकलिन ने प्रयास किया कि शुद्धतावादी सद्गुणो को उनकी पूरी कठोरता के साथ कायम रखें, लेकिन उनकी धर्मशास्त्रीय मान्यता का पूरी तरह परित्याग कर दे। उन्होने सीमान्तक्षेत्रीय नैतिकता को एक उपयोगितावादी आधार दे कर उसे आनुभविक मान्यता प्रदान की। इसमे उन्हें विशेप सफलता मिली। फ्रैंकलिन ने सारी बात को थोडे से शब्दो मे इस प्रकार कहा, 'ईश्वरीय प्रेरणा का अपने-आप मे मुझ पर कोई प्रभाव नही था। लेकिन मेरी एक राय यह थी कि चाहे कोई कार्य इस कारण बुरे न हो कि वह (ईश्वरीय प्रेरणा) उनका निषेध करती है या इस कारण अच्छे न हो कि वह उनका आदेश देती है, किन्तु शायद ये कार्य निषिद्ध इस कारण किये गये हो कि स्वय अपनी प्रकृति में, सारी परिस्थितियो को देखते हुए, हमारे लिए बुरे थे, या उनका आदेश इस कारण दिया गया हो कि वे हमारे लिए लाभदायक थे।[2] कहने को उतनी ही बात बाकी थी जो फ्रैंकलिन ने फिर-फिर कही, अगर आप कुछ उपलब्ध करना

---

१. बेन्जामिन फ्रैंक्लिन, आटोबायग्रफी।

२. वही।

चाहते हैं, तो उसके आवश्यक साधन ये हैं—मिताचार, मौन, व्यवस्था, सकल्प, मितव्ययिता, उद्योग, निष्ठा, न्याय आदि । और अगर कोई प्रमाण मागता, तो फ्रैंकलिन स्वय अपने और उपनिवेशो के अनुभव को प्रमाण रूप मे प्रस्तुत कर सकते थे ।

दार्शनिको को इस दर्शन की सरलता, जो लगभग सादगी है, अखर जाती है । साधन-मूल्यो मे ध्यान केन्द्रित रखकर फ्रैंकलिन उसी विशिष्टता का प्रदर्शन करते हैं, जिसे यूरोपीय लोग 'अमरीकीपन' कहते हैं । पूर्व-स्वीकृत होने के कारण, अन्तिम मूल्यो की सचेत रूप मे परिभाषा या चर्चा शायद ही कभी होती है, क्योकि अमरीका मे (और दरअसल सभी जगह) साध्य आरम्भ मे ही और आसानी से स्वीकार कर लिये जाते हैं, बहुत कुछ वैसे ही जैसे बच्चे धर्मो को अपना लेते है । बौद्धिक वातावरण के अग के रूप मे उन्हे पूर्व-स्वीकृति मिली रहती है, और गभीरता से उनकी आलोचना करने का अवसर शायद ही कभी आता है । अपनी शुद्धतावादी विचार-व्यवस्था को स्वय एक साध्य के रूप मे प्रतिष्ठित करने मे फ्रैंकलिन को कोई रुचि नही थी । वे यह मानकर चलते थे कि लोगो के अपने लक्ष्य होते हैं कि वे 'मुक्त और अकुण्ठित' स्थिति में रहना चाहते हैं और यह कि धन केवल अवकाशमय समाज के वास्तविक लक्ष्यो का उपभोग करने का साधन है । 'जल्दी सोना और जल्दी उठना, मनुष्य को स्वस्थ, समृद्ध और बुद्धिमान् बनाता है ।' स्वास्थ्य, समृद्धि और ज्ञान मानवीय जीवन की प्राकृतिक वस्तुओ के वर्णन के लिए यह सूत्र बुरा नही है । लेकिन फ्रैंकलिन की सद्गुणो की सूची मे इनमे से कोई भी नही आता । उसका ध्यान केवल जीवन के 'जल्दी सोना और जल्दी उठना' वाले पक्ष की ओर है ।

दूसरे शब्दो मे, मानवीय आदर्शो का दर्शन न होने के कारण, शुद्धतावादी सद्गुण न तो अरस्तू की 'नीति' के पर्याय थे और न पूँजीवादी व्यावसायिकता का यशोगान । अगर शुद्धतावादी नैतिकता ने किसी का स्थान ग्रहण किया तो परम्परागत 'ईसाई' सद्गुणो का, क्योकि वे भी जीवन के अनुशासन का दर्शन है । ईसाई जीवन का परम्परागत चित्रण विनय, दयालुता, पश्चात्ताप, निर्धनता, अपने को वचित करना, और क्षमाशील भावना के रूप मे किया जाता है । शुद्धतावादी सद्गुणो की मान्यता का आधार तो ईसाई धर्मशास्त्र ही था, किन्तु वे ईसाई सद्गुण नही थे । ईसाई नैतिक परम्परा मे यह सम्बन्ध-विच्छेद, जिसे फ्रैंकलिन ने अपने दर्शन मे व्यक्त किया, यान्की और ईसाई चरित्रो के वैपरीत्य का मर्म है । यह अमरीकी प्रवृत्ति के तात्पर्य का भी मर्म है । अमरीकी [illegible] और अनिर्दिष्ट मानवीयता के बदले केवल फ्रैंकलिन [illegible], जो [illegible] नहीं होते, [illegible]

उससे आशा थी। लेकिन वह परहित के भावुक पन्थ को अपनाकर और एक 'उदार धर्म' का निर्माण करके, अधिक रूढिगत मार्ग पर चली। उधर फ्रैंकलिन की परहित भावना से विच्छिन्न होकर, जिसके कारण उन्होने अपने 'सद्गुणो' को 'मुक्त और अकुण्ठित' जीवन के साधन के रूप मे देखा था, ये सद्गुण सकुचित होकर निरकुश प्रतियोगिता और आदर्शहीन व्यवसाय की सामग्री बन गये।

स्वतन्त्रता का सिद्धान्त

धर्मक्षेत्र के बाहर इगलिस्तान के ह्विग (पार्लियामेन्ट-समर्थक) समूह को १६८८ मे जो सफलता मिली, वह शुद्धतावादी विद्रोह की ही वशज और उसकी परिणति थी। जॉन लॉक के राजनैतिक दर्शन मे इन रूढि विरोधियो के अधिकाश व्यावहारिक लक्ष्य धर्म-निरपेक्ष रूप मे मौजूद थे—सवैधानिक अधिकार, सहिष्णुता और सुरक्षा। न्यू-इगलैड मे भी इसी प्रकार शुद्धतावाद एक धर्म-निरपेक्ष रूप लेकर स्वतन्त्रता के एक सिद्धान्त मे विकसित हुआ। लेकिन पादरियो ने इस सक्रमण का नेतृत्व नही किया, क्योकि शुद्धतावादी धर्मशास्त्री धर्म-निरपेक्ष प्रवृत्तियो से आशकित थे, और उनमे से कुछ ने अत्याचारियो का प्रतिरोध करने के पुराने काल्विनवादी सिद्धान्त को पुनर्जीविन किया। इसके सर्वाधिक दिलचस्प और मज़ेदार उदाहरणो मे से एक है प्रिन्सीटन कॉलेज के अध्यक्ष जॉन विदरस्पून द्वारा १७ मई, १७७६ को कालेज के छात्रो के समक्ष दिया गया प्रसिद्ध 'विद्रोह' धर्मोपदेश, जिसमे उन्होने कहा कि ईश्वर की सर्वोच्च इच्छा उपनिवेशो के वासियो 'अव्यवस्थापूर्ण आवेगो' को उनपर अत्याचार करने वालो के विरुद्ध जगा रही है। 'मनुष्य का क्रोध अपने अधिकतम तूफानी उभार मे उसकी (ईश्वर की) इच्छा पूर्ण करता है, और अन्तत उसके कृपापात्रो का भला करता है।'[1] किन्तु विदरस्पून भी, ईश्वर द्वारा मनुष्यो के आवेगो के उपयोग के अपने रूढ सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के बाद, अपने उपदेश के अन्तिम आधे हिस्से

---

१. जान विदरस्पून, 'दी डोमिनियम आफ प्राविडेन्स ओवर दी पैशन्स आफ मेन' (मनुष्यो के आवेगो पर विधाता के विधान का प्रभुत्व) (फिलाडेल्फिया, १७७७) पृष्ठ १६। उसी परिच्छेद मे विदरस्पून अपने सुपरिचित धर्मशास्त्रीय बुद्धि-चातुर्य से कहते हैं—"विधाता के विधान में बहुधा सर्वशक्तिमत्ता और औचित्य का मिश्रण पहचाना जा सकता है।"

मे नौजवानो से सीधी-सादी, धर्म से असम्बद्ध अपील करते है कि वे अपने अधिकारो और 'न्याय, स्वतन्त्रता और मानवीय प्रकृति' के पक्ष मे वीरता से लडें। वे इतिहास के आधार पर यह तर्क दे कर दोनो सिद्धान्तो को मिलाने की चेष्टा करते है कि नागरिक स्वतन्त्रता के समाप्त होने पर हमेशा धार्मिक स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जाती है, और 'अगर हम अपनी सासारिक सम्पति सौंप देते हैं तो उसके साथ ही हम अपनी अन्तरात्मा को भी पराधीन बना देते है।'[१]

शुद्धतावादी धर्मशास्त्र को इस प्रकार विद्रोह के अनुरूप बनाने का एक पूर्व-उदाहरण जॉन वाइज मे मिलता है। उन्होने स्थानीय धर्म-समुदायो की स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए (१७१७), धर्म-सगठन को तर्को और शुद्धतावादी सिद्धान्तो को छोड़कर 'मनुष्य की सुरक्षाओ' के एक सिद्धान्त के लिए 'प्रकृति के नियम और प्रकाश' (विशेषत पुफेनडार्फ) से प्रेरणा लेनी चाही थी। उन्होने 'मनुष्य की प्रकृति मे निहित मुख्य सुरक्षाओ' के रूप मे, अपनी तर्कबुद्धि के निर्णय पर चलने की स्वतन्त्रता, निजी स्वतन्त्रता और समानता, और जनता की सर्वोच्च सत्ता और सामाजिक अनुबन्ध के उपयोग मे अन्य मनुष्यो के साथ शामिल होने के अवसर को माना था। जॉन वाइज ने बहुत साफ नतीजा निकाला था कि सभी प्रकार की सरकारो मे 'विश्व मे सर्वोत्तम शायद वह होती जिसमें श्रेष्ठ लोकतन्त्र के आधार पर एक वैधानिक राजा (निरकुंश से भिन्न) होता है।'[२] न्यू-इंगलैड के कुछ पादरियो ने अब जोनाथन मेह्यू का अनुसरण करने का साहस किया, जिन्होने अपने 'सरमन्स टु यग मेन' (युवको को उपदेश—१७६३) मे घोषित किया कि देश और स्वतन्त्रता का प्रेम और सभी अन्याचारो और जुल्म से घृणा, सच्चे धर्म का सार है। किन्तु मेह्यू और उनके साथी विद्रोहियो ने अपने सिद्धान्त को शुद्धतावाद से ग्रहण करने की चेष्टा नही की। वस्तुत पादरी के रूप मे उनकी 'अच्छी प्रतिष्ठा' नही थी, और सैमुएल जॉनसन ने, जो स्वय अग्रेजी राज के समर्थक थे, उनके बारे में कहा कि वे उस प्रकार के 'अव्यवस्थित विचार वाले लोगो में है, जिन्हें तुर्को से ज्यादा अच्छे ईसाई कहना कठिन है।'

समृद्ध और विद्रोहपूर्ण न्यू-इगलैंड वासियो के लिए यह ज्यादा आसान था कि ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता और कर्त्तव्यभावना से 'दण्डाधीशों' के [illegible]

---

१ वही, पृष्ठ [illegible]।

२ [illegible] द्वारा सम्पादित [illegible] इन अमेरिका, न्यूयार्क, १९३९) पृष्ठ ३९।

पर विश्वास करने के शुद्धतावादी आडम्बर का परित्याग कर दें और अपने आश्चर्यजनक रूप मे धर्म-निरपेक्ष स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र की तैयारी में अगर गणतन्त्रवादी नही तो पूरी तरह व्हिग (राष्ट्रवादी लोकतन्त्रवादी) वन जाएँ। और इस तरह शीघ्र ही सारे उपनिवेशो मे इतिहास और प्रगति सम्बन्धी धर्म-निरपेक्ष धारणा फैल गयी।

टॉम पेन और वेन्जामिन फ्रैन्कलिन द्वारा की गयी व्यावहारिकता और 'सरल समझ' की अपीलो की लोकप्रियता के वावजूद अमरीकी नेताओ ने सस्थापित सिद्धान्तो को पुन प्रतिष्ठित करने के लिए मेहनत की—न केवल आधुनिक सिद्धान्तो को, वरन् प्राचीन सिद्धान्तो को भी। रोम के कानून और यूनान के राजनीतिक दर्शन का अमरीका मे पदार्पण, जिन्हे शुद्धतावाद ने केवल मौखिक आदर दिया था, अपने आप मे अमरीकी चिन्तन के इतिहास मे एक वडी घटना थी और प्रवुद्ध-काल की एक बडी देन थी। विना उनके मूल स्रोतो तक गये, हम कम से कम उन मुख्य दार्शनिक विचारो और समस्याओ का ज़िक्र कर सकते है जो विद्रोह का औचित्य सिद्ध करने के प्रयास मे, और सविधान पर हुई लम्वी वहस और विचार-विमर्श के फलस्वरूप सामने आयी।

(क) सामाजिक अनुबन्ध और प्रजाधिपत्य—चर्च (धर्म-सगठन) प्रसविदा के शुद्धतावादी सिद्धान्त को एक धर्म-निरपेक्ष रूप देना आसान था। लॉक और इगलिस्तान के व्हिग वडी हद तक ऐसा करने मे सफल हुए थे। लॉक के सामाजिक अनुवन्ध के सिद्धान्त को अमरीकी आवश्यकताओ के अनुरूप ढालने के लिए केवल इतनी ही जरूरत थी कि सामाजिक अनुवन्ध, जन-कल्याण और प्रकृति के नियम सम्वन्धी प्राचीन रोमी सिद्धान्तो के अशो की सहायता से लॉक के सिद्धान्तो को एक गणतान्त्रिक रूप प्रदान किया जाए। कुछ समय तक जॉन आडम्स और थॉमस जेफरसन जैसे उपनिवेशवादी वकीलो का खयाल था कि सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो प्रकार की समस्याओ का हल अग्रेजी साम्राज्य के अन्दर रहकर किया जा सकता है, कुछ उसी प्रकार जैसे अलगाव विरोधी धर्मसमुदायवादियो का खयाल था कि वे इगलिस्तानी चर्च के अन्दर रह सकेंगे। हर एक उपनिवेश को एक 'राज्य-क्षेत्र' माना जाए, जिसका अपना विधानमण्डल हो, और एक सामान्य सम्राट्, साम्राज्य के सामान्य कानून और स्वय अपने विधानमण्डल के स्वीकृत कानूनो के प्रति भक्ति के स्वेच्छित अनुवन्ध मे हर उपनिवेश वँधा हो। और फिर, वे इगलिस्तान, मैनद्वीप आदि 'सहयोगी स्वतन्त्र राज्यो' के साथ मिलकर स्वतन्त्र राज्यो का एक साम्राज्य-सघ वनाएँ। इसकी तुलना इस धर्म-समुदायवादी सिद्धान्त से की जा सकती है कि स्वतन्त्र गिरजा-क्षेत्र एकमात्र और सर्वोच्च अधिपति ईसा के अधीन इगलिस्तानी चर्च मे संघवद्ध

हो। उपनिवेशो को इस रूप मे देखना सम्भव था, क्योकि उनके अधिकार-पत्र स्पष्टतः आनुवन्धिक थे। ऐसे राज्य, सबबद्ध होने पर भी स्वतन्त्र होगे, क्योकि हर एक की अपनी प्रतिनिधि सरकार होगी और सामान्य कानून की सीमाओ के अन्दर हर एक राज्य सामान्य हित के कार्यो मे अपने योग के रूप और परिमाण के प्रश्नो पर अपना मत दे सकेगा। सम्राट् के प्रति भक्ति के सामान्य बन्धन के अलावा, एकता कायम रखने के लिए एकमात्र अन्य आवश्यकता साम्राज्य के एक स्वाधीन सर्वोच्च न्यायालय की होगी, जिसका एकमात्र कार्य विधानमण्डल के कार्यो की वैधानिकता को परखना होगा। स्वतन्त्र (अर्थात् आनुवन्धिक) समाजो के सघीय प्रजाधिपत्य का यह विचार १७६० के आस-पास अमरीका और इगलिस्तान दोनो के ही समझौते के इच्छुक राजनेताओ द्वारा प्रतिपादित किया जा रहा था, जिन्हे आशा थी कि इगलिस्तान और उसके उपनिवेशो के आर्थिक विवाद वैधानिक सुधार की योजना के अन्तर्गत सुलझाये जा सकते हैं।[1] लेकिन, जैसा कि सब जानते है, साम्राज्य-प्रजाधिपत्य की जो योजना अव्यावहारिक सिद्ध हुई, वह शीघ्र ही उपनिवेशो के आपसी सहयोग और फिर राज्यो की सघीय एकता का क्रियात्मक आधार बन गयी। सभी का अनुमान था कि जिस प्रकार अग्रेजी ससद् उसे औपनिवेशिक नीति के झगडो का मुख्य केन्द्र थी, उन्ही कारणो से सघीय विधानमण्डल झगडो और गुटबाज़ी का मुख्य केन्द्र होगा। स्वतन्त्रता के हित मे यह आवश्यक था। किन्तु यह आशा थी कि एक कार्य-कारिणी और एक सर्वोच्च न्यायालय शान्ति कायम रख सकेगे, जिस पर सभी की सुरक्षा निर्भर थी। लगभग १७६० से लगभग १८२० तक, अमरीकी राजनीतिक विचारधारा का यह मौलिक रूप केवल युद्ध जीतने और शान्ति स्थापित करने का व्यावहारिक तरीका नही था, बल्कि एक सामाजिक दर्शन का व्यावहारिक मूर्त्त रूप था। 'सघ योजना', जिस पर उसके आयोजको को सचमुच बडा गर्व था, सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त का दोहरा प्रयोग थी—या, जैसा जेफरसन ने कहा, इसमे छोटे-छोटे गणतन्त्रो को मिलाकर एक विशाल गणतन्त्र का निर्माण हुआ था। न्यू-इंगलैंड का हर नगर, हर इलाका, हर बस्ती, और हर राज्य, राष्ट्रीय सघ की भाँति एक पूर्णत: आनुबन्धिक समाज माना गया। थॉमस जेफरसन ने विशेषत इन 'छोटे गणतन्त्रो' को जीवन्त रखने पर जोर

---

१ उपनिवेशों मे बेन्जामिन फ्रैंकलिन और सेमुएल जॉन्सन, स्वतन्त्रता का सवाल उठने के पहले से ही, संघ के प्रारम्भिक समर्थक थे। यह दिलचस्प बात है कि अमरीकी बिशपों (उच्च धर्माधिकारियों) की नियुक्ति के अपने सुझाव को भी जॉन्सन इसी विचार का धर्मसंगठन सम्बन्धी रूप मानते थे।

दिया, क्योकि उनके मतानुसार, इन स्थानीय समाजो के गणतान्त्रिक चरित्र और सतर्कता पर ही बडे सघ का स्वास्थ्य निर्भर था।

"मै कह सकता हूं कि एक सामान्य सूर्य की परिक्रमा करने वाले ग्रहो की भाँति, जो अपनी पारस्परिक गुरुता और दूरियो के अनुसार कार्य करते और कार्य का उपादान बनते है, ये सब और इनकी केन्द्रीय सरकार भी समय पाकर वह सुन्दर सन्तुलन उत्पन्न करेंगे जिस पर हमारा सविधान आधारित है। मेरा विश्वास है कि वह विश्व मे श्रेष्ठता का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करेगा जिसकी तुलना केवल सौर-मण्डल से ही की जा सकेगी। अत प्रबुद्ध राजनेता हर अग की गुरुता और प्रभाव को कायम रखने की चेष्टा करेगा, क्योकि किसी एक अंग का अश अधिक होने पर सामान्य सन्तुलन नष्ट हो जाएगा।"[1]

इस आनुवन्धिक सिद्धान्त के अनुसार जनाधिकार पर निर्मित कोई गणतन्त्र या प्रजाधिपत्य, नागरिको का एक स्वेच्छित, कानूनी सघ होता है जो एक-दूसरे के प्राकृतिक अधिकारो की रक्षा करने का वादा करते है और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए, नागरिक अधिकारो या न्याय की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से एक 'अभिकर्त्ता', 'ट्रस्टी' या सरकार नियुक्त करते हैं। यह किसी प्रभु की आधीनता का आपसी समझौता नही है (हॉब्स) और न बहुमत की इच्छा को प्रभु मानने की स्वीकृति है (लॉक)। बल्कि, इसमे एक राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता या प्रभुता (अगर इस विचार को रखना ही है तो) का उपभोग हर एक के अधिकारो को प्रतिष्ठित, सम्मानित और कार्यान्वित करके करता है, उन अधिकारो को सरकार को सौंप कर नही। कट्टर गणतन्त्रवादी टॉमस पेन ने स्पष्ट शब्दो मे 'जनता की प्रभुता' की घोषणा की। और जेम्स विल्सन ने बडे ध्यानपूर्वक प्रभुता के ऐसे सिद्धान्त के कानूनी पक्षो का निरूपण किया। जब यह सिद्धान्त निरूपित किया जा रहा था, उस समय तक अमरीकियो को रूसो के सामान्य इच्छा (जनरल विल) की प्रभुता के सिद्धान्त की जानकारी नही थी। अगर होती, तो भी वे उसे सन्देह की दृष्टि से देखते। उनका अपना सिद्धान्त इस पर आधारित था कि सामान्य इच्छा और विशिष्ट इच्छा दोनो ही प्रकृति और नागरिक अधिकारो के, अर्थात् जनाधिकार के अधीन हो। उनके मतानुसार जनाधिकार और निजी अधिकार में साधन और साध्य का सम्बन्ध है। नागरिक स्वतन्त्रता, कानून, शक्ति आदि विभिन्न नागरिको की सम्पत्ति की सुरक्षा और सुख की अभिवृद्धि के साधन हैं।

---

१ पेरेग्रिन फिट्जह्यू को पत्र, २३ फरवरी, १७६८, जॉन डुई द्वारा सम्पादित 'दी लिविंग थाट्स आफ थॉमस जेफरसन' (न्यूयार्क, १६४०) मे उद्धृत, पृष्ठ ५१-५२।

"हम इन सत्यो को स्वयंसिद्ध मानते हैं—कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, कि उनके सर्जक ने उन्हे कुछ (जन्मसिद्ध और) अहरणीय अधिकार प्रदान किये है, कि इनमे जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की तलाश के अधिकार भी हैं, कि इन अधिकारो की सुरक्षा के लिए मनुष्यो मे सरकारो की स्थापना की जाती है, जो अपनी उचित शक्तियाँ शासितो की सहमति से प्राप्त करती हैं, कि जब भी किसी प्रकार की सरकार इन उद्देश्यो को नष्ट करने वाली बन जाती है, तो लोगो का यह अधिकार है कि उसे बदलें या समाप्त कर दें और नयी सरकार की स्थापना करे, जिसकी आधारशिला वे ऐसे सिद्धान्तो पर रखें और उसकी शक्तियो को ऐसे रूप मे संगठित करे जिसमे उन्हे अपनी सुरक्षा और सुख की प्राप्ति की सम्भावना सबसे अधिक प्रतीत हो।"[1]

इन 'स्वयसिद्ध सत्यो' को स्वयसिद्ध सत्य के एक अधिक व्यापक समूह का अग माना गया। प्रबुद्धता का यह एक मौलिक लक्ष्य था, जो लॉक के 'एसे' (निबन्ध) मे निरूपित किया गया, कि नैतिक और राजनैतिक विज्ञानो को प्रदर्शन-योग्य ज्ञान के आधार पर निर्मित किया जाए। गणित इसका आदर्श नमूना था और अधिकार के स्वयसिद्ध सिद्धान्त ऐसी विचार-व्यवस्था का स्वाभाविक प्रस्थान-बिन्दु थे। विचार और नीति के विज्ञानो मे निगमन-पद्धति का निर्माण करने का सामान्य प्रयास एक सर्वथा तर्कनावादी आदर्श था। इसे बहुधा 'विचार-दर्शन' की फ्रेंच सज्ञा दी जाती थी। इस समय तक हचेसन और ह्यूम के नैतिक भावना के सिद्धान्त के प्रति कोई उत्साह नही था। इन 'प्राकृतिक नियम के सिद्धान्तो' को केवल मानव-प्रकृति के सिद्धान्त मानने के किसी प्रयास का उसी प्रकार खण्डन किया जाता था जैसे अन्तर्जात विचारो मे विश्वास का। यद्यपि सैमुएल जॉन्सन और टॉमस पेन जैसे प्रचार-लेखक निरन्तर 'सरल समझ' का अपील करते थे और यद्यपि जेफरसन ने कहा था कि, स्वतन्त्रता के घोषणा पत्र मे जब उन्होंने 'स्वयसिद्ध सत्यो' का जिक्र किया तो उनका तात्पर्य केवल 'विषय की सरल समझ' से था, किन्तु सरल समझ में यह विश्वास उस समय तक कोई दार्शनिक सिद्धान्त या मनोवैज्ञानिक खोज नही बना था। इस प्रसग मे, सरल समझ का अर्थ सामान्य तर्कबुद्धि था और किसी विषय का विज्ञान उस विषय की सरल समझ या स्वयसिद्ध सिद्धान्तो पर आधारित था। ऐसे 'विचारो' या प्रथम सिद्धान्तो के आधार पर निर्मिति का अर्थ था बिना तत्त्व मीमांसा के निश्चयात्मकता प्राप्त करना और बिना उपयोगितावादी या संवेदनावादी हुए अनुभववादी होना।[2]

१. स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र मे।

२. कैरोलिना के जॉन टेलर के मानव अधिकार को लेकर 'शासन का विज्ञान' प्रस्तुत करने वाले इतने ग्रन्थ [illegible] की [illegible] [illegible]

(ख) प्राकृतिक अधिकार और संवैधानिक अधिकार—प्रचार-लेखको और वकीलो द्वारा 'मनुष्य के अधिकार' का उपयोग एक सुविधाजनक नारे के रूप मे किया गया। उन्हे इससे मतलब नही था कि ये 'अंग्रेजो के अधिकार' थे या 'जन्मसिद्ध अधिकार' या 'निहित अधिकार' या 'हमारे जनक द्वारा प्रदत्त अधिकार'। प्राकृतिक अधिकारो और नागरिक अधिकारो के बीच बहुत स्पष्ट अन्तर करना बुद्धिमत्तापूर्ण भी नही था। उनमे वही करने की प्रवृत्ति थी जो पुफेनडार्फ ने किया था, और फ्रासीसियो ने १७८९ में जिसका अनुसरण किया—'मनुष्य और नागरिको के अधिकार' की बात बडे जोश-खरोश से कर के समस्या को समाप्त कर देना। उपनिवेशो के विधानमण्डलो और राज्य-सविधानो के सम्बन्ध मे होने वाले वादविवादो मे प्राकृतिक अधिकारो, स्वतन्त्रता और जन-प्रभुसत्ता के सम्बन्ध मे एक अस्पष्ट व जनप्रिय धारणा प्रचलित थी। न्यू-इगलैड मे सैमुएल आडम्स और जॉन ओटिस तथा वर्जिनिया में जार्ज मैसन, पैट्रिक हेनरी और जार्ज वाइथ, गणतान्त्रिक विचारो का प्रसार करने वालो के विशिष्ट

के सिद्धन्तो को व्यापक बनाने की अधिक चेष्टा की। जॉन आडम्स, जेम्स विलसन और जेम्स मैडिसन ने शासन-व्यवस्थाएँ प्रस्तुत की, लेकिन अपने अधिक व्यापक दार्शनिक विचारो को व्यक्त नहीं किया। अलक्जेन्डर हैमिल्टन ने दार्शनिक विवेचन काफ़ी किया, किन्तु उनमे आवश्यकता पड़ने पर, अपने सिद्धान्त प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थो से ज्यो का त्यो उठा लेने की प्रवृत्ति थी। जेफ़रसन ने कहा कि दार्शनिक क्षेत्र मे 'किसी औपचारिक या शास्त्रीय विचार-व्यवस्था मे, मैं ये विभाग करूंगा —(१) विचार-दर्शन, (२) नीतिशास्त्र, (३) प्रकृति और राष्ट्रों के नियम, (४) शासन, (५) राजनीतिक अर्थशास्त्र'। यहाँ विचार-दर्शन से तात्पर्य विचारो के सामान्य सिद्धान्त से है, और अन्य दार्शनिक 'विज्ञान' विशिष्ट क्षेत्रो में उपलब्ध सत्य को प्रस्तुत करते हैं। विचार-दर्शन मे जेफ़रसन ने प्रथम स्थान डी ट्रेसी को दिया। नीतिशास्त्र मे लार्ड केम्स को, 'प्रकृति और राष्ट्रो के नियम' मे, प्राचीन 'स्टॉइक' लोगो के बाद (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के यूनानी दार्शनिक जीनो के शिष्य-संयम और दु:ख-सुख आदि के प्रति समभाव के सिद्धान्त को मानने वाले—अनु०) ग्रोटियस या वाटेल को (दूसरा पुफेनडॉफ और बुर्लमाक्वी को), शासन में डी ट्रेसी की रचना 'कमेन्टरी' को, और मान्टेस्क्यू के 'रिव्यू' को, राजनीतिक अर्थशास्त्र मे डी ट्रेसी द्वारा प्रकृतिवादियो (१८वीं शताब्दी के फ्रासीसी विचारक क्वेस्ने के समर्थक), विशेषत' स्मिथ और से, के सशोधन को। देखिए, ऐड्रिएने कॉश रचित 'दी फ़िलासफ़ी आफ थॉमस जेफरसन' (न्यूयार्क) पृष्ठ ६०, एफ एफ और १४४ एफ एफ।

प्रतिनिधि थे, जिन्होने अधिक आलोचनात्मक सिद्धान्त-निरूपण करने वाली अगली पीढी के लिए समस्याएँ निरूपित की ।

किन्तु दार्शनिक प्रवृत्ति वाले राजनेताओ के लिए अमरीका का महान् वादविवाद दरअस्ल उस महान् वादविवाद का ही प्रसार था जो (कम से कम अंग्रेजो के लिए) क्रामवेल की सेना मे प्रेस्विटीरियन और स्वतन्त्र विचार लोगो मे आरम्भ हुआ था । लॉक ने प्राकृतिक अधिकारो की धारणा का प्रयोग वडे ढीले-ढाले रूप मे किया था, क्योकि अधिक स्पष्ट अन्तर न करके वे अपने उद्देश्यो की पूर्त्ति ज्यादा अच्छी तरह कर सकते थे । इसी प्रकार अमरीका मे स्वतन्त्रता के युद्ध मे विजय प्राप्त होने तक मूल सैद्धान्तिक प्रश्न गौण रहे, लेकिन उसके बाद अधिकाधिक सामने आये । संविधान का निर्माण करने मे, और क्रान्तिकारी फ्रास के साथ अपने सम्बन्धो मे, इन प्रश्नो से बचना असम्भव था । मूल दार्शनिक प्रश्न जो इस सघर्ष से उभरा, उसे इस प्रकार रखा जा सकता है—क्या अधिकार या कानून को एक सस्थात्मक नैतिक ढाँचे के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है जिससे किसी राज्य के स्थायी गठन या सविधान को न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण, तर्कसगत या स्वेच्छ कहा जा सके ? या कि अधिकार को ऐसे विशिष्ट कार्यों के सन्दर्भ मे परिभाषित करना आवश्यक है, जो अपनी निजी प्रकृति मे न्यायपूर्ण या स्वेच्छ होते हैं ? इगलिस्तान के सामने मे इस प्रश्न का व्यावहारिक रूप यह था कि ससद् —अर्थात् जनता के प्रतिनिधि — की प्रभुसत्ता अपने आप में उचित थी, या कि देश का कानून भी स्वेच्छ हो सकता है और इस कारण जनता के लिए आवश्यक है कि वह स्वय अपने प्रतिनिधियो और कानून के विरुद्ध भी कुछ अधिकारो या स्वतन्त्रताओ को 'आरक्षित' रखे । जेम्स हैरिंगटन का अनुसरण करते हुए जान आडम्स ने एक सस्थात्मक, गठनात्मक, स्वत नियमित व्यवस्था की कल्पना की । उनका विचार था कि सविधान इस प्रकार बनाया जाए जिसमे निजी हित और सार्वजनिक हित अभिन्न हो । इस धारणा ने एक शताब्दी तक सामाजिक दर्शन को [illegible] रखा । उनका विचार था कि शक्ति और सम्पत्ति को इस प्रकार बाँट [illegible] किसी विशेष-हित का प्रभुत्व न होने पाये, कानून को [illegible] बना दिया जाए । दूसरे शब्दो में, निर्दोष गणतन्त्र वह है जिसमें विभिन्न वर्ग और हित एक-दूसरे को सयमित और सन्तुलित करते है और इस प्रकार एक सामाजिक सन्तुलन का निर्माण करते है, जो [illegible] से न्याय करता है । [illegible] ने व्यक्तियों की [illegible] [illegible], और [illegible] तथा '[illegible]' [illegible] [illegible], और [illegible] सवैधानिक [illegible] मे उनका '[illegible]' [illegible]

प्रजाधिपत्य हर नागरिक को इस योग्य बनाता कि स्वय अपने हित सिद्ध करते हुए वह सम्पूर्ण समाज का भी हित करे। अगर हम उनका 'वैज्ञानिक' शासन-तन्त्र स्वीकार कर लेते तो मानवीय प्रकृति की भ्रष्टता को शासन सस्थाएँ इतनी अच्छी तरह सयमित और सन्तुलित कर देती कि हमे 'बहुसख्यक प्रतिनिधियो के' 'अतृप्य और असीमित' 'आवेगो और कामनाओ' से कोई डर न रह जाता। अगर वे यहाँ होते, तो हमारा दोषपूर्ण सविधान भी सयम और सन्तुलन का जो शानदार दृश्य प्रस्तुत करता है, उससे शायद उन्हे बडा सन्तोष मिलता।

दूसरे सिरे पर थॉमस जेफरसन थे, जो 'विधानमण्डलो के अत्याचार' से सशंकित होने के कारण ऐसे अधिकार-पत्र के लिये लडे, जो न्यायपालिका के हाथ मे एक 'कानूनी रोक' के रूप मे रहे। न्यायपालिका 'अगर स्वतन्त्र कर दी जाये और अपने क्षेत्र मे ही सीमित रखी जाए, तो इस योग्य होती है कि उसकी विद्वत्ता और निष्ठा पर बहुत अधिक विश्वास किया जाये।'[१]

ये पराकाष्ठाएँ आमने-सामने रही और इनमे मेल नही हो पाया, यह अलेक्जेन्डर हैमिल्टन के तर्क से प्रमाणित है, जिन्होने सविधान का समर्थन करने की उत्सुकता मे दोनो विचारधाराओ का सहारा लिया। उनका कहना था कि अधिकार-पत्र 'ऐसे सविधानो मे अप्रासगिक है जो व्यक्त रूप में जनता की शक्ति पर आधारित हो और जनता के साक्षात् प्रतिनिधियो और सेवको द्वारा क्रियान्वित हो। यहाँ, वास्तव मे, जनता कुछ भी परित्याग नहीं करती।'[२] अगले पृष्ठ पर वे लिखते हैं, 'सविधान स्वय, हर तर्कसगत अर्थ मे और हर उपयोगी उद्देश्य के लिए, एक अधिकार-पत्र है।'

हैं।[1] व्यवहार मे प्रश्न मुख्यतः यह था कि अन्ततः जनता की स्वतन्त्रताओं का सरक्षक कौन है। सघवादियो (फेडेरलिस्ट) ने जॉन मार्शल के नेतृत्व में सर्वोच्च-न्यायालय को खडा किया जिसे जेम्स विल्सन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिकरण के समान बताया। इसका उद्देश्य था प्राकृतिक नियमो का विकास, जिसमे वे 'जनता की प्रभुसत्ता' का अन्तिम स्वर और कानून द्वारा शासन के सरक्षक बन जायँ। टॉम पेन ने बहुत पहले 'कॉमन सेन्स' में इसी आदर्श को जनप्रिय अभिव्यक्ति प्रदान की थी। यह बात जॉन मार्शल के समय उतनी नयी और उत्तेजक नही रह गयी थी, जितनी १७७६ में रचना के प्रकाशन के समय थी।

लेकिन कुछ लोग कहते है, अमरीका का राजा कहाँ है? मै बताता हूँ मित्र, वह स्वर्ग मे राज्य करता है और इंगलिस्तान के शाही पशु की तरह मनुष्य जाति का नाश नही करता। किन्तु पार्थिव सम्मानो में भी हम दोषपूर्ण न प्रतीत हो, इसलिए एक दिन अधिकार-पत्र की घोषणा के लिए गम्भीरता से नियत कर दिया जाए। उसे दैवी नियम, ईश्वर की वाणी पर रख कर लाया जाए। उस पर एक ताज रखा जाए जिससे कि दुनिया को पता चल जाए कि जहाँ तक हम राजतन्त्र के समर्थक हैं, वहाँ तक अमरीका मे कानून राजा है।[2]

दूसरी ओर जेफरसन ने जनता के नागरिक सद्गुणों पर भरोसा किया और इस पर कि उन्हें कुछ अवधियों के बाद (सिद्धान्तत हर पीढी में एक बार) अपनी सरकार में वे जितना भी गम्भीर परिवर्तन करना चाहे, करने का अवसर मिले।

"जीवन के हर व्यापार की भाँति शासन में भी, कर्तव्यो के विभाजन और पुनर्विभाजन के द्वारा ही छोटे बड़े सभी मामले सर्वोत्तम ढंग से चलाए जा सकते हैं। और सार्वजनिक मामलो के प्रबन्ध में हर नागरिक को निजी रूप में हिस्सा देने से, सारा ढाँचा जुड जाता है।...

"निजी सम्पत्तियाँ, सार्वजनिक और निजी दोनो प्रकार के अपव्यय से नष्ट हो जाती हैं। और सभी मानवीय सरकारो में यह प्रवृत्ति होती है। एक मामले

---

१. देखिए, जेम्स ट्रूस्लो आडम्स, 'राइट्स विदाउट ड्यूटीज', 'दी येल रिव्यू' अंक चौबीस (१९१५), पृष्ठ २३७-२५०। और चार्ल्स डब्ल्यूहेन्डेल, जूनियर, 'दी मीनिंग आफ् ऑब्लिगेशन', क्लिफोर्ड बैरेट द्वारा सम्पादित 'कन्टेम्पोरेरी आइडियलिज्म इन अमेरिका' में (न्यूयार्क, १९३२) पृष्ठ २३७-२९५।

२. यह रचना अपने समय की सर्वाधिक प्रभावशाली पुस्तिकाओ में से थी।

मे सिद्धान्त से हटना, दूसरे के लिए मिसाल वन जाता है, और दूसरा तीसरे के लिए। यह क्रम चलता जाता है, और अन्ततः समाज का बहुभाग केवल दुर्दशाग्रस्त यन्त्रो जैसा रह जाता है, और उसमें पाप करने और कष्ट भोगने के अलावा और कोई सवेदना शेष नही रहती। तव वस्तुत: सवका सबसे सघर्ष शुरू हो जाता है, जिसे संसार में इतने व्यापक रूप में विद्यमान देखकर कुछ दार्शनिक उसे मनुष्य की विकृत-स्थिति के वजाय उसकी प्राकृतिक स्थिति मान वैठे है। इस भयानक सिलसिले मे पहला स्थान सार्वजनिक ऋण का है। उसके वाद कर और उनके पीछे-पीछे दुर्गति और अत्याचार।"[1]

(ग) वर्ग-समाज—गणतान्त्रिक सिद्धान्त परम्परा से, और सिद्धान्तत भी, सामन्तवादी सिद्धान्त का प्रतिपक्षी था। वर्गविशेषाधिकार युक्त सामन्तवाद को अमरीका मे उठने की अनुमति नही मिलती थी। सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, इस सिद्धान्त का प्रथम और सर्वप्रमुख अर्थ यही था। दूसरी ओर, इस बात पर सामान्य सहमति थी कि सभी समाज वर्ग-समाज होते हैं। राजनैतिक समानता का आर्थिक असमानता के साथ कैसे मेल बिठाया जाए, यह मुख्य समस्या थी। उपनिवेशो में एक भूस्वामी अभिजात्य वर्ग पैदा हो चुका था, विशेषत: मध्य और दक्षिणी उपनिवेशो में, इसे निर्विवाद स्वीकार कर लिया गया। एक आर्थिक और औद्योगिक अभिजात्य-वर्ग उत्पन्न हो रहा था, यह भी सामान्यतः दिखाई देता था। शासन और राजनीतिक अर्थशास्त्र के विज्ञान जिन स्वयंसिद्ध सत्यो पर आधारित थे, उनमें एक यह भी था 'कि हर मनुष्य को सिद्धान्तहीन मानना चाहिए, और यह कि निजी हित के अलावा उसके सारे कार्यों का कोई और लक्ष्य नही होता।'[2] जॉन आडम्स ने इस सूत्र को अधिक औपचारिक रूप मे घोषित किया, जव उन्होने लिखा, 'हैरिंगटन ने सिद्ध किया है कि शक्ति हमेशा सम्पत्ति के पीछे जाती है। मैं इसे राजनीति का उतना ही अटल सिद्धान्त मानता हूँ जितना यान्त्रिकी का यह नियम कि क्रिया और प्रतिक्रिया समान होती है।'[3] अनिवार्य ही गुट होगे और समस्या ऐसी व्यवस्था बनाने की है जिसमें ये गुट बिना 'अन्य नागरिको के या समाज के स्थायी और सम्पूर्ण हितो' को हानि

---

१. जान डुई द्वारा सम्पादित 'दी लिविंग थाट्स आफ़ थॉट्स जेफ़रसन' में सैमुएल कर्चेवाल को पत्र, १२ जुलाई, १८१६, पृष्ठ ५६-६०।

२. हेनरी कैवट लाज द्वारा सम्पादित 'दी वर्क्स आफ़ अलेक्ज़ेन्डर हैमिल्टन' (न्यूयार्क, १६०४) खण्ड २, पृष्ठ ५१।

३. वर्जन लुई पैरिंगटन, 'मेन करेन्ट्स इन अमेरिकन थाट', खण्ड १, 'दी कालोनियल माइन्ड, १६२०-१८००' (न्यूयार्क, १६३०), पृष्ठ ३१८।

पहुचाये, एक-दूसरे को नियन्त्रित करे।[1] इस समय हम आसानी से देख सकते हैं कि यहाँ दलीय सरकार की समस्या का स्पष्ट निरूपण किया गया है। लेकिन हमारे सविधान और उसके निर्माताओ ने सिद्धान्त या व्यवहार में दलो के लिए कोई व्यवस्था नही की। वे सयम और सन्तुलन की अन्य व्यवस्थाओ पर अनन्त वहस चलाते रहे और उन्हे आशा थी कि वे सरकार का कोइ ऐसा रूप निकाल लेगे जो अपनी प्रकृति से ही भ्रष्टता की उन प्रवृत्तियो को रोक सकेगी जिन्हे सभी शास्त्रीय ग्रन्थो मे वताया और समझाया गया है। दलीय सरकार के विरुद्ध मुख्य सैद्धान्तिक तर्क यह था कि 'प्रतिनिधित्व अगर इन पार्टियो में से किसी एक मे शामिल होने के विकल्प तक सीमित रह जाए, तो वह राष्ट्रीय स्वशासन का साधन न रह कर अत्याचार का साधन मात्र रह जाता है।'[2] उनके सिद्धान्तो के अनुसार, दलीय-व्यवस्था पर आधारित कोई स्थायित्वपूर्ण शासन न वन सकने का मुख्य व्यावहारिक कारण यह था कि जिन गुटो और वर्ग-हितो को दल व्यक्त करते है, वे हमेशा मौजूद रहने पर भी, निरन्तर वदलते रहते है। उस समय अमरीका में टिकाऊ वर्गों के बारे में अटकल लगाना सर्वाधिक लाभहीन कार्य प्रतीत होता था।

यह भविष्यवाणी करना आसान था कि गरीब और अमीर, सम्पन्न और सम्पत्तिहीन वर्ग हमेशा रहेंगे, किन्तु यह भी आसानी से देखा जा सकता था कि सम्पत्ति का रूप वड़ी तीव्रता से वदलता था और भूस्वामी अभिजात्य-वर्ग को आधार बनाना व्यर्थ था। भू-स्वामी अभिजात्य-वर्ग के अन्दर भी गुलामी-समर्थक और गुलामी-विरोधी गुट पैदा हो रहे थे, छोटे खण्ड-हित वर्ग-हितो को काटते थे, और भू-सम्पत्ति भी उतनी ही अस्थायी और मूल्य की दृष्टि से अस्थिर थी जितनी और कोई सम्पत्ति। यह सच है कि जेफरसन और टेलर जैसे कृपिवादियो ने खेती के हितो को एक विशिष्ट अर्थ में 'राष्ट्रीय-हित' मान कर उनका समर्थन किया। किन्तु यह पुराना अर्द्ध-सामन्ती तर्क विलकुल खोखला हो गया और जेफरसन ने अन्तत इसे छोड दिया, क्योंकि अमरीका मे भू-स्वामियो के ऐसे 'वँधे हुए' हित नही थे जो इस सिद्धान्त को स्वीकार्य वनाने के लिये आवश्यक थे। स्वय टेलर ने जेफरसन को १७६८ में लिखा, 'हमारे लिए सचमुच वडा अच्छा होता अगर खेती और किसानी

---

१. 'फ्रेडेरलिस्ट पेपर्स', संख्या दस मैडिसन)।

२. जान टेलर, 'ऐन इन्क्वायरी इन टु दी प्रिन्सिपल्स एण्ड पालिसी ऑफ़ दी गवर्नमेन्ट ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स' (फेडरिक्सवर्ग, वर्जिनिया, १८१४), पृष्ठ १६६।

सब भी रोचक बने रहते।' फिर भी टेलर ने हठपूर्वक इस सिद्धान्त को कायम रखने की चेष्टा की।

"देश की रक्षा करने के हथियारो के बाद सबसे अधिक महत्व देश मे खेती करने के औजारो का होना चाहिए और इन औज़ारो से हथियारो का भी मूल्य बढता है, इस हद तक कि वे देश को अधिक रक्षणीय बनाते है। (खेती के कर्तव्य) नैतिक औचित्य के कर्तव्यो की भाँति, एक व्यक्ति या एक परिवार के निर्वाह की व्यवस्था करने के सकुचित घेरे से निकल कर समाज से उत्पन्न ज़िम्मेदारियो और राष्ट्रीय समृद्धि से सम्बद्ध हितो द्वारा निर्मित व्यापक क्षेत्र मे आ जाते है। सयुक्त राज्य मे खेती की ज़िम्मेवारी सभी खाने वालो के लिए भोजन की व्यवस्था करके ही समाप्त नही हो जाती। इसका क्षेत्र सरकार को सबल बनाने, व्यापार को प्रोत्साहन देने, शैक्षिक व्यवसायो को कायम रखने, ललित कलाओ को जन्म देने और अधिक उपयोगी मशीनी रोजगार को बल प्रदान करने तक फैला हुआ है।...ये ऐसे स्रोत है, जिनसे सभी वर्ग और विशेप रूप मे इनके 'फलो का उपभोग करने वाले लोगो' का बहुसख्यक परिवार अपनी जीविका और समृद्धि प्राप्त करते हैं। अत इसे समृद्ध बनाने में सभी वर्गों का गहरा हित है, क्योकि इसकी वृद्धि से हर एक की सफलता बढती हैं, और इसके ह्रास से घटती है। ..खेती पर की गयी हर चोट उनके अपने (राजनीतिज्ञो के) मर्म तक पहुँचती है।...ऐसी हालत मे खेती और समाज के अन्य उपयोगी कार्यों के हितो में कोई अन्तर कैसे हो सकता है, जब कि उनकी समृद्धि खेती की समृद्धि का फल ही हो सकती है, और खेती एक सुसगठित समाज का लाभ अन्य कार्यों के लिए उपयुक्त व्यवस्था करके ही उठा सकती है।.. सामान्य हित से, खेती सम्बन्धी एक राष्ट्रीय नीति का विचार उत्पन्न होना चाहिए। जो वस्तु सुख और कष्ट की पराकाष्ठाएँ और दोनो के बीच की सारी स्थितियाँ उत्पन्न करती है, दिमाग और धन की शक्तियो के उपयोग के लिए उससे अधिक यशस्वी लक्ष्य और कौन हो सकता है?...चूँकि खेती राष्ट्रीय सम्पत्ति है (कोई समूह उसे क्षति नही पहुँचाए)। चूँकि हमारा देश एक विशाल खेत है और उसके निवासियो का एक विशाल परिवार है, जिसमे सबसे कम काम करने वाले लाभ का सबसे बडा हिस्सा प्राप्त करते हैं, अत जो लोग किसान नही हैं, खेती का लाभ बढाने में उनका हित स्वय किसान से भी अधिक है, क्योकि उसकी आजीविका उनके पहले आती है, और उसके अतिरिक्त उत्पादन से ही वे जीवन-यापन के साधन प्राप्त कर सकते हैं।"[१]

१. 'अमेरिकन फार्मर', खण्ड २ (१५ सितम्बर, १८२०), पृष्ठ १६४-१६५।

ऐसा प्रतीत होता है कि भू-सम्पत्ति मे धनी और नोटो से धनी, दोनो ही यह मानते थे कि नागरिको मे उनका स्थान अल्प-सख्यको का ही रहेगा और भविष्य मे आने वाला वह दिन देखते थे जब मतदाताओ के लिए सम्पत्ति सम्बन्धी शर्तों के तेज़ी से ढीले पडने के साथ वे मतदाताओ में भी अल्प-संख्यक रह जायेंगे। अतः उनकी दृष्टि मे वर्ग शासन की समस्या मुख्यतः सम्पत्ति के मालिक वर्ग के अल्प-सख्यक हितो की रक्षा करने की थी। जॉन आडम्स ने इस बात को बडे तीखे स्वरो मे रखा।

"यह याद रखना होगा कि गरीबो की तरह अमीर भी 'लोग' हैं, कि अपनी सम्पत्ति पर उनका अधिकार उतना ही स्पष्ट और पवित्र है, जितना उनसे कम सम्पत्ति वालो का अपनी सम्पत्ति पर, कि उनपर भी अत्याचार सम्भव है और उतना ही दुष्टतापूर्ण होगा जितना दूसरो पर।"[१]

"अगर आप लोकतन्त्रवादियो को प्रभुसत्ता में एक भाग से अधिक दे देते है, अर्थात् अगर आप उनको प्रभुसत्ता यानी विधान-मण्डल का सचालन या उसमे प्रबलता प्रदान कर देते हैं, तो वे वोट के द्वारा आप अभिजात्य लोगो के हाथ से सारी सम्पत्ति छीन लेंगे और अगर उन्होने आपको जीवित छोड दिया तो यह ऐसी मानवीयता, विचारशीलता और उदारता होगी जैसी किसी विजयी लोकतन्त्र ने सृष्टि के आरम्भ से अब तक प्रदर्शित नही की है। लोकतन्त्रवादियो का अभिजातवर्ग आपका स्थान ले लेगा और अपने साथी मनुष्यो से वैसा ही कठोर और सख्त व्यवहार करेगा जैसा आपने उनके साथ किया है।"[२]

टॉमस पेन ने एक ही कार्यकारी पद हो, इसका विरोध करते हुए वही शास्त्रीय गणतान्त्रिक सिद्धान्त अपनाया कि आज्ञापालन व्यक्तियो का नही, कानूनो का होना चाहिए।

"शासन का परिष्कार करके उसे एक व्यक्ति तक सीमित करने की पद्धति का, या जिसे 'एक कार्यकारी' कहते है, उसका मै हमेशा विरोधी रहा हूँ। ऐसा व्यक्ति हमेशा किसी दल का प्रमुख होगा। अनेकता कही ज्यादा अच्छी होती है। यह राष्ट्र के समूह को ज्यादा अच्छी तरह सयोजित करती है। और, इसके अतिरिक्त, किसी गणतन्त्र के पौरुषेय मानस के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी व्यक्ति की आज्ञा का पालन करने के पतनशील विचार से मुक्त हो।"[३]

---

१. चार्ल्स फ्रासिस आडम्स द्वारा सम्पादित 'दी वर्क्स ऑफ जान आडम्स' मे 'ए डिफेन्स आफ दी कान्स्टिट्यूशन एट्सेटरा,' (बोल्टन, १८५०-५६) खण्ड ६३, पृष्ठ ६५।

२. 'लेटर टु जान टेलर' वही, पृष्ठ ५१६।

३. हैरी हेडेन क्लार्क द्वारा सम्पादित 'टामस पेन, रिप्रेजेन्टेटिव सेलेक्शन्स' (न्यूयार्क, १९४४) पृष्ठ ३८८ एन।

इस दृष्टिकोण के अनुसार वहुमत की इच्छा भी अथवा यहाँ तक कि समूचे राष्ट्र की इच्छा भी एक गुट, और 'जनाधिकार' के लिए खतरा बन सकती थी। अपने गणतान्त्रिक सिद्धान्त को एक लोकतान्त्रिक मोड़ देने मे जेफरसन अपने समकालीनो मे लगभग अकेले थे, और उन्होने भी यह अपने जीवन के अन्तिम काल मे किया जब कार्यकारी अनुभव ने कुछ 'स्वयसिद्ध सत्यो' के बारे में उनके मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया।

"हमारे गणतन्त्र के जन्म के समय, मैने 'वर्जिनिया पर टिप्पणियाँ' (नोट्स ऑन वर्जिनिया) के साथ सलग्न एक सविधान के मसौदे में अपनी वह राय दुनिया के सामने रखी थी जिसमें स्थायी रूप से समान प्रतिनिधित्व की व्यवस्था थी। उस समय इस विषय पर विचार का आरम्भकाल था और स्वशासन में हम अनुभव हीन थे, जिसके फलस्वरूप वास्तविक गणतान्त्रिक सिद्धान्तो से वह मसौदा कई मामलो में वहुत दूर चला गया। वस्तुत. राजतन्त्र के दुर्गुणो का प्रश्न राजनीतिक विचार-विमर्श पर इस हद तक छा गया था कि हम मान बैठे कि जो कुछ भी राजतन्त्र नही है, वह गणतान्त्रिक है। हम इस मूल सिद्धान्त तक नही पहुँचे थे कि 'सरकारे केवल उसी अनुपात मे गणतान्त्रिक होती है जिस सीमा तक वे अपने राष्ट्र के सकल्प को मूर्त्त करती और उसे कार्यान्वित करती हैं।' अतः हमारे प्रथम संविधानो मे वस्तुत कोई निर्देशक सिद्धान्त नही थे। किन्तु अनुभव और विचार ने उस समय प्रस्तावित समान प्रतिनिधित्व के विशिष्ट महत्व की मेरी धारणा को अधिकाधिक दृढ बनाया है। हमारा गणतन्त्रवाद फिर मिलेगा कहाँ ? निश्चय ही हमारे सविधान में नही, वरन् केवल हमारे लोगो की भावना में। . गणतान्त्रिक शासन की असली नीव अपने व्यक्तित्व और सम्पत्ति मे, और उनके प्रवन्ध मे हर नागरिक के समान अधिकार मे है। हमारे सविधान की हर व्यवस्था को इस कसौटी पर परखें और देखें कि क्या वह प्रत्यक्ष रूप मे जनता के सकल्प पर आधारित है।[१]

यद्यपि जेफरसन यहाँ स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के केन्द्र में निर्वैयक्तिक तर्क द्वारा शासन के स्थान पर जनेच्छा द्वारा शासन को ले आते हैं, किन्तु उनका अव भी यह विश्वास है कि जनता पर भरोसा इसी कारण किया जा सकता है कि गुट-हितो के समक्ष स्वय अपने हितो के बारे मे जनता युक्तिपूर्ण निर्णय कर सकती है।

---

२७ जान डुई द्वारा सम्पादित 'दी लिविंग थाट्स आफ् थॉमस जेफरसन' में पेरेग्रिन फिट्जह्यू को पत्र, २३ फ़रवरी, १७६८ (न्यूयार्क, १६४०), पृष्ठ ५८-५६।

धार्मिक स्वतन्त्रता

जब १६४८ मे रोजर विलियम्स ने कहा कि 'यहूदी या ईसाइयो की भिन्न और विरोधी अन्तरात्माओ की उपस्थिति के बावजूद, किसी देश या राज्य मे नागरिकता और ईसाइयत दोनो ही पनप सकते है' तो बहुत कम लोगो ने उनके विचार को औचित्यपूर्ण माना था। उनकी समकालीन अधिकाश अन्तरात्माओ के लिए, वस्तुत नागरिकता और धर्म का अलगाव एक अविचारणीय बात थी। इसके पहले कि ऐसा अलगाव अन्तरात्माओ को स्वीकार हो सके, राजनीति और धर्म दोनो मे ही मौलिक परिवर्त्तन होते थे। प्रवुद्धता के काल मे ये परिवर्त्तन हुए। विलियम्स के एक तर्क को इन परिवर्त्तनो की पूर्वछाया के रूप मे देखा जा सकता है।

"धर्मसगठन (चर्च) या पूजको का समूह (चाहे सच्चे हो या झूठे) किसी नगर मे चिकित्सको के समूह या सस्था की भाँति, पूर्व एशिया या तुर्की से व्यापार करने वालो के निगम, समाज या कम्पनी की भाँति, या लन्दन के किसी भी समाज या कम्पनी की भाँति हैं। ये कम्पनियाँ अपनी अदालतें लगा सकती हैं, अपने अभिलेख रख सकती है, अपने झगडे चला सकती है। अपने सगठन से सम्बन्धित मामलो मे, इनमें असहमतियाँ और विभाजन हो सकते है, गुट और दल बन सकते हैं, कानून के अनुसार ये एक-दूसरे पर मुकदमे चला सकती है, पूरी तरह टूट कर खण्ड-खण्ड हो सकती या लुप्त हो जा सकती है, फिर भी इससे नगर की शाँति में कोई उथल-पुथल या क्षति नही होगी, क्योकि नगर का सार-तत्व या अस्तित्व और इस कारण उसकी भलाई और शान्ति इन समाजो से मूलत भिन्न है।"[1]

'नगर' और धर्मसगठन की इस 'मूल-भिन्नता' का एहसास धीरे-धीरे और अप्रत्यक्ष रूप मे ही हुआ है। कोई शुद्धतावादी यह स्वीकार नही कर सकता था कि भौतिक और शाश्वत शान्ति ही विचार-क्षेत्र मे अलग-अलग किया जा सकता है। न ही वह धर्मसगठन को एक निजी समूह के रूप मे देख सकता था, जो राज्य की भलाई के लिए आवश्यक नही था। दो तत्वो के फलस्वरूप यह अलगाव सम्भव हो सका—(१) राजनीतिक नैतिकता और अन्तरात्मा के धर्म-

---

१. पाल रसेल ऐन्डरसन और मैक्स हैरोल्ड फिश द्वारा सम्पादित 'फिलासफी इन अमेरिका' मे उद्धृत 'दी ब्लडी टेनेन्ट ऑफ परसीक्यूशन' (न्यूयार्क १६३६), पृष्ठ २५।

निरपेक्ष आधारो का विकास, और (२) पवित्रतावाद और धर्मसन्देशवादी सम्प्रदायो के माध्यम से धार्मिक व्यक्तिवाद का उदय, जिनकी रुचियो का क्षेत्र अराजनीतिक था। अठारहवी शताब्दी मे नागरिक शान्ति के सिद्धान्त 'उद्धार के अर्थतन्त्र' से स्वतन्त्र हो गये। दूसरी ओर मुक्ति का पवित्रतावादी लक्ष्य व्यवहार मे पृथ्वी पर सुख के लक्ष्य से भिन्न था। अठारहवी शताब्दी के अन्त तक लोक-राजनीति और लोकधर्म की अन्तवस्तु इतनी भिन्न हो गयी कि जेम्स मैडिसन की रचना 'मेमोरियल ऐण्ड रिमान्सट्रेन्स ऑन दी रेलिजस राइट्स आफ मैन' (मनुष्य के धार्मिक अधिकारो पर स्मृति-पत्र और प्रतिवाद, १७८५) और जेफरसन का प्रसिद्ध 'ऐक्ट एस्टैब्लिशिंग रेलिजस फ्रीडम इन वर्जिनिया' (वर्जिनिया मे धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा का कानून, १७८६) उतने विवादास्पद नही थे जितने वे रोजर विलियम्स के काल मे होते।

"हर व्यक्ति के धर्म को हर व्यक्ति के विश्वास और अन्तरात्मा पर छोड़ देना चाहिए। और यह हर व्यक्ति का अधिकार है कि वह इनके निर्देशो के अनुसार धर्म पर आचरण करे। यह अपरिवर्त्तनीय अधिकार है, क्योकि केवल स्वय अपने दिमागो मे विचारित प्रमाणो पर आधारित मनुष्यो के मत, दूसरे मनुष्यो के आदेशो के अनुसार नही चल सकते। यह इसलिए भी बदला नही जा सकता कि यहाँ जो मनुष्यो का अधिकार है, वह सृजनकर्ता के प्रति एक कर्त्तव्य है। यह हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह सृजनकर्ता को ऐसी और केवल ऐसी श्रद्धा अर्पित करे जो उसके विश्वास के अनुसार सृजनकर्ता को स्वीकार्य हो। कालक्रम मे और कर्त्तव्य की गुरुता मे, इस कर्त्तव्य का स्थान नागरिक समाज की माँगो के पहले है। नागरिक समाज का सदस्य माना जाने के पहले, हर मनुष्य को सृष्टि के शासनकर्ता की प्रजा मानना होगा। और अगर नागरिक समाज का कोई सदस्य सामान्य सत्ता के प्रति अपने कर्त्तव्य को ध्यान मे कर ही किसी अधीन सगठन मे शामिल हो सकता है, तो इससे भी कही अधिक, किसी नागरिक समाज का सदस्य बनने वाले हर मनुष्य को, 'सार्वभौमिक प्रभु के प्रति अपनी भक्ति को सुरक्षित रखकर ही' ऐसा करना चाहिए।"[1]

"हमारे नागरिक अधिकार हमारे धार्मिक मतो पर निर्भर नही है, जैसे वे भौतिकी या रेखागणित सम्बन्धी हमारे मतो पर निर्भर नही।...नागरिक शासन के उचित उद्देश्यो के लिए, उसके अधिकारियो द्वारा हस्तक्षेप का ठीक समय तभी होगा जब कोई सिद्धान्त शान्ति और सुव्यवस्था के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्यो का रूप

---

१. बर्नार्ड स्मिथ द्वारा सम्पादित 'दी डेमाक्रैटिक स्पिरिट (न्यूयार्क, १९४१) मे उद्धृत, पृष्ठ १०४।

ले और अन्त मे यह कि सत्य महान् है और अपने-आप विजयी हो जायेगा, कि वह भ्रम का उचित और पर्याप्त प्रतिरोधी है, और इस संघर्ष मे उसके लिए भय का कोई कारण नही, अगर मानवीय हस्तक्षेप उसे अपने प्राकृतिक अस्त्रो, स्वतन्त्र विवाद और बहस से वंचित नही कर देता। अगर भ्रमो का निर्बाध खण्डन करने का अवसर रहे, तो वे खतरनाक नही रह जाते।"[1]

मैडिसन और जेफरसन यहाँ तीन सूत्रो मे अपनी आस्था व्यक्त करते हैं—कि नागरिक अधिकार धर्म-निरपेक्ष होते हैं, कि धर्म की सर्वाधिक अभिवृद्धि स्वतन्त्रता में होती है, कि सत्य की विजय होगी। वे पूर्ण निष्ठा और बुद्धि के साथ धार्मिक और राजनीतिक दोनो प्रकार की संस्थाओ को 'पागल कल्पनाओ के प्रलाप' और निरंकुश सत्ताओ से मुक्त करने मे विश्वास करते थे।

एक एकत्ववादी[2] पादरी को जिन्हे मालूम था कि वे एकत्ववादी सिद्धान्त को मानते है, जेफरसन ने मूलत यही बात लिखी।

"आपने-अपनी प्रश्नोत्तरी मे दी हुई सिद्धान्त सम्बन्धी बातो पर मेरी राय पूछी है। मैने कभी किसी विशिष्ट पन्थ तक सीमित विचार अपने लिए स्वीकार नही किया। ये सूत्र ईसाई धर्म का अभिशाप और उसके विनाश का कारण रहे हैं। स्वय ईसाई धर्मसंगठन की सन्तान, इन्होने कितने ही युगो से ईसाई-क्षेत्र को कसाईखाना बना रखा है, और आज भी उसे एक-दूसरे के प्रति न मिटने वाली घृणा रखने वाले स्थिर समूहो मे बाँट रखा है। एकत्ववादी पन्थ के प्रति अन्य सभी पन्थो का आत्मघाती क्रोध ही देख लें। प्राचीन धर्मों में कोई विशिष्ट सूत्र या पन्थ नही थे। आधुनिक विश्व के धर्मों मे भी किसी मे ऐसा नही है, सिवाय उनके जो अपने को ईसाई धर्मावलम्बी कहते है और ईसाईयो में भी क्वेकर लोगो मे ऐसा नही है। यही कारण है कि अनुकरणीय और भेदभावहीन 'मित्र-समाज' (क्वेकर सम्प्रदाय का असली नाम—अनु०) में ऐसा मेलजोल, शान्ति और भाई-चारे का स्नेह है। मै आशा करता हूँ कि एकत्ववादी उनके सुखद उदाहरण का अनुसरण करेंगे।"[3]

---

१. ऐन्डरसन और फिश द्वारा सम्पादित 'फिलासफी इन अमेरिका' में उद्धृत, पृष्ठ १६७-१६८।

२. पिता (ईश्वर) पुत्र (ईसा) और पवित्र आत्मा की त्रिमूर्त्ति के सिद्धान्त के विरुद्ध, ईश्वर के एकत्व में विश्वास करने वाला ईसाई सम्प्रदाय। अनु०

३. एल्बर्ट एलेरी बर्ग द्वारा सम्पादित 'दी राइटिंग्ज आफ थॉमस जेफरसन' (वाशिंगटन, १६०३) में रेवरेन्ड थॉमस व्हिटेमोर को पत्र, खण्ड पन्द्रह, पृष्ठ ३७३-३७४।

जिन कारणो से वे स्वयं धार्मिक विषयो पर अपना मत व्यक्त नही करते थे, उन्ही कारणो से वे आशा करते थे कि पादरी अपने उपदेशो से राजनीति को अलग रखेंगे।

"किसी भी गिरजा-क्षेत्र का एक भी उदाहरण ऐसा नही है कि धर्मपीठ से रसायन, औषधि, कानून, शासन के विज्ञान और सिद्धान्त, या केवल मात्र धर्म को छोड़कर अन्य किसी विषय पर भाषण देने के निश्चित उद्देश्य से किसी धर्मोपदेशक की नियुक्ति की गयी हो। अत. जब धर्मोपदेशक धर्म के पाठ के बजाय कोपरनिक्स के सिद्धान्त, रासायनिक बन्धुता, शासन रचना या शासनकर्ताओ के चरित्र या व्यवहार पर भाषण देकर अपने श्रोताओ को टालते है, तो वे अनुबन्ध के विरुद्ध काम करते हैं। वे अपने श्रोताओ को उस सेवा से वंचित करते हैं, जिसके लिए उन्हे वेतन मिलता है, और उसके स्थान पर ऐसी चीज़ देते है, जिसे श्रोता नही चाहते, या अगर चाहते भी है तो उस विशिष्ट कला या विज्ञान के बेहतर स्रोतो से प्राप्त करना ज्यादा पसन्द करेंगे। अपना पादरी चुनते समय हम उसकी धार्मिक योग्यता को देखते है, उसके भौतिक शास्त्र या राजनीति सम्बन्धी विश्वासो की जाँच नही करते, जिनसे कोई सम्बन्ध रखने का हमारा इरादा नही होता। मैं जानता हूँ कि ऐसे तर्क खोजे जा सकते है जो राजनीति के एक सूत्र को बट कर धार्मिक कर्त्तव्यो की डोर मे बदल दें। . मै इससे सहमत हूँ कि अन्य सभी अवसरो पर धर्मोपदेशक को भी हर अन्य नागरिक की भाँति यह अधिकार है कि वह लिख कर या बोल कर औषधि, कानून, राजनीति आदि विषयो पर अपनी भावनाएँ प्रकट करे, क्योकि अपने अवकाश के समय पर उसका पूरा अधिकार है और उसके गिरजा-क्षेत्र के निवासियो के लिए ज़रूरी नही कि वे उसकी बात सुनें या उसकी रचनाएँ पढें।"[1]

जेफरसन के इस धार्मिक विश्वास को कि धार्मिक विश्वास निजी रहने चाहिए, अधिकाश उन परिस्थितियो से समझा जा सकता है जिनकी चर्चा मैने ऊपर की है, लेकिन इसके मूल में दो साहित्यिक प्रभाव भी देखे जा सकते हैं। स्वय जेफरसन के अनुसार उनके धार्मिक विचारो को जोसेफ प्रीस्टले और कान्यर्स मिडिल्टन ने सर्वाधिक प्रभावित किया। ये दोनो पादरियो की शक्ति के विरोधी ऐंग्लिकन मतानुयायी थे। वे मानते थे कि पादरियो की शक्ति और धर्मशास्त्रीय विवादो के बढने से ईसाई-धर्म भ्रष्ट होता था। ये ईसा के 'सीधे-सादे' उपदेशो में निजी धार्मिक रुचि लेते थे। ये असाधारण रूप मे उदार विचारो के

---

१. बग की पुस्तक मे पी० एच० वेन्डोवर के नाम पत्र, १३ मार्च, १८१५, जिस पर लिखा है, 'भेजा नहीं गया।' खण्ड तेरह, पृष्ठ २८१-२८२।

पादरी थे जिन्हे उत्पीडिन सहना पडा और जो निजी रूप मे 'नरभक्षी पादरियो' के प्रति वडे कटु हो गये । फिर भी, उनकी धार्मिक निष्ठा सच्ची थी ।

धार्मिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी जेफ़रसन के लेखन की शक्ति और प्रभावकारिता का मुख्य कारण उनकी स्पष्ट धार्मिक निष्ठा है । प्रवुद्धता-काल के विशिष्ट दार्शनिको के विपरीत, उन्हे व्यग्य प्रिय नही था । वेंजामिन फ्रैंकलिन ने युवावस्था मे सशयपूर्ण व्यग्य को अपनाया था, लेकिन वाद मे उसका पूर्ण परित्याग करके अपनी धर्म-निरपेक्ष 'सद्गुण की कला' की लक्ष्य-प्राप्ति में लगे । जेफरसन की प्रवुद्धता, नैतिक नियमो सम्वन्धी फ्रैंकलिन की गम्भीर चिन्ता से किमी प्रकार कम नही थी, किन्तु उनकी नैतिकता स्पष्टत: धार्मिक थी । वे स्काटलैंड के अन्त.प्रज्ञावादियो से सहमत थे । मोटेतौर पर वे अन्त प्रज्ञावादियो की नैतिक भावना को, और तर्कबुद्धि व सरल समझ को एक ही मानते थे । लेकिन ईसा के उपदेशो से एकात्मकता प्राप्त करना उन्हें सर्वाधिक प्रिय था । 'अन्य सभी व्यवस्थाओ की तुलना में ईसा की व्यवस्था की विशिष्ट उच्चता' के प्रति उनकी श्रद्धा उनके धर्म-दर्शन और उनके चरित्र के मूल में थी ।

उदार धर्म

इस बीच मे प्रवुद्धता अपने साथ एक ऐसे धर्म को ला रही थी जो जेफरसन की धार्मिकता या जनप्रिय धर्म-सगठनो के पवित्रतावाद से अधिक 'सासारिक' था । यह एक दार्शनिक, सार्वजनिक धर्म था जिसने प्रजाधिपत्य के रूप मे शुद्धतावाद का स्थान लिया । यद्यपि धार्मिक उदारवाद की जडें न्यू-इगलैंड के इतिहास में सुदूर अतीत तक जाती थीं, और उपनिवेशकाल में उसकी वढती हुई समृद्धि को परिलक्षित करती थी, किन्तु पादरियो की ओर से शुद्धतावाद के खुले आम परित्याग का आरम्भ क्रान्ति के वाद हुआ । वेस्ट चर्च, वोस्टन के जोनाथन मेह्यू का झुकाव ईश्वरवाद और एरियनवाद[1] की ओर था । १७८२ के वाद वोस्टन का किंग्ज चैपेल आर्मिनियनवाद[2] का केन्द्र वन गया, जव उसने

---

१. एरियन—ईसा की चौथी शताब्दी मे हुआ अलेक्जेन्ड्रियावासी दार्शनिक जिमसे पवित्र भोजो में ईसा के सशरीर उपस्थित रहने की मान्यता का खण्डन किया ।—अनु०

२. आर्मिनियस—हालैन्डवासी प्रोटेस्टेन्ट धर्मशास्त्री जिन्होने काल्विन के पूर्वभाग्यनिश्चय के सिद्धान्त का विरोध किया ।—अनु०

खुले आम अपने को एकत्ववादी कहा और हार्वर्ड के जेम्स फ्रीमैन को अपना पादरी नियुक्त किया। फर्स्ट चर्च, बोस्टन के चार्ल्स चान्सी ने इस आशय का एक आशावादी उपदेश प्रस्तुत किया कि 'असीम कृपालु सृजनकर्त्ता' अपने हर प्राणी के सुख के प्रति चिन्तित है और यह कि उसके 'शासन' के प्रति असन्तोष सद्बुद्धि से नही वरन् 'दुर्बुद्धि की एक अवस्था' से उत्पन्न होता है। धीरे-धीरे, और १७८४ तक गुप्त रूप मे, वे यह विश्वास करने लगे कि ईश्वर अन्तत सभी पापियो को नरक से बचाएगा। उस वर्ष उन्होने साहस करके अपनी हलचल पैदा करने वाली पुस्तक 'दी साल्वेशन आफ आल मेन · दी ग्रान्ड थिंग एण्ड ऐट इन गाड्स स्कीम' (सभी मनुष्यो की मुक्ति ईश्वरीय व्यवस्था का महान् लक्ष्य प्रकाशित की। यह न्यू-इगलैंड मे मान्य सर्ववाद (यूनिवर्सलिज्म, का आरम्भ था। होसिया बैलो, जिन्होने सर्ववादियो और एकत्व-वादियो दोनो को प्रेरणा दी, अन्तत· इस परिणाम पर पहुँचे कि भविष्य के विश्व मे किसी प्रकार का कोई दण्ड नही होगा।

हार्वर्ड सहिष्णुतावादी विचारो का केन्द्र होने के लिए बदनाम था। किन्तु प्रारम्भिक उदारवादियो मे सर्वाधिक आकर्षक व्यक्तित्व ईस्ट चर्च, सेलम के पादरी रेवरेन्ड विलियम बेन्टले (१७५९-१८१९) का था। उनके गिरजा-क्षेत्र मे बहुसख्यक सामुद्रिक व्यापारी और तेज चलने वाले जहाजो के मालिक थे जो पूर्व के देशो से आश्चर्यजनक समाचार लाते थे। पादरी और जेफरसन के समर्थक गणतन्त्रवादी होने के अतिरिक्त, बेन्टले एक समाचार-पत्र के सम्पादक भी थे। उनके उपदेशो का साराश कुछ इस प्रकार होगा—

"किन अच्छे उद्देश्यो के लिए ईसाईयो ने प्राकृतिक धर्म की निन्दा करके स्वय अपने धर्म की जड़ो को हिलाया है, इसका निश्चय करना कठिन है। प्राकृतिक धर्म अब भी सर्वश्रेष्ठ धर्म है।"—"अपने पन्थ से भिन्न मत रखने वाले चर्चों की पादरियो द्वारा धर्मपीठ से की गयी निन्दा की अपेक्षा किसी जंगली आदमी की उदारता कितनी अधिक शुद्ध होती है।" ईश्वर ने इजराएलियो यहूदियो) की सहायता की ताकि एक सर्वव्यापी धर्म के प्रचार मे वह उनका उपयोग कर सके, और यद्यपि मुसलमान और यहूदी विस्तार की बातो मे गलती पर हो सकते है, किन्तु उनकी भक्ति, उत्साह और आज्ञापालन, हम सब के पिता को निश्चय ही स्वीकार्य है। धर्म हमे सिखाता है कि हम "केवल छोटे समाजो के ही नही है बल्कि भक्तो के परिवार के है जो हर राष्ट्र और हर इलाके मे एक ही ईश्वर और परमपिता के साथ रहते है, जो अपनी बनाई किसी वस्तु से घृणा नही करता वरन् उससे प्रेम करता और उसे पोषण देता है।" प्राकृतिक धर्म के द्वारा ईश्वरेच्छा हमे ज्ञात होती है और ईसाई धर्म केवल हमे उसका अधिक ज्ञान और

आचरण प्राप्त करने मे सहायक होता है। ईश्वर प्रदत्त अन्तर्ज्ञान केवल एक सहायक के रूप में काम करता है, जब तक "विभिन्न कारण, बुद्धिपूर्वक कार्य रूप में आकर इस सहायता को आवश्यक न बना दें।...पुत्र स्वय (ईसा) भी तब हट जायेगा और मानव प्रकृति को दोषरहित करके, ईश्वर ही सब कुछ हो जायेगा।" "स्वर्ग और सुख को ईश्वर ने केवल विद्वान् पादरियो और चतुर डाक्टरो के लिए ही नही बनाया। ये ईश्वर द्वारा सारी मानव जाति के लिए प्रस्तावित लक्ष्य हैं और इस कारण समान साधनो के द्वारा सभी मनुष्य इन्हे प्राप्त कर सकते हैं।" "सुख केवल सद्गुणो का पुरस्कार नही है, वरन् वह लक्ष्य है जिसके लिए हम सबका सृजन हुआ है। बहुधा सासारिक परिस्थितियाँ तात्कालिक भलाई के लक्ष्य के अनुरूप नही प्रतीत होती, किन्तु ज्ञान के द्वारा ईश्वर के अपरिवर्तनीय विधानो के भी, कम से कम बुरे परिणामो से बचा जा सकता है। अत शिक्षा ही सर्वाधिक उपयोगिता और सुख की अभिवृद्धि करती है। अपने अन्दर सामाजिक सिद्धान्तो का विकास करके, मनुष्य बुराई पर, स्वय समाज की बुराइयो पर भी, काबू पाने के अन्य साधन खोज लेगा।"[1]

बोस्टन और उसके आस-पास के देशज, उच्च-वर्गीय उदारवाद की परिणति विलियम एलेरी चैनिंग मे हुई जो प्रबुद्धता और परात्परवाद के बीच के मोड़ पर खड़े थे। क्रान्तिकारी पीढी में तीन विभिन्न विचार-व्यवस्थाएँ, तीन ऐतिहासिक दृष्टि से भिन्न विश्वास पल रहे थे। अधिक उपयुक्त शब्दो के अभाव मे मैं उन्हे तर्कनावाद, पवित्रतावाद और गणतन्त्रवाद कहूँगा। चैनिंग इन तीनो विश्वासो के उत्तराधिकारी बने, सम्बन्धित प्रश्नो को समझा, सघर्ष को निकट से अनुभव किया और तीनो का समन्वय निरूपित करने की चेष्टा की। अत उनके मानवीयतावाद का अध्ययन अमरीकी प्रबुद्धता, शुद्धतावाद की विरासत, और धार्मिक पुनर्जीवन के भावनात्मक उत्साह के आदर्शों के मिलन-बिन्दु के रूप में करना उपयुक्त होगा। सब मिलाकर वे परात्परवाद के प्रवक्ता स्वेच्छा से नही बने, और जब उसकी दिशा का उन्हे धुँधला-सा आभास हुआ, तो उसके बहुताश से उन्हे अरुचि हो गयी, और जैसे कुछ खेद के साथ उनकी दृष्टि पुनः ईसाई-धर्म के श्रुत रूप की ओर गयी। किन्तु उनके साथ जो हुआ वह उपयुक्त ही था, क्योकि सिद्धान्त और आदत से चैनिंग आगे देखने वाले थे। उन्होने पवित्रतावाद, प्राकृतिक धर्म और गणतन्त्रवाद को उनके रूढ रूपो मे ही समन्वित करने का प्रयास नही

---

१. विलियम बेन्टले, 'सरमन प्रीच्ड ऐट स्टोन चैपेल' (बोस्टन १७६०)। यह सारांश जी०ए० कोश ने तैयार करके अपनी रचना 'रिपब्लिकन रेलिजन' में प्रकाशित किया (न्यूयार्क, १९३३), पृष्ठ २१४-२१७।

किया। यद्यपि उनके विचारो के गठन मे तीनो का ही प्रभाव था, किन्तु उन्होने तीनो को ही एक नयी, प्रेरक अभिव्यक्ति प्रदान की जिसके तीनो सिद्धान्त केवल अठारहवी शताब्दी की विरासत न रहकर, उन्नीसवी शताब्दी के निर्देशक सिद्धान्त बन गये। प्रवुद्धता की विरासत पर उनका इतना काफी अधिकार था कि वे उसे निर्विवाद स्वीकार कर लें और उससे उत्पन्न होने वाली व्यावहारिक समस्यओ को देखें। 'ईश्वर हमे कार्यशीलता, लक्ष्य-प्राप्ति के प्रयास और कौशल के लिए बनाता है। ऐसा कार्य जिसके मूल मे ईश्वर हो, और उसकी कृपा की चेतना जिसमें उपस्थिति हो, आनन्द का सर्वोच्च स्रोत है।'[1] उन्होने पूर्णत: व्यावहारिक धर्म को एक पर्याप्त सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया।

चैनिंग के प्रारम्भिक जीवन और विचारो पर पवित्रतावादी वातावरण का प्रभुत्व था। एक किंवदन्ती चल पडी है, जिसे चैनिंग ने स्वय ही आरम्भ किया था कि धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम उन्हे अपने जन्म-स्थान, न्यू-पोर्ट, रोड आइलैण्ड में स्वभावत ही प्राप्त हो गया—ऐसा कह सकते है कि उन्हें यह रोजर विलियम्स से प्रत्यक्ष उत्तराधिकार में मिला। किन्तु उनके बचपन के न्यू-पोर्ट पर धर्मशास्त्रीय दृष्टि से, 'सगत काल्विनवाद' के समर्थक सैमुएल हॉपकिन्स का प्रभुत्व था। उनके अनुयायी उस समय भी हॉपकिन्सवादी कहलाते थे और उनका यह विश्वास कि उनकी विचार-व्यवस्था ही एकमात्र सच्चा धर्म है, इतना सवल था कि उससे सकीर्ण कट्टरता और असहिष्णुता उत्पन्न हुई। चैनिग लिखते हैं: 'डॉक्टर हापकिन्स के साथ मेरा लगाव मुख्यत उनके उदासीनता के सिद्धान्त के कारण था। छात्र जीवन मे मैंने वडे आनन्द से हचेसन के दर्शन और स्टॉइक[2] नैतिकता का अध्ययन किया था और उन्होने मुझे डॉक्टर हॉपकिन्स के महान्, आत्म-वलिदानी सिद्धान्तो के लिए तैयार कर दिया था।[3] वे हॉपकिन्स की ओर निराशा

---

१. विलियम हैनरी चैनिंग, 'मेम्वायर आफ विलियम एलेरी चैनिंग' (वोस्टन, १८४८) खंड १, पृष्ठ १८६।

२. स्टॉइक-यूनानी दार्शनिक जीनो (चौथी सदी ईसा पूर्व) के अनुयायी, मुख्यत संयमवादी और हर्ष-शोक के प्रति समान भाव का उपदेश देने वाले।—अनु०

३. विलियम हेनरी चैनिंग की पुस्तक, खड १, पृष्ठ १२७। सेलम के ऑनरेविल डी० ए० व्हाइट की टिप्पणी से तुलना कीजिए, जो कॉलेज में चैनिग से एक कक्षा आगे थे और उन्हे अच्छी तरह जानते थे। उम समय के आसपास, जव उन्होने धर्मोपदेश देना आरम्भ किया, वे डॉक्टर हॉपकिन्स के वारे में, मित्र और धर्मशास्त्री दोनो ही रूपो में, स्नेहपूर्ण आदर के साथ वात करते थे। उनके चरित्र और धार्मिक विचार, दोनो की ही प्रमुख विशिष्टता जो उदारता

के अन्धेरे मे नही मुडे, वरन् समझने के कारण कि वृद्ध धर्मशास्त्री के कटु और विवादप्रिय होने पर भी, उनकी विचार-व्यवस्था न्यू-इगलैण्ड का सबसे 'महान्' और प्रवुद्ध दर्शन थी। प्लेटोवादी नैतिक दर्शन और प्राकृतिक धर्म के साथ काल्विनवाद का मेल बिठाने मे हॉपकिन्स के साहस की ओर चैनिंग ने संकेत किया। पवित्रता के विशिष्ट गुण का पवित्रतावादी सिद्धान्त और ईश्वरीय तत्व के प्रति भावना या बोध का पवित्रतावादी विकास, ये अन्त तक चैनिंग के विचार के मुख्य विषय रहे। इसके कारण सिद्धान्तरूढ एकत्ववाद उन्हे अप्रिय हो गया। यद्यपि एकत्ववादी आन्दोलन के अधिकारो और स्वतन्त्रता के लिए खतरा उत्पन्न होने पर उन्होने उसका बचाव किया, किन्तु अपने को एकत्ववादी न कहना या ऐतिहासिक ईसाई सिद्धान्तो सम्बन्धी विवादो मे न पडना उन्होने अधिक उचित समझा। सकीर्णता अप्रिय होने से अधिक, यह उनके 'नव-ज्योति' धर्मसंदेशवाद के कारण था। इस प्रकार चैनिंग ने अपना प्लेटोवादी आदर्शवाद, काल्विनवादी पवित्रतावाद के माध्यम से प्राप्त किया और कोलरिज, कान्ट और परात्परवाद के सामान्य विकास की जानकारी होने के पहले ही, उनकी प्रतिक्रिया लॉक के अनुभववाद और तर्कनावाद के विरुद्ध हुई थी।

चैनिंग के विचारो मे सामान्य सूत्र उनका उदारवाद या गणतन्त्रवाद था। गणतन्त्रवाद से मेरा तात्पर्य उनकी नागरिक या सामाजिक सद्गुण सम्बन्धी धारणा से है। हार्वर्ड में उन्हे एडिनबरा की प्रबुद्धता का परिचय मिला। चैनिंग पर प्रोफेसर टप्पन का प्रभाव पड़ा, जिन पर स्वय हचेसन का और सामान्यत नैतिक उदारवाद का निश्चयात्मक प्रभाव था। उनका उपदेश इस प्रकार था—"ईसाई देशभक्ति सामान्य उदारता के अतिरिक्त और कुछ नही है। यह उदारता मानव जाति के उस अश को विशिष्ट सवेदना और सक्रिय शक्ति के साथ अपने मे समेटती है, जिनके लिए उपयोगी होने की क्षमता हममे मुख्य रूप से है।"[१] प्रोफेसर टप्पन, और सामान्यत. हार्वर्ड के माध्यम से चैनिंग ने हचेसन को और अन्य स्कॉटलैण्डवासी उदारवादियो को जाना। जिस प्रकार हचेसन से चैनिंग ने यह जाना कि पवित्रता मनुष्य की एक स्वाभाविक क्षमता हो सकती है, उसी प्रकार

थी, उस पर विशेष जोर देकर वे विशेष रूप से कहते कि, "जो लोग हॉपकिन्स-वादी कहे जाते हैं वे उनके बारे में या उनके सच्चे धर्मशास्त्रीय विचारो के बारे में बहुत कम जानते प्रतीत होते हैं।"—(वही, खंड १, पृष्ठ १६१)।

१. डेविड टप्पन, 'सरमन आन दी ऐनुअल फास्ट इन मसाचुसेट्स', ५ अप्रैल, १७९८, (बोस्टन, १७९८) पृष्ठ १३।

फर्गुसन[1] ने उनके सामने यह विचार प्रस्तुत किया कि पुनर्जीवन एक क्रमिक और सामाजिक प्रक्रिया है। फर्गुसन की उग्र धर्म-निरपेक्षता की अपेक्षा, हचेसन और फर्गुसन का एक मेल चैनिग के अधिक अनुकूल था जो उन्हे अग्रेज उदारवादी और रूढिविरोधी रिचार्ड प्राइस के 'डिसर्टेशन्स' (निबध) में मिला। अमरीकी स्वतन्त्रता का समर्थन करने के कारण इस देश में उनके बहुतेरे मित्र बन गये थे। चैनिग ने लिखा—

"प्राइस ने मुझे लॉक के दर्शन से बचाया। उनसे मैंने विचारो का प्लेटोवादी सिद्धान्त पाया, और उन्ही की भाँति मै अधिकार, प्रेम, विचार जैसे शब्दो को हमेशा बडे अक्षरो से आरम्भ करता हूँ। उनकी पुस्तक ने सभवत मेरे दर्शन को वह रूपाकार प्रदान किया जो उसमे हमेशा रहा है, और मेरे दिमाग को 'परात्परवादी गभीरता' तक पहुँचने के योग्य बनाया। मैडम डी स्टेल की रचनाओ में और इधर हाल की रचनाओ में भी, जर्मन दर्शन के जो विवरण मैने पढे है, वे मेरे अपने दर्शन के समान है। मै नही कह सकता कि मैंने कभी उससे कोई नया विचार ग्रहण किया। इसका कारण भी स्पष्ट हो जाता है, अगर हम देखे कि प्राइस 'उसके' भी जनक थे, और 'मेरे' दर्शन के भी।"[2]

अगर चैनिग का सामाजिक प्रगति का दर्शन इसके आगे न जाता, तो वे न्यू-इगलैड के आदर्शवादियो के एक प्रतिरूप बन कर रह जाते, किन्तु स्नातकीय उपाधि लेने के तत्काल बाद परिस्थितियाँ उन्हे रिचमान्ड, वर्जिनिया के जेफ़रसन-वादी अभिजात्य-वर्ग के बीच ले गयी। लगभग दो वर्ष तक (१७९८-१८००), (दो निर्णायक वर्ष) वे एक रैन्डॉल्फ परिवार मे निजी शिक्षक के रूप मे रहे। जो कुछ वे सीख रहे थे, उसके बारे में अपनी विशिष्ट उत्साहपूर्ण रीति से उन्होने घर पर अपने मित्रो को लिखा—

"आपसे जब मिला था उसके बाद मेरे राजनीतिक मत कुछ बदल गये है। किन्तु वर्जिनिया के जैकोबिन[3] वातावरण में इसका कारण देखना अनुचित होगा। ...मै ससार को एक विशाल कार्य-क्षेत्र के रूप मे देखता हूँ जो उसके

---

१. आडम फर्गुसन, 'ऐन एसे आन दी हिस्टरी ऑफ सिविल सोसायटी' (एडिनबरा, १७६७)।

२ एलिज़ाबेथ पामर पीबाडी, 'रेमिनिसेन्सेज ऑफ रेवरेन्ड विलियम एलेरी चैनिग डी० डी०' (बोस्टन, १८८०), पृष्ठ ३६८।

३ जैकाबिन—अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे पेरिस में निर्मित एक उग्र लोकतन्त्रवादी सस्था के सदस्य। आमतौर पर सभी उग्र लोक-तन्त्रवादियो के लिए प्रयुक्त।—अनु०

निर्माता ने मानव-चरित्र को पूर्ण बनाने के उद्देश्य से निर्मित किया है। राजनीतिक सस्थाएँ केवल वही तक मूल्यवान् हैं, जहाँ तक वे मानव-प्रकृति को सुधारती और नैतिक दृष्टि से ऊँचा उठाती हैं। धन और शक्ति गौण तत्व हैं और किसी राज्य की वास्तविक महानता उनमें नही होती। मुझे मानवजाति के लिए शर्म आती है, जब मै देखता हूँ कि एक मात्र स्वार्थ का ही बन्धन उन्हे अपने देश से जोडता है, जब मै देखता हूँ कि सामाजिक गठन के विकास का उद्देश्य धन-सग्रह के अतिरिक्त और कुछ नही है और किसी राष्ट्र की सफलता उसके सदस्यो के सफल लोभ से आँकी जाती है। मै 'देश-भक्ति' को ऊँचा उठा कर एक नैतिक 'सिद्धान्त' के रूप मे देखना चाहता हूँ, लोभ की एक शाखा के रूप में नही।"[1]

"मेरे दोस्त, पिछले दिनो मानव जाति के सुधार में हुई प्रगति की सभव स्थिति के बारे में मैंने साहसपूर्वक सोच-विचार किया है। मै अपनी सारी योजनाओ के मार्ग मे लोभ को बडी भारी बाधा पाता हूँ। और मुझे यह कहने मे कोई हिचक नही कि मानव जाति आज की अपेक्षा अधिक सुखी कभी नही हो सकती, जब तक कि सामुदायिक सम्पत्ति की प्रतिष्ठा न हो जाए।"[2]

"मुझे विश्वास हो गया है कि सद्गुण और उदारता मनुष्य के लिए 'स्वाभाविक' है। मुझे विश्वास है कि स्वार्थ और लोभ दो विचारो से उत्पन्न हुए हैं, जो सर्वत्र युवाजनो को सिखाए जाते हैं और बुजुर्ग जिन पर आचरण करते हैं —(१) कि 'समाज के हित से भिन्न हर व्यक्ति का एक हित होता है जिसे प्राप्त करने का वह प्रयास करे', और (२) कि 'दिमाग की अपेक्षा शरीर पर ध्यान देने की ज़रूरत ज्यादा है।"

"मेरा विश्वास है कि ये विचार झूठे हैं। और मेरा यह भी विश्वास है कि आप उन्हें कभी ख़तम नही कर सकते, जब तक कि आप मानव जाति को उन पर आचरण करना बन्द करने के लिए राज़ी नही कर लेते। अर्थात् जब तक आप उनको राज़ी नही कर लेते कि (१) सम्पत्ति की विभिन्नताओ को समाप्त कर दें (आप समझते ही होगे कि अन्यथा वे हितो की कथित विभिन्नताओ को हमेशा कायम रखेंगी) और अपनी मेहनत की पैदावार को स्वय अपने कोठों में भरने के बजाए एक सामान्य भडार में डाल दें, और (२) दिमाग की शक्तियो और उसकी गरिमा की चेतना उनमें सचमुच आये।"[3]

---

१ विलियम हेनरी चैनिग की पुस्तक, खड १, पृष्ठ ८६-८७।

२. वही, पृष्ठ १११।

३. वही, पृष्ठ ११२-११४।

"मेरी सारी भावनाएँ और रुचियाँ इधर बदल गयी है। पहले मै नैतिक उपलब्धियो को ही एक मात्र लक्ष्य मानता था जिनकी प्राप्ति का मुझे प्रयास करना था। अब मैने अपने को निष्ठापूर्वक ईश्वर को समर्पित कर दिया है। मैं उसके प्रति सर्वोच्च प्रेम को सर्वप्रथम कर्त्तव्य मानता हूँ और नैतिकता केवल धर्म के सशक्त मूल से निकली एक शाखा प्रतीत होती है। मै मानव जाति से प्रेम करता हूँ, क्योंकि वे ईश्वर की सन्तान है।"[1]

ऐसा लगता है कि चैनिंग 'स्काटलैण्ड से आये प्रवासियो की एक बस्ती में, जिनका मूल सिद्धान्त सामान्य सम्पत्ति था, पादरी के रूप मे सम्मिलित'[2] होने वाले ही थे, जब उनके सम्बन्धियो ने उन्हे वापस न्यू-इगलैंड बुला लिया। उनके राजनीतिक उत्साह ने उनका मत परिवर्तित करके उन्हे एक धार्मिक विश्वास प्रदान किया था और शरीरिक कष्ट-सहन सम्बन्धी उनकी कट्टरता ने उनका स्वास्थ्य चौपट करके उनके चेहरे को वह 'आध्यात्मिक' पीलापन प्रदान किया जिसके लिए वे प्रसिद्ध हुए। अब वे न तो देशभक्तिपूर्ण कर्त्तव्य-भावना से अपने को जनहित मे लगाने वाले धर्म-निरपेक्ष गणतन्त्रवादी थे, न धर्म-निरपेक्ष नैतिकता को तिरस्कार की दृष्टि से देखने वाले पवित्रतावादी। उन्होने मानवता के धर्म मे पवित्रता और कर्त्तव्य का समन्वय देखा।

उन्होने एक दार्शनिक प्रबन्ध की योजना बनाई, जिसे वे लिख नही पाये। उसका शीर्षक महत्वपूर्ण है, 'नैतिक, धार्मिक, और राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त'। लक्ष्य था नैतिकता, धर्म और राजनीति की एकता प्रदर्शित करना—अर्थात् पवित्रता, सद्गुण और गणतान्त्रिक देशभक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्त करना। इस प्रस्तावित रचना के लिए लिखी गयी भूमिका में उन्होने कहा—

"मनुष्य की सच्ची पूर्णता नैतिक विज्ञानो का महान् विचार है। अत मनुष्य की प्रकृति की परीक्षा करनी है, ताकि उसका केन्द्रीय नियम निर्धारित किया जा सके, और वह लक्ष्य निर्धारित किया जा सके जिसके लिए सभी धार्मिक और राजनीतिक सस्थाओ की स्थापना हो।... अतः मानव-प्रकृति सम्बन्धी उचित दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य को समझने मे विश्व के दैवी प्रशासन की कुजी है।"[3]

सारे प्रबुद्धता काल में मानव-प्रकृति सम्बन्धी आग्रह एक सुपरिचित विषय है, किन्तु लक्ष्य का महत्त्वपूर्ण अन्तर ध्यान देने योग्य है। लॉक का लक्ष्य

---

१. वही, पृष्ठ १२६-१२७।

२. वही, पृष्ठ ११६।

३. वही खड—२, पृष्ठ ४०३-४०४।

मानवीय समझ के मूल को खोजना था, ताकि उसकी प्राकृतिक सीमाओ को व्यक्त किया जा सके। चैनिग का लक्ष्य मानव-प्रकृति की पूर्णता को खोजना था, ताकि उसकी सभावनाओ को समझा जा सके। इन सम्भावनाओ को उन्होने साहसपूर्वक अपने प्रसिद्ध उपदेश 'ईश्वर से समरूपता' (लाइकनेस टू गाड) में घोषित किया, जो परात्परवाद के सर्वप्रथम अमरीकी निरूपणो मे से एक था।

इस लक्ष्य के लिए प्रयास करते हुए, चैनिग ने उन धारणाओ मे महत्वपूर्ण सशोधन किये जो उन्हे प्रवुद्ध-युग से प्राप्त हुई थी। 'तटस्थ उदारता' के विचार को बदल कर उन्होने 'विसरित दयाशीलता' का रूप दिया। एडवर्ड्स के अनुसार सच्ची उदारता की विशेपता उसका विशिष्ट लक्ष्य, अर्थात् सामान्य प्राणी होता है। इसके विपरीत, चैनिग के अनुसार सच्ची उदारता की विशेषता उसका सामाजिक विसरण है। प्रेम की इस सामाजिक और मानवीय धारणा मे, पवित्रतावाद के पवित्र-प्रेम, नैतिकतावादियो की उदासीनता या तटस्थता और गणतन्त्रवादियो के सार्वजनिक सद्गुण की धारणाओ का समन्वय था।[1] इस प्रकार ईश्वर का न्याय उसकी दया का ही एक रूप है। वह धीरे-धीरे पूर्णता प्राप्त करने में मनुष्य की सहायता करता है। मनुष्य के इस पुनर्जीवन या नैतिक प्रगति मे 'सामाजिक पुनर्जीवन' भी निहित है। यह भी धीरे-धीरे होगा और इस प्रकार सुधार या प्रगति से एकरूप है। फिर भी यह तथ्य कि चैनिग पुनर्जीवन की शब्दावली का प्रयोग करते रहे, केवल शाब्दिक मामला ही नही है, यह उनके टिकाऊ पवित्रतावाद का द्योतक है। किन्तु अब यह एक समाजीकृत पवित्रतावाद है।[2] पुनर्जीवन लाने वाले प्रसाद के माध्यम के रूप मे, विभिन्न

---

१ उन्होने लिखा, "मुझे आशंका है कि दैवी चरित्र सम्बन्धी चतुर मनुष्यो की बहुतेरी परिकल्पनाओ का प्रभाव ईश्वर को उस पैतृक कोमलता से वंचित करने का रहा है जो हृदय को स्पर्श करने के लिए सभी दृष्टिकोणो मे सर्वाधिक उपयुक्त रहा है। मुझे भय है कि बिना समझे बूझे हमने उसे इस दृष्टि से देखना सीख लिया है कि उसमें केवल एक सामान्य उदारता है।"—(वही, खंड १, पृष्ठ २५३)—"मैंने अनुभव किया, मैंने देखा कि ईश्वर अपनी 'पवित्र भावना', अपनी शक्ति, और ज्योति हर उस व्यक्ति को प्रदान करने को तत्पर है जो ईमानदारी से बुराई पर काबू पाने का प्रयास करता है, उस पूर्णता की ओर आगे बढने की चेष्टा करता है, जो एकमात्र स्वर्ग है।"—(वही, खड २, पृष्ठ ३४५)।

२ "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि काल के सकेत समाज से होने वाले एक व्यापक सशोधन की ओर इशारा करते हैं, जो इन सारभूत सत्य पर आधारित होगा और उसे व्यक्त करेगा कि सामाजिक गठन का मुख्य लक्ष्य वुद्धिपूर्ण और

चर्चों (सम्प्रदायो) को विशिष्ट 'समाजो' के रूप मे छोड़ कर चैनिंग सामान्य समाज की ओर मुडे। अपने सदस्यो का 'अनन्त पुनर्जीवन' समाज मात्र का कर्त्तव्य है। कभी-कभी चैनिंग बहुत कुछ किसी जेफरसन-समर्थक गणतन्त्रवादी की तरह, राजनीतिक सुधार की शब्दावली मे बोलते थे, किन्तु सब मिलाकर इस दिशा मे वे निराश हुए प्रतीत होते है। नैतिक उत्थान राजनीति के द्वारा नही हो सकता। १८२३ में यूरोप से वापस आने के बाद वे इस प्रश्न पर विशेषत स्पष्ट रूप से बोले—

"मै समाज के प्रति ऐसे दृष्टिकोण लेकर लौटा हूँ जिनमे श्रुत धर्म द्वारा विश्व के नैतिक नवीकरण की प्रकट सभावना मुझे ऐसा आनन्द देती है जैसा मुझे पहले कभी नही मिला। क्रान्तियो, राजनीतिक परिवर्तनो, हिसापूर्ण सघर्षो—सार्वजनिक व्यक्तियो या कार्यो—सक्षेप में, समाज के किसी भी वाह्य सशोधन से मै अधिकाधिक कम आशा करता हूँ। अगर मूल सिद्धान्त व्यक्तियो और राष्ट्रो के हृदय मे वही बना रहता है, तो भ्रष्ट सस्थाओ के स्थान पर अधिक नही तो उतनी ही भ्रष्ट अन्य सस्थाएँ आ जायेगी। एक मात्र उपाय नैतिक परिवर्तन मे हैं, जिसके लिए केवल मात्र ईसाइयत और उसकी सहचरी दैवी शक्ति ही पर्याप्त हैं।"[१]

"हम सब देखते है कि नागरिक स्वतन्त्रता के फलस्वरूप तत्काल वह सुधार और मानवीय प्रकृति का उत्थान नही हुआ जिसकी विश्वासपूर्वक अपेक्षा की गयी थी। न धार्मिक स्वतन्त्रता के ही वे सारे फल हुए है, जिनकी हमे आशा थी। फिर भी एक अच्छा काम हो रहा है। गुलामी और कट्टरता तथा सासारिकता का राज्य हमेशा नही रहेगा।"[२]

गुलामी, कट्टरता, और सासारिकता, क्रमश गणतन्त्रवाद, तर्कनावाद, और पवित्रतावाद के तीन शत्रु हैं। और इन्ही शत्रुओ के साथ सघर्ष करने मे चैनिंग का मानवीयतावाद पूर्ण निष्ठा के साथ लगा था। इस प्रकार चैनिंग के विचारो और सामान्यत. प्रबुद्धता की परिणति नैतिकता और मानव-प्रकृति को गरिमा-

---

नैतिक प्राणियो के रूप मे अपने सारे सदस्यो का उत्थान है। इसके अन्तर्गत हर व्यक्ति से अपेक्षा होगी कि वह इस लक्ष्य की प्राप्ति मे अपनी योग्यता के अनुसार योग दे। वर्तमान स्वार्थपूर्ण, असामाजिक व्यवस्था के स्थान पर ईसाइयत आयेगी और मेरी सच्ची इच्छा है कि इस सर्वश्रेष्ठ क्रान्ति को लाने मे हम पूरा भाग ले।"—(वही, खंड ३, पृष्ठ ३८)।

१. वही, खंड २, पृष्ठ २४६।

२. वही, खंड ४, पृष्ठ ३०८

मंडित करने मे हुई । प्रवुद्धता से परात्परवाद में सक्रमण यहाँ इतना सरल है कि उसे देख पाना कठिन है ।

स्वतन्त्र विचार

उग्र तर्कनावाद प्रवुद्धता के वामपक्ष की पराकाष्ठा थी जिसे धर्म सगठन से असम्बद्ध लोगो, आमतौर पर वकीलो या डाक्टरो ने, पादरियो और धर्म-सगठन की शक्ति के विरोध में प्रतिपादित किया । ब्लाउन्ट और कॉलिन्स, और बाद मे वाल्टेयर, वाल्ने और पेन की रचनाएँ, इस उग्र प्रकार के अमरीकी ईश्वरवाद का आदर्श थी और अमरीकी रचनाओ मे कोई वडी विशिष्ट या मौलिक बात नही है । इनमे सर्वप्रथम और सर्वाधिक आकर्षक व्यक्तित्व वरमॉन्ट के एथान ऐलेन का था । युवावस्था में वे एक स्वतन्त्र विचारो वाले चिकित्सक के प्रभाव मे आये और अग्रेजो की कैद में उन्होने 'अधर्मियो' की राय सुनी और पढी । उनकी रचना, 'रीज़न दी ओन्ली ओरेकिल आफ मैन' (तर्क-वुद्धि मनुष्य की एकमात्र आप्तवक्ता) १७८४ मे प्रकाशित हुई । इसमे उन्होने पादरियो के पाखण्ड, दिव्य-ज्ञान, चमत्कार, अधिकार द्वारा पुष्टि, और हर उस चीज़ की आलोचना की जो विशिष्ट रूप में ईसाई थी । वे न केवल ईश्वर और अनश्वरता में विश्वास करते थे, वरन् खास ईश्वरवादी रीति से उन्होने अपने विश्वासो का तार्किक औचित्य भी सिद्ध करने का प्रयास किया । उनके 'ओरेकिल' की अपेक्षा दार्शनिक दृष्टि से अधिक रोचक उनका अपेक्षाकृत अज्ञात 'एसे ऑन दी यूनिवर्सल प्लेनिट्यूड आफ वीइग ऐण्ड ऑन दी नेचर ऐण्ड इम्मार्टेलिटी आफ दी ह्यूमन सोल ऐण्ड इट्स एजेन्सी' (अस्तित्व की सार्वत्रिकपूर्णता, और मानव आत्मा की प्रकृति और अनश्वरता और उसके माध्यम पर निवन्ध) है । इसका निम्नलिखित अग यहाँ उद्धृत करने के योग्य है—

"शायद हम सृष्टि मे अपने आकार के सर्वाधिक स्वार्थी, सबसे पुराने और सबसे चतुर प्राणी समूह हैं । फिर भी, अस्तित्व की शृखला को पूर्ण करने के लिए, ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य नामक प्राणी की कडी का होना भी आवश्यक था, और चूँकि दैवी शासन के अन्तर्गत हमारा एक निश्चित अस्तित्व है, अत: अन्तत: हम इसमे असफल नही हो सकते कि न होने की अपेक्षा ज्यादा अच्छे हो ।"[1]

---

१. पाल रसेल ऐन्डरसन और मैक्स हैरोल्डफिश द्वारा सम्पादित 'फिलासफी इन अमेरिका' (न्यूयार्क, १६३६) पृष्ठ १६५ ।

इस निवन्ध मे एलेन एक उग्र ईश्वरवाद प्रतिपादित करते है। ईश्वर एक असीम बुद्धिपूर्ण पदार्थ हैं, जो विशिष्ट आध्यात्मिक पदार्थों या आत्माओ मे सर्व-व्याप्त रहता है। इसी प्रकार ये आत्माएँ भी 'असार नही' होती वरन् स्थानगत होती हैं।

एलेन की रचना से छोटी किन्तु अधिक सारगर्भित एलियू पामर की कृति 'प्रिन्सिपिल्स आफ नेचर' (प्रकृति के सिद्धान्त, १८०१) है, जो एक सगठित आन्दोलन के रूप मे स्वतन्त्र विचार की एक अभिव्यक्ति है। पामर तर्कनावाद के कुछ भ्रमणशील प्रचारको मे से एक थे। कई नगरो में वे 'तर्कबुद्धि के मन्दिर' या 'ईश्वरवादी समाज' (थीस्टिक सोसायटीज़) सगठित करने मे सहायक हुए (जिनमे न्यूयार्क का टैमनी हाल भी था)। 'थियोफिलान्थ्रपिस्ट' और 'दी टैम्पिल आफ रीजन' आन्दोलन की प्रतिनिधि पत्रिकाएँ थी, और पामर योग्यतम सम्पादको मे से थे। वे अटलांटिक तट के साथ-साथ भ्रमण करते हुए भाषण करते। 'प्रिन्सिपिल्स आफ नेचर' उनके भाषणो का एक संग्रह है।

'प्रकृति के सिद्धान्त' से पामर का तात्पर्य यह था कि गति के नियमो का निरूपण करते हुए आधुनिक वैज्ञानिको ने वस्तु में निहित ऊर्जाओ को और 'मानव प्रकृति की नैतिक ऊर्जाओ' को भी इस सीमा तक मुक्त कर दिया है कि प्राकृतिक 'बुद्धिशक्ति' शीघ्र ही कृत्रिम और दमनशील विश्वासो को नष्ट कर देगी। मनुष्य स्वभावत. निम्नलिखित सिद्धान्तो को अपना लेंगे—

१. कि सृष्टि एक सर्वोच्च ईश्वर का अस्तित्व घोषित करती है, जो बुद्धिपूर्ण प्राणियो की श्रद्धा के योग्य है।

२ कि मनुष्य ऐसे नैतिक और बौद्धिक गुणो का स्वामी है जो उसकी प्रकृति मे सुधार और सुख की उपलब्धि के लिए पर्याप्त हैं।

३. कि प्रकृति का धर्म एकमात्र सार्वत्रिक धर्म है, कि यह बुद्धिपूर्ण प्राणियो के नैतिक सम्बन्धो से विकसित होता है और मानव जाति की सामान्य भलाई और अधिकाधिक सुधार से सम्बद्ध है।

४. कि मनुष्य के सच्चे हित में यह आवश्यक है कि वह सत्य से प्रेम करे और सद्गुणो पर आचरण करे।

५. कि दुर्गुण सर्वत्र व्यक्ति और समाज के सुख के लिए विनाशकारी और घ्वसकारक होता है।

६ कि उदार स्वभाव और कल्याणकारी कार्य तर्कशील प्राणियो के मूल कर्त्तव्य हैं।

७. कि उत्पीडन और द्वेष मिश्रित किसी धर्म का मूल ईश्वरीय नहीं हो सकता।

८. कि शिक्षा और विज्ञान मनुष्य के सुख के लिए आवश्यक है।

९ कि नागरिक और धार्मिक स्वतन्त्रता उसके सच्चे हित मे उतनी ही आवश्यक है।

१०. कि धार्मिक मतो के सम्बन्ध मे मनुष्य उसकी आज्ञा का पालन करे, ऐसी कोई मानवी सत्ता नही हो सकती।

११ कि विज्ञान और सत्य, सद्गुण और सुख, वे महान् लक्ष्य है, जिनकी ओर मानवी मन'शक्तियो के कार्यकलाप और उनकी ऊर्जा को उन्मुख होना चाहिए।

"इस संघ में प्रविष्ट हर सदस्य, ईश्वरोत्पन्न होने का दावा करने वाली, अन्धविश्वास और कट्टरता की सभी योजनाओ के विरुद्ध, अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर उचित उपाय से प्रकृति और नैतिक सत्य के पक्ष का प्रसार करना अपना कर्त्तव्य समझेगा।"[1]

प्राकृतिक धर्म में इस विश्वास के आधार पर पामर ने अमरीकी क्रान्ति के द्वारा 'नागरिक विज्ञान' के नवीकरण की भविष्यवाणी की।

"यह नही माना जा सकता कि नागरिक विज्ञान के सिद्धान्तो मे प्रशिक्षित होने के बाद मनुष्य प्रकृति मे अपनी नैतिक स्थिति के सम्बन्ध में बहुत दिनो तक अज्ञ रहेगा। अमरीकी क्रान्ति द्वारा मनुष्य की नैतिक स्थिति का उतना ही मौलिक नवीकरण होगा जितना उनकी नागरिक स्थिति का। और निश्चय ही यह उतना ही आवश्यक और उतना ही महत्वपूर्ण है कि ऐसा हो। सभी विज्ञानो में नैतिकता का विज्ञान मनुष्य के सुख के लिए सर्वाधिक आवश्यक है। विचारशक्ति द्वारा जाग्रत होकर, अमरीकी क्रान्ति से प्रेरित होकर मनुष्य अपनी प्रकृति के सारे नैतिक सम्बन्धो की परीक्षा करना, स्वय अपनी नैतिक शक्तियो के प्रभावो की ठीक-ठीक नाप-जोख करना, अपनी रुचि और अपने हित के अनुकूल पायेगा।"[2]

यह ध्यान देने योग्य है कि लोक-तान्त्रिक आन्दोलन के 'बुद्धिजीवी', यहाँ तक कि टाम पेन जैसे वामपक्षी नेता भी, न अनीश्वरवादी थे, न मज़दूर नेता। वे अत्यधिक मध्यम-वर्गीय (बुर्जुआ) थे, और उनके लिए स्वतन्त्रता का अर्थ था व्यक्तिवादी धर्म और व्यक्तिवादी व्यापार-स्वतन्त्रता का मेल। ऐसे पादरियत-विरोधी, राजनीतिक अनुदारवादियो की सख्या काफी थी जो लोकतत्रवादी सगठनो

---

१ एलियू पामर, 'पॉस्थ्यूमस पीसेज' (न्यूयार्क, १८२४) पृष्ठ १०-११।

२ एलियू पामर, 'ऐन एन्क्वायरी रिलेटिव टु दी मॉरल ऐण्ड पोलिटिकल इम्प्रूवमेन्ट आफ दी ह्यूमन स्पीसीज़' (न्यूयार्क, १७९७) पृष्ठ २६-२७।

के सार्वजानिक कार्यों मे भाग नही लेते थे, किन्तु वाल्ते, गॉडविन और युरोपीय पादरियत-विरोधियो की रचनाओ के साथ-साथ इन सगठनो के सदस्यो की रचनाएँ भी पढते थे। इनके प्रतिनिधि रूप मे न्यूयार्क के चान्सलर जेम्स केन्ट, न्यूयार्क के नाटककार विलियम डनलप, एक ऐग्लिकन धर्म-विरोधी जार्ज वाशिंगटन, रोड आइलैण्ड के गवर्नर स्टीफेन हॉपकिन्स और दूसरो को लिया जा सकता है। ईसाइयत की आलोचना करते समय वे स्पष्ट करते कि उनका उद्देश्य मुख्यत: धार्मिक सस्थाओ और पादरियो के अन्य विशेषाधिकारो की आलोचना करना था। तदनुसार जोएल वार्लो ने अमरीकी प्रबुद्धता के महाकाव्य, अपनी 'कोलम्बियड' मे ईश्वरवाद की प्रशस्तियाँ गायी, लेकिन उन्हे आशा थी कि इस उदार धर्म का उपदेश स्वतन्त्र गिरजाघरो मे किया जाएगा। जेफरसन के अनुयायी गणतन्त्र-वादियो की भी राजनीति और अर्थनीति उग्र-लोकतान्त्रिक होने की अपेक्षा सामन्त-विरोधी और राजतन्त्र-विरोधी ही अधिक थी। जैकसन-युग मे जब मज़दूर नेताओ ने स्वतन्त्र-विचार की पत्रिकाओ और सगठनो पर कब्जा करने की कोशिश की, तो वे केवल नेताओ के एक छोटे से समूह को आकर्षित कर सके क्योकि इन सगठनो के सदस्य मज़दूर श्रेणियो मे से नहीं आते थे। समाजवाद की कौन कहे, गुलामी-विरोधी आन्दोलन जैसे उग्र सुधारो मे भी उनमे से बहुत कम ने सक्रिय भाग लिया।

प्राकृतिक दर्शन

तर्कबुद्धि का पन्थ चलाने वाले ये स्वतन्त्र-विचारक वास्तव मे प्राकृतिक दर्शन की अभिवृद्धि के भविष्यवक्ता थे। उनके धार्मिक उत्साह के समान ही प्रबुद्धता काल की धर्म-निरपेक्ष रचनात्मक शक्ति थी, जिसे अपना औचित्य और अपनी परिणति प्राकृतिक विज्ञानो की प्रगति में मिली। प्राकृतिक दर्शन से प्राकृतिक विज्ञानों का सक्रमण लगभग अलक्ष्य सा है, और उसे विज्ञानो का विघटन या अवकलन कहा जा सकता है।

एक व्यापक सहकारी प्रयास के रूप मे, प्राकृतिक दर्शन के सर्वव्यापी आदर्श का अमरीका मे प्रमुख व्यक्त रूप हमे 'अमरीकी दार्शनिक समाज' (अमेरिकन फिलासॉफिकल सोसायटी) में मिलता है, जिसका जन्म १७४३ में कैडवालाडर कोल्डेन, बेन्जामिन फ्रेंकलिन, डेविड रिटेनहाउस और अन्य कई वैज्ञानिको के सहयोग से हुआ। १७६९ मे फ्रेंकलिन ने 'दार्शनिक समाज' के सदस्यों को,

आधारित न भी हो, तो यही एक कारण पर्याप्त होगा कि हम इस पर विश्वास करें। यह अनिश्चित है कि इस शक्तिदायिनी प्रेरणा के स्थान पर मनुष्य जाति कब तक अन्य लक्ष्यो और खुशियो की प्राप्ति का प्रयास करती रहेगी। किन्तु हमे विश्वास है कि वह दिन कभी आयेगा जब समझ अपने वर्त्तमान निकृष्ट विषयो से ऊपर उठेगी और विकृत मनोवेग अपनी मूल स्थिति पर आ जाएँगे। मेरा विश्वास है कि मनुष्य के दिमाग में यह परिवर्त्तन ईसाई धर्म के प्रभाव द्वारा ही आयेगा, जब सभ्यता, दर्शन, स्वतन्त्रता और शासन द्वारा ये परिवर्त्तन लाने के मानव-बुद्धि के सारे प्रयास निष्फल समाप्त हो जायेगे।"[1]

इसी प्रकार उन्होने सरल ढग से यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि अमरीकी वातावरण लाभकारी 'प्रभावो' से भरा है।

"मनुष्य जाति के किसी भी हिस्से मे, प्राणि-जीवन इतनी श्रेष्ठ अवस्था मे नही है, जितनी इगलिस्तान और सयुक्त राज्य अमरीका मे। उन सभी प्राकृतिक उद्दीपनो के साथ, जिनकी चर्चा की जा चुकी है, वे निरन्तर स्वतन्त्रता के शक्ति-दायी प्रभाव के अन्तर्गत रहते है। नैतिक, राजनीतिक और शारीरिक सुख मे एक अविच्छिन्न सम्बन्ध है। और अगर यह सच हो कि निर्वाचित और प्रतिनिधि शासन व्यक्ति और राष्ट्रीय समृद्धि के लिए सर्वाधिक हितकर होते हैं, तो स्वभावतः यह भी सच होगा कि वे प्राणि-जीवन के लिए भी सर्वाधिक हितकर होते हैं। किन्तु यह मत केवल उस सम्बन्ध से निकाला गया परिणाम नहीं है, जो सभी विषयो सम्बन्धी सत्यो का एक-दूसरे से होता है। बहुतेरे तथ्य यह प्रमाणित करते हैं कि कानेक्टिकट से प्रबुद्ध और सुखी राज्य मे, जहाँ गणतान्त्रिक स्वतन्त्रता डेढ़ सौ साल से अधिक समय से चली आ रही है, पृथ्वी पर किसी भी अन्य देश की अपेक्षा प्राणिजीवन अधिक मात्रा में है और अधिक काल तक बना रहता है।"[2]

रश का दार्शनिक महत्त्व मुख्यत. इस तथ्य में है कि मनुष्य की उत्तेजनीयता और फलस्वरूप मनुष्य के ज्ञान की अन्तर्निहित एकता को प्रदर्शित करने का उन्होने प्रभावशाली वैज्ञानिक प्रयास किया। उन्होने सिद्धान्त रूप में यह बात नही कही, लेकिन इस ओर सकेत किया कि शरीर और आत्मा, औषधि और नैतिकता, प्राकृतिक और सामाजिक दर्शन के बीच कोई मौलिक अलगाव सम्भव नही।

---

१. बेन्जामिन रश, 'थ्री लेक्चर्स अपान ऐनिमल लाइफ' (फिलाडेल्फिया, १७९९) पृष्ठ ६७-६८।

२. वही, पृष्ठ ६२।

वैज्ञानिको मे सर्वाधिक आकर्षक और सबसे कम वैज्ञानिक व्यक्तित्व थामस कूपर (१७५९-१८३९) का था। वे इगलिस्तान मे प्रीस्टले के अधीन रसायन-शास्त्र के छात्र थे और अपने गुरु की भाँति धार्मिक और राजनीतिक उत्पीड़न से बचने के लिए भागे। अपने किसी भी मित्र की अपेक्षा (जिनमे उनके निकटतम मित्र जेफरसन भी थे) जिन पर बहुधा भौतिकवादी होने का आरोप लगाया जाता था, वे पूर्ण भौतिकवादी होने के अधिकतम निकट पहुँचे। वैज्ञानिको मे कूपर सर्वाधिक स्पष्ट पादरियत-विरोधी थे और नैतिकता व धर्म की अधिक सामान्य समस्याओ पर अपने भौतिकवादी मनोविज्ञान को लागू करने मे भी वे सर्वाधिक तत्पर रहते थे। वे १७९४ मे अमरीका आये और पूरी शक्ति से जेफरसन-समर्थक आन्दोलन मे जुट गये। वे पेन्सिलवेनिया मे जज नियुक्त हुए, किन्तु १८११ में भ्रष्टाचार के आरोपो के कारण पद छोडने को बाध्य हुए। १८९१ तक पेन्सिलवेनिया के कई स्कूलो मे रसायन और खनिज-विज्ञान पढाते रहे। जेफरसन उन्हे वर्जिनिया विश्वविद्यालय का पहला अध्यक्ष बनाना चाहते थे, किन्तु इसके बजाय वे रसायन-शास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए और बाद मे दक्षिण कैरोलिना विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बने, जहाँ उनका कार्यकाल बड़ा प्रभावशाली रहा। वे अवैधता और राज्यो के अधिकारो का प्रचार करने वाले एक नेता बन गये और उन्होने राजनीतिक अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी।

इस प्रकार विभिन्न रीतियो से, विभिन्न वैज्ञानिको ने प्राकृतिक दर्शन को खोज का एक रोचक क्षेत्र बनाया और उस दिशा का एक प्रतीक बनाया जिसमे नैतिक दर्शन को, इसी प्रकार प्रगति करने के लिए, चलना चाहिए। एक पीढी के सक्षिप्त समय तक जन-कल्पना को उत्तेजित करने मे वे पादरियो से अधिक सफल रहे और उनका प्रभाव सर्वाधिक तभी पड़ा जब धर्मशास्त्र की उन्होने सर्वाधिक उपेक्षा की। कारण कि धर्म-निरपेक्ष तर्कबुद्धि की एकता और उपयोगिता प्रदर्शित करने में उनकी उपलब्धियाँ ही मताग्रह के मिथ्याभिमान' का सर्वाधिक ज्वलन्त प्रमाण थी। अमरीकी नैतिकता और शिक्षा मे प्रकृति के सिद्धान्तो को प्रतिष्ठित करने मे, प्रगति करने की प्राकृतिक दर्शन की योग्यता का हाथ, स्वतन्त्र-विचारको द्वारा प्राकृतिक दर्शन के सारे प्रचार से अधिक था। प्राकृतिक विज्ञानो मे प्रबुद्धता अब भी जीवित है, लेकिन तथाकथित मानसिक और नैतिक विज्ञानो को दार्शनिक विवादो की एक और शताब्दी का बोझ उठाना था।

विवाद के उनके प्रथम प्रयास मे हमें वही 'प्राकृतिक अधिकार', 'स्वतन्त्रता' आदि की सुपरिचित बाते मिलती हैं। किंग्ज़-कालेज मे उनके अति-अनुदारवादी प्रशिक्षण ने उन्हे एक प्रबुद्ध विद्रोही बनाया। स्नातकीय उपाधि लेने के पहले उन्होने जन-सेना का एक दस्ता सगठित किया। उन्होने अधिकाश जीवन 'जनरल' वाशिंगटन के निकट सम्पर्क मे बिताया और प्रतीत होता है कि वे अपने को मुख्यत. एक सैनिक समझते थे। जब उनके अनुयायियो को 'सैन्य दल' (मिलिटरी पार्टी) कहा गया तो उन्हे प्रसन्नता हुई। इस सैनिक वातावरण में ही उन्होने अपने सामाजिक दर्शन के मुख्य विषय ग्रहण किये। उन्होने शास्त्रीय ग्रन्थो का अध्ययन किया था और वे कभी-कभी हाब्स, ह्यूम[1] और मान्टेस्क्यू को उद्धृत करते, किन्तु उनके अधिकाश विचार सैनिक अनुभवो से निकले थे। मान्टेस्क्यू से उन्होने यह अर्थपूर्ण विश्वास ग्रहण किया था कि "शासन उसी प्रकार राष्ट्र के अनुरूप होना चाहिए, जैसे कोट व्यक्ति की नाप का।"[2] वे अमरीका के अनुरूप शासन तैयार करने में रत हो गये। 'संघवादी निबन्धो' मे जहाँ उन्होने केवल 'न्यूयार्क राज्य के वासियो' की पक्षधर दृष्टि को तुष्ट करने का ही प्रयास नही किया है, ऐसे अशो में सर्वाधिक ईमानदारी के तर्क वे हैं जिनमें उन्होने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि सघवाद अमरीकी परिस्थितियो के उपयुक्त है। और मैडिसन द्वारा शास्त्रीय ग्रन्थो को लागू करने की विद्वत्तापूर्ण चेष्टाओ से इन तर्कों की विषमता स्पष्ट है। मैडिसन ने इस बात को बिल्कुल नही समझा कि हैमिल्टन और उनके 'कार्यकारी दल' (जैसा गणतन्त्रवादी उसे व्यग्य से कहते थे) द्वारा 'प्रशासन' पर ज़ोर देना राजतन्त्रवाद की भूमिका नही था, वरन् शासन के निरन्तर राष्ट्र की बदलती हुई आवश्यकताओ के 'अनुरूप' बनाने का एक अन्तर्भावनाशील कार्यक्रम था और बाद में मैडिसन ने हैमिल्टन की आलोचना की कि वे 'शासन को उस प्रकार सचालित करने' की चेष्टा कर रहे थे 'जैसा वे सोचते थे कि उसे होना चाहिए।' संविधान-सम्मेलन के समय ही हैमिल्टन को विश्वास हो गया था कि केवल 'गणतान्त्रिक शासन' ही अमरीकी 'प्रतिभा' के

---

१. ह्यूम की रचनाओ में 'हिस्टरी ऑफ इगलैण्ड और 'एसे ऑन दी जेलसी ऑफ कॉमर्स' से वे सर्वाधिक परिचित थे।

२. हेनरी कैबट लॉज द्वारा सम्पादित 'दी वर्क्स ऑफ अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन' मे लाफायेत के नाम, ६ जनवरी, १७९९ (न्यूयार्क, १९०७), खड दस, पृष्ठ ३३७।

अनुकूल था, यद्यपि उस पर उनकी स्वयं आस्था नही थी।[1] उन्होने बाद में अमरीका के दलीय शासन को 'शक्ति का एक कम्पन' कहा।'

सघवाद सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण था हैमिल्टन द्वारा शक्ति के सन्दर्भ में राजनीति का और धन के सन्दर्भ में शक्ति का विश्लेषण। युद्ध की कठिन अवधियो मे, जब वाशिंगटन के साथ वे भी सेना के मनोबलहीन अवशेष के प्रति चिन्तित थे, उन्हे यह विश्वास हो गया कि सैनिक शक्ति को केवल वित्तीय शक्ति के आधार पर ही पुनर्निर्मित किया जा सकता था। १७८० में ही वे एक 'कान्टिनेन्टल बैंक' (देशीय बैंक) की स्थापना का प्रस्ताव लेकर राबर्ट मॉरिस के पास गये। हैमिल्टन के अनुसार राजनीतिक शक्ति अन्ततः साख पर आधारित होती है। उन्होने पूरी गम्भीरता से आग्रह किया कि सरकारी ऋण एक सार्वजनिक परिसम्पत्ति है और खर्चीली सरकार का इस आधार पर समर्थन किया कि उसे अधिक करो की आवश्यकता होने के कारण शक्ति भी अधिक प्राप्त होगी। वे शासन को विधि-निर्माण की अपेक्षा कराधान की दृष्टि से अधिक देखते थे। मैडिसन को शिकायत थी कि सविधान की 'सामान्य कल्याण' वाली धारा को, 'जहाँ तक धन के उपयोग का प्रश्न है,...शिक्षा, खेती, विनिर्माण और व्यापार के सामान्य हितो' से सम्बन्धित किसी भी चीज़ पर लागू करने मे हैमिल्टन को कोई भी आपत्ति नही थी।[2] शासन को 'न्याय और समानता' तक सीमित रखने के बजाय, इस प्रकार 'सामान्य हितो की सक्रिय अभिवृद्धि के रूप में देखना, अमरीकी राजनीतिक सिद्धान्त मे निश्चय ही क्रान्तिकारी चीज थी। किन्तु हैमिल्टन के कार्यक्रम का यह सारतत्व था और उन्होने तत्काल 'शासन को ऐसी स्फूर्ति और शक्ति' प्रदान की 'जो सस्थापको की कल्पना से बहुत आगे थी।'[3]

धनशक्ति की दृष्टि से, हैमिल्टन 'दृढ़ और अविच्छिन्न' सघ में बधे हुए राष्ट्र को मुख्यतः उधार और व्यापार का सघ समझते थे। सरकारी ऋण की निधि

१. "किसी रूप में मुझे यह पूर्वमान्य प्रतीत होता था कि स्वतन्त्र जाँच की दृष्टि से, प्रयोगात्मक स्थापनाएं की जा सकती हैं, जिन्हें केवल विचारार्थ सुझावों के रूप में ग्रहण किया जाए। तद्नुसार, यह सच है कि मेरी अन्तिम राय, अच्छे आचरण के दौर में 'एक कार्यकारी' के विरुद्ध थी।...देश की वास्तविक स्थिति में, यह अपने आप मे सही और उचित था कि गणतान्त्रिक सिद्धान्त का एक निष्पक्ष और पूर्ण परीक्षण किया जाए।"—(वही, टिमोथी पिकरिंग को, १८ सितम्बर, १८०३, पृष्ठ ४४७-४४८)

२. विलियम सी० राइव्स, 'हिस्ट्री ऑफ दी लाइफ ऐन्ड टाइम्स ऑफ जेम्स मैडिसन' (बोस्टन १८६८) खण्ड तीन, पृष्ठ २३३।

३. वही, पृष्ठ १७३।

निर्मित करना, संघ-सरकार की उधार-साख को 'दृढ़ीभूत' करना और फैलाना, उन्हें एक प्राथमिक व्यापारिक आवश्यकता प्रतीत होती थी और यह आपत्ति उन्हे असार प्रतीत होती थी कि इससे सटोरियो का धन बढ़ेगा। औद्योगिक विस्तार के लिए पूजी की उपलब्धि उनकी दृष्टि में प्रमुख थी और अगर यह शक्ति बैंकरो और अन्य पूंजी लगाने वालो के हाथ में केन्द्रित हो तो और भी अच्छा। अन्ततः महत्व धन के वितरण का नही, सट्टे की दिशा का था। हेमिल्टन का महान् विचार विनिर्माण को प्रोत्साहित करने का था। विनिर्माण हितो को, जो मध्य-राज्यो में और न्यू-इंगलैण्ड के अन्तर्देश में विशेषतः सबल थे, वे एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रीय हित मानते थे, क्योकि ये हित न्यू-इगलैण्ड के सामुद्रिक व्यापारियो और दक्षिण के बगान मालिको के 'गुट' हितो के बीच (आर्थिक और भौगोलिक दृष्टि से) मध्यस्थता करते थे।[1] उनका तर्क था कि विनिर्माण के

[1] हेनरी क्ले ने अपने प्रसिद्ध भाषण, 'स्पीच इन डिफेन्स ऑफ दी अमेरिकन सिस्टम' (१८३२) में भी यही बात कही है, "संयुक्त राज्य के लोगो के दिलो मे इस व्यवस्था के लिए क्या स्थान है, इस सम्बन्ध मे लोगो को बड़ा भ्रम है। वे कहते हैं कि यह न्यू-इंगलैण्ड की नीति है और उसी को इससे सर्वाधिक लाभ होता है। अगर संघ का कोई भाग सर्वाधिक सर्वसम्मति और दृढ़ता से लगातार इसका समर्थन करता रहा है, तो वह पेन्सिलवेनिया है। इस शक्तिशाली राज्य की आलोचना क्यो नहीं की जाती? उसे यू ही छोड़कर न्यू-इंगलैण्ड पर चोट क्यो की जाती है? न्यू-इंगलैण्ड इस नीति मे अनिच्छा-पूर्वक सम्मिलित हुआ। १८२४ में उसके प्रतिनिधि मण्डल का बहुमत इसके विरुद्ध था। न्यू-इंगलैण्ड के सबसे बडे राज्य का केवल एक वोट विधेयक के पक्ष मे था। उद्यमशील लोग आसानी से अपने उद्योग को किसी भी नीति के अनुकूल बना सकते हैं, बशर्ते कि वह निश्चित हो। उन्होने समझा कि यह नीति निश्चित हो गयी है और सरकारी आदेशों को उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस व्यवस्था के लाभो के विकास के साथ-साथ इस सम्बन्ध में जनमत भी आगे बढ़ता रहा है। अब सारा न्यू-इंगलैण्ड, कम से कम इस सदन में (एक छोटी, खामोश आवाज़ को छोड़कर) इस व्यवस्था के पक्ष में है। १८२४ में सारा मेरीलैण्ड इसके विरुद्ध था। अब उसका बहुमत पक्ष मे है। तब लुइसियाना, एक अपवाद के अतिरिक्त, इसके विरुद्ध था। अब वह निरपवाद इसके पक्ष में है। जन-भावना दक्षिण की ओर बढ रही है।.. और अन्त में, इसके सिद्धान्त सारे संघ में व्याप्त हो जायेंगे, और अचरज इस पर होगा कि उनका कभी विरोध क्यो किया गया।"—('दी लाइफ ऐण्ड स्पीचेज़ ऑफ हेनरी क्ले' (न्यूयार्क, १८४४) खण्ड २, पृष्ठ ६०-६१)

लाभ राष्ट्रव्यापी होंगे। अपनी प्रसिद्ध विनिर्माणो पर रपट (रिपोर्ट ऑन मैनुफैक्चर्स-१७६१) मे उन्होने श्रम-विभाजन सम्बन्धी आडम-स्मिथ के तर्कों को राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने का सचेत प्रयास किया। अमरीकी श्रम-शक्ति मे अनेकता लायी जाये, श्रम के उन रूपो को सरकारी प्रोत्साहन मिले जिन्हे इसकी आवश्यकता हो, सघ के अन्दर मुक्त व्यापार हो[1] और इस प्रकार अमरीका एक स्वतन्त्र विश्व शक्ति बने।

हैमिल्टन सरकारी और निजी उधार और कर्जों को, तथा उद्योगो का प्रसार करने करने वाली सार्वजनिक और निजी सस्थाओ को 'राष्ट्रीय धन' के स्रोतो के रूप मे एक साथ ही रखते थे। अपने सिद्धान्तो पर वे स्वयं किस प्रकार अमल करते थे, इसका एक उदाहरण यह है कि जिन दिनो वे अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट तैयार कर रहे थे, उन्हीं दिनो (दो अन्य प्रवर्त्तको के साथ) 'उपयोगी विनिर्माणो के न्यू-जरसी समाज' (न्यू-जरसी सोसायटी फार यूज़फुल मैनुफैक्चर्स) का सगठन भी कर रहे थे।

"इस सस्था का अधिकार-पत्र न्यू-जरसी विघान-मण्डल से विरोधियो की आपत्तियो के बावजूद प्राप्त किया गया, जिन्होने कहा कि यह भूस्वामियो और शिल्पियो के हितो के लिए खतरनाक है। सार्वजनिक ऋण की हैमिल्टन को अब एक नयी उपयोगिता प्राप्त हो गयी। उक्त समाज के हिस्से खरीदने का यही एक माध्यम रखा गया था और यह अभिदत्त सार्वजनिक ऋण फिर राष्ट्रीय बैंक के हिस्सो में लगाया जा सकता था। हैमिल्टन ने कहा कि सार्वजनिक धन-पत्रो के इस बहुविघ उपयोग से उनका बाजार मूल्य बढ़ेगा और इस प्रकार सम्बन्धित प्रयास और जनता दोनो को ही उससे लाभ होगा, जिसे विवरण पत्रिका में देशी उद्योग के प्रोत्साहन के लिए एक देशभक्तिपूर्ण उद्यम कहा गया था।"[2]

---

१. अमरीकी 'सीमाकर संघ' के विचार की प्रत्यक्ष प्रेरणा हैमिल्टन को फ्रीडरिच लिस्ट की पुस्तक 'आउटलाइन्स ऑफ अमेरिकन पोलिटिकल एकॉनॉमी' (१८२७) से मिली थी। लिस्ट जर्मन जॉल्फेरिन (सीमाकर-संघ) के मुख्य अर्थशास्त्री थे और यूरोप के राष्ट्रवादी अर्थशास्त्र के निर्माताओ में से थे। देखिए, विलियम एस० कल्बर्टसन्, 'अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन' (न्यू-हैवेन, १६१६) पृष्ठ १४०-१४१, और जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी, 'स्टडीज़ इन हिस्टॉरिकल ऐण्ड पोलिटिकल साइन्स, खण्ड—१५ (१८६७), पृष्ठ ४६-६३, ५८१-५८२।

२. रेक्सफोर्ड गाइ टगवेल और जॉसेफ डॉर्फमैन कृत 'अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन : नेशन मैकर' कोलम्बिया यूनिवर्सिटी क्वार्टरली, अंक ३०, (मार्च, १६३८), पृष्ठ ६३-एन।

हैमिल्टन शक्ति-राजनीति के सन्दर्भ में सोच रहे थे और अपनी 'एक महान् अमरीकी व्यवस्था' के लिए उन्होने एक ठोस राजनीतिक-अर्थशास्त्र निरूपित किया। यह न केवल उनके निजी सट्ट से, उनकी 'विनिर्माणो पर रपट और सार्वजनिक उधार सम्बन्धी रपटो' (रिपोर्ट्स ऑन पब्लिक क्रेडिट) से, बल्कि उनके 'सघवादी निबन्धो' से भी स्पष्ट है। वे इतने स्पष्टवक्ता होने का साहस न करते, अगर वे न्यूयार्क राज्य के लोगो (अर्थात् प्रभावशाली लोगो) को सम्बोधित न कर रहे होते। उस हालत में भी, उनके द्वारा 'राष्ट्रीय' शब्द के साहसपूर्ण प्रयोग, 'राष्ट्रीय शक्ति की धाराओ' और 'अमरीकी साम्राज्य का तन्तुगठन' की चर्चा के सम्बन्ध में उनके सहयोगी लेखक मैडिसन को चतुर सफाइयाँ देनी पडी। इन बिखरे हुए अशो में से कुछ को एक साथ रखकर हम हैमिल्टन के दर्शन की साहसिकता और आधुनिकता दोनो को प्रदर्शित कर सकते हैं।

"क्या गणतन्त्र व्यवहार में राजतन्त्रो से कम युद्धरत रहे हैं ? क्या गणतन्त्र और राजतन्त्र, दोनो का ही प्रशासन मनुष्यो द्वारा नही होता ?...क्या व्यापार ने अब तक युद्ध के लक्ष्यो को बदलने के सिवा और कुछ भी किया है ? क्या धन का मोह शक्ति या यश के मोह समान ही जबर्दस्त और उद्यमशील नही है ? जब से व्यापार की व्यवस्था राष्ट्रो में प्रचलित हुई है क्या व्यापारिक उद्देश्यो पर आधारित युद्ध उतने ही नही हुए हैं, जितने पहले भूमि या स्वामित्व के लोभ में होते थे ? क्या व्यापार की भावना ने बहुतेरे मामलो में भूमि और स्वामित्व दोनो की भूख को नया बढ़ावा नही दिया है ? इन प्रश्नो के उत्तर हम अनुभव मे खोजें, मनुष्य के मत का निर्देशन करने में जिसके द्वारा गलती होने की सम्भावना सबसे कम होती है।

"क्या अब समय नही है कि हम स्वर्ण-युग के भ्रमपूर्ण स्वप्न से जागें और अपने राजनीतिक व्यवहार का निर्देशन करने के लिए इस व्यावहारिक उक्ति को अपनायें कि पृथ्वी के अन्य वासियो की भाँति हम लोग सम्पूर्ण सद्गुण के सुखपूर्ण साम्राज्य से अभी बहुत दूर हैं ?

"हमारी स्थिति...अत्यधिक लाभपूर्ण है।.. सघ में दृढतापूर्वक जुडे रहकर हम आशा कर सकते हैं कि शीघ्र ही हम अमरीका में यूरोप के भाग्य-निर्णायक बन जाएँगे और धरती के इस भाग में यूरोपीय प्रतियोगिताओ का सन्तुलन अपने हितो के अनुसार बदल सकेंगे।

"सशक्त राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत, सामान्य हित में लगी हुई देश की प्राकृतिक शक्ति और प्रसाधन, यूरोपीय ईर्ष्या के सारे संयोजनो को असफल बना देंगे। सफलता अव्यावहारिक हो जाने के कारण, इस स्थिति में ऐसे सयोजनो का उद्देश्य भी समाप्त हो जायेगा। तब नैतिक और भौतिक आवश्यकता सक्रिय

व्यापार, व्यापक जहाज़रानी और समृद्ध जहाजी बेड़े को जन्म देगी। प्रकृति की अपरिहार्य और अपरिवर्त्तनीय गति को बदलने या नियन्त्रित करने की छोटे-छोटे राजनीतिज्ञो की छोटी-छोटी चालो की हम अवज्ञा कर सकते हैं।

"स्वय राज्यो के बीच निर्बन्ध ससर्ग, न। केवल एक-दूसरे की अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए, वरन् विदेशी मण्डियो में निर्यात के लिए भी, उनके उत्पादनो के आपसी विनिमय के द्वारा हर एक के व्यापार को बढाएगा। हर भाग में व्यापार की नाड़ियाँ समृद्ध होगी और हर भाग की वस्तुओ के मुक्त सञ्चार के द्वारा अतिरिक्त गति और शक्ति प्राप्त करेंगी। विभिन्न राज्यो के उत्पादनो की अनेकता से व्यापारिक उद्यम का क्षेत्र कही अधिक व्यापक होगा।

"सट्टेबाज़ व्यापारी इन टिप्पणियो के बल को तत्काल देख लेगा और स्वीकार करेगा कि अ-सघबद्ध या आशिक रूप में सघबद्ध तेरह राज्यो की अपेक्षा सयुक्त-राज्य का कुल व्यापारिक शेष कही अधिक अनुकूल होगा।

"व्यापारिक हितो के साथ-साथ राजनीतिक हितो की एकता केवल शासन की एकता का फल ही हो सकती है।

"युरोपीय महानता के साधन बनना अमरीकियो को अस्वीकार करना चाहिए। दृढ़ और अविच्छिन्न सघ मे बधे हुए तेरह राज्य एक महान् अमरीकी व्यवस्था का निर्माण करने मे सहमत हो, जो अटलाटिक पार की किसी भी शक्ति या प्रभाव के नियन्त्रण मे न आने में समर्थ हो और पुरानी तथा नयी दुनिया के सम्बन्ध की शर्तें अपनी मर्ज़ी के अनुसार मनवा सके!

"इसी सिद्धान्त के अनुसार कि मनुष्य का लगाव अपने पड़ोस की अपेक्षा अपने परिवार से अधिक होता है और सम्पूर्ण समाज की अपेक्षा अपने पड़ोस से अधिक होता है, हर राज्य के लोगो का स्वाभाविक झुकाव सघ-शासन की अपेक्षा अपनी स्थानीय सरकार की ओर अधिक होगा। यह स्थिति तभी बदल सकती है जब सघ का प्रशासन इतना अच्छा हो कि इस सिद्धान्त की शक्ति नष्ट हो जाये।

"राज्य सरकारो के कार्यक्षेत्र में एक सर्वोपरि लाभ ऐसा है, जो इस प्रसग को स्पष्ट और सन्तोषजनक रूप में प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है—मेरा तात्पर्य दीवानी और दण्डन्याय के सामान्य प्रशासन से है। जनसाधारण की आज्ञाकारिता और उनकी आसक्ति प्राप्त करने के साधनो में यह सर्वाधिक सशक्त, सार्वत्रिक, और आकर्षक है। यह जीवन और सम्पत्ति का प्रत्यक्ष और दृश्यमान् सरक्षक है, इसके लाभ और इसका भय निरन्तर लोगो की नजरो के सामने सक्रिय रहते हैं, यह उन सभी हितो और समस्याओ का नियमन करता है, जिनके प्रति व्यक्तियों की सवेदना अधिक तात्कालिक रूप में जागरूक रहती है और इस कारण लोगो

के मन में शासन के प्रति स्नेह, आदर और श्रद्धा उत्पन्न करने में इसका योग अन्य किसी भी परिस्थिति से अधिक होता है। समाज को जोड़ने वाला यह महान् तत्व लगभग पूरी तरह विशिष्ट सरकारो के माध्यम से ही फैलता है और प्रभाव के अन्य सभी कारणो से स्वतन्त्र, यह उन्हें अपने नागरिको पर ऐसा निश्चयात्मक प्रभुत्व प्रदान करेगा कि वे हमेशा पूर्णतः सघ की शक्ति के समकक्ष रहेगी और बहुधा उसकी खतरनाक प्रतिद्वन्द्वी भी बन जायेंगी।

"दूसरी ओर राष्ट्रीय सरकार के कार्यकलाप नागरिक-समूह की नजरो के सामने कम प्रत्यक्ष रूप में आयेंगे और उससे होने वाले लाभो को मुख्यतः सटोरिये लोग ही समझेंगे और उनकी ओर ध्यान देंगे। अधिक सामान्य हितो से सम्बन्धित होने के कारण जनता की भावनाओ में स्थान पाने की सम्भावना उनके लिए कम होगी। और उसी अनुपात में, दायित्व का अभ्यस्त भाव और आसक्ति की सक्रिय भावना जगाने की सम्भावना भी कम होगी।

"वर्त्तमान महासघ की रचना का बड़ा और मौलिक दोष विधि-निर्माण के इस सिद्धान्त मे है कि जिन व्यक्तियो से मिलकर राज्य बने हैं, उनसे भिन्न और विपरीत, राज्य या सरकारें उसमें अपने सामूहिक या सम्मिलित रूप में भाग लेती है।

"वर्त्तमान सघ की कमजोरियो में इस बात का काफी हाथ है कि इसे कभी सीधे जनता की स्वीकृति नही मिली। इसका आधार केवल विभिन्न विधान-मण्डलो की सहमति है, जिससे अपनी शक्ति की वैधता के सम्बन्ध में इसे बहुधा पेचीदा सवालो का सामना करना पड़ता है और कुछ मामलो मे इसने विधेयक निरस्त करने के जबरदस्त सिद्धान्त को जन्म दिया है। ..अमरीकी साम्राज्य का गठन जन-सहमति के ठोस आधार पर होना चाहिये। राष्ट्रीय शक्ति की सभी धाराएँ सारी वैध सत्ता के इसी शुद्ध और आदि स्रोत से प्रवाहित होनी चाहिए।

"हर प्रकार के शोध-प्रबन्धो में कुछ प्राथमिक सत्य या मूल सिद्धान्त होते है, जिन पर वाद के सारे तर्क आधारित होते हैं। इनमें एक आन्तरिक प्रमाण होता है, जो सारे विचार और सयोजन के पहले आता है और दिमाग की स्वीकृति उसे प्राप्त होती है। जहाँ उसका ऐसा प्रभाव नही पड़ता, वहाँ उसके पीछे या तो ग्रहण-इन्द्रियो का कोई दोष या अव्यवस्था होती है, या कोई सबल हित, या मनोवेग या पूर्वग्रह होता है। रेखागणित की ये उक्तियाँ इस कोटि की हैं कि 'सम्पूर्ण अपने अगो से बडा होता हैं। दो सरल रेखाएँ कोई स्थान नही घेर सकती और सारे समकोण एक-दूसरे के बराबर होते हैं।' नीतिशास्त्र और राजनीति की ये अन्य उक्तियाँ भी इसी कोटि की हैं कि कारण के बिना कोई कार्य नही हो सकता। कि साधन को साध्य के अनुपात में होना चाहिये। कि हर

शक्ति अपने उद्देश्य के अनुकूल होनी चाहिये। कि जिस शक्ति का उद्देश्य ऐसे लक्ष्य की पूर्ति करना हो जिसे सीमित न किया जा सकता हो, उसे सीमित नही करना चाहिये।

"जो विषय उसे सौंपे जाते है उनकी पूर्ण उपलब्धि के लिए और जिन कामो के लिए, वह जिम्मेदार हैं, उन्हे पूरी तरह कार्यान्वित करने के लिए, हर आवश्यक शक्ति शासन मे होनी चाहिये और जनहित तथा जनभावना का ध्यान रखने के अतिरिक्त इस पर और कोई नियन्त्रण नहीं होना चाहिये।

"राष्ट्रीय सुरक्षा का ध्यान रखने, और विदेशी या आन्तरिक हिंसा के विरुद्ध सार्वजनिक शान्ति को सुरक्षित रखने के कर्त्तव्यो में ऐसी जन-क्षति और ऐसे खतरो की सम्भावना निहित है, जिनकी कोई सीमा बाँधना सम्भव नही है। अतः सम्बन्धित व्यवस्था की शक्तियो में भी राष्ट्र की आवश्यकताओ और समाज के प्रसाधनो के अतिरिक्त और कोई सीमा नही होनी चाहिए।

"राष्ट्रीय आवश्यकताओ की पूर्ति के साधन जुटाने का अनिवार्य माध्यम राजस्व है। अत. उन आवश्यकताओ की पूर्ति करने से सम्बन्धित व्यवस्था में राजस्व प्राप्त करने की पूरी शक्ति भी सम्मिलित होनी चाहिए।

"धन को उचित ही राजनीतिक ढाँचे का मर्म-सिद्धान्त माना जाता है। यही उसके जीवन और गति को कायम रखता है और उसे अपने सर्वाधिक आवश्यक कार्यों को पूरा करने के योग्य बनाता है। अतः जहाँ तक समाज के प्रसाधन इसकी अनुमति दें, वहाँ तक धन की पर्याप्त और नियमित प्राप्ति की पूर्ण शक्ति को हर सविधान का एक अपरिहार्य अग मानना चाहिए।

"आमतौर पर राष्ट्र, अधिक जनाधारित प्रकार के शासनो के अन्तर्गत भी, अपनी वित्तीय व्यवस्था का प्रशासन किसी एक व्यक्ति को या कुछ व्यक्तियो से मिलकर बने मण्डलो को सौंप देते है, जो सर्वप्रथम कराधान की योजनाओ पर विचार करके उन्हे तैयार करते हैं और बाद में उन्हे राजा या विधान मण्डल की सत्ता द्वारा कानून का रूप दे दिया जाता हैं।

"हर जगह जिज्ञासु और प्रबुद्ध राजनेता राजस्व के उचित क्षेत्रो का विवेक-पूर्ण चयन करने के सर्वाधिक योग्य माने जाते हैं। कराधान के उद्देश्य के लिये, स्थानीय परिस्थितियो के किस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है, इसका स्पष्ट सकेत उपर्युक्त बात से मिलता है।

"एक विचार है, जिसके समर्थको का अभाव भी नहीं है कि सशक्त कार्यकारिणी गणतान्त्रिक शासन के चरित्र के प्रतिकूल है। गणतान्त्रिक शासन के प्रबुद्ध समर्थक कम से कम यह आशा करेंगे कि यह विचार निराधार है, क्योंकि स्वयं अपने सिद्धान्तो को निकम्मा ठहराये बिना वे इसके सत्य को स्वीकार नहीं

कर सकते। अच्छे शासन की परिभाषा मे कार्यकारिणी की शक्ति एक प्रमुख अग है।

"कुछ लोग ऐसे है जो समाज या विधान-मण्डल के तात्कालिक बहाव के प्रति दासतापूर्ण आनम्यता को ही कार्यकारिणी का सर्वश्रेष्ठ गुण मानते हैं। किन्तु, शासन की स्थापना किन उद्देश्यो के लिए होती है और वे साधन सचमुच क्या हैं, जिनके द्वारा सार्वजनिक सुख की अभिवृद्धि हो सकती है, इस सम्बन्ध मे ऐसे व्यक्तियो के विचार बिल्कुल कच्चे है। गणतान्त्रिक सिद्धान्त की यह माँग होती है कि समाज की सुविचारित भावना उनके व्यवहार का सञ्चालन करे, जिन्हे वह अपने कार्यों का प्रवन्ध सौपता है। लेकिन यह अवाश्यक नही कि वे आवेग के हर आकस्मिक झोके को, या जन-साधारण के हितो से द्रोह करने के लिए उनके पूर्वग्रहो को उकसाने वाले व्यक्तियो की चालो मे उत्पन्न हर अस्थायी भावना को बिना शर्त चुपचाप स्वीकार कर लें। यह कथन उचित है कि लोगो का 'अभिप्राय' सामान्यत: जनहित होता है। यह बात बहुधा उनकी गलतियो पर भी लागू होती है। किन्तु उनकी सद्बुद्धि अपने उस प्रशसक का तिरस्कार करेगी जो यह पाखण्ड करे कि जनहित की अभिवृद्धि के 'साधनो' के सम्बन्ध मे हमेशा उनका 'विवेक सही' होता है। वे अनुभव से जानते हैं कि वे कभी-कभी ग़लती करते है। आश्चर्य इस बात का है कि परजीवियो और चापलूसो की चालो से, महत्वाकाक्षी लोभी और समाज-विरोधी लोगो के फन्दो से और ऐसे लोगो के छल से जिन्हे जनता का इतना विश्वास प्राप्त है जिसके वे योग्य नही है, अथवा जो उसके योग्य बने बिना उस विश्वास को प्राप्त करना चाहते हैं, निरन्तर घिरे रहने पर भी वे इतनी कम ग़लतियाँ करते हैं। जब ऐसे अवसर आयें कि जनहित और जन-प्रवृत्ति में भिन्नता हो, तो उन हितो के सरक्षण के लिए जनता ने जिन व्यक्तियो को नियुक्त किया है उनका यह कर्त्तव्य है कि अस्थायी भ्रम का वे सामना करें ताकि लोगो को अधिक ठण्डे दिमाग से और शान्ति से विचार करने का समय और अवसर मिले। ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमे इस प्रकार के व्यवहार ने लोगो को स्वय अपनी गलतियो के अत्यधिक घातक परिणामो से बचाया और उनकी कृतज्ञता के स्थायी स्मारक ऐसे व्यक्तियो को प्रदान किये जिनमे लोगो की अप्रसन्नता का खतरा उठाकर भी उनकी सेवा करने का साहस और बड़प्पन था।"[1]

---

१. अलेक्ज़ेण्डर हेमिल्टन, जॉन जे और जेम्स मैडिसन, 'दी फेडेरलिस्ट,' शरमन एफ़ मिटेल द्वारा सम्पादित (एक सौ पचास वर्षीय संस्करण, वाशिंगटन डी० सी० १६३७) पृष्ठ ३०, ३३, ६५-६६, ६८, ६६, १०२-१०३, १०३-१०४, ८६, १४०-१४१, १८८, १६०, १८२-१८३, २१८, ४५४, ४६४, ४६५

राष्ट्रीय प्रशासन के इस सिद्धान्त का व्यावहारिक निष्कर्ष यह है कि न्याय की समस्याएँ स्थानीय शासनो को सौंपी जा सकती हैं, जबकि राष्ट्रीय सरकार का प्रमुख उद्देश्य लोगो के 'सामान्य हितो' की अभिवृद्धि होना चाहिए, ऐसे हित जिन्हे सामान्य जन स्वय समझ नही पाते और इस कारण जिन्हे अनुभवी व्यक्तियो के हाथो में सौंपना ज़रूरी है। सर्वोत्तम शासन उन्ही का होगा जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो को तत्परता से लागू करके राष्ट्रीय धन में वृद्धि करेंगें। अमरीकी अर्थतन्त्र मे विभिन्नता और अन्तत. आत्म-निर्भरता लाने का हैमिल्टन का कार्यक्रम परम्परागत वाणिज्यवाद के सिद्धान्तो पर आधारित नही था और न ही वह मुख्यत. सरक्षणवाद पर निर्भर था। हैमिल्टन ने खासतौर पर कहा कि शासन अन्तर्राज्य व्यापार की बाधाएँ हटाकर और शुल्क लगाने के बजाय उपदान देकर उद्योग को सर्वोत्तम रीति से 'मुक्त' कर सकता है। किन्तु उन्हे मुख्यत: सन्तुलित उत्पादन के सिद्धान्त पर भरोसा था। उचित 'प्रशासन' के द्वारा ऐसा किया जा सकता है कि विभिन्न खण्ड-हित और वर्ग एक-दूसरे की आवश्यकताओ की पूर्ति करें। और सिद्धान्त से अधिक अनुभव के आधार पर हैमिल्टन ने कहा कि राष्ट्र की आवश्यकताएँ हमेशा राष्ट्र के प्रसाधनो के बराबर मानी जा सकती है।

लोकमत, और लोगो को फुसलाने के तरीको के प्रति हैमिल्टन के खुले तिरस्कार के स्वाभाविक परिणाम हुए। जब उनकी नीतियाँ अत्यधिक अलोकप्रिय हो गयी तो वाशिंगटन के राजनीतिज्ञो ने उन्हे निकाल बाहर किया और अपने अल्प जीवन का शेष काल (१७९५-१८०४) उन्होने पद से अवकाश लेकर एक 'निराश राजनीतिज्ञ' और एक अधिकाधिक आस्थाहीन दार्शनिक के रूप में गुजारा।

फ्रास की क्रान्ति के समय हैमिल्टन जैसे अनुदारवादियो का सामान्यतः यूरोप मे विश्वास नष्ट हो गया था और कठिनाई भरे अनुभव से उन्होने सीखा कि 'यूरोपीय अस्थिरता' के साथ सम्बन्ध रखना कठिन है। घाटबन्दी ने इसे व्यवहार मे अनिवार्य बना दिया था कि अमरीका के अपने प्रसाधनो की ओर आन्तरिक दिशा में और पश्चिम की ओर बढ़ा जाए। १८१५ के बाद यूरोप से निराशा सभी दलो मे थी और सारे अमरीका मे एक रोमानी राष्ट्रवाद फैला। अमरीका सम्बन्धी जो रोमानी धारणाएँ यूरोप में बहुत दिनो से प्रचलित थीं, उन पर अमरीकी लोग भी विश्वास करने लगे। एक शताब्दी पहले बिशप बर्कले ने अपनी 'अमरीका मे शिक्षा और कलाओ को प्रतिष्ठित करने की सम्भावना पर कविताएँ' (वर्सेज़ आन दी प्रास्पेक्ट आफ प्लांटिंग आर्ट्स ऐण्ड लर्निंग इन अमेरिका) में लिखा था—

"निर्दोपिता के धाम, सुखी क्षेत्रो में,
जहाँ प्रकृति निर्देशित करती और
सद्गुण शासन करते हैं"

— — —

"एक अन्य युग गाया जायेगा,"

— — —

"ऐसे नही जैसे यूरोप अपनी सडन मे उत्पन्न करता है,"

— — —

"साम्राज्य का मार्ग पश्चिम की ओर बढ़ता है ;
प्रथम चार अक हो चुके हैं,
पाचवाँ अंक दिन के साथ नाटक को समाप्त करेगा,
समय की अन्तिम सन्तान सर्वश्रेष्ठ है।"

जोएल बार्लो ने मूलत यही चित्र अपने 'चार जुलाई के भाषण' (फोर्थ ऑफ जुलाई ओरेशन, १७८७) में प्रस्तुत किया और उसे अपनी हलचल मचा देने वाली 'यूरोप के विशेषाधिकार युक्त वर्गों को सलाह' (ऐडवाइस टु दी प्रिविलेज्ड आर्डर्स इन यूरोप-१७९२) मे और 'सयुक्त राज्य के अपने सह-नागरिको को सम्बोधन' (पेरिस, १७९९) में दोहराया और अपने देश को 'मानवी नीति का सुन्दरतम गठन जो ससार ने अभी तक देखा है' कहा। उन्होने दावा किया कि अमरीका में नैतिक शक्ति, भौतिक शक्ति का स्थान ले रही है और अमरीकी प्रयास यूरोप को स्थायी शान्ति की स्थापना का मार्ग दिखा सकते हैं, जिसकी महान् आवश्यकता का अनुभव अच्छे लोग करते हैं,' और 'निर्विवाद रूप में यह प्रमाणित कर सकते है कि निरस्त्र तटस्थता, सशस्त्र तटस्थता से ज्यादा अच्छी हैं।' इस भावना का सर्वाधिक प्रचारित रूप नोह वेब्सटर की 'स्पेलर'[1] की भूमिका है, जिसे ह्विगवाद के आप्त-वक्तव्य के रूप मे पीढ़ियो तक पढ़ा गया और उसकी नकल की गयी।

"यूरोप मूर्खता, भ्रष्टाचार और अत्याचार मे बूढ़ा हो गया है। उस देश में कानून विकृत हैं, आचार उच्छृङ्खल हैं, साहित्य का ह्रास हो रहा है और मानव-स्वभाव पतित हो गया है।...अमरीकी महिमा प्रभात काल में, अनुकूल समय पर, और प्रशसनीय परिस्थितियो में आरम्भ हो रही है। सारे संसार का अनुभव हमारी आँखो के सामने है। किन्तु बिना विवेक के यूरोप से शासन, आचार और साहित्यिक रुचि के सिद्धान्तो को ग्रहण करके उनकी भूमि पर अमरीका में हमारी अपनी व्यवस्था को निर्मित करने का प्रयास शीघ्र ही हमें विश्वास दिला देगा कि

१. वेब्सटर की रचना ए ग्रैमटिकल इन्स्टीट्यूशन ऑफ दी इगलीश लैंग्वेज का पहला भाग जो हिज्जे के सम्बन्ध में है।—अनु०

प्राचीनता के गिरते हुए खम्भो पर कभी कोई टिकाऊ और शानदार इमारत नही खडी की जा सकती।"

काग्रेस (अमरीकी संसद्) और विश्व को प्रेसीडेन्ट मुनरो का प्रसिद्ध सन्देश (१८२३) इस स्थापना पर आधारित था कि 'हमारी व्यवस्था' यूरोप की प्रतिपक्षी है, और इस कारण 'पुरानी दुनिया की शक्तियो द्वारा उनकी व्यवस्था' को इस गोलार्द्ध में फैलाने का कोई भी प्रयास 'हमारी शान्ति और सुरक्षा' के लिए खतरनाक होगा। इस प्रकार अमरीकी व्यवस्था नयी दुनिया का प्रतीक बन गयी। राजनीतिक घटना-क्रम अमरीकी विस्तार के क्षेत्र मे दक्षिणी अमरीका को भी सम्मिलित करने के पक्ष में था। अतः हैमिल्टन के 'महाद्वीपीय' दृष्टिकोण को और विस्तार देकर ह्विग वक्ताओ ने उसे गोलार्द्ध सम्बन्धी एक विशाल योजना बनाया। यूरोप से अलगाव की नीति और 'नैतिक राज्य' की विधेयात्मक धारणा, दोनो को ही एडवर्ड एवरेट ने विकसित किया। 'एक सुनिर्मित, सशक्त प्रजाधिपत्य' के प्रति उनके उत्साह ने, जो वे जर्मनी से अपने साथ लाये थे, उनकी वक्तृता-शक्ति को और बढ़ा दिया।

"अमरीकी नीति का सही सिद्धान्त, जिसकी ओर हमारे देश की भौगोलिक विशेषताओ के अतिरिक्त, हमारी व्यवस्था की सम्पूर्ण भावना हमें ले जाती है, 'यूरोप से अलगाव' का है। 'देश मे सघ' के बाद, जिसे हमारे अस्तित्व की अनिवार्य शर्त के बजाय हमारा अस्तित्व ही कहना चाहिये, अन्य सभी देशो से अलगाव वह महान् सिद्धान्त है, जिसके द्वारा हमे समृद्ध होना है। यह हमारे इतिहास की आवाज़ है, जो बताती है कि हमारे चरित्र मे जो कुछ श्रेष्ठ है और हमारे भाग्य मे जो कुछ समृद्धि है, उसके पीछे असहमति, अनुरूपता का अभाव, अन्तर, प्रतिरोध और स्वतन्त्रता रही है।

"मानवी मामलो मे नैतिक शक्ति का सबसे बडा ज्ञात वाहक, संगठित और समृद्ध राज्य है। व्यक्तिगत रूप मे मनुष्य जो कुछ भी कर सकता है...वह मानवी कार्यकलाप और मानवी सुख पर एक सुनिर्मित सशक्त प्रजाधिपत्य के प्रभाव की तुलना में कुछ भी नही है। . मनुष्य अपनी प्रकृति मे न जगली है, न सन्यासी, न गुलाम, बल्कि एक सुव्यवस्थित परिवार का सदस्य है, एक अच्छा पड़ोसी है, एक स्वतन्त्र नागरिक है, एक जानकार अच्छा आदमी है, जो अपने समान अन्य लोगो के साथ काम करता है। यही पाठ है जो हमारी स्वतन्त्रता के अधिकार-पत्र में सिखाया गया है। यही पाठ है जो हमारे उदाहरण से विश्व को सीखना चाहिए।"[1]

१. एडवर्ड एवरेट, 'ओरेशन्स ऐण्ड स्पीचेज ऑन वेरियस अकेज़न्स' (बोस्टन, १८५३-६८) पृष्ठ ५३, १२९-१३०। पहला पैरा १८२४ का है और दूसरा १८२६ का।

यह पाठ स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र में नही सिखाया गया था। लेकिन इसका महत्व अधिक नही था कि इस पाठ को एवरेट ने जर्मनी में सीखा, मुनरो ने वाशिंगटन मे, जान क्विन्सी आडम्स ने बोस्टन में, या चार्ल्स जैरेड इंगरसोल ने फिलाडेल्फिया में, क्योकि यही पाठ था जो वे सब मिलकर ससार को सिखा रहे थे।

प्रसारवादी कार्यक्रम, जो सट्टेबाजी के रूप में आरम्भ हुआ था, १८१५ मे एक कठोर आवश्यकता बन गया। प्रेसिडेण्ट मैडिसन को अन्तत· अमरीकी अर्थतन्त्र पर अपनी विदेश नीति और इगलिस्तान द्वारा नेपोलियन की घाटबन्दियो के विनाशकारी परिणाम को स्वीकार करना पड़ा और १८१५ के अपने सन्देश में एक राष्ट्रीय मुद्रा के सृजन, विनिर्माणो के सरक्षण और सडको तथा नहरो के निर्माण की अपील करके उन्होने व्हिग लोगो को आगे बढने का संकेत किया। कट्टर गणतन्त्रवादी होने पर भी मैडिसन सैद्धान्तिक रूप में इस आपदा और नीति-परिवर्तन के लिए बहुत-कुछ तैयार थे। बहुत पहले से ही उनका यह सिद्धान्त था कि यद्यपि जनमत ही वास्तविक प्रभु है, किन्तु शासन के कर्त्तव्य का यह भी एक अंग है कि इस 'प्रभुसत्ता के सशोधन' का प्रयास करे। अर्थात्, जनमत को मोड़ने या 'प्रबुद्ध' बनाने की चेष्टा करे। अब मैडिसन और मुनरो अपने गणतान्त्रिक 'प्रभु' के साथ जुटे और 'जन-दृष्टियो को परिष्कृत और विस्तृत' करने लगे जब तक कि समाज की इच्छा, दक्षिण में भी, इतनी काफी प्रबुद्ध नही हो गयी कि संरक्षण शुल्क और सार्वजनिक निर्माण के कार्यक्रम की आवश्यकता को समझने लगे। कैलाउन और दक्षिण के लडाकू नेताओ ने अब राष्ट्रवाद के एक कार्यक्रम का नेतृत्व किया। इससे व्हिग दल या राष्ट्रीय गणतन्त्रवादियो को सचमुच राष्ट्रीय चरित्र प्राप्त हुआ और स्क्वायर फिशर एम्स और कर्नल टिमाथी पिकरिंग जैसे पुराने न्यू-इगलैण्ड के सघवाद के बिगड़े हुए अवशेष समाप्त हो गये।

नये व्हिग राष्ट्रीयवाद के सर्वोत्तम सैद्धान्तिक व्याख्याकार जॉन क्विन्सी आडम्स थे। उन्होने जानबूझ कर अपने पिता के मार्ग का परित्याग किया, जिन्होने शासन को, न केवल शासन की विभिन्न शक्तियो के बीच, वरन् विभिन्न गुट हितो के बीच भी आपसी रोकथाम और सन्तुलन की चीज़ माना था। उसके विपरीत, उन्होने जनहित को जनता की एकता पर आधारित व्यापक उद्देश्य माना और शासन को जनहित की सेवा में 'विभागो के सहयोग' के रूप में देखा।

"राष्ट्रीय विचारक सभाओ का निर्माण और उद्देश्य ही सभी के हितो—सारे राष्ट्र के हितो—में समझौता और मेल विठाने के लिए था।...इस व्यापक सघ के अधिकारो और हितो से सम्बन्धित प्रश्नो की 'पूरी सचाई' निजी सवेदना, दलीय पूर्वग्रह, पेशेवर कार्य या भौगोलिक स्थिति के माध्यम से नही समझी जा

सकती ।...(प्रतिनिधियो को) किसी एक राज्य के नागरिक के रूप मे अपने हितो और अपनी भावनाओ को राष्ट्रीय हित के सामान्य भण्डार मे डाल देना चाहिए ।"[1]

आडम्स ने 'राष्ट्रीय हित' को जो निश्चयात्मक और ठोस अन्तर्वस्तु प्रदान की, उसके कारण उनका सिद्धान्त राष्ट्रीय हित की केवल मौखिक वन्दना ही नही रहा । कांग्रेस को उनके पहले संदेश (१८२५) का अन्त जन 'सुधार' के उनके सिद्धान्त की निम्नलिखित रूपरेखा से हुआ —

"नागरिक शासन की स्थापना का महान् उद्देश्य उन लोगो की दशा को सुधारना है जो सामाजिक अनुबन्ध में भागीदार हैं और कोई शासन, चाहे उसकी रचना किसी भी रूप में हो, अपनी स्थापना के वैध लक्ष्यो को उसी अनुपात मे पूरा कर सकता है, जिस अनुपात मे वह उनकी दशा सुधारता है, जिन पर वह स्थापित है । सड़कें और नहरें, जो दूरस्थ क्षेत्रो और जनसमूहो के बीच सञ्चार और आवागमन को बढ़ाती और सुविधाजनक बनाती हैं, सुधार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधनो मे से हैं । लेकिन हमारी सृष्टि के जनक ने नैतिक, राजनीतिक और बौद्धिक सुधार के कर्त्तव्य व्यक्ति मनुष्य को ही नही, सामाजिक मनुष्य को भी सौंपे हैं । इन कर्त्तव्यो की पूर्त्ति के लिए सरकारो को शक्ति प्रदान की जाती है और इस लक्ष्य की पूर्त्ति के लिए—शासितो की दशा मे अधिकाधिक सुधार—प्राप्त शक्तियो का प्रयोग उतना ही अनिवार्य और पवित्र कर्त्तव्य है जितना अनधिकृत शक्तियो को हथियाना घृणित और अपराधपूर्ण है । .....

"...अगर ये और संविधान में उल्लिखित अन्य शक्तियाँ, खेती, व्यापार और विनिर्माणो मे सुधारो का प्रवर्त्तन करने, शिल्प और ललित कलाओ को प्रोत्साहन देने, साहित्य की अभिवृद्धि और विज्ञान की प्रगति लाने वाले कानूनो के द्वारा प्रभावकारी रूप में सक्रिय हो सकती हैं, तो जनता के हित में उनका प्रयोग न करना, हमें सौंपी गयी प्रतिभा को ज़मीन में दबा देने के समान होगा—सर्वाधिक पवित्र कर्त्तव्य के प्रति द्रोह होगा ।

"सुधार की भावना धरती पर व्याप्त है ।

"ब्रुक्स आडम्स ने लिखा कि उनके पितामह का विश्वास था कि 'विधाता की देन के द्वारा', 'धन का एक असीमित भण्डार' अमरीकी लोगो को 'ऐसी किसी प्रतियोगिता के दवाव से, जिसके द्वारा युद्ध उत्पन्न होने की सम्भावना हो, ऊपर' उठाएगा ।

---

१. जॉन क्विन्सी आडम्स, 'ए लेटर टु दी ऑनरेबिल हैरिसन ग्रे ओटिस ऑन दी प्रेज़न्ट स्टेट आफ अवर नेशनल अफेयर्स,' (वोस्टन, १८०८) पृष्ट ५ ।

अनुसार जो सही होगा वही करेंगे। सघर्षरत उभय पक्ष बारी-बारी से हमारी भर्त्सना करते है, क्योकि हम स्वय राष्ट्रो के उस समाज मे शोर और विस्वरता के अतिरिक्त और कुछ नही खोज पाते, जिसके बारे मे हर पक्ष अपनी दृष्टि के अनुसार घोषित करता है कि वह बडा समरस और रोचक है।

"अत बिना विरोधाभास के कहा जा सकता है कि अनधिकृत और परस्पर असहमत सम्पादको द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रथाओ और सम्बन्धो के जिस अनिश्चित सग्रह को 'राष्ट्रो का कानून' कहा जाता है, वह वास्तव मे किसी भी राष्ट्र के लिए कानून नही है।

"इस दृष्टि के निराधार तन्तुजाल को ही सयुक्त राज्य अमरीका ने अपने विधि-शास्त्र की एक आधारशिला बनाया है। मातृ-देश (इगलिस्तान) से प्राप्त एक अमूल्य विरासत के रूप मे राष्ट्रो के कानून को आम कानून का एक अग माना जाता है और सयुक्त राज्य तथा अधिकाश अलग-अलग राज्यो की अदालतो मे इसे एक सर्वोच्च अधिकारयुक्त नियम का स्थान प्राप्त है।"[१]

इगरसोल ने फिर कहा कि कानूनी या सामरिक कार्यवाही चूँकि व्यावहारिक उपाय नही हैं, इस कारण अमरीका को 'सचमुच स्वतन्त्र' बनाने के लिए एक शुल्क-युद्ध आवश्यक है।[२] इस बीच मैथ्यू कैरी नामक एक उत्साहपूर्ण आयरी शरणार्थी फिलाडेल्फिया में 'दी अमेरिकन मर्करी' का सम्पादान कर रहे थे। इस पत्रिका मे मुख्यत. आर्थिक समस्याओ की चर्चा होती थी, और इगलिस्तान का प्रत्याख्यान होता था। अपनी पत्रिका के लेखो और अपने प्रकाशन-गृह से निकलने वाली पुस्तको के प्रूफ पढते-पढते, वे और उनके पुत्र हेनरी घरेलू अर्थशास्त्री बन गये। १८१४ में मैथ्यू कैरी ने 'दी ओलिव ब्राञ्च' प्रकाशित की, जिसमे उन्होने १८१२ के युद्ध से उत्पन्न सभी गुटो के बीच सहयोग का एक व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। वे इंगलिस्तान-विरोधी सरक्षणवाद के सर्वप्रमुख प्रवर्त्तक बन गये, किन्तु सार्वजनिक निर्माण और आर्थिक

---

१. चार्ल्स जेरेड इंगरसोल, 'ए व्यू ऑफ दी राइट्स एण्ड रांग्स, पावर ऐन्ड पॉलिसी ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका' (फिलाडेल्फिया, १८०८), पृष्ठ ३४, ३६।

२. इंगरसोल ने बाद मे अपने दृष्टिकोण को अधिक व्यापक रूप देकर उसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को भी सम्मिलित कर लिया। देखिए, उनका भाषण "दी इन्फ्लुएन्स ऑफ अमेरिका ऑन दी माइण्ड" (१८२३), जासेफ ब्ला द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलॉसफिक ऐड्रेसेज १७००-१९००' (न्यूयार्क, १९४६) में पुन मुद्रित, पृष्ठ २०-९८।

प्रसार के ह्विग कार्यक्रम के विचार-दर्शन के रूप मे उन्होने 'हितो की समरसता' के एक रचनात्मक आर्थिक सिद्धान्त का भी प्रचार किया।[1] कैरी जर्मनी से निर्वासित फ्रीडरिच लिस्ट के आतिथेय बने, जिन्होने १८२७ मे अमरीकी राष्ट्रवादियो की प्रेरणा से और थॉमस कूपर की रचना 'लेक्चर्स ऑन पोलिटिकल एकॉनमी' (राजनीतिक अर्थशास्त्र पर भाषण, १८२६) का खण्डन करते हुए अपनी पुस्तक 'आउटलाइन्स ऑफ अमेरिकन पोलिटिकल एकॉनमी' (अमरीकी राजनीतिक अर्थशास्त्र की रूपरेखा) प्रकाशित की। कूपर जेफरसन के निजी मित्र रहे थे और अपने पूर्वकालिक पेन्सिलवेनिया वास के दिनो में उन्होने देशी विनिर्माणो को प्रोत्साहन देने के पक्ष में भाषण दिये थे। उन्होने सस्थापित अर्थशास्त्र की व्याख्या विदेशी व्यापार के विरुद्ध एक तर्क के रूप मे की थी। किन्तु दक्षिण कैरोलिना को हटाये जाने के बाद उनके विचार अधिक खेतिहरवादी हो गये और उन्होने मुख्यतः ज्याँ बैप्तिस्ते से के प्रकृतिवादी सिद्धान्तो का सहारा लिया। लिस्ट की आलोचना से यह प्रकट हो गया कि जेफरसन और हैमिल्टन के समर्थको के बीच मौलिक विवाद अब भी कायम थे।

दार्शनिक दृष्टि से ह्विग राष्ट्रवाद के सर्वाधिक रोचक व्याख्याता बाल्टिमोर के एक वकील डेनिएल रेमॉण्ड थे। उन्होने १८२० मे 'थॉट्स ऑन पोलिटिकल एकॉनमी' (राजनीतिक अर्थशास्त्र पर विचार) प्रकाशित की जो किसी अमरीकी द्वारा इस विषय पर लिखा गया पहला व्यवस्थित निबन्ध था। इस रचना के चार सस्करण निकले। चौथा सस्करण एक सक्षिप्त, शास्त्रीय पाठ था, जिसमे से सर्वाधिक रोचक दार्शनिक टिप्पणियो का अधिकाश निकाल दिया गया था। रेमॉण्ड ने आडम स्मिथ की रचना 'वेल्थ आफ नेशन्स' की आधारभूत मान्यताओ की तीव्र आलोचना करने के अतिरिक्त एक ऐसा उपयोगितावादी अर्थशास्त्र निरूपित किया कि अगर जेम्स स्टुअर्ट मिल अपने नीतिशास्त्र को आगे बढ़ा कर अपने

---

१. "कैरी ने संयुक्त राज्य में खेतिहर समुदायों की सीमाओ को समझ लिया। वे चाहते थे कि अमरीका सादगी से पेचीदगी की ओर बढ़े। वे अमरीका के युवको के लिए उपलब्ध धन्धो की संख्या कई गुना बढाना चाहते थे। केवल ऐसे प्रौढ़ और पेचीदा समाज में ही स्वतन्त्र व्यक्ति का लोकतान्त्रिक आदर्श मूर्त्त हो सकता था। ..राष्ट्र को राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी स्वतन्त्र होना चाहिए। जब तक ऐसी स्वतन्त्रता यथार्थ नही हो जाती, तब तक अमरीकी अपने को स्वतन्त्र मनुष्य नहीं कह सकते।" (राल्फ हेनरी गैब्रिएल, 'दी कोर्स ऑफ अमेरिकन डेमॉक्रैटिक थॉट', (न्यूयार्क १९४०, पृष्ठ ८३।)

अर्थशास्त्र तक ले जाते, तो शायद वैसा ही परिणाम होता।[1] जिसे पिछले दिनो 'कल्याणकारी अर्थशास्त्र' कहा जाने लगा है, रेमॉण्ड की रचना उसे एक उत्तम दार्शनिक अभिविन्यास प्रदान करती है। रेमॉण्ड की दृष्टि में राजनीतिक अर्थशास्त्र पूर्णतम अर्थ में एक नैतिक विज्ञान है और राष्ट्रीय धन सम्बन्धी खोज उसका उचित विषय है। राष्ट्रीय धन, वैयक्तिक धन से पूर्णतः भिन्न है, क्योकि राष्ट्र 'एक अलग और अविभाज्य' इकाई है और उसका धन उसके नागरिको के धन का जोड़ मात्र नहीं है। व्यक्ति का धन या निजी अर्थ-व्यवस्था 'आय का ऐसा उपयोग है जिससे निर्दोष आनन्द का अधिकतम भाग उपलब्ध हो।' यह सम्पत्ति का रूप लेता है और चूँकि सम्पत्तियो का विनिमय हो सकता है, इस कारण एक-दूसरे के सन्दर्भ में उनका 'मूल्य' (विनिमय मूल्य) माना जाता है। राष्ट्र का सामूहिक धन सम्पत्ति नही है और उसका कोई मापन योग्य मूल्य नही है। 'मितव्ययिता' के द्वारा उसे सञ्चित नही किया जा सकता। यह ऐसा धन है जो परिसञ्चरित हो या जिसका उपभोग हो। यह जीवन की 'आवश्यकताएँ और आराम प्राप्त करने की' लोगो की सामूहिक 'क्षमता' है। इन आवश्यकताओ और आरामो का स्रोत धरती है। उनका 'कारण' या उन्हे प्राप्त करने की क्षमता उद्योग का श्रम है। अतः उत्पादन केवल वही तक धन है जहाँ तक उसका उपभोग हो। एक प्रकार का श्रम ऐसा है जो केवल प्रत्यक्ष रूप में उत्पादक है, क्योंकि उसके फल तत्काल उपभोग्य नही होते। ऐसा, रेमॉण्ड के शब्दो में 'स्थायी या 'प्रभावकारी' श्रम, सार्वजनिक कार्यों में विशेषतः महत्वपूर्ण होता है। 'लोभ और ऐश्वर्य' जीवन की आवश्यकताओ और आरामों के समान वितरण में बाधक हैं।

"सक्षेप में, निजी अर्थ-व्यवस्था एक ओर लोभ तथा कजूसी और दूसरी ओर ऐश्वर्य तथा फिजूलखर्ची के बीच की भूमि पर स्थित है। अगर कोई मनुष्य इन दोनो पराकाष्ठाओ से बचकर चले, तो वह अर्थशास्त्र के कठोरतम नियमो का उल्लघन किये बिना अपनी आय के अन्दर उपलब्ध सारा आनन्द प्राप्त कर सकता है।

"धनियो को हमेशा याद रखना चाहिए कि सारी सम्पत्ति का स्वामी होने के कारण ग़रीबो के श्रम के सारे अतिरिक्त उत्पादन का उपभोग करना उनका

---

१. जरमी बेन्थाम के अमरीकी शिष्य जॉन नील ने रेमॉण्ड की रचना का उत्साहपूर्वक स्वागत किया और अंग्रेज़ लेखको का ध्यान उसकी ओर खींचना चाहा, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली।

अनिवार्य कर्त्तव्य है। अपनी सम्पत्ति पर उनके अधिकार की यह शर्त है, या होनी चाहिए और यह शर्त्त उनके पक्ष मे ही है।

"धनियो को या तो इस रीति से गरीबो को सहारा देना होगा या फिर कगालो के रूप में। जब सारी सम्पत्ति समाज के एक अग की है, तो स्वभावतः धरती का सारा उत्पादन भी सर्वप्रथम उन्ही का होगा और समाज का जो अंग सम्पत्तिविहीन है, अगर वह अपने श्रम से जीवन की आवश्यकताएँ नही प्राप्त कर सकता, तो फिर वह या तो भूखो मरेगा या दान के सहारे जियेगा। सभी लोगो को खेती मे रोज़गार नही मिल सकता और विनिर्माणो के उत्पादन का अगर उपभोग नही होता, तो उनका उत्पादन बेकार है, क्योकि अपने-आप में जीवन-रक्षा की क्षमता उनमें नही है। जिनके पास जीवन की सारी आवश्यकताएँ हैं, अगर वे उनमे से कुछ का विनिमय गरीबो के श्रम के उत्पादन के साथ नही करते, तो उन्हें इन गरीबो को बिना श्रम के ही पालना होगा। जिसपर सभी लोगो के आचरण का फल आधे समाज के लिए मुखभरी हो, उसे मिताचार नही कहा जा सकता। अगर यह मिताचार है, तो 'मिताचार सद्गुण होने के बजाय एक घृणित दोष है।

"प्रकृति ने मनुष्य के हृदय में सुख की इच्छा उत्पन्न की और धन को उसकी शक्ति प्रदान की, या यूँ कहे कि उसे सुख प्राप्ति का एक साधन बनाया, तो इसी इरादे से कि इस उद्देश्य के लिए उसका उपभोग हो। अतः धन की सार्थकता सुख या आनन्द उपलब्ध करने में है। लेकिन हर अन्य वस्तु की भाँति इसके दुरुपयोग की सम्भावना है। और जब भी इसका उपयोग निर्दोष आनन्द उत्पन्न करने के लिए नही होता, तो इसका दुरुपयोग ही होता है। और जब भी इसका उपयोग अधम, नीचतापूर्ण और स्वार्थपूर्ण मनोवेगो की तुष्टि के लिए किया जाता है, तो हमेशा इसका दुरुपयोग ही होता है।...

"अत सम्पत्ति का अधिकार एक परम्परागत अधिकार है और राष्ट्र सम्पत्ति पर कोई ऐसा अधिकार प्रदान नही करता जो जनहित के विरुद्ध हो। सम्पत्ति पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार अन्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियो के अधिकार से, जिनकी सख्या सम्पूर्ण से कम हो, अधिक ऊँचा हो सकता है, किन्तु सम्पूर्ण के अधिकार से ऊँचा नही हो सकता, क्योकि सम्पूर्ण के अधिकार में स्वयं व्यक्ति का, और अन्य सभी लोगो का अधिकार शामिल है। फलस्वरूप राष्ट्र को अधिकार है कि सार्वजनिक सड़कें या किलेबन्दियाँ बनाने के लिए, या जनहित में आवश्यक किसी अन्य उद्देश्य के लिए किसी सम्पत्ति को ले ले। सरकार को अधिकार है कि जनहित में आवश्यक किसी भी रीति से कर लगाये और वसूल करे। सरकार को यह भी अधिकार है कि किसी व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति

विदेशियो के साथ बेचने से, या उनसे अपनी इच्छानुसार वस्तुएँ खरीदने से रोक दे। सरकार को स्पष्ट और पूरा अधिकार है कि जनहित में आवश्यक नियम सम्पत्ति या व्यापार के सम्बन्ध मे बनाये।

"अतः शुल्क-पद्धति या सरक्षण-शुल्क सम्बन्धी हर प्रश्न 'अधिकार' का प्रश्न न होकर 'आवश्यकता' का प्रश्न होगा।"[1]

रेमॉण्ड का उग्र उपयोगितावाद स्पष्टतः आर्थिक लोकतन्त्र की ओर उन्मुख था। उन्हे इसकी विशेष चिन्ता थी कि हर पीढी के साथ न्याय हो और उन्होने उत्तराधिकार के नियमन की आवश्यकता पर ज़ोर दिया, ताकि राष्ट्रीय धन के रूप में जिसका उपभोग होना चाहिए, उसका निजी पूँजी के रूप में 'सञ्चय' रोका जा सके।

"सरकार अच्छे गडरिये की तरह होनी चाहिए, जो अपने रेवड़ के दुर्बल और नि.शक्त पशुओ को सहारा और पोषण देता है, जब तक उनमें बलवानो का सामना करने के लिए पर्याप्त शक्ति नही आ जाती। और ऐसा नही होने देता कि बलवान उन्हें कुचल डाले और दबा दे। किन्तु समाज में सबल वे नही होते जिन्हे प्रकृति सबल बनाती है, बल्कि वे होते हैं जो विशाल धन एकत्रित करके, या उत्तराधिकार में पाकर, बनावटी रीति से सबल बनते हैं। और आमतौर पर सरकार का सारा ध्यान और सारी देख-भाल इन्ही लोगो को प्राप्त होती है। ये अपने को ही राष्ट्र कहते है। और सरकारे आमतौर पर ऐसे तरीके निकालने मे लगी रहती हैं, जिनसे मनुष्यो मे विद्यमान, अधिकारो की प्राकृतिक समानता कायम नही रहती, वरन् धनियो के धन में और वृद्धि होने से इन अधिकारो की असमानता और बढती है। वे यह मान लेती है, या मानने का दिखावा करती हैं कि धनियो का धन बढा कर वे राष्ट्र का धन बढा रही हैं, जैसे धनी लोग ही समूचा राष्ट्र हो। ऐसी कार्यवाइयो से (जैसा मुझे विश्वास है कि मै आगे सिद्ध कर दूँगा) अनिवार्य ही गरीबी, कगाली और राष्ट्रीय विपत्ति उत्पन्न होती हैं।

"जैसा मैने पहले कहा है, शासन का महान् लक्ष्य यह होना चाहिए कि मनुष्यो के बीच शक्ति की प्राकृतिक असमानता की सगति मे, अधिकारो और सम्पत्ति की समानता, जहाँ तक सम्भव हो कायम रखे। ज्येष्ठ सन्तान का उत्तराधिकार, अनुक्रम-बन्धन और परिसीमा के कानून, और अन्य सभी ऐसे कानून जो धन को सञ्चित करते और विशिष्ट परिवारो में उसे बनाये रखते हैं, उस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष उल्लघन करते हैं।"[2]

१. डैनिएल रेमॉन्ड, 'थॉट्स ऑन पोलिटिकल एकॉनमी' (बाल्टिमोर, १८२०), पृष्ठ २१९—२२१, ३५०।

२. वही, पृष्ठ २३१-२३२।

यद्यपि स्पष्टत: यह आर्थिक लोकतन्त्र का एक दर्शन है, किन्तु राजनीतिक लोकतन्त्र इसका आवश्यक अंग नही। 'हमारे जैसे लोकप्रिय शासन' के सम्बन्ध में ह्विग लोगो की आशकाएँ रेमॉण्ड के मन में भी थी।

"मै जानता हूँ कि हमारे जैसा शासन ऐसे उदार और प्रवुद्ध सिद्धान्तो के यह आधार पर नही चलाया जा सकता और इसकी कोई आशा नही कि अन्य किसी प्रकार का शासन राष्ट्रीय समृद्धि और घन की अभिवृद्धि के लिए अधिक उपयुक्त होगा। लोग हमेशा अपने तात्कालिक हितो को देखते हैं और कुछ वर्गों का शासन पर हमेशा अनुचित प्रभाव होगा।...

"अपने जैसे लोकप्रिय शासन के सम्बन्ध में हम भय जैसी आशका के साथ यह पूछ सकते है कि राजनीतिक प्रतिभा और विधि-निर्माण सम्बन्धी ज्ञान, समझाने की शक्ति और चरित्र के अधिकार की उस विशाल मात्रा को हम कहाँ पायेंगे जो इसे स्फूर्त्तिमय और लाभदायक ढंग से चलाने के लिए आवश्यक होगी ?"[१]

फिर भी, उन्होने देशभक्ति पूर्ण स्वर में, जिसकी भावना उनमें और उनके साथी राष्ट्रवादियो में बड़ी गहरी थी, यह भी कहा—

"शासन-विज्ञान और राजनीतिक अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, हमारा देश इस घरती पर सर्वोत्तम मञ्च प्रस्तुत करता है। यहाँ वेखटने प्रयोग किये जा सकते है। यहाँ हम प्रकृति के सिद्धान्तो को अपने शुद्धतम रूप मे सक्रिय देख सकते हैं। और यही स्वतन्त्रता और समानता की उस भावना को जीवित रखना है, जिसका सारे ससार मे फैलना और पृथ्वी पर सभी राष्ट्रो को ऊष्मा और जीवन प्रदान करना अभी शेष है।"[२]

यह ध्यान देने योग्य है कि रेमॉण्ड पूँजी और उधार की सार्वजनिक उपयोगिता के अधिक कायल नही थे। बैक-व्यापार को वे मूलत. औद्योगिक समुद्दीपन मानते थे और हैमिल्टन द्वारा सार्वजनिक ऋण के निधिकरण के बारे में उन्होंने कहा—

"यह मुद्रा के परिसञ्चरण को वढावा देता और उद्योग तथा उद्यम में सहायक होता है। १७९० मे हमारे सार्वजनिक ऋण का निधिकरण राष्ट्रीय वन की अभिवृद्धि में ऐसे कार्यों की उपयोगिता का एक स्मरणीय उदाहरण है।

"इस कार्य की न्यायपूर्णता के प्रश्न में गये विना, जिसने उस समय जनता को उद्वेलित किया था, आज यह स्वीकार करना पडेगा कि राष्ट्र के घन पर इसका अत्यधिक लाभदायक प्रभाव पडा। इससे राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति मे

१. वही, पृष्ठ ३८०-३८२।

२. वही, पृष्ठ ४६६।

तो नया कुछ नही जुडा, किन्तु उद्योग और उद्यम को इससे उद्दीपन मिला। वहस के लिए, यह माना जा सकता है, जैसा इसके विरोधियो ने उस समय कहा था कि यह कार्य अन्यायपूर्ण था और इसने समाज के एक अग से धन ले कर दूसरे अंग को दे दिया। किन्तु इतना मान लेने से राष्ट्रीय धन की अभिवृद्धि में इस कार्यवाही की उपयोगिता पर कोई असर नही पड़ता। यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है अथवा नही, इसका फैसला करने की चेष्टा मै नही करूँगा, लेकिन यह सच है कि राष्ट्रीय धन की अभिवृद्धि मे किसी कार्यविशेष की उपयोगिता हमेशा उसकी न्यायपूर्णता पर आधारित नही होती।"[1]

यह स्वीकार करते हुए कि पूँजीवाद में कभी-कभी 'सार्वजनिक उपयोगिता' (न्याय नही) का गुण होता है, रेमॉण्ड ने बैंको को सब मिलाकर निश्चित रूप मे 'निजी निगम' माना, जिनके हिस्सेदारो के हित आमतौर पर सार्वजनिक हित के अनुकूल नही होते।

"अतः, हर वित्त-निगम प्रत्यक्षत राष्ट्रीय धन के लिए हानिकारक होता है और जिनके पास धन नही है, उन्हे उनको ईर्ष्या और सन्देह की दृष्टि से देखना चाहिए। वे शक्ति के बनावटी यन्त्र हैं और उन्हे यही मानना चाहिए, जिनका प्रयोग धनी लोग अपनी पहले से ही बहुत अधिक उन्नति को और बढाने के लिए करते हैं। इनका लक्ष्य मनुष्य की उस प्राकृतिक समानता को नष्ट करना है जो ईश्वर-प्रदत्त है और जिसे नष्ट करने में अपनी शक्ति लगाने का भी शासन को अधिकार नही है। ऐसी सस्थाओ की प्रवृत्ति होती है कि अन्यथा जैसी स्थिति हो, सम्पत्ति का उससे अधिक असमान विभाजन करें और मनुष्यो में अधिक असमानता उत्पन्न करें। जैसा पहले दिखाया जा चुका है, इसका आवश्यक परिणाम समाज के शेष अग के लिए गरीबी, कंगाली और कष्ट होते हैं। इन सस्थाओ के हिस्सो की रकम का राष्ट्रीय समृद्धि पर उनके प्रभाव के साथ वही अनुपात होता है जो किसी राष्ट्रीय ऋण का।"[2]

अपनी पुस्तक के दूसरे सस्करण (१८२३) में उन्होने बैंक व्यापार की उपयोगिता के सम्बन्ध मे कई पैराग्राफ जोडे, किन्तु एक पैराग्राफ ऐसा भी जोडा जिससे सकेत मिलता है कि उन्होने पूँजीवाद के खतरो को आमतौर पर, और हैमिल्टन के सार्वजनिक वित्त के खतरो को विशेष रूप मे, अधिकाधिक समझा।

"राष्ट्रीय बैंक सम्बन्धी अपनी रपट में हैमिल्टन ने आडम स्मिथ के सिद्धान्त को अपनाया और निस्सन्देह भटक गये। उन्होंने यह मान लिया कि निजी और

---

१. वही, पृष्ठ ३०४-३०५।

२. वही, पृष्ठ ४२६।

सार्वजनिक धन एक ही हैं और यह कि निजी लाभ सार्वजनिक लाभ है। फलस्वरूप वे इस नतीजे पर पहुँचे कि जिन लोगो के पास धन है, वे अगर उसे हमेशा व्याज पर दिये रह सकें और जितना धन उनके पास हो उसका दो या तीन गुना उधार दे सकें, तो इससे राष्ट्र को लाभ होगा। किन्तु ऐसा मान लेना एक मौलिक भूल है कि धातु-मुद्रा के स्थान पर कागज की मुद्रा ले आने से किसी देश की सक्रिय या उत्पादक पूँजी बढ़ाई जा सकती है। और यह मानना भी बडी भारी गलती है कि वैयक्तिक लाभ हमेशा सार्वजनिक लाभ होता है।"[1]

यद्यपि आमतौर पर वे सरक्षणवादी थे, किन्तु वे हमेशा ऊँची शुल्क-दरो के पक्ष मे नही थे। उन्होने १८२८ के शुल्क की एक विस्तृत आलोचना न्यू-इगलैण्ड के व्यापारियो के हित मे लिखी, जो उसके विरुद्ध थे। आमतौर पर रेमॉण्ड एक स्वतन्त्र नैतिकतावादी थे और उनका राजनीतिक अर्थशास्त्र उनके राजनीतिक मतो की अपेक्षा उनके नैतिक दर्शन को अभिव्यक्ति था। उन्हे न केवल जनता के सामूहिक हित की, वरन् उनके वैयक्तिक कल्याण की भी वास्तविक चिन्ता थी। उन्होने आर्थिक और नैतिक दोनो ही दृष्टियो से गुलामी की आवेशपूर्ण भर्त्सना की। सम्पन्न वर्गों द्वारा पूँजी के रूप मे 'अतिरिक्त' धन को परिसञ्चरण या उपभोग से बाहर निकाल लेने को वे राष्ट्रीय लूट और गरीबी फैलाना मानते थे, क्योकि वे धन को बचत या मितव्ययिता के सन्दर्भ मे नही (वे इसे 'लोभ' कहते थे), सुख या आनन्ददायक उपभोग के रूप में देखते थे। 'वित्त-निगमो' और अग्रेजो द्वारा 'विश्व के व्यापार पर एकाधिकार' की बुराइयो की काट के रूप में वे सार्वजनिक एकाधिकार की वृद्धि और नियमन के पक्ष में थे।

यद्यपि ह्विग राष्ट्रवाद को अपनी सर्वाधिक पूर्ण दार्शनिक अभिव्यक्ति रेमॉण्ड के राजनीतिक अर्थशास्त्र (पोलिटिकल एकॉनमी) में मिली, किन्तु अर्थशास्त्र के प्राविधिक पक्ष को मैथ्यू कैरी के पुत्र हेनरी सी. कैरी की देन अधिक ठोस थी। उनकी बहुसख्यक रचनाएँ, डेनिएल वेब्सटर से लेकर होरेस ग्रीली तक सरक्षणवादी राजनीतिज्ञो के लिए आप्त-वाक्य के समान बन गयी। लेकिन कैरी की विचार-व्यवस्था के दार्शनिक आधार ह्विग आन्दोलन के साथ उतने जुडे हुए नहीं थे, जितने रेमॉण्ड की विचार-व्यवस्था के, और वे आडम स्मिथ और संस्थापित अर्थशास्त्रियो से उतने ज्यादा दूर भी नही जाते थे। कैरी वस्तु-निष्ठावाद[2]

---

१. डेनिएल रेमॉण्ड, 'एलेमेण्ट्स ऑफ पोलिटिकल एकॉनमी' दूसरा संस्करण (बाल्टिमोर, १८२३), खंड दो, पृष्ठ १३६।

२. ऑगस्टे कॉम्टे द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धान्त जो केवल निश्चित तथ्यो और पर्यवेक्षण योग्य क्रियाओ को ही स्वीकार करना है।—अनु०

(पाज़िटिविज्म) से अत्यधिक प्रभावित थे। वे संस्थापित अर्थशास्त्र को 'सामाजिक विज्ञान' का तत्व-मीमासा-सोपान मानते थे और सामाजिक विज्ञान की एकता सम्बन्धी अपनी स्थापना को उन्होने प्राकृतिक नियम की एकता सम्बन्धी वस्तु-निष्ठावाद के सामान्य विश्वास पर आधारित करने की चेष्टा की। प्राकृतिक नियम की एकता का अर्थ था मनुष्य की एकता, और कैरी ने 'आर्थिक मनुष्य' और नैतिक मनुष्य के तत्वमीमासात्मक अमूर्त्तकरण की प्रभावशाली आलोचना की। मनुष्य एक जीवित व्यक्ति है, जिसका श्रम, पूँजी, नैतिकता, नियम सब 'प्रकृति पर उसके स्वामित्व' के सहयोगी 'औज़ार' है। सामाजिक नियम, प्रगति के नियम हैं और प्रगति का अर्थ कैरी के लिए बहुत कुछ वही था जो हर्बर्ट स्पेन्सर के लिए विशिष्टीकरण या वैयक्तीकरण की प्रक्रिया। किन्तु स्पेन्सर के विपरीत, कैरी 'सम्बद्धता' को ऐसी प्रगति का मुख्य साधन मानते थे। राष्ट्र मूलतः राजनीतिक गठन नही होता, वरन् श्रम-विभाजन का एक सगठन होता है। राष्ट्रीय सगठन प्रगति का एक रूप है, क्योकि वह 'व्यापार' को 'वाणिज्य' मे व्यवस्था हीन या 'मुक्त' विनिमय को उत्तरदायित्व की एक त्रिकेन्द्रित व्यवस्था में परिवर्तित करता है, जिसमे एक सम्पूर्ण आत्म-निर्भर इकाई में हर सदस्य का योग होता है। कैरी अग्रेजी साम्राज्य को विशालतम पैमाने पर 'व्यापार' मानते थे, अत्यधिक केन्द्रित अराजकता मानते थे और आर्थिक साम्राज्यवाद को वे पूर्णतः प्रगति का प्रतिपक्षी मानते थे, क्योकि वह व्यवस्थित शोषण होता है, जबकि एक सचमुच राष्ट्रीय अर्थतन्त्र का रूप विशेषज्ञता के द्वारा पारस्परिक सहायता का होता है। इसी प्रकार राजनीतिक लोकतन्त्र को वे स्वशासन या 'सामाजिक विज्ञान' की दिशा में सामान्य प्रगति का केवल एक पक्ष मानते थे। उन 'नियमो' की खोज और प्रयोग जो अपने लिए उच्चतम वैयक्तिकता और सम्बन्ध की अधिकतम शक्ति प्राप्त करने के प्रयास में मनुष्य का परिचालन करते हैं।[1]

किन्तु कैरी केवल दार्शनिक सिद्धान्तो का निरूपण करने वाले ही नही थे। वे राष्ट्रवाद के एक सफल प्रचारक थे। 'अमरीकी व्यवस्था' की उनकी व्याख्या के पीछे जो भावात्मक अपील और नैतिक ईमानदारी थी, उसे व्यक्त करने के लिए किसी भी वर्णन से ज्यादा अच्छा होगा कि हम उनके सन्देश का एक नमूना देखें।

"ससार के समक्ष दो व्यवस्थाएँ हैं। एक व्यापार और यातायात में लगे हुए लोगो और पूँजी के अनुपात को बढाना चाहती है और इसलिए व्यापार क

---

१. हेनरी सी० कैरी, 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ सोशल सायन्स', अर्नेस्ट टीलहाक की पुस्तक 'पायनियर्स ऑफ अमेरिकन एकॉनमिक थॉट इन दी नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (न्यूयार्क, १९३६) मे उद्धृत पृष्ठ ५८।

वस्तुओ के उत्पादन मे लगे हुए अनुपात कम करना चाहती है, जिससे सभी के श्रम का लाभ 'अवश्यमेव' कम होगा। दूसरी व्यवस्था उत्पादन कार्य के अनुपात को बढाना और व्यापार व यातायात के अनुपात को घटाना चाहती है, जिससे सभी को लाभ होगा, मजदूरो को अच्छा वेतन मिलेगा और मालिक को अपनी पूँजी पर अच्छा लाभ।...एक व्यवस्था व्यापार की 'अवैध' स्वतन्त्रता को कायम रखना चाहती है, जो सरक्षण के सिद्धान्त से इनकार करती है, लेकिन राजस्व-शुल्को के द्वारा सरक्षण देती है। दूसरी 'वैध' स्वतन्त्र व्यापार के क्षेत्र को वढाने के लिए सर्वथा दोष-रहित सरक्षण स्थापित करना चाहती है, जिसमे वाद मे व्यक्ति और समुदाय शामिल होते जाएँगे और अन्तत' चुगीघर समाप्त हो जाएँगे। एक व्यवस्था ऐसे रेगिस्तानी इलाको पर कब्जा करने के लिए मनुष्यो को भेजना चाहती है, जिन पर कूटनीति या युद्ध के द्वारा अधिकार किया गया हो। दूसरी, खाली ज़मीन पर वसने के लिए लाखो व्यक्तियो को लाकर उस ज़मीन के मूल्य को वहुत अधिक वढाना चाहती है।...एक व्यवस्था वाणिज्य की आवश्यकता को वढ़ाना चाहती है, दूसरी उसे कायम रखने की शक्ति को। एक चाहती है कि हिन्दू[1] को पूरा काम न मिले और शेष ससार भी गिर कर उसी के स्तर पर आ जाए। दूसरी सारे ससार के लोगो का स्तर उठा कर हमारे स्तर तक लाना चाहती है। एक की दृष्टि कंगाली, अशिक्षा, आवादी के विनाश और जंगलीपन की है। दूसर की दृष्टि धन, आराम, वुद्धि, तथा श्रम और सम्यता के मेल को वढ़ाने की है। एक सार्वत्रिक युद्ध की ओर देखती है, दूसरी सार्वत्रिक शान्ति की ओर। एक इगलिस्तानी व्यवस्था है, दूसरी को हम गर्व के साथ अमरीकी व्यवस्था कह सकते हैं, क्योकि अव तक निरूपित व्यवस्थाओं में एकमात्र यही ऐसी है, जिसमे सारे ससार के लोगो की दशा को उन्नत करने और समानता के स्तर पर लाने की प्रवृत्ति है।

सयुक्त राज्य अमरीका के लोगो का यही सच्च मशन है।

"ऐसे साम्राज्य की स्थापना—यह साबित करना कि ससार के लोगो के बीच, चाहे वे खेतिहर हो, विनिर्माता हो या व्यापारी, हितो की पूर्ण समरसता है और यह कि व्यक्तियों का सुख और राष्ट्रो की शान इस महानतम आदेश का पालन करने से ही वढेगी कि 'दूसरो के साथ वही करो जो तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें'—इस मिशन का लक्ष्य है और यही इसका परिणाम होगा।"[2]

---

१. हिन्दुस्तानी—अनु०।

२. हेनरी सी कैरी 'दी हारमनी ऑफ इन्टरेस्ट्स, ऐग्रिकल्चरल, मैनुफैक्चरिंग ऐन्ड कर्मशियल,' दूसरा संस्करण (न्यूयार्क, १८५६), पृष्ठ २२८-२२९।

कैरी के सामाजिक विज्ञान के दर्शन ने जिन लोगों को प्रेरणा दी, उनमे हार्वर्ड के प्रोफेसर फ्रासिस बावेन भी थे। उन्होने असाधारण विद्वत्ता के साथ तत्व-मीमासा और तर्कशास्त्र के अतिरिक्त राजनीतिक अर्थशास्त्र पर भी एक प्रवन्ध लिखा। यद्यपि वे एक दार्शनिक थे, किन्तु परम्परागत ह्विग सिद्धान्तो के पुनर्निरूपरण के अतिरिक्त उनका राजनीतिक अर्थशास्त्र दर्शन से पूर्णतया मुक्त है। उनकी रचना 'अमेरिकन पोलिटिकल एकॉनमी' (अमरीकी राजनीतिक अर्थशास्त्र) का अन्तिम पृष्ठ कैरी के इस सिद्धान्त का साराश-सा लगता है कि 'प्रगति विशिष्टीकरण के द्वारा औद्योगीकरण की ओर ले जाती है।'

"विधि-निर्माण की सर्वोत्तम नीति वह है जो किसी देश के प्राकृतिक प्रसाधनो का सर्वाधिक प्रभावकारी रूप मे विकास करे, चाहे वे मानसिक हो या भौतिक। यान्त्रिक कौशल या आविष्कार बुद्धि को बेकार पडी रहने देना कम से कम उतना ही बडा अपव्यय है, जितना जलशक्ति को बिना चक्कियाँ चलाये वह जाने देना, या खनिज धन को धरती में ही दबे रहने देना, या जहाँ कपास और अनाज बहुतायत से हो सकता है, वहाँ जगल बने रहने देना। अगर लोगो का रोज़गार मुख्य रूप मे कृषि-कर्म का स्थूल श्रम ही रहेगा, तो कलाओ के कुशल-श्रम का अधिक वेतन समाप्त करना पडेगा। और यह आर्थिक दृष्टि से उतना ही बुरा होगा जितना हमारी सर्वोत्तम भूमि को भेडो की चरागाह बना देना, या पशुओ को सबसे बढिया गेहूँ खिलाना। खेती के काम में अलग-अलग लगे रहने के लिए, जिसमें अधिकाश लोगो का काम ऐसा होगा कि किसी फिजीद्वीपवासी की बुद्धि का भी पूरा उपयोग न हो सके, आबादी को विशाल भू-भाग मे फैला देना न केवल धन-वृद्धि की दृष्टि से, वल्कि मानवता के अधिक उच्च हितो के लिए भी घातक होगा। वन्य-प्रान्त के जीवन की कठिनाइयाँ और मुसीवतें उस देन के साथ जुडी हुई एक जबरदस्त दिक्कत है, जो खेतो को निर्मूल्य ऐसी भूमि प्रदान करती है, जिसमें बीज सौगुने होकर उगते हैं। रुचि, प्रतिभा और स्वभाव की सारी विभिन्नताओ को पूरा मौका देना, आविष्कार वुद्धि का पोषण करना, सभी कलाओ को पर्याप्त प्रोत्साहन देना, चाहे वे यान्त्रिक कलाएँ हो या ऐसी जिन्हे आमतौर पर ललित कलाएँ कहा जाता है, लोगो को केन्द्रित करना, या उनके अधिकतम सम्भव भाग को मानवीयता के प्रभावो और मानसिक संस्कार व सामाजिक सुधार के अधिक वहुल साधनो के अन्तर्गत लाना, जो केवल नगरो और वडे कस्वो मे ही उपलव्ध हो सकते हैं—ये ऐसे लक्ष्य हैं जो कम से कम उतना ही ध्यान देने योग्य है, जितना यह प्रश्न कि सूती कपडा हम सबसे सस्ता कहाँ खरीद सकते हैं या कि हम स्वय अपनी रेलो के लिए लोहा तैयार कर सकें, इसके लिए हमें कितना आर्थिक वलिदान करना होगा। मैं नही समझ पाता कि हमारे जैसे

देश मे, जो खेती, निष्क्रमण और लोगो के परस्पर अलगाव के लिए बहुत अधिक सुविधाओ से अभिशप्त कहा जा सकता है, हम बिना अपने विनिर्माण उद्योग को कम से कम और आधी शताब्दी तक सरक्षण शुल्क की चौड़ी ढाल प्रदान किये, ऐसा किस प्रकार कर सकते हैं।''[1]

सामान्य जन

जेफरसनवादियो और राष्ट्रीय गणतन्त्रवादियो ने मिल कर जैकसन के लोकतन्त्र का सैद्धान्तिक औचित्य निर्मित कर दिया था। अधिकांश राज्यो में सम्पत्तिविहीन नागरिको को मताधिकार प्राप्त करने के लिए कठिन सघर्ष करना पडा, जो अन्तत. उन्हे शताब्दी के तीसरे दशक मे प्राप्त हो गया। किन्तु यह बात बहुत पहले से स्पष्ट थी कि लॉक के सिद्धान्त के अनुसार हर नागरिक के पास सम्पत्ति होनी चाहिए,[2] और ह्विग लोगो ने इगलिस्तान और अमरीका दोनो में ही जो समझौता किया, जिसके अनुसार सम्पत्तिविहीन लोगो की बढती हुई संख्या प्रतिनिधि सरकार के मौलिक नागरिक अधिकार से वञ्चित थी, उसका स्पष्टत: गणतन्त्रवादी सिद्धान्त के अनुसार समर्थन नही किया जा सकता था, यद्यपि व्यवहार में उसे जब तक सम्भव था, कायम रखा गया। 'हम, राष्ट्र के लोग' पर जोर देने के साथ-साथ ह्विग लोगो द्वारा एक सक्रिय कार्यकारिणी की माँग, ऐन्ड्रू जैकसन के शासन की स्वीकृति के लिए पर्याप्त थी। ह्विग राष्ट्रवाद ने रूसो के 'सामान्य सकल्प' का अमरीकी प्रतिरूप भी प्रस्तुत किया था। यद्यपि अमरीका में रूसो की इस स्थापना का तार्किक समर्थन खोजना कठिन है कि जनता का सकल्प हमेशा सही होता है[3], किन्तु मैडिसन के समय से अमरीकी राजनीतिक सिद्धान्त का यह एक स्वयसिद्ध सूत्र बन गया था

---

१. फ्रान्सिस बॉवेन, 'अमेरिकन पोलिटिकल एकॉनमी', (न्यूयार्क १८७०), पृष्ठ ४६४-४६५।

२ हैरिंगटन ने प्रजाधिपत्य की परिभाषा ऐसे राज्य के रूप में की थी, जिसमें 'सभी लोग भूस्वामी हो।'

३. 'जनता की आवाज, ईश्वर की आवाज है', इस सिद्धान्त के निकटतम दृष्टि एडवर्ड एवरेट के 'ओरेशन आन दी फर्स्ट रिवॉल्यूशनरी वार', कॉन्कार्ड, १६ अप्रैल, १८२५। देखिए, उनकी 'ओरेशन्स ऐन्ड स्पीचेज़', चौथा सस्करण (बोस्टन, १८५६), पृष्ठ ६७।

कि जनता की इच्छा ही प्रभु है। केवल प्रभु को शिक्षित करना या मैडिसन के शब्दो मे जनमत को प्रबुद्ध करना ही शेष था।

राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना में आस्था से अधिक भय का हाथ था। जेम्स फैनिमोर कूपर ने व्याप्त भावना को प्रकट किया।

"अमरीकियो की आदतें, मत, कानून और मै कह सकता हूँ कि सिद्धान्त भी, नित्य अधिकाधिक लोकतान्त्रिक होते जा रहे हैं। हम अच्छी तरह समझते हैं कि कुछ हजार बिखरे हुए व्यक्तियो के वोट देश की समृद्धि या नीति पर कोई बडा या दीर्घजीवी प्रभाव नही डाल सकते, किन्तु वञ्चित रहने पर, उनका असन्तोष बड़ी झझट पैदा कर सकता है।"[1]

सस्थापित गणतन्त्रवाद से हट कर देश जैक्सन के लोकतन्त्र मे बिना यह समझे चला आया कि सैद्धान्तिक पुनर्निरूपण की भी आवश्यकता थी। कूपर एक अपवाद थे, क्योकि 'दी अमेरिकन डेमोक्रैट' (१८३८) मे उन्होने जैक्सन कालीन सम्भ्रान्तियो की सावधानी से समीक्षा की और चेष्टा की कि अपने जेफरसनवादी सिद्धान्तो, अपनी अभिजात रुचियो और लोकतन्त्र में अपनी सच्ची निष्ठा से द्रोह किये बिना, सस्ती लोकप्रियता के तरीको के प्रति अपनी घृणा को कायम रखें। लोकतन्त्र के दर्शन की दृष्टि से कूपर की रचनाएँ टाक्यूविले से अधिक ध्यान देने योग्य है और उनकी ओर अभी तक पर्याप्त ध्यान नही दिया जाता। अपने प्रारम्भिक लेखन में भी उन्होने इस सामान्य राय की समीक्षा करने का कष्ट उठाया कि सम्पत्ति के हितो का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और उन्होने अधिक लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण को साररूप में प्रस्तुत किया।

"हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि बिना पर्याप्त कारण के, प्राकृतिक न्याय के इतने विरुद्ध जाना उचित नही है कि किसी व्यक्ति को केवल इस कारण मताधिकार से वञ्चित कर दिया जाए कि वह ग़रीब है। यद्यपि समाज की विशिष्ट दशाओ मे सम्पत्ति की कोई गौण शर्त कभी-कभी उपयोगी हो सकती है, लेकिन उसके प्रतिनिधित्व से बड़ी कोई गलती नही हो सकती।.. कोई व्यक्ति किसी मिश्रित पूंजी वाली कम्पनी से स्वेच्छया सम्बद्ध हो सकता है और अपने आर्थिक हित के अनुपात में, कम्पनी के प्रबन्ध मे भाग लेने का उसे न्यायोचित अधिकार हो सकता है। लेकिन जीवन कोई अधिकार-पत्रित सस्था नहीं है। मनुष्यो की सारी आवश्यकताएँ और मनोवेग, आनन्द के साधन और कष्ट के कारण सब जन्म से ही उनके साथ होते है और बहुधा बडी असुविधा का कारण होते हैं।

---

१. जेम्स फेनिमोर कूपर, 'नोशन्स ऑफ दी अमेरिकन्स, पिक्ड अप बाइ ए ट्रैवेलिंग बैचेलर' (फिलाडेल्फिया, १८२८), खण्ड १, पृष्ठ २६४-२६६।

यद्यपि शासन निस्सन्देह एक प्रकार का अनुबन्ध है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जो लोग उसकी शर्तें निर्धारित करते है, उनका यह स्वाभाविक कर्तव्य है कि सब के अधिकारो का ध्यान रखें।

"सम्पत्ति के प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त कहता है कि जिसके पास कम है, वह उस व्यक्ति के धन को खर्च नही करेगा, जिसके पास अधिक है। किन्तु अनुभव और सामान्य बुद्धि क्या कहते है? जिसके पास अधिक होता है, वही सार्वजनिक धन का अपव्यय करता है। जो रकम उनके लिए गौण हो, वह अपेक्षतया गरीब आदमी के लिए सब कुछ हो सकती है। निस्सन्देह, ससार मे वही शासन सार्वजनिक धन के प्रति सबसे अधिक लापरवाह होता है, जिसमे शक्ति केवल अतिधनी लोगो की सम्पत्ति होती है। .

"हम देखते हैं कि हमारा शासन लोकप्रिय होने के कारण अधिक सस्ता और अधिक सबल भी है। इसमें शक नही कि जिनके पास कम है, उनकी ईर्ष्या कभी-कभी नकली मितव्ययिता का कारण बनती है और प्रतिभा का अधिक मूल्य लगा कर बहुधा धन को बचत की जा सकती है। हम दोषहीनता का दावा नही करते, लेकिन इतना जरूर कहते हैं कि अन्यत्र व्यवहृत किसी तरीके की अपेक्षा, इस तरीके में ज्यादा अच्छाई है।"[1]

यहाँ लॉक और रूसो का विवाद अन्ततः सामने आ जाता हैं और लोकतन्त्र तथा ह्विग-वाद का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

१८२५ तक यह बात साफ हो गयी थी कि सामान्यजन सत्तारूढ़ होंगे। केवल इसके भयकर परिणामो की पूर्व-कल्पना करना शेष था। लोकतन्त्र के प्रति श्रद्धा और तिरस्कार को मिश्रित भावना, जिसकी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति टाक्यूविले की रचना 'डेमाक्रेसी इन अमरीका' में हुई है, बहुतेरे अमरीकी भद्र-पुरुषो मे थी। कारण यह था कि यद्यपि सामन्ती वर्ग अमरीका में जडें नही जमा सके और यूरोपीय लोग अमरीकी समाज को स्वभावतः लोकतान्त्रिक समझते थे, किन्तु सभी पूर्वी राज्यो में अमीर और गरीब के बीच एक वर्ग-चेतना व्यक्त हो रही थी जो खण्ड-हितो की प्रतिद्वन्द्विता को काटती और सम्भ्रमित करती थी। दोनों ही पक्षो मे इस वर्ग-चेतना ने परस्पर निन्दा का रूप लिया। जैक्सनकालीन लोकतन्त्र के साहित्य मे चुस्त फिकरो का बाहुल्य है, किन्तु दर्शन का अभाव है। इस वर्ग-सघर्ष के दार्शनिक निरूपण के निकट हमे केवल कभी-कभी प्रस्तुत 'सम्पत्ति के अधिकार' का दावा मिलता है। सर्वप्रथम मजदूर नेताओं में से एक, थामस

---

१. वही, खंड १, पृष्ठ २६४-२६५। सम्पत्ति के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था पर कूपर के उपन्यास 'दी मोनिकिन्स' मे व्यग्य किया गया है।

स्किडमोर ने १८२६ में 'दी राइट्स ऑफ मैन टु प्रापर्टी' शीर्षक के अन्तर्गत एक प्रभावशाली प्रचार-पुस्तिका लिखी।

"धरती के गर्व भरे और धनी मालिको, इस पर नज़र डालो और देखो कि क्या...स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करने के अधिक 'सम्मानीय' तरीके को सहमति देना तुम्हारी शक्ति में नही है ? अगर तुम्हे ऐसा नहीं करना तो कह दो। मैं तुमसे इसलिए नही पूछ रहा हूँ कि ऐसी सहमति देकर कोई कृपा करना तुम्हारे अधिकार मे है। यह समाज और अन्य हर समाज, जब भी वे अपने अधिकारो को समझेंगे, उनमें स्वय अपनी शक्ति इतनी काफी होगी कि बिना तुमसे कुछ ग्रहण किये जो कुछ उचित समझें करें। इसलिए पूछ रहा हूँ कि अनिच्छा के अप्रिय किन्तु निष्फल दृष्टिकोण की अपेक्षा, मुक्त रूप से ऐसी सहमति प्रदान करना स्वय तुम्हारे हित के अधिक अनुकूल होगा। इस राज्य में तीन लाख स्वतन्त्र नागरिको के हाथ में वोट हैं, जिन्हे तुम्हारे अधीन कोई शक्ति छीन नही सकती। और इन स्वतन्त्र नागरिको मे ढाई लाख से अधिक ऐसे हैं, जिन्हे एक पिछली पीढी ने, तुम्हारे साथ और अपने अधिकारो के प्रति उनके अज्ञान के साथ मिल कर, ऐसी दशा में रखने की साज़िश की है कि जिस राज्य के वे नागरिक हैं, उसमे उनकी कोई सम्पत्ति नही है, यद्यपि इस सम्पत्ति पर उनका उतना ही अधिकार है जितना अन्य किसी जीवित व्यक्ति का।"[1]

यह बात सिद्धान्त और व्यवहार में असली प्रश्न के मर्म तक जाती थी। लेकिन सब मिलाकर जैकसनकालीन लोकतन्त्रवादियो ने अपने से बडो का ही अनुसरण किया और लोकतान्त्रिक राजनीतिक अर्थशास्त्र के बजाय, लोकतान्त्रिक राजनीतिक अभियानो में अपने योगदान के रूप मे गाली-गलौज़ भरी निन्दा में ही लगे रहे। जैसा डी टाक्यूविले ने बताया, राजनीतिक शब्दजाल की कलाएँ, वादविवाद की अधिक प्रबुद्ध कलाओ को बेदखल कर रही थी।

न्यू-इंगलैण्ड के संघवादियो ने इस प्रकार के विवाद का एक बुरा उदाहरण प्रस्तुत किया था। 'स्क्वायर' फिशर एम्स[2] ने जो एक सौम्य व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे, कहा—"यह (लोकतन्त्र) एक प्रकाशमान् नरक है, जिसमें पश्चात्ताप, भय और यातना के बीच भी उत्सव के स्वर गूँजते हैं, क्योंकि अनुभव बताता है

---

१. थॉमस स्किडमोर 'दी राइट्स ऑफ मैन टु प्रॉपर्टी। बीइंग ए प्रॉपोजीशन टु मेक इट ईक्वल एमंग दी एडल्ट्स आफ दी प्रेजेन्ट जेनरेशन' (१८२६, डब्ल्यू थॉर्प, एम० कुर्टी और सी० बेकर की पुस्तक 'अमेरिकन इश्यूज' में, शिकागो १६४१, खंड १, पृष्ठ २२३-२३८।

२. स्क्वायर, छोटे भूस्वामियो के लिए प्रयुक्त उपाधि—अनु०

कि नरकवास के इस सर्वाधिक विषाक्त रूप मे एक आनन्द बच रहता है—दूसरो की दुर्दशा करने की शक्ति।'[१] और नोह वेब्सटर ने शिकायत की कि मॅसाचुसेट्स में लोकतान्त्रिक मताधिकार का एक विधेयक व्यक्तियो के धन को 'एक निदर्यी गुट के लोभ' की मर्ज़ी पर छोड़ देगा, 'जिनके पास खोने के लिए कुछ नही है'।[२] सघवादी पत्रो में लोकतन्त्रवादियो को आमतौर पर 'धन और नैतिकता दोनो मे ही निकृष्ट व्यक्ति', 'मानव जाति की तलछट,' 'दुर्गुण और गरीबी के दास' और ऐसे व्यक्ति जिनका कभी सुधार नही हो सकता, क्योंकि 'उनका झगड़ा प्रकृति के साथ और अनन्त है' आदि, आदि कहा जाता था। इस प्रकार के व्यक्तिगत आक्षेपो का उत्तर भी लोकतन्त्रवादियो ने उसी भाषा में दिया। इस विवाद का अर्थ स्पष्ट था—लोकतन्त्र की चर्चा होने पर हर किसी के दिमाग़ मे प्रश्न वस्तुतः लोकतन्त्र का नही वरन् धनी और निर्धन के संघर्ष का उठता था। लोकतन्त्र, लोकप्रिय शासन का सिद्धान्त नही था, वरन् वर्ग-संघर्ष का एक प्रतीक था। अतः अगर हम जैकसन-कालीन लोकतन्त्र की आत्मा को समझना चाहते हैं, तो हमें इस सघर्ष के साहित्य पर नज़र डालनी होगी।

उदारवादियो की निश्चिन्तता पर पहली गम्भीर चोट उस समय पड़ी, जब कुछ प्रतिष्ठित (अर्थात् सम्पन्न) लोकतन्त्रवादी 'जनता' के बारे मे जेफरसनवादियो के ढीले-ढाले लोकोपकारी स्वर में नही, वरन् एक अर्द्ध-रोमानी, अर्द्ध-मसीहाई स्वर में बोलने लगे और कहने लगे कि ग़रीबो पर भी भरोसा करना चाहिए। मिसाल के लिए, लोकतन्त्रवादी इतिहासकार जार्ज बेन्क्रॉफ्ट के उस भाषण को लें जो उन्होने १८३५ मे विलियम्स कालेज में दिया, जिसके बारे मे सन्देह किया जाता था कि उसकी सहानुभूति लोकतन्त्रवादियो के साथ है। उस समय जैक्सन की राजनीतिक अपने शिखर पर थी।

"मनुष्य मे एक आत्मा है। केवल कुछ विशेषाधिकारयुक्त लोगो में ही नही, केवल हममें से कुछ उन लोगो में ही नही जो ईश्वर की कृपा से बढ़िया स्कूलो में पले हैं। 'यह मनुष्य मात्र मे है' मनुष्य जाति का एक गुण है। आत्मा, जो सत्य की मार्गदर्शिका है, मानव परिवार के हर सदस्य को मिली हुई एक कृपापूर्ण भेंट है।

"अगर तर्कबुद्धि एक सार्विक गुण है, तो सार्विक-निर्णय सत्य की निकटतम

---

१. 'दी वर्क्स ऑफ फिशर एम्स' मे "दी डेंजर्स ऑफ अमेरिक्न लिबर्टी" (बोस्टन, १८०६) पृष्ठ ४३२।

२. डब्ल्यू० ए० रॉबिन्सन, 'जेफ़रसोनियन डेमाक्रेसी इन न्यू-इंगलैंड' (न्यू-हैवेन, १९१६) में उद्धृत पृष्ठ १२३।

कसौटी है। सामान्य दिमाग मतो की भूसी और अन्न को अलग करता है, यह ऐसी छलनी है जो त्रुटियो और तथ्यो को अलग-अलग करती है।

"अगर हमारे यहाँ कलाओ का शानदार विकास होना है, तो इसकी प्रेरणा जनता की स्फूर्ति से ही आयेगी। सरक्षको की चापलूसी करने के लिए, या बैठकें सजाने के लिए प्रतिभा सृजन नही करेगी। उसे अधिक व्यापक प्रभावो की कामना है, वह अधिक व्यापक सहानुभूतियो से पोषण पाती है।"

"जनता का सुख विधि-निर्माण का सच्चा लक्ष्य है और यह तभी प्राप्त हो सकता है जब मानव-समुदाय को स्वयं अपने हितो का ज्ञान हो और वे स्वयं उनका ध्यान रखें। हमारी स्वतन्त्र संस्थाओ ने मनुष्यो के बीच झूठे और अश्लाघनीय भेदो को समाप्त कर दिया है और कुल-गर्व को सन्तुष्ट करने से इनकार करके यह स्वीकार किया है कि सामान्य दिमाग ही किसी प्रजाधिपत्य की सच्ची सामग्री होता है।"

"सभ्यता की प्रगति की सही कसौटी यही है कि सामान्य दिमाग की बुद्धि किस सीमा तक धन और पाशविक शक्ति पर प्रभावी होती है। दूसरे शब्दो में, जनता की प्रगति ही सभ्यता की प्रगति की कसौटी है।"[1]

इसे शास्त्रीय शब्दजाल और जर्मन[2] स्वच्छन्दतावाद कह कर टाला जा

---

१. जार्ज बैंक्रॉफ्ट, 'दी आफिस ऑफ दी पीपुल इन आर्ट, गवर्नमेन्ट ऐण्ड रेलिजन', 'लिटरेरी ऐण्ड हिस्टॉरिकल मिसेलैनीज़' (न्यूयार्क, १८५५) मे, पृष्ठ ४०६, ४१५, ४१८-४१६, ४२२, और जासेफ ब्लों द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलॉसफिक ऐड्रेसेज १७००-१६००' (न्यूयार्क, १६४६) मे, पृष्ठ ६८-११४।

२. बैंक्रॉफ्ट हार्वर्ड के उन युवको में थे, जिन पर विदेश में स्नातकोत्तर शिक्षा के समय जर्मन स्वच्छन्दतावाद का गहरा प्रभाव पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक्रॉफ्ट के विशिष्ट लोकतान्त्रिक विचारों का उदय उनके दिमाग में कान्ट के नीतिशास्त्र और श्लीअरमाखर के धर्मशास्त्र के एक व्यावहारिक रूप मे हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम इन विचारों का निरूपण राजनीति के सिद्धान्त या इतिहास की व्याख्या के रूप में नहीं, वरन् शिक्षा के दर्शन के रूप में किया। उन्होने नीचे लिखे चतुर सिद्धान्तो को एक स्कूल के लिए कार्यक्रम के रूप में प्रस्तुत किया, जिसकी स्थापना बाद मे उन्होने और उनके सहयोगियो ने नॉर्दम्पटन में की (१) यूनानी भाषा, सभी भाषाओं मे प्रथम, (२) मानसिक अनुशासन के लिए प्राकृतिक इतिहास, (३) कक्षा में प्रतियोगिता की समाप्ति, (४) शारीरिक दण्ड को पतनशील मानकर उसकी समाप्ति, (५) कक्षाओं को

सकता था, अगर यह तथ्य भी साथ में न होता कि प्रेसीडेण्ट जैक्सन ने उसी समय राष्ट्रीय बैंक विधेयक के विरुद्ध निषेधाधिकार का प्रयोग किया था और अपने सन्देश मे इन्ही सिद्धान्तो को बडे तीखे और अत्यधिक व्यावहारिक रूप मे व्यक्त किया था। और वक्ता (बैंक्रॉफ्ट) ने स्वयं भी जैकसन द्वारा बैंक की आलोचना का समर्थन किया था। नवनिर्मित वर्किंगमेन्स पार्टी (मजदूर दल) ने उन्हे एक राज्य का सेनेटर (उच्च सदन का सदस्य) भी मनोनीत किया था। उन्होंने अपना मनोनयन स्वीकार नही किया, किन्तु उन्हें एक बार लोभ जरूर हुआ था कि अपने मित्र टिकनॉर की चेतावनी कि वे 'जैकसनवादियो और मजदूर दल वालो से दूर रहे', की अवज्ञा करने के लिए उसे स्वीकार कर लें। उन्होने अपने अन्य मित्र और जर्मन ग्रन्थो के अध्ययन में अपने सहयोगी एडवर्ड एवरेट को लिखा कि 'लोकपक्ष के अतिरिक्त लिखने-पढने वाले व्यक्ति को राजनीति मे बड़ी सफलता नही मिल सकती।' उन्होने बुद्धिमानी से यह समझ लिया कि अगर वे ह्विग-विरोधी समूहो मे से किसी एक के साथ अपना भाग्य जोडने के बजाय, उन समूहो में एकता लाने का प्रयास करें—वर्किंगमेन्स पार्टी, डेमॉक्रैटिक पार्टी और ऐण्टी-मैसोनिक पार्टी—तो वे अधिक 'लोकप्रिय' होंगे।

बैंक्रॉफ्ट में जैकसनकालीन लोकतन्त्र की यह प्रतिरूपी योग्यता थी कि विश्वास के साथ सामान्य-जन और सामान्य दिमाग की तर्कसंगति को दृढता से प्रस्तुत करने के साथ-साथ वे सस्ते प्रचार के अधिकतम खुले रूपो का भी इस्तेमाल करते थे। एक राजनीतिक अभियान सम्बन्धी उनके भाषण की कुछ टिप्पणियाँ नीचे दी जा रही हैं, 'सामाजिक दर्शन' का एक पैनी दृष्टि वाला नमूना, जो आधी आस्था है, आधी चापलूसी।

"श्रम के अधिकारो को दृढता से प्रस्तुत करना इस युग का मिशन है। हर समूह, जिसने अपने अधिकार प्राप्त कर लिए हैं, लोकतन्त्र को अपना सर्वोत्तम मित्र पाता है।...

"किसान गणतन्त्र की सच्ची सामग्री होते है, जिनमे अच्छा प्रभाव, आकर्षक अंकन, ग्रहण करने की क्षमता होती है; असली संगमरमर जिसे ईश्वर की मूर्ति के रूप में गढ़ा जा सकता है। सच्चरित्र किसान सामग्री है, स्वतन्त्रत आत्मा है।

वैयक्तिक विभिन्नता पर आधारित करना, (६) अनाथो को ग्रामीण अध्यापको के रूप में शिक्षित करना, (७) स्कूल के लिए एक मुद्रणालय की स्थापना। लोकतान्त्रिक शिक्षा से लोकतान्त्रिक राजनीति की ओर बैंक्रॉफ्ट के संक्रमण का वर्णन उनके जीवनी लेखक ने बड़े रोचक ढंग से किया है। देखिए, रसेल बी० नाइ 'जार्ज बैंक्रॉफ्ट, ब्राहमिन रेबेल (न्यूयार्क, १९४४) पृष्ठ ७४।

"श्रम के पुरस्कार—श्रम का फल मिलना चाहिए। जो अधिक श्रम करे उसे अधिक मिले और इसका प्रतिलोम भी। व्यापारी कुछ उत्पन्न नहीं करता, केवल विनिमय करता है। अतः नगर विनिर्माता और किसान के श्रम पर जीवित रहता है।"

"किसानों ने मिस्त्रियों की सहायता से क्रान्ति मे सफलता पाई। हमारी स्वतन्त्रता का आगे विस्तार मिस्त्रियों पर निर्भर है।"

"जनता प्रभु है। अध्ययनशील व्यक्ति उसका सलाहकार है। अर्थात् इस देश में शिक्षित लोग प्रभु की राज-परिषद् हैं।"[1]

यह बताना आसान नहीं है कि कब बैंक्रॉफ्ट स्वयं अपनी दृष्टि में सच बोल रहे हैं और कब राजनीति का खेल कर रहे हैं। इसी प्रकार उनकी रचना 'संयुक्त-राज्य का इतिहास' (हिस्टरी आफ दी यूनाइटेड स्टेट्स) या 'अमरीकी लोगो का इतिहास' (हिस्टरी आफ अमेरिकन पीपुल) जैसा कि उसे अधिक औचित्य के साथ कहा जाता है, अमरीका में स्वतन्त्रता के विकास का एक वस्तुनिष्ठ विवरण भी है, और जैसा उनके मित्रो ने कहा, 'जेक्सन के लिए एक वोट' भी। बैंक्रॉफ्ट का विश्वास था कि इतिहास स्वतन्त्रता का इतिहास है और निर्णय का समय है। जब उन्होने 'सामान्य दिमाग' की बात कही तो उनका तात्पर्य जनता के सामूहिक दिमाग से था। उनका परात्परवाद एमर्सन की अपेक्षा हीगेल के अधिक निकट था। तद्नुसार, जब उन्होंने अपने सहयोगी ओरेस्टेस ब्राउनसन को लिखा कि 'जनसमूह का दिन अब आ गया है,' तो वे इतिहास का एक तथ्य प्रस्तुत करने के साथ-साथ एक फैसला भी दे रहे थे।

जिस प्रकार बोस्टन के लिए बैंक्रॉफ्ट परेशानी का एक कारण थे, उसी प्रकार बैंक्रॉफ्ट के लिए ब्राउनसन थे। डेमाक्रेटिक दल जिस हद तक जा सकता था, ब्राउनसन लोकतन्त्र के सिद्धान्त और व्यवहार दोनो को उससे कुछ आगे ले गये। संस्थात्मक सुधार के लिए काम करने की प्रेरणा उन्हे कुमारी फ्रान्सेस राइट से मिली थी। फ्रान्सेस राइट की अपील का एक विशिष्ट नमूना यह है—

"मैं उस जनता को सम्बोधित करती हूँ, जिसकी उदारता बहुत दिनो से बढ़ती हुई दरिद्रता से पीडित रही है और जिसकी सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक सुख को बढ़ती हुई बुराइयो से खतरा पैदा हो गया है।...मैं ईमानदार लोगो से कहती हूँ, जिन्हें अपनी ईमानदारी के लिए भय है।...मैं मानवी पीडा से घिरे हुए मनुष्यो से कहती हूँ, सहानुभूति के लिए वचनबद्ध सह-नागरिको से कहती हूँ, समान अधिकारो और फलस्वरूप समान

---

१. वही, पृष्ठ १०६।

दशा और समान आनन्द के लिए वचनबद्ध गणतन्त्रवादियो से कहती हूँ; मैं उनसे कहती हूँ कि ' एक हो जायें' ।,

''उस पीड़ा की ओर देखो जो धरती पर छा रही है : सघर्ष और झगडे और इर्ष्याएँ और हितो व मतो के टकराव को देखो ।' जाओ, उस सारी दुर्दशा को देखो जिससे आँख और कान और हृदय परिचित हैं और तब इस अपमान-जनक घोषणा को विजयोन्माद मे गुंजाओ और आनन्द से उत्सव मनाओ कि 'सभी मनुष्य स्वतन्त्र और समान है' ।''[१]

वर्त्तमान बुराइयो का इलाज वर्त्तमान व्यवस्था को बदलने मे ही खोजना होगा । कुमारी राइट ने साहसपूर्वक अलोकप्रियता का खतरा उठाया, जब एक अग्रेज यात्री के रूप में उन्होने अपने श्रोताओ के सम्मुख यह बात रखी कि यद्यपि बहु-चर्चित 'अमरीकी व्यवस्था' के कुछ विशिष्ट अमरीकी अग भी थे (विशेषतः राजनीतिक), किन्तु उसकी प्रमुख सस्थाएँ (विशेषतः आर्थिक) वही थी जो यूरोपीय व्यवस्था की । उन्होने अमरीकियो को बाध्य किया कि वे अपने राजनीतिक अर्थतन्त्र के परिणामो को सुख और पीड़ा के सन्दर्भ मे देखें और नैतिकता व शिक्षा की मूल समस्याओ को उसी सन्दर्भ मे समझें ।

ओरेस्टेस ब्राउनसन १८३६ में 'सोसायटी फॉर क्रिश्चियन यूनियन ऐण्ड प्रोग्रेस' (ईसाई एकता और प्रगति समाज) का सगठन करने के लिए बोस्टन आये । उनमे सर्ववाद का अश इतना काफी शेष था कि खुले रूप में मुक्त विचार के बजाए, वे चैनिग की 'बिना धर्म सगठन के व्यापक ईसाइयत' की ओर झुकें और 'स्वतन्त्र खोजी' का इतना काफी अश था कि वे सामाजिक प्रगति के लिए मुक्त विचारो वाले मजदूरो की ओर देखें । न्यूयार्क मे, जहाँ उन्होने पहले उदार सर्ववादियो के साथ और फिर राबर्ट ओवेन और फ्रान्सेस राइट के साथ (उनकी पत्रिका 'फ्री एन्क्वायरर'—स्वतन्त्र खोजी—के लेखक-सम्पादक के रूप में) काम किया था, ब्राउनसन का रूप एक साहित्यिक प्रतिभा और धार्मिक उग्रतावादी का था । बोस्टन मे वे केवल एक सामान्य दुनियादार और आन्दोलनकर्त्ता थे । १८४० में उनके आडम्बरपूर्ण त्रैमासिक (बोस्टन क्वार्टरली) में उनका सनसनी-खेज उपदेश-लेख 'श्रम करने वाले वर्ग' प्रकाशित हुआ, जिसने 'मध्यम-वर्गो' को झिझोड़ कर (ब्राउनसन के फूहड़ शब्दो मे) उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न कर दी ।

''अब, यह मध्यम वर्ग, जो इतना काफी सबल था कि फ्रास की क्रान्ति के

---

१. फ्रान्सेस राइट, 'ए कोर्स ऑफ पापुलर लेक्चर्स' (न्यूयार्क, १८२६) में, 'लेक्चर ऑन एक्जिस्टिग ईविल्स ऐण्ड देयर रेमेडी,' फिलाडेल्फिया, २ जून, १८२६ से उद्धृत, पृष्ठ १५२-१५३, १५७ ।

लगभग सारे ही व्यावहारिक लाभों को नष्ट कर दे, चार्टिस्टों[1] का स्वाभाविक शत्रु है।...बेचारे चार्टिस्टों के प्रति हमारी निराशा मध्यम-वर्ग की शक्ति और सख्या से उत्पन्न होती है।...उनका एकमात्र वास्तविक शत्रु केवल मालिक है। सभी देशो में वही बात है।...सब को शिक्षा मिले, इसके महत्व को घटाने का हमारा कोई विचार नही है, किन्तु हम स्वीकार करते हैं कि हम उसमें आज की सामाजिक स्थिति की बुराइयों का अमोघ उपाय नही देख पाते, जैसा कि हमारे कुछ मित्र देखते हैं, या ऐसा कहते हैं।...ईश्वर के लिए सावधान रहिये कि मजदूर वर्गों में आप बौद्धिक चिनगारी कैसे भडकाते हैं।...अगर आप उन्हे पशुओ की सी बाह्य दशा में रखने वाले हैं, तो इतनी सामान्य दयालुता दिखाइये कि उनके दिल और दिमाग को भी पशुओ जैसा ही रखिये।...और अब कारीगर और मालिक के बीच धन और श्रम के बीच सघर्ष आरम्भ होता है। हर रोज यह सघर्ष अधिक फैलता है, सशक्त और तीव्रतर होता है। कब और क्या इसका अन्त होगा, इसे केवल ईश्वर जानता है।...हम गुलामी के समर्थक नही हैं... लेकिन हम साफ कहते है कि अगर स्वामियो और मालिको से अलग, मेहनत करने वाली एक जनसंख्या हमेशा रहनी है, तो हम गुलामी-प्रथा को वेतन-व्यवस्था से निश्चित रूप में ज्यादा अच्छा समझते हैं।...हम श्रम करने वाले वर्गों की उन्नति का कोई साधन नही देखते जो...स्थूल बल की मजबूत बाँह के बिना प्रभावकारी हो सके। अगर यह कभी होगा तो एक ऐसे युद्ध के अन्त मे होगा, जैसा युद्ध ससार ने अभी तक नही देखा।"[2]

बैंक्रॉफ्ट ने शीघ्रता से सफाई दी, 'ब्राउनसन ने अपने कल्पनापूर्ण सिद्धान्तो से हमे चौपट कर दिया है।' ब्राउनसन ने बाद में स्वय स्वीकार किया ('दी कनवर्ट' में) कि यद्यपि १८४० के अपने 'भयकर सिद्धान्तो' को दोबारा पढ़ने पर उन्हे स्वय बडा धक्का लगा, किन्तु पूँजी और श्रम के सम्बन्ध और वेतन-व्यवस्था सम्बन्धी अपने उन विचारो में वे 'कोई गलती नही निकाल' पाये। ऐसे विचारो के प्रकाशन का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हॉथॉर्न के साथ ब्रूक फार्म में परात्परवादियो के बीच शरण लेना उनके लिए आवश्यक हो गया।

बैंक्रॉफ्ट के दर्शन के लिए ब्राउनसन से भी ज्यादा तीखे शूल थे डीअरफील्ड, मैसाचुसेट्स के रिचार्ड हिल्ड्रेथ। राजनीति में ह्विग, पेशे से वकील, और एक

---

१. चार्टिस्ट—उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंगलिस्तान में चले एक लोकतान्त्रिक सुधार आन्दोलन के समर्थक।—अनु०

२. जॉसेफ ब्लॉ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फ़िलॉसफिक ऐड्रेसेज़' पृष्ठ १७६-१८३, २०३-२०४।

स्वतन्त्र-विचारक, हिल्ड्रेथ, जरमी बेन्थाम के दर्शन के अनुयायी बन गये और लोकतान्त्रिक आदर्शों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होने उसका प्रभावकारी उपयोग किया। सुधार के लिए काम करने का उनका ढग हर तरह से बैंक्रॉफ्ट के ढग का उलटा था। हिल्ड्रेथ एक उग्र उपयोगितावादी थे, और आगम-विज्ञान की विधियो का उपयोग करते हुए, राजनीतिक से अधिक आर्थिक उपायो का सहारा लेते हुए, उन्होने सामाजिक क्रान्ति के लिए एक व्यवस्थित सामाजिक विज्ञान का निर्माण किया, जबकि बैंक्रॉफ्ट राजनीति का खेल खेलते हुए बड़ी शान से नये युग के प्रादुर्भाव की भविष्यवाणी करते रहे। स्वभाव से हिल्ड्रेथ भी उतने ही तीखे और आवेगपूर्ण थे, जितने ब्राउनसन, लेकिन उनका दर्शन पूर्णतः गंभीर था। ब्राउनसन ने हिंसा की वकालत की, हिल्ड्रेथ ने 'बढी हुई उत्पादन-शक्ति' और बुद्धि की। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो ही दार्शनिक अभी तक प्रभावशाली नही रहे, यद्यपि जो लोग अनजाने ही उनके बौद्धिक उत्तराधिकारी हैं, वे बहुत कुछ उन्ही समस्याओं को फिर से उठा रहे हैं, जिनकी उन्हें चिन्ता थी और वैसे ही उपायो का समर्थन कर रहे हैं। हिल्ड्रेथ की विचार-व्यवस्था अमरीकी परम्परा में अद्वितीय है और उसे पुनर्जीवित करना चाहिए—उसकी ऐतिहासिक अद्वितीयता के कारण भी (अमरीका के एकमात्र बेन्थाम) और दर्शन की एक व्यवस्था के रूप में उसके अपने मूल्य के कारण भी।

बेन्थाम के सुधार-दर्शन का कुछ प्रभाव एडवर्ड लिविंग्सटन के प्रयासो में और शताब्दी के तीसरे दशक मे फ्रान्सेस राइट के भाषणो और उनकी योजनाओ में था।[1] नैतिकता और सामाजिक स्थितियो के सम्बन्ध पर और संस्थात्मक सुधार के बिना नैतिक सुधार की अव्यावहारिकता पर उनका ज़ोर देना वह विशिष्ट स्वर था, जिसमें बेन्थाम का प्रभाव दिखाई पडता है। पाँचवें दशक में रिचार्ड हिल्ड्रेथ ने उसी बात का प्रयास अधिक व्यवस्थित रूप में किया। उन्होने सिद्धान्तो के एक विस्तृत समूह की अवधारणा की, जिसे समाप्त करने के लिए वे जीवित नही रहे। छह आयोजित अगो मे से केवल दो प्रकाशित हो सके और तीसरा शायद अब भी पाण्डुलिपि के रूप में कही पडा हो। सम्पूर्ण रचना 'मानव विज्ञान के प्रारम्भिक तत्व' होनी थी। इसका निर्माण 'बेकन की पद्धति के अनुसार, निरीक्षित घटनाओ से आगमन' के द्वारा होना था और उसमे नैतिकता, राजनीति, धन, रुचि, ज्ञान और शिक्षा के सिद्धान्त शामिल थे। 'थियरी आफ

---

१. कुमारी राइट की एक पुस्तक 'जरमी बेन्थाम को, उनकी प्रबुद्ध भावनाओं, उपयोगी कार्यो और सक्रिय लोकोपकारिता के प्रति उनकी श्रद्धा, और उनकी मित्रता के प्रति उनकी कृतज्ञता के एक प्रमाण स्वरूप' समर्पित है।

मारल्स' (नैतिकता का सिद्धान्त १८४४) में सामान्य दार्शनिक अभिस्थापन है, जिसका सारांश उन्होंने अन्यत्र बड़े उत्तम रूप में प्रस्तुत किया है।

'सच्ची नैतिकता की प्रगति और अभिवृद्धि—वह नैतिकता जो मनुष्य को अधिक सुखी बनाने में है—सर्वप्रथम ज्ञान की प्रगति पर निर्भर है, जो हमें इस योग्य बनाता है कि मानव सुख पर किन्ही कार्यों या कार्यकलापों के वास्तविक प्रभाव का ज्यादा सही अनुमान लगा सकें। दूसरे और मुख्य रूप में यह उदारता की भावना की सापेक्ष शक्ति के बढने पर निर्भर है, जिसके द्वारा हम अच्छे काम करने की ओर प्रेरित होते हैं। मैं इस नतीजे पर भी पहुँचा हूँ 'और सारी पुस्तक में यह सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष है' कि उदारता की भावना की सापेक्षिक शक्ति को बढाने का अगर एकमात्र नही तो सबसे प्रभावशाली उपाय उन बहुसख्यक पीडाओ की शक्ति को घटाना है, जो उदारता की भावना के आवेगो को निरन्तर जड बनाती रहती या उनका प्रतिकार करती रहती हैं। जो लोग निरंतर स्वयं अपनी पीडाओ से सताये रहते है, उनसे यह आशा करना कि वे दूसरे लोगो की पीडाओ से अधिक प्रभावित होगे, मनुष्य की प्रकृति के विपरीत है। मनुष्य को ज्यादा अच्छा बनाने के लिए, हमें आरम्भ उसे अधिक सुखी बनाने से करना होगा। ससार के सारे पादरियो और प्रोफेसरो के सारे उपदेश मनुष्य-जाति का सुधार करने में जरा भी उपयोगी नही होगे, जब तक ये पादरी और प्रोफेसर उन जबरदस्त बुराइयो और पीडाओ को, जिनसे बहुसख्यक मनुष्य पीडित है, कम करने के लिए कुछ भी करना स्वीकार नही करेंगे, बल्कि, इसके विपरीत, उन बुराइयो को ईश्वरीय विधान और प्रकृति की देन कह कर उन्हे कायम रखने का यथासंभव प्रयास करेंगे।

"हम अभी भी, दर्शन में भी वही पाठ सिखाएँगे जो हमने राजनीति मे पहले ही सिखाया—यह पाठ कि मनुष्य अपने लिए विचार और अपना शासन स्वय कर सकते है। और पोप व पादरी ही उतने ही व्यर्थ है, उतने ही घातक हैं, जितने राजा और अभिजात वर्ग।"[1]

अपने लिए विचार करने और अपना शासन करने की मनुष्यो की यह योग्यता अनुभव और बुद्धि के साथ बढती है। अतः हिल्ड्रेथ के अनुसार 'नैतिकता एक प्रगतिशील विज्ञान है।' इसीसे वे यह भी नतीजा निकालते हैं कि आगम पद्धति ऐतिहासिक पद्धति है। उनकी 'थियरी आफ पालिटिक्स' (राजनीति का सिद्धान्त)

---

१. 'ए ज्वाइंट लेटर टु ओरेस्टेस ए ब्राउनसन ऐण्ड दी एडिटर ऑफ दी नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू इन ह्विच दी एडिटर ऑफ दी नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू इज प्रूव्ड टु बी नो क्रिश्चियन, ऐण्ड लिटिल बेटर देन ऐन एथीस्ट (बोस्टन, १८४४)।

का अधिकाश एक ऐतिहासिक विश्लेषण है और उनकी सर्वप्रसिद्ध रचना, 'हिस्टरी ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका' (सयुक्त राज्य अमरीका का इतिहास) लोकतन्त्र की ओर अमरीकी प्रगति का एक बिल्कुल तथ्यपूर्ण और आगमनात्मक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास है। प्रगति और इतिहास सम्बन्धी उनका सिद्धान्त साररूप मे एक पाद-टिप्पणी में मिलता है।

"अपने आधुनिक यूरोप की सभ्यता का इतिहास (हिस्टरी आफ दी सिविलिजेशन ऑफ मार्डन यूरोप) मे ग्विज़ॉट ने सर्वप्रथम मध्य युग में शक्ति के चतुष्पदी विभाजन की ओर विशेष रूप से ध्यान खीचा था। राजाओ, सामन्तो, पादरियो और नगरपालिकाओ के बीच इस शक्ति-विभाजन को आधुनिक सभ्यता के उत्थान और प्रगति के साथ-साथ होते देख कर, उन्होने कुछ जल्दबाजी में यह नतीजा निकाल लिया कि इन सभी वर्गों का निरन्तर अस्तित्व और सन्तुलन उस प्रगति के लिए आवश्यक था और है। अगर वे विद्वान कुछ कम होते, और दार्शनिक कुछ अधिक, या अगर उन्हें हमारे अमरीकी दृष्टिकोण का लाभ भी प्राप्त होता, तो मध्य-युग के साथ-साथ वर्तमान इतिहास के अधिक गभीर और अधिक व्यापक अध्ययन से शायद उन्हे विश्वास हो जाता कि आधुनिक यूरोपीय सभ्यता की प्रगति मे राजाओ, सामन्तो और पादरियो के तत्व वही तक उपयोगी रहे हैं जहाँ तक वे एक-दूसरे को काटते और नष्ट करते रहे। वास्तविक प्रगति सारी की सारी केवल नगरपालिकाओ के माध्यम से हुई।"[1]

इस 'नगरपालिका तत्व' या नागरिक सद्गुण का विश्लेषण उनका मुख्य विषय बन जाता है। इसका प्राकृतिक या दैवी अधिकारो से कोई सम्बन्ध नही। देशभक्ति, या सार्वजनिक भावना केवल 'समाज के लाभ हित' लगी हुई स्वाभाविक उदारता है, और लोकतन्त्र में यह भावना 'राष्ट्र के समूचे शरीर में व्याप्त हो जाती है।' लोकतन्त्र में लोगो को सुखी बनाने की सम्भावना सबसे अधिक है, इसका सीधा-सा कारण यह है कि इसमे अधिकतम संभव संख्या को 'शक्ति रखने के सुख' में हिस्सा दिया जा सकता है। लेकिन अगर असमानता और गरीबी की पीडाएँ, शक्ति के सुख से अधिक हो जाती है, तो फिर यह (लोकतन्त्र) बिल्कुल चल ही नही सकता। अत व्यावहारिक, लोकतान्त्रिक, नीतिशास्त्र ('कानूनी' नीतिशास्त्र से भिन्न) को 'सामान्य सामाजिक क्रान्ति' पर निर्भर रहना होगा, जिसे रूसो और फ्रासीसी क्रान्ति ने आरम्भ किया था। 'अभी जो स्थिति है, वह उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग के लिए भी लगभग उतनी ही कष्टकर है, जितनी निम्नवर्ग के लिए।... और आवश्यक परिणामस्वरूप, दोनो पक्षो मे घृणा है। इतने

---

१. थियरी ऑफ पॉलिटिक्स (न्यूयार्क, १८५३) पृष्ठ १२१ एन।

कष्टों के बीच मानवता पर बड़ा भारी बोझ है। और सद्गुण के लिए अपने को बचाना कठिन है।"[२]

इस समस्या ने, कि 'इतने कष्टों के बीच' 'सद्गुण के लिए अपने को बचाना कठिन है', हिल्ड्रेथ को अपने 'धन का सिद्धान्त' (थियरी आफ वेल्थ) का मुख्य विषय सुझाया। उनकी स्थापना थी कि केवल पुनर्वितरण से कष्ट का निराकरण नही हो सकता।

"किसी समाज विशेष के सम्मिलित प्रयत्नों से जिन अच्छी वस्तुओं का उत्पादन अभी तक हो सकता है, वे इतनी काफी नही हैं कि हर कोई उनका आस्वादन कर सके। और यह आवश्यक रहा है कि बहुसख्यक जनता से, केवल रोटी और पानी पर, कड़ी मेहनत कराई जाये, जबकि विलास की और आराम की वस्तुएँ भी, केवल कुछ लोगो तक सीमित रही है। श्रम—जो विशाल जनसमूह का एकमात्र साधन है—का मूल्य कम रहा है, क्योंकि श्रम का उत्पादन कम रहा है और उत्पादक श्रम का फल इतना कम होने के कारण, उसके स्थान पर अर्जन के साधन के रूप में छल और हिंसा के प्रयोग की प्रेरणा अधिक रही है।..

"अतः मनुष्य जाति की पहली बड़ी आवश्यकता मानव श्रम की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने की है। विज्ञान ने पिछली शताब्दी में इस दिशा मे बहुत कुछ किया है और भविष्य में और भी अधिक करेगा, यह निश्चित है। हमारे अमरीकी महाद्वीप मे विशाल नये क्षेत्र ऐसे खुल रहे हैं, जिनमे श्रम का लाभदायक उपयोग हो सकता है। श्रम धन का अपने आप में पर्याप्त, एकमात्र स्रोत होने के बजाय, जैसा कि कुछ राजनीतिक अर्थशास्त्री सिखाते है, इससे अधिक निश्चित और कोई बात नही कि यूरोप मे बहुत दिनो से श्रम के बाहुल्य का रोग रहा है और अब भी है—उस पर बहुतेरे ऐसे लोगो को खिलाने पहनाने का बोझ रहा है, जिनके लिए फलदायक काम उसके पास नही रहा। सयुक्त राज्य अमरीका ने अब ऐसी स्थिति प्राप्त कर ली है कि हर वर्ष यूरोप से आने वाले पाँच से दस लाख तक आप्रवासियो को आत्मसात कर सकता है।...

"उत्पादक उद्योगो का विकास इस समय मनुष्य जाति की सबसे बड़ी और तात्कालिक आवश्यकताओं में से एक प्रतीत होता है। किन्तु इस विकास के लिए शान्ति और सामाजिक व्यवस्था से अधिक आवश्यक और क्या है?...

"धन के बँटवारे का समाजवादी प्रश्न एक बार उठ जाने पर उसकी ओर से आँख नही मूँदी जा सकती। समाजवादियो ने जो दावे प्रस्तुत किए हैं, वे काफी

---

२. थियरी ऑफ मारल्स (बोस्टन, १८४४) पृष्ठ २७१-२७२।

समय से चले आ रहे दार्शनिक सिद्धान्तो पर आधारित हैं, जिनमे से कुछ के उत्साही समर्थक तो उन लोगो मे भी हैं जो समाजवादियो की सबसे अधिक निन्दा करते हैं। इन दावो को उद्घोषो और प्रत्याख्यानो और परस्पर दोषारोपण के द्वारा समाप्त नही किया जा सकता और इन सगीनो और तोपो के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। यह समस्या दार्शनिको के लिए है, और जब तक कोई ऐसा हल नही मिल जाता, जिसे दोनो पक्ष निर्णायक मान लें, तब तक प्रगति के दल को आवश्यकता कार्य की नही है—जिसके लिए वह आन्तरिक झगड़ो के कारण अयोग्य है—बल्कि विचार-विमर्श और बहस की है। इंजीनियरो को पहले अलगाव की इस खाईं को पाटना होगा, अन्यथा चाहे जितना भी ढोल और नफीरियाँ बजाई जाएँ और शोर मचाया जाए, विभाजित पक्तियो को फिर से एक करके प्रभावकारी रूप मे गतिशील नही बनाया जा सकता।"[1]

इजीनियरो पर ही सामाजिक क्रान्ति की आशा केन्द्रित है। इसी स्वर पर हिल्ड्रेथ का 'राजनीति का सिद्धान्त' समाप्त होता है। उनके दर्शन में ह्विग राष्ट्रवाद और जैकसनकालीन विरोध के विशिष्ट सिद्धान्त सयोजित होकर सामाजिक और वैज्ञानिक नियोजन के एक प्रभावशाली और समयानुकूल सिद्धान्त का रूप ग्रहण करते हैं।

न्यूयार्क नगर मे जैकसनकालीन लोकतन्त्र को एक विशिष्ट रूप में सबल अभिव्यक्ति मिली। चौथे दशक में 'न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट' के सम्पादक विलियम कुलेन ब्रायन्ट और विलियम लेगेट ने और पाँचवे दशक में 'ब्रुकलिन डेली ईगिल' के सम्पादक वाल्ट ह्विटमैन ने पत्रकारिता का ऊँचा स्तर कायम किया और लोकतान्त्रिक दल (डेमोक्रेटिक पार्टी) को ऐसे समय में साहित्यिक प्रतिभा और राजनीतिक सिद्धान्त प्रदान किये जब प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उसे दोनो की आवश्यकता थी। ब्रायन्ट और ह्विटमैन दोनो ने ही स्वतन्त्र व्यापार और अबन्ध उद्योग के सिद्धान्तो की शिक्षा पाई थी, किन्तु लेगेट और पार्क गॉडविन के वामपन्थी नेतृत्व की प्रेरणा से उन्होंने अपने सस्थापित सिद्धान्तो का नवीन रूप में प्रयोग किया।

१८३५ में टैमैनी हाल[2] दो गुटो में बँट गया। उग्र एकाधिकार विरोधी गुट

---

१. थियरी ऑफ पॉलिटिक्स, पृष्ठ २७१, २७२, २७३-२७४।

२. न्यूयार्क में अमरीकी स्वतन्त्रता के आरम्भ-काल मे ही अभिजात-वर्गों के विरुद्ध जेफरसनवादियो का एक मुख्यत: मध्यमवर्गीय समूह, जो अब भी प्रभावशाली है। अंग्रेज सन्तो के विरुद्ध, उन्होने अपना नाम एक उदार और बुद्धिमान आदिवासी सरदार 'टैमैनी' के नाम पर रखा।—अनु०

या मजदूर दल (वर्किंगमेन्स पार्टी) ने सचमुच अपने को अन्धेरे में पाया जब अनुदारवादियों ने अपना उम्मीदवार मनोनीत करके रोशनी गुल कर दी, किन्तु वे हाल में ही जमे रहे और लोकोफोकों[1] व मोमबत्तियों की रोशनी में उन्होंने एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में अपने को संगठित किया। यह गुट शक्तिशाली हो गया और राष्ट्रीय स्तर पर मजदूरों के हितों और बैंकों के विरोध का नेता माना जाने लगा। लोकतन्त्र का उनका प्रतिरूप जो आमतौर से 'लोकोफोकोइज्म' के नाम से प्रसिद्ध था, उत्तरी जैक्सनवाद का प्रमुख स्वर बन गया। विलियम लेगेट इसके सिद्धान्तों के सर्वाधिक मुखर प्रवक्ता थे, यद्यपि ब्रायन्ट ने एक न्यू-इंगलैण्डवासी के रूप में इसे अपना हार्दिक समर्थन देकर इसकी बड़ी सेवा की। 'पोस्ट' में उनके सम्पादकीय लेखों के निम्नलिखित उद्धरणों से पाठक को इस आन्दोलन की प्रकृति का बहुत कुछ ज्ञान हो जायेगा।

"क्या किसी चीज की कल्पना की जा सकती है, जो उस कानून की अपेक्षा उदारता या न्याय की हर भावना के अधिक प्रतिकूल हो, जो कानूनी मूल्य-निर्धारण के द्वारा अमीरों को गरीबों का वेतन निर्धारित करने का कानूनी अधिकार देता है ? अगर यह गुलामी नही है, तो हम गुलामी की परिभाषा भूल गये है। स्वतन्त्र नागरिक के अधिकारो में से श्रम के विक्रय के लिए संगठन का अधिकार निकाल दें, तो उसकी हालत वैसी ही हो जाएगी जैसी किसी मालिक के साथ या जमीन के किसी टुकडे के साथ बांध देने पर। अगर चमड़ी के रंग का अन्तर और श्रम के अनुबन्ध में स्वयं अपनी शर्तें रखने का छोटा-सा अधिकार न हो तो दक्षिण के गुलाम की अपेक्षा उत्तर के मजदूर की स्थिति किस रूप में अच्छी है ? अगर 'काम न करने के निश्चय' को मानवी कानूनो के द्वारा दण्डनीय बना दें, नकारापन में स्वयं जो सजा मिलती है, उसके अलावा और कोई सजा दें, तो फिर इससे कोई विशेष अन्तर नही पडता कि काम लेने वाला एक है या कई हैं, व्यक्ति है या व्यवस्था, गुलामी की घृणित प्रथा धरती पर अपने पाँव जमा लेगी।...

"धनी अपने सामान्य हितो को समझते, स्वीकार करते और तदनुसार कार्य करते है। फिर ग़रीब ऐसा क्यो न करें। लेकिन जैसे ही ग़रीबो से अपने अधिकारो की रक्षा के लिए एक होने की अपील की जाती है, तत्काल समाज खतरे में पड़ जाता है। सम्पत्ति सुरक्षित नही रह जाती और जीवन खतरे मे पड जाता है। यह पाखण्ड उस समय की विरासत है, जब गरीब और मजदूर

---

१. लोकोफोको—पर्याप्त सूखी और सख्त जगह पर रगड़ने से जल उठने वाली दियासलाई।—अनु०

वर्गों का समाज में कोई हिस्सा न था और कोई अधिकार न था, सिवाय ऐसे अधिकारो के जो वे बलपूर्वक प्राप्त कर सकें। किन्तु अब समय बदल गया है, यद्यपि पाखण्ड वही बना हुआ है।...

"इस धरती पर जितने भी देश हैं, या कभी भी थे, उनमे यह एक ऐसा देश है, जहाँ धन और अभिजात्य के दावे सर्वाधिक निराधार, फिजूल और हास्यास्पद हैं। वे किसी पैतृक विशिष्टता का दावा नही कर सकते। उनके कोई अलग, विशिष्ट अधिकार नही हैं, सिवाय इजारो से प्राप्त होने वाले अधिकारो के। और अपनी सम्पत्ति को हमेशा के लिए अपने वशजो के लिए सुरक्षित करने की कोई शक्ति नहीं है। ऐसी सूरत में अभिजात वर्ग का रूप धरना और उसके जैसे दावे करना सर्वथा हास्यास्पद है। यह बिल्कुल सम्भव है कि कल वे स्वय भिखारी हो जायें, या किसी भी सूरत में, उनके बच्चे तो भिखारी हो ही सकते हैं।"

— — —

लेकिन हम पूछते हैं कि अगर मजदूर वर्ग अपने राजनीतिक सिद्धान्तो के समर्थन मे, या अपने खतरे मे पडे अधिकारो की रक्षा के लिए सयुक्त हो जाते हैं, तो इसमें खतरा कहाँ है? जब उनके विरोधी मिल कर काम करते हैं, तो क्या उन्हे मिलकर काम करने का अधिकार नही है? यही नही, क्या यह उनका अनिवार्य कर्त्तव्य नही है कि वे इस स्वतन्त्र देश में उस एकमात्र शत्रु के विरुद्ध एक हो, जिससे उन्हे भय है—एकाधिकार और एक विशाल कागजी व्यवस्था जो उन्हें पीस कर मिट्टी में मिला देती है? सचमुच यह एक विचित्र गणतन्त्रवादी सिद्धान्त है और एक विचित्र गणतान्त्रिक देश है कि एक सामान्य प्रयास मे, एक सामान्य लक्ष्य के लिए, लोगो के एक होते ही, व्यक्ति और सम्पत्ति के अधिकारो के लिए खतरे की आवाज उठ खड़ी होती है। क्या यह जनता के अधिकारो पर आधारित जनता की सरकार नही है और क्या शक्ति के अनुचित हस्तक्षेप और अनधिकार-ग्रहण से उनकी रक्षा करना इसकी स्थापना का विशिष्ट उद्देश्य नही है? और अगर लोगो को सामान्य हित रखने की अनुमति नही है, सामान्य भावना से कार्य करने की अनुमति नही है, अगर वे वैधानिक उपायो से इन हस्तक्षेपो का प्रतिरोध करने के लिए सयुक्त नही हो सकते, तो विधि-निर्माण और शासको के चुनाव में अपने मताधिकार का प्रयोग करने में उन्हे स्वतन्त्र घोषित करने का क्या मतलब है?...

"कुछ पत्रकार है जो सयोजनो को बड़ा अप्रिय समझने का दिखावा करते हैं और उन्हें स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्तो के बिल्कुल प्रतिकूल समझते हैं। और बहुधा यह सिफारिश की जाती है कि उन्हें कानून द्वारा दण्डनीय बना दिया जाये। स्वतन्त्र व्यापार सम्बन्धी हमारी धारणाओ के स्रोत भिन्न हैं और हम इस पक्ष

मे है कि उचित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मिलजुल कर या अकेले कार्य करने के लिए मनुष्यो को पूर्णत: स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए। हमारी दृष्टि में सयोजनो का चरित्र पूर्णत: उस लक्ष्य के आन्तरिक चरित्र पर निर्भर है जिसका सन्धान किया जाता है।"...

"एक ही ढाल है जिसके पीछे मिस्त्री और मजदूर सुरक्षित रूप में सामान्य शत्रु का विरोध करने के लिए एकत्र हो सकते हैं, जिसके विरुद्ध अगर वे अकेले-अकेले जायें तो नष्ट हो जायेंगे। वह ढाल है, 'सयोजन का सिद्धान्त'। हम उन्हे सलाह देंगे कि उसके पीछे वे अत्यधिक गम्भीर मामलो में ही शरण लें, क्योकि अपने मालिको के साथ उनके टकराव में, जैसे दो राष्ट्रो के टकराव में, घेरेबन्दी की बहुसख्यक बुराइयो का अनुभव न्यूनाधिक दोनो ही पक्षो को होता है और इस कारण अत्यधिक सकट के समय ही इसमे पडना चाहिए।"[1]

न्यू-इगलैंड के बुद्धिजीवियो में 'लोकोफोको' लोकतन्त्र की भावना मुख्यत बैंक्रॉफ्ट और हॉथॉर्न में मूर्त्त हुई, किन्तु एमर्सन भी उससे प्रभावित हुए। बोस्टन में १८३९-४० में उनकी भाषण-माला का शीर्षक था 'वर्त्तमान युग' और उसमे एमर्सन ने बताया कि किस प्रकार मानव समाज में तर्कबुद्धि की क्षारक प्रगति ने परम्परा के 'भय' को नष्ट कर दिया, फिर किस प्रकार उसने उपयोगिताओ को उस श्रम से अलग कर दिया जिसका उन्हें प्रतिनिधित्व करना चाहिये, किस प्रकार 'धनी होने का लक्ष्य सारे ससार को लग गया है।' किन्तु एमर्सन ने आगे चलकर आर्थिक लोकतन्त्र के बारे में कहा कि "सब मिला कर 'गति दल' (मूवमेंट पार्टी) धीरे-धीरे आगे बढता है, जैसे स्वय ससार की गति से। जिस महान् विचार ने मनुष्यो के हृदयो मे आशा उत्पन्न की, वह ऊषा की किरणो की भाँति धीरे-धीरे सारे ससार मे फैलता जाता है।"[2] थियोडोर पार्कर ने, जो पहले भाषण में उपस्थित थे, लिखा .

"यह सारा का सारा 'लोकतान्त्रिक लोकोफोको' था, और 'क्वार्टरली' (ब्राउनसन की पत्रिका) के पिछले अक में लोकतन्त्र और सुधार पर ब्राउनसन के लेख की भावना के पूर्णत: अनुकूल था। . बैंक्रॉफ्ट अत्यधिक आनन्दित थे। भाषण के 'लोकोफोकोइज्म' पर वे कल्पनातीत रूप में मुग्ध थे, और दूसरे दिन शाम को उन्होने मुझसे कहा, 'किन्ही भी श्रोताओ के समक्ष चाहे उनकी सख्या

१. बर्नार्ड स्मिथ द्वारा सम्पादित 'दी डेमॉक्रेटिक स्पिरिट (न्यूयार्क १९४१) पृष्ठ २१०, २१४, २१४-२१५, २१५-२१६, २१८-२१९।

२. जेम्स इलियट केबॅट, 'ए मेम्वायर आफ राल्फ वाल्डो एमर्सन' (न्यूयार्क, १८८७), खंड दो, पृष्ठ १३।

कितनी भी कम हो, ऐसी बातें कहना बडी चीज़ है, किन्तु वे हमारे समक्ष, 'वे राज्य' (मॅसाचुसेट्स) के समक्ष आयें, तो हम उनके लिए तीन हजार श्रोता ले आयेंगे।' एक गम्भीर, ह्विग लगने वाले सज्जन ने एक शाम एमर्सन को सुना और कहा कि उनके ऐसा भाषण देने की बात वे यह मान कर ही समझ सकते हैं कि वे जार्ज बैंक्रॉफ्ट के अधीन चुंगीघर मे कोई स्थान प्राप्त करना चाहते हैं।''[१]

वाल्ट ह्विटमैन की शैली और उनके विचार 'न्यूयार्क पोस्ट' या एमर्सन की अपेक्षा अधिक भावुकतापूर्ण थे। उनके सम्पादकीय लेख लोकोफोको आन्दोलन को एक और दशक तक चलाते रहे। उदाहरण स्वरूप—

लोकतान्त्रिक विश्वास की प्रमुख आत्माएँ हमेशा अपने युग से आगे रहती है और इस कारण उन्हे पुराने पूर्वग्रहो से लडना पड़ता है। वे जिस सघर्ष मे पडते हैं उसमें पशु-साहस की नही, वरन् नैतिक साहस की आवश्यकता पडती है।...

स्वयं जेफरसन के प्रमाण के आधार पर हम कह सकते हैं कि पहले आडम्स के शासनकाल के अन्धकार-युग मे जो कष्टदायक उत्पीडन और अपमान उन लोगो को सहने पडे, उनका कोई अनुमान नही लगा सकता। किन्तु स्वयं अपने दृढ, साहसी हृदयो का सहारा लेकर और एक औचित्यपूर्ण लक्ष्य के कवच द्वारा सुरक्षित रह कर वे डिगे नही। सारे भय का परित्याग करके, वे निरन्तर अपने सिद्धान्त को सिखाते और समझाते और खुले आम अपने विरोधियो के मत के झूठ और अन्याय की घोषणा करते हुए जनता के समक्ष आयें।...हम आज उन्ही के सिद्धान्तो के वारिस बन कर और उसी के शत्रु के विरुद्ध खडे है—समान अधिकारो का शत्रु। लोकतन्त्र की फिर विजय होगी, जैसे तब हुई थी और उस समय से भी अधिक निश्चित रूप में होगा। हमारे ऐसा सोचने के दो सीधे से कारण हैं। एक यह है कि मज़दूरो का विशाल समूह उस समय की अपेक्षा अधिक सशक्त और प्रबुद्ध है। दूसरा कारण है कि इस राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक, लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के अपने प्रयोग को उसकी अन्तिम सीमा तक ले जाने की एक सबल और बेचैन आकांक्षा है।...

"हम यह भविष्यवाणी करने का साहस करते है कि आज से

---

१. वही, खण्ड दो, पृष्ठ १८-१९। ऐसा प्रतीत होता है कि ये भाषण जिस रूप मे दिये गये, उस रूप में कभी प्रकाशित नहीं हुए। उनके कथ्य और लक्ष्य के बारे में और अधिक जानकारी एमर्सन के 'जर्नल्स' (बोस्टन, १९०९—१४) खण्ड पांच, पृष्ठ २७८-३५०, से और उनके 'लेटर्स' (न्यूयॉर्क, १९३९), खण्ड दो, पृष्ठ २४६-२४७, २५५-२५६, से मिल सकती है।

अन्दर ही, सुरक्षा के हर आश्वासन के साथ, राष्ट्र अपने बीच कानून, शासन सामाजिक प्रथा की ऐसी धारणाओ को व्याप्त पायेगा, जो आज की धारणाओ से उतनी ही भिन्न होगी, जितनी जेफरसन और लेगेट की धारणाएँ अतीत के युगो से हैं और जिन्हें बहुसंख्यक और सशक्त समर्थको का बल प्राप्त होगा। हमें निरन्तर आगे बढते रहना होगा—हर साल दरवाजो को और अधिक खोलते रहना होगा—और लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के अपने प्रयोग को अन्तिम सीमा तक ले जाते रहना होगा।..

"यूरोप की पुरानी और गली हुई व्यवस्थाओ का समय बीत गया और उनके अस्तित्व की जो सध्या निकट है, वह दबे हुए लोगो के लिए महिमामय प्रभात का संकेत होगी। यहाँ हमने आजादी का झडा गाडा है और यहाँ हम मनुष्य की स्वशासन की क्षमताओ को परखेंगे। हम देखेंगे कि प्रत्यक्ष रूप में हर व्यक्ति पर लागू हर व्यक्ति के सुख और सुरक्षा का नियम क्या अत्याचारियो के पुराने अधिकार-पत्रों और काल-क्षीण विशेषाधिकारो की अपेक्षा अधिक सुरक्षित आधार नही है? ऐसे सिद्धान्त जिन्हे आज भी कहना कठिन है—नई बातें जिन्हे अधिकतम निर्भय व्यक्ति भी खुले आम कहने का साहस कठिनाई से करते हैं—नीति-व्यवस्थाएँ, जिनके बारे में आज लोग डर कर धीमे स्वरो में बोलते हैं, इस डर से कि कही उन्हे राबेस्पिएर-समर्थक[1] क्रातिकारी से भी बुरा कह कर उन्हे सताया न जाए (वह पुराना झूठा डर दिखाने का विषय, जिसे कभी भी उचित रूप मे इस गणतन्त्र के समक्ष प्रस्तुत नही किया गया), वही समय आने पर यहाँ प्रकाश मे आयेगी, जन-समर्थन प्राप्त करेंगी और व्यवहार मे आयेगी। न हमको कोई डर होना चाहिये कि इससे कोई हानि होगी। जो कुछ भी स्वतन्त्रता का आज हम उपभोग कर रहे हैं, वह आरम्भ में एक प्रयोग ही था।"[2]

'लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के अपने प्रयोग को अन्तिम सीमा तक ले जाने' के प्रयोग की जो धारणा वाल्ट ह्विटमैन के दिमाग मे थी, उसमें मजदूर आदोलन का प्रसार शामिल था, किन्तु वह धारणा समाजवाद के बिल्कुल विपरीत थी। ह्विटमैन के दृष्टि-कोण को यूरोप मे सघातिपत्यवादी' (सिडिकैलिस्ट)[3] कहा

१. राबेस्पिएर—फ्रासीसी राज्य-क्राति के एक नेता, क्रूरता और रक्तपात के लिए बदनाम, जिन्हें उनके बाद सत्तारूढ़ होने वालों ने प्राणदण्ड दिया।—अनु०

२. वाल्ट ह्विटमैन, 'दी गेदरिंग ऑफ फोर्सेज़' (न्यूयार्क, १६२०) खण्ड एक पृष्ठ ७, ८-६, १०-११।

३. सिडिकैलिस्ट—उत्पादन और वितरण के साधनो का स्वामित्व मजदूर संघो के हाथ में देने का आदोलन। आमतौर पर इसके समर्थक आम हडताल के द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति में विश्वास करते थे।—अनु०

जाता, और प्रत्यक्ष कार्यवाही के पक्ष मे सामाजिक विधि-निर्माण के परित्याग का औचित्य उन्होने अबन्धता के पुराने सिद्धान्त के आधार पर सिद्ध करना चाहा। किन्तु जिस प्रकार के विधि-निर्माण का उन्होने विशेष रूप में विरोध किया, वे मिताचार के कानून और कानून द्वारा मनुष्य को धर्म और सद्गुण प्रदान करने के सारे प्रयास थे। १८४७ में उन्होने कई सम्पादकीय लेखो मे इन सिद्धान्तो को इस रूप मे प्रस्तुत किया—

"यद्यपि शासन लोगो का 'निश्चयात्मक' भला बहुत कम कर सकता है, किन्तु 'हानि बहुत अधिक' कर सकता है। और यही लोकतान्त्रिक सिद्धान्त का कमाल सामने आता है। लोकतन्त्र इस सारी हानि को रोक देगा। उसमे कोई भी व्यक्ति अपने पडोसियो की कीमत पर लाभ नही उठा सकेगा। उसमे किसी के भी अधिकारो में कोई हस्तक्षेप नही होगा, और आखिरकार शासन के परमाधिकार का सार और योग बहुत कुछ यही है। कितनी सुन्दर और समरस व्यवस्था है। किस प्रकार यह अन्य सभी सहिताओ के आगे चली जाती है, जैसे कोई श्रेष्ठ नियम अपनी सक्षिप्ति में, दार्शनिक विवेचना के भारी-भरकम ग्रन्थो से आगे चला जाता है। जबकि आज राजनीतिज्ञ अपने सकीर्ण दिमागो मे अपने पेचीदा कानूनो से उलझते और परेशान होते रहते है, यह एक नियम ही तर्क-सगत रूप मे समझे जाने और प्रयुक्त होने पर, शासन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, उसके प्रारम्भ विन्दु के रूप मे पर्याप्त है—'किसी मनुष्य या मनुष्यो के समूह द्वारा अन्य मनुष्यो के अधिकारो मे हस्तक्षेप को रोकने के लिए जो कानून उपयोगी है, उनके अतिरिक्त और कानून न बनाए जायँ।'

"प्रमुख ह्विग लोगो का एक प्रिय सिद्धान्त शासन-विज्ञान की पेचीदगी और गम्भीरता सिखाता है। उनके अनुसार जो कोई राष्ट्र पर शासन करने और लोगो पर नियन्त्रण रखने के गम्भीर रहस्यो और गुप्त आश्चर्यो को समझना चाहे, उसके लिए विशाल अध्ययन और शिक्षा आवश्यक है।... गलती प्रवन्ध करने की आकाक्षा मे ही है, जो हमारे विधि-निर्माण का वड़ा अभिशाप है। हर चीज़ कानून द्वारा नियमित की जानी और रास्ते पर लाई जाने वाली है। और इस सारे समय अत्यधिक प्रवन्ध के प्रत्यक्ष फलस्वरूप ही बुराइयाँ वढ़ती जाती हैं।...

" 'सारे समाज का सुख' का आकर्षक बहाना लेकर शासन की लगभग सारी बुराइयाँ और हस्तक्षेप कार्यान्वित हुए है। जव कभी ऐसा अवसर आये, तो विधान-मण्डल अपनी सम्भाव्य शक्ति सुख और सद्गुण के पक्ष में लगा सकता है, और उसे ऐसा करना चाहिए। किन्तु इन उद्देश्यो के लिए प्रत्यक्ष कानून बनाना कभी भी फलदायक नही होता और उससे अस्थायी लाभ भी शायद ही कभी होता है। वस्तुत. बुद्धिमान् मनुष्यो ने बहुत पहले ही देख लिया था कि 'सर्वोत्तम

शासन वही है, जो सबसे कम शासन करे।' हमें आश्चर्य है कि इस उक्ति की भावना हमारे देशी नेताओं के हृदयों तक अधिक अवसरों पर और अधिक निकट तक नहीं पहुँचती। .

"कानून के द्वारा सामान्य सद्गुण, श्रेष्ठता और आत्मत्याग लाने की अपेक्षा करना मूर्खता है। ये बिल्कुल भिन्न स्रोतों से आते हैं—घर के प्रभाव और उदाहरण से, सुनिर्मित सिद्धान्तों से, और नैतिकता की आदत से। अतः नैतिकता में हस्तक्षेप करने वाले कानूनों में हमारी आस्था बहुत कम है और मनुष्यों को अच्छा बनाने के कानूनी प्रयासों में हमारी आस्था बिल्कुल ही नहीं है।"[1]

युवा अमरीका

धीरे-धीरे स्फूर्तिमय शासन के ह्विग कार्यक्रम के स्थान पर अमरीका की 'प्रकट नियति' पर एक आस्था आ गयी और लोकतन्त्रवादियों ने 'अमरीकी व्यवस्था' की धारणा को बदल कर उसे अमरीकी लोगों की प्रकृतिजन्य प्रगति का रूप दे दिया। १८३७ की निराशा का अन्त होने के बाद, पश्चिम की ओर तेजी से प्रसार, औद्योगिक क्रान्ति और अमरीका की बढ़ती हुई राजनीतिक प्रतिष्ठा ने मिल कर एक उत्साहपूर्ण आशावाद और देशभक्ति का सृजन किया। जब इसमें सोने की खोज और यूरोप में १८४८ में हुई क्रान्तियों की उत्तेजना जुड़ गयी और गुलामी के प्रश्न पर मिसौरी समझौता[2] हो गया तो आत्म-विश्वास की ज्योति ने प्रगति और अमरीका के नेतृत्व में विश्वास की एक तेज़ राष्ट्रीय मशाल का रूप ले लिया। छठे दशक का यह तेज़ आशावाद, सातवें दशक में होने वाली दुखद घटना के लिए अधिकतम अनुपयुक्त मानसिक भूमिका थी।

एमर्सन का एक भाषण ह्विग राष्ट्रवाद से लोकतन्त्रवादी राष्ट्रवाद की ओर

---

१. वाल्ट ह्विटमैन, 'दी गैदरिंग ऑफ फोर्सेज़' खण्ड एक, पृष्ठ ५२, ५३-५४, ५६-५७, ५९।

२. मिसौरी-समझौता—मिसौरी राज्य के सं० रा० अमरीका में प्रवेश की अनुमति सम्बन्धी १८२० में हुआ समझौता जिसके अनुसार स्वयं मिसौरी राज्य में गुलामी-प्रथा चालू रही, किन्तु उसके पश्चिम और उत्तर के सभी क्षेत्रों में गुलामी-प्रथा समाप्त कर दी गयी।—अनु०

इस संक्रमण को सार-रूप में व्यक्त करता है। यह भाषण उन्होंने १८४४ मे बोस्टन के व्यापारिक पुस्तकालय संघ (कैन्टाइल लायब्रेरी एसोसिएशन) के समक्ष दिया और इसका शीर्षक 'युवा अमरीकी' रखा। पहले हिस्से में उन्होंने रेलों और अन्य 'सुधारो' के सास्कृतिक महत्व, पश्चिमी क्षेत्र का द्वार खुलने और व्यापार की अभिवृद्धि पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और अमरीका को 'भविष्य का देश...प्रारम्भो, सयोजनाओ, अभिकल्पो, आशाओ का देश' कहा। फिर मानवी निर्माण और सुधार के इस ह्विग चित्र से मुड कर उन्होने कहा—"सज्जनो, एक उदात्त और मैत्रीपूर्ण नियति है जिससे मनुष्य जाति निर्देशित होती है।" इस 'नियति' को उन्होने शासन के नही, वरन् प्रकृति के एक कार्य के रूप में समझाया।

"यह लाभकारी प्रवृत्ति, हिंसारहित किन्तु सर्वशक्तिमान् है, और कार्य करती है। इतिहास की हर पंक्ति यह विश्वास पैदा करती है कि हम वहुत ज्यादा नही भटकेंगे, कि चीजें सुधर जाती हैं। जो कुछ हम सीखते हैं, उसका यही सबक है कि इससे आशा उत्पन्न होती है, जो सुधारो की उर्वर जननी है। हमारा काम साफतौर पर यही है कि हम रास्ते में न आयें, सुधार में रुकावट न डालें, जड़ हो जाने तक बैठें न रहे, बल्कि हर आने वाली सुबह को देखें, और नये दिनो के नये कामो के साथ लगें। शासन जड़ीभूत रहा है, उसे विकासमान् पौधा होना चाहिए। मै समझता हूँ कि कानून का काम मनुष्य-जाति के दिमाग को व्यक्त करना होना चाहिए, उसमे रुकावट डालना नही—नये विचार, नई वस्तुएँ। व्यापार एक साधन था, किन्तु व्यापार भी केवल कुछ समय के लिए है, और उसे कुछ अधिक व्यापक और बेहतर वस्तु के लिए स्थान छोडना होगा, जिसके चिह्न अभी भी आकाश मे उदय हो रहे हैं।...

"व्यापार द्वारा समाज की स्थिति में हुई क्रान्ति के फलस्वरूप, हमारे काल में शासन अकुशल और भारी-भरकम प्रतीत होने लगा है। अधिक सक्षिप्त विधियो का मार्ग हमने अभी भी देख लिया है। समय शुभ सकेतो से भरा है। इनमें से कुछ फलीभूत होगे। यह सारा लाभकारी समाजवाद एक मैत्रीपूर्ण सकेत है, जनता की शिक्षा के लिए बढ़ती हुई आवाजें इस ओर सकेत करती हैं, कि महाजन और जल्लाद के अलावा शासन के और भी कुछ काम हैं।

"आस-पास की किसी पहाड़ी से धरती को देखिए, तो भूमि शासन की माँग करती प्रतीत होती है। मनुष्यो के वास्तविक अन्तरो को स्वीकार करना होगा और प्रेम व बुद्धि से उनका सामना करना चाहिए। ये धरती के उठे हुए कोने, जहाँ से नीचे के फैले हुए मैदानो को देखा जा सकता है, स्वामियो की माँग करते प्रतीत होते है, वास्तविक स्वामियो, भू स्वामियो की, जो भूमि और उसके उपयोग

को समझते है, और मनुष्यो की कार्य-क्षमताओ को भी, और जिनका शासन वही होगा जो उसे होना चाहिए, अर्थात् आवश्यकता और पूर्ति के बीच मध्यस्थता। हर नागरिक बडी प्रसन्नता से अच्छे निर्देशन को कायम रखने और सबल बनाने के लिए शुल्क दे देगा।. .ऐसी वस्तुस्थिति की ओर सचमुच प्रगति होती प्रतीत होती है, जिसमे यह कार्य उन नैसर्गिक कर्मियो द्वारा किये जाएँगे। और यह निश्चय ही चुनावो मे नागरिकों द्वारा अधिक विवेक के प्रदर्शन मे नही होगा, वरन् अधिकृत शासन के प्रति धीरे-धीरे बढ रही इस प्रवृत्ति के द्वारा होगा कि शासन के जो कार्य उससे छूट जाते हैं, उन्हे स्वय अपना लें।.

"हमें राजाओ की भी आवश्यकता है और सामन्तो की भी। प्रकृति हर समाज को राजा और सामन्त प्रदान करती है—लेकिन हम केवल नाम के राजा-सामन्त न रखकर असली रखें। जो सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्ही से हम अपना नेतृत्व और अपनी प्रेरणा लें। हर समाज मे कुछ व्यक्ति शासन करने के लिए पैदा होते हैं, और कुछ सलाह देने के लिए। शक्तियाँ सुनिर्दिष्ट हो, प्रेम द्वारा निर्दिष्ट हों, तो हर जगह उनका स्वागत आनन्द और सम्मान के साथ होगा।..

"मै आप युवको से कहता हूँ कि अपने दिल की बात मानें और इस देश का अभिजात-वर्ग बनें। ससार के हर युग में एक अगुआ राष्ट्र रहा है, जिसकी भावनाएँ अधिक उदार हो, जिसके प्रमुख नागरिक, तात्कालिक दृष्टि रखने वालो द्वारा अतिकाल्पनिक और शेखचिल्ली कहलाने का खतरा उठाकर भी, सामान्य न्याय और मानवता के हितो का समर्थन करने को तैयार रहते हैं। ऐसा राष्ट्र कौन होगा सिवाय इन राज्यो (अमरीका) के ? कौन इस आन्दोलन का नेतृत्व करे, सिवाय न्यू-इगलैंड के ? नेताओ का नेतृत्व कौन करे, सिवाय युवा अमरीकी के ?...

"सज्जनो, समारे अमरीकी आन्तरिक साधनो का विकास, व्यापार-व्यवस्था के अधिकतम विकास और राज्य को सशोधित करने वाले नैतिक कारणो के प्रकट होने से, भविष्य को महानता का ऐसा रूप मिल रहा है, जिसे अनावृत करते कल्पना काँपती है। एक बात हर सामान्य बुद्धि और सामान्य अन्तरात्मा वाले व्यक्ति के सामने साफ है, कि यहाँ अमरीका मे, मनुष्य का घर है।"[1]

अमरीकी नियति की इस धारणा ने एक नये प्रकार के लोकतान्त्रिक सिद्धान्त को जन्म दिया। प्रकृति का मार्गदर्शक हाथ, प्राकृतिक नियम का नही था, वरन् भौतिक और मानवी प्राकृतिक साधनो का था, एक अराजनीतिक प्रकार की

१. 'दी वर्क्स ऑफ राल्फ वाल्डो एमर्सन' (बॉन्स स्टैन्डर्ड लायब्रेरी लन्दन, १८८५), खण्ड दो, पृष्ठ ३००-३०६ मे स्थान-स्थान पर।

सामान्य अच्छाई, जो समूचे अमरीकी राष्ट्र को हर दिशा में असीमित प्रगति की सुरक्षा प्रदान करती थी। जब एमर्सन जैसा सौम्य और सावधान दिमाग भी इन अतिशयोक्तिपूर्ण आशाओ का शिकार हो गया, तो उन युवा 'अभिजातो' के, जिनसे एमर्सन ने अपील की थी, असीमित, कट्टर आशावाद और संकीर्ण राष्ट्रवाद की कल्पना की जा सकती है। उनमें से एक सदा-युवक वाल्ट ह्विट्मैन ने अपने पत्र, 'डेली ईगिल' मे शिशु-स्वर मे कहा—

"जबकि विदेशी पत्र—कम से कम उनका एक बडा हिस्सा—इस गणतन्त्र और इसके चुने हुए नेताओ की हँसी उडा रहे है, याकीडूडिल[1] का देश पैंसठ लाख अश्वशक्ति के भाप के इंजन की अदम्य शक्ति के साथ आगे बढ़ रहा है। दक्षिण और पश्चिम की ओर कोई चीज इसके सामने नही टिक रही है, और सम्भव है कि एक दिन यह कनाडा और रूसी अमरीका (अलास्का) को भी अपनी जेब मे रख ले। उन कामो को यह परम्परागत 'भद्र' रीति से करता है या नहीं, यह गौण बात है—किन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि यह चाहे जो भी कदम उठाये, मानवी जीवन, सम्पत्ति और अधिकारों के प्रति इसका दृष्टिकोण कोमल रहेगा। किसी भी स्थिति मे, याकीडूडिल का देश चीनी युद्ध, या 'हिन्दुस्तान मे अग्रेजी कार्यवाहियाँ' या 'पोलैंड के विनाश' जैसी चीजो के प्रतिरूप प्रस्तुत करने का दोषी कभी नही होगा। पुरानी दुनिया औपचारिकता और अनुदारता के अपने बोझ के नीचे लडखडाती रहे। हमारी जाति और भूमि अधिक नयी और ताज़गी भरी है। और हमे सिर्फ पचास वर्ष आगे की ओर सकेत करके इतना कहना है कि जो जीतें, वे हँसें।"[2]

नथेनिएल हॉथार्न का 'युवा अमरीकावाद' एक विशिष्ट प्रकार का लोकतन्त्र था, और उनके गम्भीरतम आदर्शों मे से एक को व्यक्त करता था। उनमे यह मूलत. न राजनीतिक लोकतन्त्र था, न आर्थिक, वरन् सामाजिक लोकतन्त्र था—सामाजिक समानता के प्रति लगाव और वर्गहीन समाज की चाह। वे एक 'शुद्ध' लोकतन्त्रवादी, जनता के आदमी थे।

सेलम मे, और मेन राज्य के बोडाइन कालेज मे एक युवक के रूप मे भी, वे जानबूझ कर शर्मीले बने रहे, अर्थात् विशिष्टता न प्राप्त करने को उन्होने एक आदत और एक आदर्श बना लिया था, जबकि उनके आसपास के सारे लोग

---

१ याकीडूडिल—अमरीकी स्वतन्त्रता युद्ध के समय लोकप्रिय गीत जो अंग्रेजो के मज़ाक का शिकार होते-होते, अमरीकियो का राष्ट्रीय गीत बन गया।—अनु०

२. वाल्ट ह्विटमैन, 'दी गैदरिंग ऑफ दी फोर्सेज़' (न्यूयार्क, १६२०), खण्ड एक, ३२-३३।

विशिष्ट वैयक्तिकता प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होने किसी मच पर आना स्वीकार नही किया, और अन्य रीतियो से भी अपने साथियो को समझाया कि लेखन के अपने चुने हुए कार्य-क्षेत्र में भी उनका स्थान छोटा ही रहेगा। 'मैं कभी संसार में विशिष्ट आकृति नही बनूंगा, और मेरी सारी आशा और इच्छा यही है कि जनसमूह के साथ जुटा चलता रहूँ।'[1] वे महत्वाकाक्षी नही थे और जीविका के लिए काम करना भी उन्हे अप्रिय था। 'श्रम ससार का अभिशाप है, और जा कोई उसमें हाथ लगाता है, वह उस सीमा तक पशु बन जाता है,' उन्होने ब्रूक फार्म[2] के प्रयोग से निराश होने के बाद अपनी प्रेमिका को लिखा। उन्हे आशा थी कि वहाँ उन्हे कम से कम काम के साथ अधिक से अधिक आराम करने को मिलेगा। किन्तु अपनी आदर्श स्थिति के निकटतम वे उन वर्षों में ही पहुँच पाये, जब सेलम के चुगीघर और लिवरपूल के उप-दूतावास में उन्हे लोकतान्त्रिक दल का राजनीतिक सरक्षण प्राप्त रहा।

लोकतन्त्र को वे परात्परवादी सुधारको के रोमानी अनुत्तरदायी 'अहवाद' के विरुद्ध सामान्य व्यक्तियो का गम्भीर, यथार्थवादी उद्यम मानते थे। गुलामी-प्रथा की समाप्ति चाहने वालो की कट्टर, पेशेवर लोकोपकारिता के समक्ष, नैतिक-यथार्यवादी बनने की अपनी चेष्टा के फलस्वरूप ही उन्होने गुलामी की समस्या की गम्भीरता को पूरी तरह नही समझा। हॉथार्न और 'युवा अमरीकियो' ने राष्ट्र की नैतिक स्थिति के एक ऐसे विश्लेषण के आधार पर, जो यथार्थ से बहुत दूर प्रमाणित हुआ, विश्वासपूर्वक यह आशा व्यक्त की कि दलगत विरोधो पर राष्ट्रीयता की विजय होगी—

"इसी प्रकार कहा जा सकता है कि दोनो पक्ष एक सामान्य उद्देश्य में एक हैं—हमारे पवित्र सघ को उस अटल आधार के रूप मे कायम रखना, जिससे न केवल अमरीका बल्कि शायद सारी मनुष्यजाति अपनी नियति की ओर अग्रसर होगी और उसे प्राप्त करेगी। और इस प्रकार मनुष्य असामान्य शान्ति और समरसता में खड़े प्रगति की उस नयी हलचल की प्रतीक्षा में हैं, जिसकी ओर ये सारे चिह्न संकेत करते हैं।"[3]

---

१. ब्रिज के नाम पत्र, १३ अक्टूबर, १८५२ से, 'दी कम्प्लीट वर्क्स' (रिवरसाइड संस्करण, कैम्ब्रिज, १८८६) में, खण्ड बारह, पृष्ठ ४६६।

२. ब्रूक फार्म—परात्परवादियों द्वारा बसाई गयी एक आदर्श बस्ती जो असफल रही।—अनु०

३. 'दी कम्प्लीट वर्क्स' (कैम्ब्रिज, १८८६), खण्ड बारह, पृष्ठ ४३६।

उनके लिए यह आस्था कभी सरल नही रही। यह मूलत: एक नैतिक संघर्ष था, जिसका दु:खान्त होना स्वाभाविक था।

हॉथार्न की निजी पीड़ा और भी ज्यादा गहरी इस कारण हो गयी कि इगलिस्तान में अपने आवास के समय, जिसे वे स्नेहपूर्वक 'हमारा पुराना घर' कहते थे, उन्होने इंगलिस्तानी अभिजात्य-वर्ग के परिपक्व 'उच्च' प्रतिमानो और नैतिक मूल्यो से आनन्दित होना सीख लिया था और अमरीका वापस आने पर हमारी सस्कृति के रूखेपन से उन्हे बड़ा धक्का लगा। पुराने अभिजात्यवर्ग की सुन्दरताओ के प्रति प्रेम और युवा लोकतन्त्र के आदर्शों के प्रति निष्ठा के बीच जो सघर्ष उनके अन्दर चल रहा था, उनके जीवन के अन्तिम वर्ष उसी मे गुज़रे। इस आन्तरिक सघर्ष और उसके साधारणीकृत द्वन्द्व की उन्होने 'डाक्टर ग्रिमशॉज़ सीक्रेट' में गम्भीर विवेचना की।

"मैं यह जरूर कहता हूँ कि मुझे अपने देश से प्यार है, मुझे उसकी संस्थाओ पर गर्व है, मेरे अन्दर एक भावना है, जो शायद गणतन्त्रवादियो के अतिरिक्त अन्य लोगो के लिए अज्ञात ही रहती है, किन्तु जो मेरे लिए सर्वाधिक गर्व की वस्तु है, कि कोई मनुष्य मुझसे ऊँचा नही है—क्योकि एक अन्य व्यक्ति के रूप मे, जिसे मै उसका पद प्रदान करता हूँ, मैं स्वयं अपना शासक हूँ—और न कोई मुझसे नीचा है। अगर आप मेरी बात समझें तो मैं आपको बताऊँ कि मुझे कितनी लज्जा का अनुभव हुआ, जब इस देश में पाँव रखने के बाद पहली बार मैने एक व्यक्ति को कहते सुना कि जन्म से उसे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं, मजदूरी करने वाले लोगो के प्रति उसे नीची दृष्टि से देखते पाया, जैसे वे किसी निम्न-जाति के हो। और इस बात को मै कभी नही समझ सकता कि अपने से ऊँचे व्यक्तियो और वर्गों पर आपको निश्चित रूप में गर्व होता प्रतीत होता है; जिसे जन्म से ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जिनमें हिस्सा पाने की आप कभी आशा नही कर सकते। यह एक ऐसी चीज़ हो सकती है जिसे सहना पड़े, लेकिन निश्चय ही ऐसी नही जिस पर सम्पूर्ण रूप में गर्व हो। फिर भी अंग्रेजो को ऐसा गर्व होता है।"[१]

"उस सन्तोष को समझना हम सबसे कठिन पाते हैं जो अंग्रेजो को अपने से ऊँची एक जाति के बारे में सोच कर होता है, जिसके विशेषाधिकारो में वे हिस्सा नही बँटा सकते, जिसे उनका तिरस्कार करने का अधिकार है, और जो उनकी कीमत पर अपना सुन्दर और आकर्षक आचरण प्राप्त करती है—इस जाति के लोग दयालु, सादे और अकृत्रिम होते हैं, क्योकि ये गुण, घमण्ड की अपेक्षा अधिक

१. वही, खण्ड ग्यारह, पृष्ठ २००।

उपयोगी होते हैं, और श्रेष्ठतम पुरुषत्व के नमूने होते है। और ये सारे लाभ उन्हे अपनी स्थिति से प्राप्त होते हैं। अगर सामन्त होना केवल नाम की बात हो, तो वह ईर्ष्या की वस्तु नही। किन्तु वह केवल नाम ही नही और भी बहुत कुछ है। यह सचमुच मनुष्यो को बहुत 'उच्च बनाता है'। गरीब निम्न वर्ग भले ही इसे सह सकते हैं, लेकिन जो वर्ग सामन्तो के तत्काल बाद आते हैं—उच्च मध्यम वर्ग—वे किस प्रकार इतने प्रेम से इसे सहन करते हैं, यह निश्चय ही अमरीकियो को उलझन में डालता है।...

"मै यह अनुभव करता हूँ कि इंगलिस्तान के विचार और सस्कार चाहे जो भी हो, मेरे अपने देशवासी उनमे बहुत-बहुत आगे चले गये है—बौद्धिक दृष्टि से नही, वरन् ऐसी रीति से जो उन्हे अपनी यात्रा आगे से आरम्भ करने का अवसर देता है। अगर मै अपने आप को अंग्रेज बनाने के इरादे से वापस आऊँ, विशेषत: पदवी धारी और पैतृक सम्पत्ति वाला अंग्रेज बनने के इरादे से, तो मेरे लिए अमरीका की खोज व्यर्थ हुई, जो महान् भावना हमारे अन्दर जगाई गई है, वह व्यर्थ हुई, और मै उस सब के प्रति द्रोही हूँ।

"लेकिन फिर उसके ऊपर एक बाढ की तरह उमडती हुई वह सारी प्राचीन शान्ति, खामोशी और गुरुता जो उस पुराने घर पर छाई हुई-सी इतनी सुन्दर और गरिमामय लगती थी। पदवियो की वह सुन्दर व्यवस्था, वह मधुर उच्चता, लेकिन फिर भी, उस सामान्य भाई-चारे से इन्कार नही, जो अंग्रेज भद्रपुरुष और उसके नीचे के लोगो मे था। वह सारा आनन्दमय समागम, जिसमे खुशी निश्चित होती है और जो रूखेपन, नीचता और अप्रिय सघर्ष से पूर्णत. सुरक्षित होता है, जहाँ सार्वजनिक मामलो में सभी लोग मूलत' एक ही विचार के होते है, या हमारे कटुतापूर्ण दलो के तीव्र सघर्ष के अभ्यस्त अमरीकी राजनीतिज्ञ को ऐसे प्रतीत होते हैं। जहाँ जीवन को इतना आकर्षक, इतना परिष्कृत बना दिया गया था, फिर भी उसमे एक प्रकार का घरेलूपन था, जो यह दिखाता प्रतीत होता था कि वह अपनी सारी शक्ति पीछे छोड आया था। ऐसा प्रतीत होना कि जीवन मे जो कुछ भी वाञ्छनीय था, उसका सारा सौन्दर्य और आकर्षण, ग्रहण कर लिया गया, फिर भी अति-परिष्कार की सख्त परत जीवन पर कभी नही चढी। सभ्यता के प्रति जगली, रूखे और कुनिर्दिष्ट अमरीकी दृष्टिकोण मे ऐसा क्या था, जिससे इसकी तुलना की जा सके? इस रसमयता और समृद्धि से किसकी तुलना करें?"[1]

वर्ग-समाज और वर्ग-विहीन समाज के इस सघर्ष से भी अधिक व्यापक एक

---

६२. वही, पृष्ठ २८२-२८३, ३३१-३३२।

और इसी से सम्बन्धित संघर्ष था, जो आजीवन हॉथॉर्न और उनके रोमासो (रोमानी रचनाओ) पर छाया रहा, आन्तरिक निष्ठा और व्यावहारिक उपलब्धि का सघर्ष, शुद्धतावादी और यान्की का सघर्ष। हॉथॉर्न के अनुसार इस सघर्ष मे लोकतन्त्र और शुद्धतावादी अन्तरात्मा, राजनीतिक परम्पराओ के विरुद्ध सहयोगी हैं। युवा अमरीकियो के विद्रोह ने उनकी अन्तरात्मा और उनके यथार्थ-वाद दोनो को ही आकर्षित किया। वे एक उत्साही पक्षधर बन गये, बिना यह समझे हुए कि उनका दल उनके अपने यथार्थवादी रोमासो से भी कही अधिक रोमानी था, और यह कि उनका अपना आन्तरिक सघर्ष राष्ट्र की दु खद नियति का एक चिह्न था।

सीमान्त के समुदाय और विश्वास

अमरीका के सर्वाधिक अल्पायु अंग, निरन्तर पीछे हटते हुए सीमान्त ने एक ऐसे सामाजिक दर्शन को जन्म दिया जो राष्ट्रवाद और व्यक्तिवाद दोनो से बिल्कुल भिन्न था। उसे समुदायवाद कहा जा सकता है। जब से ही मनुष्यो के शिकारी, खानाबदोश कबीले किसी अनन्त सुखमय शिकारगाह, या किसी अदन के बाग, या किसी खेत पर ही बसने का स्वप्न देखने लगे, तभी से इन 'स्वर्गोपम क्षेत्रो' को उन्होने, किसी ऐसे बडे परिवार या कबीले के 'उत्तराधिकार' के रूप मे देखा है, जो किसी न किसी कारणवश पीढियो से यात्री जीवन बिताने को बाध्य रहा था। अत यह कोई आकस्मिक बात न थी कि जब महान् पश्चिम के द्वार खुले, तो प्रयोगशील व्यक्तियो के छोटे-छोटे समूहो ने अनुभव किया कि ईश्वर या भाग्य ने उन्हे 'पुकारा' है, कि वे पुराने सडते हुए ससार और उसकी सस्थाओ को छोड़कर, एक नये जीवन का, नयी दुनिया मे नये समाज का, आरम्भ करें। यात्री समुदायो, धर्म-समुदायो और परिवारो की कहानी, जिन्होने एक सुखमय देश की कल्पना से प्रेरित हो कर यूरोप छोडकर अमरीका के लिए प्रस्थान किया, अमरीकी इतिहास का एक सुपरिचित विषय है। किन्तु पश्चिम की ओर यात्रा भी उसी दु खद कहानी का उत्तराश है, जब युद्धो, मदियो और उत्पीडनो का अनुभव तथाकथित 'नयी' दुनिया के पूर्वी समुद्रतट पर किया जाने लगा। अति शीघ्र ही, यूरोपीय ढाँचा यहाँ भी प्रकट हुआ और यात्रियो की सन्तानें फिर यात्रा पर चल पडी। विशेषत. १८०८ के बाद, १८१२ के बाद और १८३७ के बाद, हजारो अमरीकी ऐसे थे, जिन्होने पश्चिम की ओर बुलाने वाली

कुछ जर्मन प्रोटेस्टेन्ट समुदायों का सगठन निश्चित रूप से मठीय था, विशेषतः 'एफराटा' समुदाय का।

इन छोटे-छोटे सन्त-समागमो में अधिकाश के मूल यूरोपीय थे। पेन्सिलवेनिया और मिसौरी राज्य ऐसे जर्मन सम्प्रदायो से भरे पडे थे, जिनकी शुरुआत पुरानी दुनिया मे हुई थी। उनकी सख्या इतनी अधिक थी कि सब यहाँ गिनाये नही जा सकते। उनमे से अधिक पराकाष्ठावादी और साहसिक समूहो में से एक वुर्टेम्बर्ग से आये हुए रैप[1] के अनुयायियो का था, जिन्होने १८१४ मे इण्डियाना राज्य में हारमनी नामक नगर की स्थापना की। यह पादरियत-विरोधी, पवित्रतावादी, सयमी, दयालु, कौमार्यव्रत का पालन करने वाले और मेहनती लोगो का समुदाय था। इसी समूह की एक शाखा ने १८१७ मे ओहियो राज्य मे ज़ोर नामक नगर की स्थापना की। १८४२ मे इससे मिलता-जुलता एक पवित्रतावादी दल, 'सत्य-प्रेरणा समुदाय' या 'एबनेज़र[2] समाज' जर्मनी से आया। उन्होने अन्ततः १८५४ मे अपना स्थायी निवास आयोवा राज्य मे अमाना नगर को बनाया। यह किसानो का एक साम्यवादी समाज था, जिसमे न पेशेवर पादरी था, न पेशेवर मनोरञ्जन था। ये बडे सीधे-सादे धार्मिक सस्कारो और विधियो में हिस्सा लेते और हर सदस्य सीधे ईश्वर से प्रेरणा लेने का अधिकारी था। अमाना समुदाय का अस्तित्व अब भी है, यद्यपि सशोधित रूप में। स्वीडेन के पवित्रतावादियो का एक उत्पीडित धर्म-समुदाय था, जो अपने पैगम्बर एरिक जैन्सन के नेतृत्व में आया और अन्ततः उत्तरी इलिनायस मे एक प्रयोगशील बस्ती के रूप में बस गया (१८४६-६२)। सातवें दशक मे दक्षिणी रूस से बहुसख्यक मेननाइट[3] साम्यवादी या हुटेराइट लोग आये और उन्होने दक्षिण डकोटा में बस्तियाँ बसायी जो ब्रूडरहॉफ समुदायो के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

'मित्र समाज' या क्वेकरो की कहानी भी वस्तुत. सीमाक्षेत्रीय विश्वासो की इस सक्षिप्त कथा का अग है, किन्तु न्यू-इगलैंड के शुद्धतावादियो की भाँति पेन्सिलवेनिया के क्वेकरो का भी ऊपरी रूप-रग शीघ्र ही बदल गया और वे हमारे धर्मनिरपेक्ष राज्य के सस्थापको मे शामिल हो गये। किन्तु इस समाज की

---

१. रैप—जर्मनीवासी, जिन्हे धर्म के एक समाजवादी रूप का प्रचार करने के कारण १८०३ में अमरीका जाना पड़ा।—अनु०

२ एबनेज़र—बाइबिल में वर्णित एक स्मारक पत्थर, ईश्वर की कृपा का प्रतीक।—अनु०

३. मेननाइट—क्वेकरो या बपतिस्मावादियो से मिलता-जुलता एक प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय।—अनु०

एक शाखा, 'हिलने वाले क्वेकर' या शेकर्स[1] सीमान्तक्षेत्रीय समुदायो का एक उत्तम उदाहरण है। माता ऐनली नामक पैगम्बर के इन अनुयायियो का वास्तविक नाम 'नवयुग चर्च' (मिलेनियल चर्च) या 'विश्वासियो का सयुक्त समाज' (यूनाइटेड सोसायटी ऑफ बिलवर्स) था। उनकी मृत्यु के शीघ्र बाद ही हडसन और कॉनेक्टिकट नदियो की घाटियो मे बिखरे हुए उनके अनुयायी कई बडे परिवारो मे 'ईश्वरीय सन्देश की व्यवस्था' मे एकत्रित हो गये (१७८७)। इस समुदाय के सदस्य नीचे लिखी शपथें लेते थे—

"यह . हमारे अनुभव से पुष्ट हमारा विश्वास है कि बिना सयुक्त-हित और सघ के, पूर्णत ईसा के नियमो के अनुसार सगठित कोई चर्च नही हो सकता, जिसमे सभी सदस्यो के, आध्यात्मिक और आधिभौतिक वस्तुओ में, अपने कार्य और आवश्यकताओ के अनुसार समान अधिकार और विशेषाधिकार हो। .

"सभी सदस्यो का, जो चर्च द्वारा स्वीकार किए जायें, धार्मिक अधिकार के रूप मे एक ही सयुक्त हित होना था। अर्थात् चर्च मे सभी वस्तुओ के उपयोग मे सभी का अपनी आवश्यकताओ के अनुसार न्यायपूर्ण और समान अधिकार और विशेषाधिकार होना था—बिना इस आधार पर कोई अन्तर किये कि हममे से कौन क्या लाया, जब तक हम चर्च के शासन और व्यवस्था के प्रति आज्ञाकारी रहे और सदस्यो के रूप मे सम्बद्ध रहे। इसी प्रकार सभी सदस्य समान रूप मे बँधे थे कि अपनी योग्यता के अनुसार, चर्च के शासन और व्यवस्था के अनुरूप, सघ-बद्ध रूप मे एक सयुक्त-हित को कायम रखें और उसे बल प्रदान करे।...

"यह न चर्च का कर्त्तव्य था, न चर्च-व्यवस्था मे सघबद्ध होने का उद्देश्य था कि सासारिक वस्तुओ के एक हित को एकत्रित और निर्मित करें। वरन् ईमानदारी से उद्योग करने पर हमारी अपनी जीविका के लिए पर्याप्त से अधिक जो कुछ भी हमे प्राप्त हो, उसे परोपकार के कार्यो मे गरीबो को राहत देने और ईश्वरीय नियमो द्वारा निर्दिष्ट अन्य कार्यों मे लगाना था। अत. यह हमारा विश्वास था और अब भी है कि चर्च के सयुक्त-हित मे जो भी हित या सेवाएँ हम प्रदान करे, उसके लिए चर्च या एक-दूसरे के विरुद्ध ऋण या दोष की कोई बात न उठायें, बल्कि मुक्त रूप से, भाइयो और बहनो की तरह, अपना समय अपनी योग्यताएँ, चर्च की व्यवस्था के अनुसार एक-दूसरे की पारस्परिक भलाई मे और अन्य परोपकार के कामो मे लगाएँ।"[2]

---

१. शेकर-सम्प्रदाय का नाम उनके धार्मिक नृत्यो के आधार पर पडा।—अनुवादक

२. मार्ग्रराइट फेलोज मेल्चर, 'दी शेकर ऐडवेंचर' (प्रिन्सीटन. १९४१). पृष्ठ ८९. ९०-९१।

उनका लक्ष्य संसार के आध्यात्मिक पुनर्जीवन को, या अन्तिम निर्णय की प्रक्रिया, अच्छाई और बुराई के अलगाव को, आगे ले जाना था। यह प्रक्रिया माता ऐन मे ईसा के दोबारा प्रादुर्भाव या 'नारी-जन्म' से आरम्भ हुई थी और सारे 'नव-युग-काल' में जारी रहने वाली थी।

"ईश्वर ने पृथ्वी के राष्ट्रो का फैसला करना आरम्भ कर दिया है, जो बहुत दिनो से अपने निर्णय में गलतियाँ करते रहे है और न्याय व सत्य के मार्ग मे भटकते रहे हैं, और यह न्यायपूर्ण फैसला कभी बन्द नही होगा, जब तक ईश्वर का कार्य पूर्णतः सम्पन्न नही हो जाता।"[1]

'ईसा के राज्य' के सदस्यो का नियमन करने वाले विशिष्ट 'नैतिक सिद्धान्त' थे—'ससार से अलगाव, व्यावहारिक शान्ति, भाषा की सादगी, सम्पत्ति का उचित उपयोग और कौमार्य जीवन'। 'ससार से अलगाव' और व्यावहारिक शान्ति द्वारा सदस्यो के लिए न केवल युद्ध मे भाग लेना निषिद्ध था, वरन् 'ससार के विवादो' मे भी, 'जिसमे एक राजनीतिक दल की अपेक्षा दूसरे के निकट अनुभव करें।' राजनीति में वे कठोर अलगाववादी थे और अपने को शाब्दिक अर्थ में एक अन्य विश्व का नागरिक समझते थे।

इन उत्तरकालीन सन्तो में सबसे अधिक वैचित्र्यमय मॉरमन सम्प्रदाय था। १८२३ मे न्यूयार्क के एक किसान को दिव्य-दृष्टि मिली कि ईश्वर के चुने हुए लोगो में जो लोग बचे थे, उन्हे इकट्ठा करके एक नये धर्म-सगठन (ज़ियॉन) का निर्माण करें। युवावस्था में मिले दिव्य-दर्शनो में से एक के उनके अपने विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन विश्वासो के प्रति असन्तोष उनकी खोज का एक महत्वपूर्ण तत्व था।

"ईश्वर के समक्ष प्रश्न लेकर जाने में मेरा उद्देश्य यह जानना था कि सारे पन्थो मे कौन सही है, ताकि मुझे मालूम हो जाए कि मैं किसमें सम्मिलित होऊँ। अतः जैसे ही मैं अपने पर इतना काबू पा सका कि बोल सकूँ, जो व्यक्ति मुझसे ऊपर प्रकाश मे खड़े थे उनसे मैंने पूछा कि सारे पन्थो में कौन सही है—और मैं किसमे सम्मिलित होऊँ।

"मुझे उत्तर मिला कि मुझे उनमें से किसी में भी नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वे सारे गलत थे और मुझे सम्बोधित करने वाले व्यक्ति ने कहा कि उनके सारे मत उनकी दृष्टि मे तिरस्करणीय थे, कि वे मतानुयायी सारे भ्रष्ट थे, कि

---

१ 'ए समरी व्यू ऑफ दी मिलेनियल चर्च, ऑर यूनाइटेड सोसायटी ऑफ बिलिवर्स, कॉमनली काल्ड शेकर्स' संशोधित और सुधारा हुआ दूसरा संस्करण (अलबानी, १८४८), पृष्ठ २६८।

'वे अपने शब्दो से मेरे निकट आते हैं, किन्तु उनके हृदय मुझसे दूर है, वे ऐसे मनुष्यो के आदेशो के सिद्धान्त के रूप में सिखाते हैं, जिनमें देवत्व का एक रूप है, किन्तु वे उसकी शक्ति से इनकार करते हैं।'

"उन्होने फिर उनमे से किसी में शामिल होने से मुझे मना किया। और अन्य बहुतेरी बातें उन्होने मुझसे कही जो मै इस समय लिख नही सकता। जब मै फिर होश में आया तो मैंने अपने को आकाश की ओर देखने हुए सीधे लेटे पाया। जब प्रकाश लुप्त हुआ तो मै बिल्कुल नि शक्त था। लेकिन जल्दी ही, मेरी हालत कुछ सुधरी और मैं घर चला गया। और जब मैं दीवाल की अगीठी से टिक कर खड़ा हुआ, तो माँ ने पूछा कि क्या बात थी। मैंने उत्तर दिया, 'चिन्ता न करो, सब ठीक है—मै काफी अच्छी हालत में हूँ।' फिर मैंने माँ से कहा, 'मैने स्वय यह जान लिया है कि प्रेस्बिटीरियन मत सत्य नहीं है।'"[1]

कई मरहलो से होकर मॉरमन धर्म-समुदाय की ऊटा यात्रा (१८३१-४८), पश्चिम की ओर सामान्य निष्क्रमण का ही एक सक्षिप्त रूप था और 'बुक आफ मारमन' इस बात का एक उत्तम उदाहरण है कि साहसपूर्ण लोगो की पीडाएँ और श्रम किस प्रकार अनर्गल बकवास को पवित्र और श्रद्धेय बना सकते है।

इन सीमान्त-क्षेत्रीय विश्वासो का अध्ययन करते समय यह आवश्यक है कि उनके मतो और शाब्दिक प्रतीको के माध्यम से उनकी अत्यधिक शाब्दिक व्याख्या न की जाये, बल्कि उनके सामाजिक पक्ष को देखा जाये। 'मरुभूमि' को बसाने वालो और जिसका विनाश वे अवश्यम्भावी समझते थे, ऐसे ससार से सामाजिक और बौद्धिक पलायन की उनकी इच्छा के उद्देश्यो और आदर्शो का सही मापदण्ड, वे सर्वथा अलग प्रकार के धर्मतन्त्र और सहकारी प्रजाधिपत्य की स्थापना के प्रयास हैं, जो कभी पूरी तरह सफल नहीं हुए। शायद सीमान्त-क्षेत्र के सामाजिक आदर्शों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष अपेक्षतया छोटे समाजो द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता की तीव्र आकाक्षा थी। किन्तु इस स्वतन्त्रता की खोज शायद ही कभी स्वयं एक अधिकार के रूप मे, स्वाधीनता के नाम पर की गयी। हर समूह स्वतन्त्रता की चाह इसलिए करना था कि वह अपने को धार्मिक दृष्टि से विशेषाधिकारयुक्त समझना था। दूसरे शब्दो में, इस काल के तीव्र सामाजिक और धार्मिक उद्वेलन ने पूर्व में प्रतिद्वन्दी धर्म-सगठनो के विवाद और सभ्रम उत्पन्न किये और पश्चिम में इसने स्वेच्छा पर आधारित समाजो का बाहुल्य उत्पन्न किया, जिनमें से हर एक अपने छोटे से कोने को, अपनी पवित्र ज्योति से प्रकाशित करता था।

---

१ जॉसेफ स्मिथ, 'दी पर्ल ऑफ ग्रेट प्राइस' (साल्ट लेक सिटी, १६२६), पृष्ठ ४८।

एक सामुदायिक जीवन के धर्मनिरपेक्ष समर्थक और अमरीकी सामुदायिक प्रयोगो के इतिहास के अध्येता को वडी अरुचि हुई, जव उन्हे मालूम हुआ कि उनमे से अधिकाश इस कारण असफल हुए कि सदस्यो ने यह पाया कि वे प्रतियोगितापूर्ण व्यवसाय मे अधिक मुनाफा कमा सकते है। ऐसी 'स्वार्थपरता' की आलोचना के अन्त मे उन्होने कहा कि साम्यवाद इस भावना पर निर्भर है कि 'ससार का मधुरतम आनन्द धन से और धन द्वारा प्राप्य वस्तुओ से नही मिलता, वल्कि जिन्दगी के वोझो मे दूसरो के साथ हिस्सा वँटाने से मिलता है।'[1] वोझो मे हिस्सा वँटाने मे इस प्रकार का आनन्द धार्मिक अनुभव और कल्पना का आधारभूत अग है। अत: यह स्वाभाविक है कि सफरमैना जिन्दगी की कठिनाइयो ने धार्मिक भाई-चारे के सम्वन्धो को और मजवूत वनाया। किन्तु धर्म-निरपेक्ष समुदाय, जिनके उद्देश्य और विचार उपयोगितावादी सिद्धान्तो पर आधारित थे, सम्पद्धता के द्वारा अधिकतम लोगो के अधिकतम सुख की उपलव्धि की आशा करते थे। जव इन धर्म-निरपेक्ष समाजवादियो को, समृद्धि के अर्थ में, सुख का अनुभव कम होने लगा और वोझो में हिस्सा वँटाने के अर्थ मे 'आनन्द' का अधिक, तो उन्हे कुछ निराशा का अनुभव हुआ। धर्म-निरपेक्ष समुदायो की तुलना मे धार्मिक समुदायो को एक और भी लाभ था। धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष दोनो ही प्रकार के अधिकाश समुदायो मे निरकुश या पितृसत्तात्मक शासन चलता था। धार्मिक समुदायो मे इसे एक प्रकार का धर्मतन्त्र कह कर उचित ठहराया जा सकता था, लेकिन धर्म-निरपेक्ष समुदायो को लोकतान्त्रिक प्रवन्ध के प्रयासो से वडी दिक्कत होती थी। जव तक रावर्ट ओवेन जैसा कोई उदार पूँजीपति या पूँजी लगाने वालो का कोई छोटा-सा समूह समुदाय के 'ट्रस्टी' के रूप मे सम्पत्ति का मालिक रहता, तव तक प्रवन्ध आमतौर 'व्यावसायिक स्तर' पर रहता, लेकिन जव साम्यवादी सिद्धान्त के हित में परिसम्पत्ति और जिम्मेदारियो का वँटवारा अधिक समान रूप मे किया जाता, तो दिक्कते पैदा हो जाती। वास्तव मे, 'लोकतन्त्र' शीर्षक के अन्तर्गत इन समुदायो पर विचार करने मे काफी व्यग्य है। जहाँ तक ये समुदाय अन्याय के विरुद्ध विद्रोह के चिह्न थे, जहाँ तक इन्हे अल्प-सख्यको के लिए स्वतन्त्रता की तलाश थी और जहाँ तक इन्होने सहकारी उद्यम को प्रोत्साहन दिया, वहाँ तक ये नि:सन्देह सीमान्त-क्षेत्रीय लोकतन्त्र के रूप मे ध्यान देने योग्य हैं। लेकिन उनके आन्तरिक गठन और उनकी राजनीति में वहुधा छोटे पैमाने की निरकुशता ही मिलती थी, और उनमे अन्यथा चाहे जो कुछ भी हो, समानता का प्रेम नही था।

---

१. विलियम ए. हिन्ड्स, 'अमेरिकन कम्युनिटीज ऐन्ड कोआपरेटिव कॉलोनीज,' दूसरा संशोधित संस्करण (शिकागो, १६०८), पृष्ठ २७५।

व्यावहारिक लोकतन्त्र के अध्ययन के लिये धर्म-निरपेक्ष समुदायो का अनुभव शिक्षाप्रद है, किन्तु यहाँ हमें सामाजिक सिद्धान्त की उनकी देन से ही मतलब है। यहाँ हमे कुछ सर्वाधिक ठोस और प्रसिद्ध समुदायो को, जैसे ब्रूक-फार्म, फ्रूटलैंड्स, नार्थ अमेरिकन फैलैंक्स, नार्दम्पटन एसोसिएशन, पाज़िटिविस्ट विलेज आफ़ मॉडर्न टाइम्स एल० आई०, को अपने विचार-क्षेत्र से अलग रखना होगा, क्योकि ये वस्तुत: सीमान्त-क्षेत्रीय समुदाय नही थे। ये एक स्थिर सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम और सहकारी उद्योग की समस्याओ को हल करने के प्रयोग थे और उस व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के प्रयास थे। सीमान्त-क्षेत्रीय समुदायो की महत्वाकाक्षाएँ इतनी ऊँची नही थी। वे पलायन के माध्यम थे, सहकारिता के आधार पर नयी जगह बसने के प्रयोग थे। राबर्ट ओवेन के न्यू हारमॅनी (१८२५-२८) और यलो स्प्रिग (१८२४-२५) समुदायो की स्थापना सीमान्त-क्षेत्रीय वस्तियो के रूप में नही की गयी थी। वरन् ये उस आधार पर औद्योगिक पुर्ननिर्माण के उदाहरण के रूप मे निर्मित किये गये, जो स्काटलैंड में सफलता-पूर्वक चल चुका था। जिन 'सुधारको' को ओवेन ने बाहर से बुलाया, वे शीघ्र ही सीमान्त-क्षेत्रीय स्थितियो में असफल सिद्ध हुए और स्वय ओवेन ने भी समझ लिया कि 'मुक्त भूमि' से घिरे हुए होने के कारण उनका सारा उद्यम अनुपयुक्त था। दूसरी ओर रैप के अनुयायियो को वस्ती 'हारमॅनी' अधिक सफल रही, न केवल अपनी धार्मिक प्रेरणा के कारण, बल्कि इस कारण भी कि उसका नियोजन सीमान्त-क्षेत्र की स्थिति के अनुसार किया गया था। फौरिएर के अनुयायियो की बस्तियाँ इस दृष्टि से बँटी हुई थी। सर्व प्रसिद्ध समुदाय रेड बैंक, न्यू जरसी राज्य में 'नार्थ अमेरिकन फैलैंक्स', नई जगह में बसने का प्रयास नही था, बल्कि एक औद्योगिक वातावरण में एक पहले से बसी हुई मण्डी के लिए वस्तु-विनिमय पर आधारित सहकारी खेती का एक काफी सफल प्रयास था। पश्चिम में नई बस्तियाँ बसाने के लगभग बीस प्रयास फौरिएर के अनुयायियो ने किये, जिनमें से केवल एक को कुछ सफलता मिली। विस्कॉन्सिन राज्य मे १८४४ मे एक फैलैंक्स (समाजवादी वस्ती) का आरम्भ किया गया (जहाँ आजकल 'रिपन' नगर है, उसके निकट), जो लगभग ६ वर्ष तक चला। केनोशा, विस्कॉन्सिन राज्य में एक शिक्षण-कक्ष भाषण के बाद इस विषय पर बडी लम्बी बहस चली कि 'क्या फौरिएर की विचार-व्यवस्था समाज के ऐसे पुन-सगठन के लिए व्यावहारिक योजना प्रस्तुत करती है, जिसमें हमारी 'सामाजिक बुराइयो से सुरक्षा प्राप्त हो ?' 'सामाजिक बुराइयो' के ससार के अन्दर रहकर इस योजना का प्रयोग करने के बजाय, इन नागरिको ने तय किया कि वे जगल में जाकर नये सिरे से शुरुआत करें। उन्होने सरकारी भूमि का एक बिना सुधारा हुआ खण्ड

ले लिया और विशिष्ट सीमान्त-क्षेत्रीय स्थिति मे एक गाँव का निर्माण फौरिएरवादी आदर्श के अनुसार किया—मुक्त वादविवाद, धार्मिक सहिष्णुता, नशीले पेयो पर प्रतिबन्ध, श्रम के आधार पर उधार, सयुक्त पूँजी आदि। पहले स्थिर गति से प्रगति होती रही और अन्य सीमान्त-क्षेत्रीय बस्तियो की तुलना में यह प्रयोग निश्चित रूप से सफल हुआ। किन्तु सीमान्त-क्षेत्रीय स्थिति के शीघ्र ही समाप्त हो जाने से इसकी बरबादी हुई।

"यह एक सामाजिक असफलता थी, बहुत कुछ इस कारण कि हम घर को आकर्षक और आनन्ददायक नही बना सके। बहुतो ने सोचा कि वे अपने साधनो से बाहर जाकर ज्यादा लाभ उठा सकते थे। हम अन्य साधन-सम्पन्न लोगो को राजी नही कर सके कि वे हममे शामिल हो जाये और असन्तुष्ट लोगो के हिस्से खरीद ले, क्योकि उनकी बाहर जाने की इच्छा अन्य लोगो को अन्दर आने से निरुत्साहित करती थी और अन्ततः असन्तुष्ट लोगो का बहुमत हो गया और उन्होने मत द्वारा विघटन का निर्णय कर लिया। रिपन का छोटा-सा नगर, जो हमारे निकट ही अपनी शराब की दूकानो सहित उठ खडा हुआ था, बड़ी परेशानी का कारण बन गया और अपने द्वेप, झूठ और दुराचार सहित फैलेक्स के विघटन में बडा सहायक हुआ।"[1]

फौरिएर की व्यवस्था से निकट से सम्बन्धित तर्कनावादी लोकतान्त्रिक साम्यवाद का एक अन्य प्रसिद्ध प्रयोग फासीसी सुधारक एतीन कैबे का 'आइकेरियन'[2] प्रयास था। टेक्सास मे नई बस्ती बसाने का वास्तविक प्रयास इन फासी आप्रवासियो के लिए अत्यधिक कठिन सिद्ध हुआ। किन्तु जब सौभाग्य से इन्हे इलिनॉयस राज्य में नौवू के बने बनाये नगर में बसने का अवसर मिल गया, जिसे मॉरमन लोग छोड गये थे तो वे सम्पन्न हुए और फासीसी ग्रामीणो का जीवन बिताने लगे। वे तत्काल फासीसी राजनीति मे जुट गये, सविधान के बारे में उनमे बड़ा कटु-विवाद उत्पन्न हो गया और वे गुटो में बुरी तरह बँट गये। संक्षेप मे, यह सीमान्त-क्षेत्रीय लोकतन्त्र से अधिक फास की स्थानीय राजनीति के आयात का एक उदाहरण था। स्कानीटेलेस, न्यूयार्क राज्य मे, गुलामी-प्रथा के एक उत्साही विरोधी जान ए० कालिन्स ने दो वर्ष तक जो खेतिहर बस्ती चलाई, वह एक छोटा, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रयास था। 'मनुष्य को अपने अस्तित्व के भौतिक, नैतिक और बौद्धिक नियमो के साथ समरस बना कर, जाति

१ वही, पृष्ठ २८५।

२. आइकेरियन—कैबे के एक उपन्यास में वर्णित आदर्श समाज का नाम 'आइकेरिया' था।—अनु०

का एक सम्पूर्ण पुनरुत्थान' इसका उद्देश्य था। इन सिद्धान्तो मे सामुदायिक सम्पत्ति, बच्चो की सामुदायिक देखभाल, शाकाहार, अराजकतावाद और अप्रतिरोध शामिल थे।

"हम सारे मतो, पन्थो और दलो का खण्डन करते हैं, चाहे वे किसी भी रूप और शकल मे अपने को प्रस्तुत करें। हमारे सिद्धान्त उतने ही व्यापक हैं, जितनी कि सृष्टि और उतने ही उदार है, जितने हमारे चारो ओर के तत्व। हम मनुष्य को उसके विशिष्ट विश्वासो से नही, उसके कार्यों से परखते है और सबसे कहते है, 'तुम जो चाहो विश्वास करो, लेकिन जहाँ तक तुमसे हो सके, कार्य अच्छा करो'।"[1]

आर्थिक दृष्टि से यह समुदाय सफल रहा, किन्तु अप्रतिरोध में श्री कॉलिन्स के विश्वास का लाभ उठाकर 'साइराक्यूज़ के एक तीक्ष्ण-बुद्धि, वाक्पटु वकील' ने समाज की निधि का बड़ा हिस्सा अपने अधिकार में कर लिया। दूसरे शब्दो मे, पूर्ण स्वतन्त्रता के इस प्रयोग का नाश नयी जगह बसने की परिस्थितियो ने नही, साइराक्यूज़ नगर की निकटता ने किया।

'ससार' से निरुत्साहित निर्वासितो के दिमाग में सीमान्त-क्षेत्र का कार्य यह था कि अनुकूल समूहो के लिए शान्ति और स्वतन्त्रता का अलग स्थान प्रदान करे। किन्तु इस प्रकार का सीमान्त-क्षेत्र अति शीघ्र ही लुप्त हो गया। सघर्ष के ससार में भाई-चारे के द्वीपो के जो सपने मनुष्यो ने देखे, उन्हें बाहरी हस्तक्षेप और आन्तरिक असन्तोष ने नष्ट कर दिया। एक मॉरमन समाजशास्त्री ने एक बार मुझे बताया कि सीमान्त-क्षेत्र का इतिहास किस प्रकार यह प्रमाणित करता है कि अमरीका मे कोई भी लोग लम्बे अरसे तक 'चुने हुए लोग' बने रहने की आशा नही कर सकते। ऐसी तीव्र निराशा के समक्ष, यह जानकर कि जब कोई सीमान्त की ओर भागता है, तो क्रूरता से कठिनाई की ओर भागता है, स्वतन्त्रता, शान्ति और सुख के सब की खोज करता हुआ सीमान्त-क्षेत्रीय दार्शनिक आमतौर पर अपनी ज़िन्दगी को समझ नही पाता था, न यथार्थ-दृष्टि से, न रोमानी दृष्टि से। उसने न 'चौडी कुल्हाडी का गीत' (साग ऑफ दी ब्राड ऐक्स) लिखा, न सफरमैना! ओ सफरमैना' (पायनियर्स! ओ पायनियर्स!)। ऐसी कविताएँ सीमान्त-क्षेत्र को परिप्रेक्ष्य मे, और दूर से चित्रित करती हैं। थके हुए सीमान्तवासी की अधिक विशिष्ट प्रतिक्रिया भविष्य में पलायन की होती थी, इस आशा में कि ईश्वर जब चाहेगा, बुद्धि के परे की रीतियो से उसकी आशाएँ पूरी होगी।

---

१. विलियम ए० हिण्ड्स की पुस्तक, पृष्ठ २६५।

"मेरी आत्मा को गीत सुनाओ, उसके बुझते हुए विश्वास और आशा को पुनर्जीवित करो,

"मेरे मन्द विश्वास को जगाओ, मुझे भविष्य की कोई दृष्टि दो,

"एक बार मुझे उस भविष्य का ज्ञान और आनन्द दे दो।

"ओ आनन्दमय, हर्षमय, परिणतिमय गीत!

"धरती से परे की शक्ति तेरे स्वरो में है,

"विजय के प्रयाण—मनुष्य बन्धन मुक्त—विजयी आखिरकार,

"सार्वत्रिक मनुष्य की सार्वत्रिक ईश्वर को वन्दना—
पूर्ण आनन्द!

"मानवजाति पुनर्जन्म लेती है—एक दोष रहित
विश्व, पूर्ण आनन्द!

"नारी और पुरुष, ज्ञानी, भोले और स्वस्थ—
पूर्ण आनन्द!

"खुली हँसी से भरी क्रीडाएँ, परिपूर्ण आनन्द!

"युद्ध, विषाद, कष्ट गये—दुर्गन्धमय धरती
परिशुद्ध हुई—बचा केवल आनन्द!

"सागर आनन्द से परिपूर्ण—वातावरण में केवल आनन्द,

"आनन्द! आनन्द! स्वतन्त्रता, पूजा, प्रेम में, आनन्द,
जीवन के उन्माद में।

"केवल होना ही पर्याप्त! सास लेना ही पर्याप्त!

"आनन्द! आनन्द! सब ओर आनन्द!"[1]

ऐसी दृष्टियो का आनन्द कवियो और रहस्यवादियो के साथ-साथ दार्शनिको को भी हमेशा उपलब्ध रहा है, क्योकि ऐसे तीव्र आवेग और आशा को व्यक्त करने में, और ऐसे आदर्श समाज का चित्रण करने मे, यद्यपि वह वर्त्तमान सम्भावनाओ से और सम्भवत. भविष्य की किसी वास्तविक स्थिति से भी पूर्णतः असम्बद्ध होता है, दार्शनिक कल्पना नैतिक साहस को दीर्घायु बनाती है और आज भी वन्य-प्रान्त को नया रूप दे देती है।

---

१. वाल्ट ह्विटमैन, 'लीव्स इन ग्रास' में 'दी मिस्टिक ट्रम्पेटर'। यहां जिन अन्य कविताओ के शीर्षक दिये गये हैं, वे भी वाल्ट ह्विटमैन की रचनाएं हैं।

स्वतन्त्रता और संघ

छठे दशक में लोकतन्त्र और राष्ट्रवाद के बीच हुए समझौतो की आयु बीत गयी, और अन्ततः सिद्धान्त और व्यवहार दोनो के ही वे गम्भीर अन्तर्विरोध सामने आ गये, जिनके द्वारा अमरीकी लोग शान्ति कायम रखने का प्रयास कर रहे थे। समझौते के स्थान पर टालने की प्रवृत्ति आई और टालने के बाद अलगाव की। जिस मच को आधार बना कर 'राष्ट्रीय गणतन्त्रवादी' एक अज्ञात, अन-समझे मध्य-पश्चिमी व्यक्ति को १८६० में राष्ट्रपति चुनवाने मे सफल हो गये थे, वह प्रश्नो को टालने का एक फूहड़ ढेर था। लिंकन के समर्थक भी यह जानते थे कि अपने खण्ड अभियानो में उन्हे जो अलग-अलग वादे करने पड़े थे, उन्हे एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में इकट्ठा करने पर उनमें कोई तालमेल नही होता। किन्तु राजनीति का यह भयकर रूप केवल अमरीकी लोकतन्त्र के पतन की परिणति था, क्योकि दलीय-राजनीति ने खुलेआम सस्ती लोकप्रियता को और जीत में लूट के बँटवारे की व्यवस्था को अपना आधार बनाया था। देश के राजनीतिक नेताओ को एक-दूसरे से गहरी चिढ़ थी और देश को उनसे और उनके राजनीतिक खेल से उतनी ही गहरी चिढ़ हो गयी थी। स्वतन्त्रता और संघ एक और अभिन्न' के बारे में भाषण देना और आग्रह करना कि जनता का शासन जनता के लिए और जनता के द्वारा भी होना चाहिए, यहाँ तक तो ठीक था। लेकिन 'राष्ट्रीय लोकतन्त्र' जैसी धारणाएँ अगर भ्रामक नही तो काल्पनिक प्रतीत होती थी। लोकतान्त्रिक राजनीति को देखते हुए लोकतान्त्रिक आदर्शो की उपलब्धि कैसे हो सकती थी ?

न्यू-इगलैण्ड में गुलामी-प्रथा की समाप्ति के समर्थक और दक्षिण में सघ की समाप्ति के समर्थक, स्वतन्त्रता के लिए सघ की ·समाप्ति के प्रश्न पर सहमत थे, किन्तु इन पराकाष्ठावादियो के बीच मे नागरिको का विशाल बहुमत और मध्य व पश्चिमी राज्यो के राजनीतिक नेता स्वतन्त्रता को सघ के अधीन रखने के लिए तैयार थे। सर्वप्रथम जैकसन ने घोपित किया था कि सघ को क़ायम रखना होगा और रखा जाएगा और जेकसन-समर्थक लोकतन्त्रवादियो ने अब इस बात की हताश चेष्टा की कि चतुराई से देश की एकता को बनाए रखें, जबकि उनके अपने सिद्धान्त उसे तोड रहे थे।

दक्षिणी सिद्धान्तो का निरूपण करने वाले आमतौर पर प्राकृतिक अधिकार, सामाजिक अनुबन्ध और राज्यो मे मात्र सघीय सम्बन्ध के जेफरसनवादी सिद्धान्तो के आधार पर अपनी बात का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करते

थे। प्रधान न्यायाधीश टेनी के प्रसिद्ध निर्णय ने जिस सिद्धान्त को कानून का अग बना दिया था कि गुलाम व्यक्ति नही, सम्पत्ति है—उसके आधार पर वे गुलामो की नागरिक स्वतन्त्रता और समानता के प्रश्न को टाल जाते थे। किन्तु जब विवाद सिमट कर गुलामी प्रथा के प्रश्न तक ही सीमित रह गया, तो अधिकाश विवादियो ने नैतिक सिद्धान्त को बिल्कुल ही छोड दिया और गुलामी प्रथा का समर्थन उपयोगितावादी, आर्थिक आधारो पर किया। कभी-कभी अर्थशास्त्र में कुछ नैतिकता का पुट भी आ जाता, जैसे, उदाहरण के लिए, चार्ल्सटन (दक्षिणी कैरोलिना) के बपतिस्मावादी सघ के मामले में, जिसने १८५६ में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार किया कि "गुलामी-प्रथा वास्तव में राजनीतिक अर्थशास्त्र का प्रश्न है। यह एक सीधा सा सवाल है कि हम मजदूर का सारा समय खरीदें जिसमें हम पर यह ज़िम्मेदारी होगी कि बीमारी और बुढापे में हम उसकी देखभाल करें और उसे सहारा दें या कि हम उसके समय का केवल एक हिस्सा खरीदें और ऐसी कोई जिम्मेदारी हमारे ऊपर न हो।"

आमतौर पर उत्तर और दक्षिण दोनो को ही भय होने के साथ-साथ कुछ राहत भी मिली, जब राजनीतिक विवादों का स्थान गृह-युद्ध ने ले लिया। 'स्वतन्त्रता के एक नये जन्म' और सघ के एक नये सिद्धान्त के लिए वातावरण साफ हो गया। लिंकन ने, जिन पर गुलामो की मुक्ति और सघ की रक्षा का क्रियात्मक बोझ पडा, दार्शनिक पुनर्निर्माण की दिशा में काफी अच्छा और ठोस आरम्भ किया, यद्यपि उनके सिद्धान्त भी उनके साथ ही शहीद हो गये। सीमान्त-क्षेत्रीय लोकतन्त्र, ह्विग सिद्धान्त और नरम गणतन्त्रवादियो के समझौतावादी ढँग, ये उन्हे निजी विरासत के रूप मे मिले थे। युद्ध घोषित हो जाने के बाद, वे स्वतन्त्र थे कि अपने दलीय तरीको को छोड़ दें और जहाँ तक हो सके, स्वतन्त्रता और सघ का एक-एक उग्र लेकिन मेल पैदा करने वाला कार्यक्रम निरूपित करें। उन्होने तत्कालीन दलीय नारो का, जो गुलामी वाले राज्यो के सवैधानिक अधिकारो पर और इस धारणा पर आधारित थे कि 'मुक्ति-भूमि' के साथ-साथ गुलामी वाले राज्य भी रह सकते थे, परित्याग कर दिया और (१८५८ मे ही व्यक्त) अपने इस विश्वास को कि राष्ट्र 'आधा गुलाम और आधा स्वतन्त्र' नही रह सकता, स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र की एक पुनर्व्याख्या पर आधारित किया। उन्होने कहा कि उस घोषणा-पत्र के सिद्धान्तो में एक वर्गविहीन समाज निहित है, जिसमे स्वतन्त्रता अलग-अलग सभी मनुष्यो का अधिकार है और उसका सघ भग नही किया जा सकता। उन्होने स्वतन्त्रता के अपने सिद्धान्त का उपयोग न केवल गुलामो की मुक्ति के सम्बन्ध मे किया, वरन् स्वतन्त्र मजदूरो मे आर्थिक स्वतन्त्रता की अभिवृद्धि के सिलसिले में भी।

स्वतन्त्र किसान उनका आदर्श था। अन्य सभी के काम को और अन्य सभी के लिए काम करने को, वे व्यावहारिक प्रशिक्षण या अस्थायी दासत्व मानते थे, जिसका स्वाभाविक अन्त इसमे हो कि मज़दूर सम्पत्ति के स्वतन्त्र स्वामी के रूप मे स्वय अपना व्यापार या दूकान शुरू करे। लिंकन आशा करते थे कि इस प्रकार वर्गविहीन समाज का आदर्श राजनीतिक और आर्थिक दोनो ही रूपो में उपलब्ध हो सकेगा। यद्यपि पश्चिम की स्थिति के सन्दर्भ में इन विचारो मे कुछ औचित्य था, किन्तु दक्षिणी बगानो के आर्थिक ढांचे मे, और उत्तर के बढ़ते हुए औद्योगिक पूँजीवाद के सन्दर्भ में ये पूर्णतः अव्यावहारिक सिद्ध हुए। फलस्वरूप लिंकन द्वारा स्वतन्त्र मनुष्यो के राष्ट्रीय लोकतन्त्र का प्रभावशाली निरूपण, एक लोकप्रिय आदर्श मात्र रहा है। एक भावना और निरपेक्ष प्रतिमान के रूप में उसकी शक्ति हर पीढ़ी के साथ बढ़ती जाती है, जो उसकी उपलब्धि से अपने को अधिकाधिक दूर पाती है।

स्वतन्त्रता और सघ का एक अन्य भावुकतापूर्ण मेल हमें वाल्ट ह्विटमैन के जीवन मे मिलता है (यह कहना कठिन है कि उसे उन्होने प्रतिपादित किया)। यह असाधारण कवि उसी प्रकार दार्शनिको की श्रेणी मे रखे जाने के योग्य नही है, जैसे भविष्यवक्ता लिंकन। उन्होंने बिना मनुष्यो के विचारो मे मेल बिठाने का प्रयास किये, निजी स्तर पर सभी मनुष्यो में मेल बिठाने का प्रयास किया। और जब किसी ने उनसे शिकायत की कि वे लोगो को कोई सगतिपूर्ण दर्शन नही प्रदान करते तो उन्होने उत्तर दिया, "मेरा ख्याल है मै ऐसा नही करता, मैं ऐसा करना भी नही चाहूँगा।"[1] उनमें बिना किसी चीज़ का विश्लेषण करने का कष्ट उठाये, हर चीज से सहानुभूति रखने की असाधारण योग्यता थी। उन्होने सब कुछ अपना लिया, एक प्रतिनिधि अमरीकी होने का दावा किया और यह समझ बैठे कि 'अपना गीत' (दी साग ऑफ माइसेल्फ) गाते हुए वे न केवल परात्परवादियो के व्यक्तिवाद को व्यक्त कर रहे हैं, बल्कि लोकतन्त्रवादी के 'ईश्वरीय औसत' को भी। उनके 'विलयन' के साथ-साथ उनकी स्वतन्त्रता भी लगभग असीमित थी, और नागरिक से अधिक प्राकृतिक थी। किन्तु ह्विटमैन का भावुक लोकतन्त्र मात्र भावुकता ही नही था, वरन् लिंकन की भाँति, उनकी लोकतान्त्रिक राजनीति के ढह जाने का एक फल था। लोकतान्त्रिक दल पर से उनका विश्वास उठ गया, जब छठे दशक मे उसने 'खलिहान जलाने वाले' 'लोकोफोको' प्रकार के जैकसनवाद को छोड दिया, जिसका ह्विटमैन ने पाँचवें दशक में प्रायोजन किया था। उन्होने 'मुक्त-भूमिवादी' होने का प्रयास किया,

१. न्यूटन आर्विन, 'ह्विटमैन' (न्यूयार्क, १६३८), पृष्ठ २१६।

उन्हे जरा भी प्रभावित नही किया। आरम्भ से अन्त तक उन्होने 'खलिहान-जलाने' वाली परम्परा के प्रति अपनी धार्मिक निष्ठा को कायम रखा, जिसके सफल होने की उन्हे भी कोई आशा नही थी।

"साहस, यूरोपीय विद्रोही, विद्रोहिणी !
"क्योकि जब तक सब कुछ नही रुकता, तुम्हे भी नही रुकना।
"मै नही जानता कि तुम किसलिए हो, (मै नही जानता कि मै किस लिए हूँ, या कोई किस लिए है)
"किन्तु असफल होते समय भी मै सावधानी से उसे खोजूँगा,
"हार, गरीबी, भ्रम, और कैद मे—क्योकि ये भी महान् है।"[१]

ह्विटमैन और लिंकन अपवाद थे। आमतौर पर सघ-दार्शनिको ने उग्र लोकतन्त्र का लक्ष्य छोड़कर स्वतन्त्रता के कम लोक-प्रिय रूपो को अपनाया। यह प्रदर्शित करने मे दार्शनिको के साथ वकील भी शामिल हो गये कि सयुक्त-राज्य प्रभु राज्यो का सघ नही हैं, बल्कि एक सर्वप्रभुता सम्पन्न 'सघ-राज्य' है। येल विधि-स्कूल के एक स्नातक जान सी० हर्ड ने इस सिद्धान्त पर आधारित एक प्रभावशाली निबन्ध लिखा कि कानून मे व्यक्त होने के पहले जनता में स्थित होने के कारण, सघ सविधान से ज्यादा पुराना है। इस बीच फ्रासिस लाइबर जर्मनी से एक आदर्शवादी उदारवाद लाये और उन्होने कहा कि जनता की सस्थाओ को जिन पर नागरिक स्वतन्त्रता आधारित हैं, राज्य के साथ आगिक रूप मे सम्बद्ध होना चाहिए। फिर ब्लन्टश्ली के अधिक राष्ट्रवादी विचार लोकप्रिय हुए। राजनीति-शास्त्रियो के एक विशिष्ट समूह ने उन्हे अमरीकी राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई भावना के अनुरूप ढाला। इनमे येल के थियोडोर ड्वाइट वूल्जे, कोलम्बिया के जॉन डब्ल्यू० बर्गेस, जॉन हॉपकिन्स (सस्था) के डब्ल्यू० डब्ल्यू० विलोबी, और प्रिन्सीटन के वुडरो विल्सन प्रमुख थे। आमतौर पर इस समूह ने स्वतन्त्रता से अधिक आगिक एकता की बात उठाई। जब वुडरो विल्सन लोकतन्त्रवादी बने और 'नयी स्वतन्त्रता' का प्रचार करने लगे, तभी जाकर स्वतन्त्रता और सघ की एकता दार्शनिक रूप में पुन स्थापित हुई।

आदर्शवादी लोकतन्त्र

अमरीका में लोकतान्त्रिक सिद्धान्त पर हीगेल का प्रभाव आमतौर पर जितना माना जाता है, उसके अधिक था। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि

१. टू ए फॉएल्ड यूरोपियन रिवोल्यूशनेयर।

मूलतः हीगेल के प्रभाव ने ही राष्ट्रीय समूहवाद को, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की गयी है, एक निर्णायात्मक अलोकतान्त्रिक मोड़ लेने से रोका और १८८० के बाद हुए राष्ट्रीय समाजवाद और आर्थिक लोकतन्त्र के विकास को समझने के लिये अमरीका को एक उपयुक्त विचार-दर्शन प्रदान किया।

यह सयोगमात्र नही था कि अमरीकी हीगेलवाद का पहला केन्द्र, गृह-युद्ध के पूर्व के समझौते का स्थल मिसौरी था—वह स्थान जहाँ उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और जर्मन लोग सघर्ष और सश्लिष्टि में मिले थे। सेन्ट लुई मे एक युवा जर्मन, हेनरी ब्रॉकमेयर ने, १८४८ की क्रान्ति के समय अपने देश से भाग कर आने के बाद, अचानक अपने को उत्तरी और दक्षिणी राज्यो के सघर्ष के केन्द्र में फँसा हुआ पाया। क्या यह एक और क्रान्ति थी ? यद्यपि वे शास्त्रीय दार्शनिक नही, बल्कि एक व्यापारी थे, किन्तु उन्होने इस राष्ट्रीय सघर्ष में एक सामान्य अर्थमत्ता खोजने की चेष्टा की। उन्होने ब्राउन विश्वविद्यालय मे, विशेषत. एफ० एच० हेज से, जो उस समय प्राविडेन्स नगर मे एकत्ववादी पादरी थे, हीगेल का कुछ अध्ययन किया था।

"जिस प्रकार हीगेल एक सयुक्त जर्मनी के लिए लडे थे, उसी प्रकार ब्रॉकमेयर ने उनके दर्शन में एक पुन· संयुक्त अमरीका का तार्किक आधार देखा। हीगेल के द्वन्द्ववाद को राज्य पर लागू करें तो उसमे 'अमूर्त्त अधिकार' के विरुद्ध एक उतनी ही 'अमूर्त्त नैतिकता' होती है और 'नैतिक राज्य' की परिणति मे दोनो का मेल होता है। ब्रॉकमेयर और उनके अनुयायियो की दृष्टि मे दक्षिणी अलगाववादी 'अमूर्त्त अधिकार' के प्रतिनिधि थे और उत्तरी गुलामी-समाप्ति के समर्थक 'अमूर्त्त नैतिकता' के और दुःखद सघर्ष से जो नया सघ निकलने वाला था, वह 'नैतिक राज्य' था।"[1]

इस अन्तर्दृष्टि और उत्साह में दो शिक्षक, विलियम टॉरे हैरिस और डेण्टन जे स्नाइडर, उनके साझीदार थे जो हीगेल का अध्ययन और अनुवाद करने में लगे। जब शैक्षिक और साहित्यिक क्षेत्रो मे उन्हे अपने दर्शन को प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर न मिला, तो उन्होने अपना 'जर्नल आफ स्पेकुलेटिव फिलॉसफी' (परिकल्पित दर्शन की पत्रिका—१८६७) प्रकाशित किया। इस पत्रिका के पहले अक मे सम्पादको ने 'पाठक को' इस प्रकार सम्बोधित किया—

"पिछले कुछ वर्षो मे राष्ट्रीय चेतना आगे वढकर एक नये मच पर आ गयी

---

१ पाल रसेल ऐण्डरसन और मैक्स हैरोल्ड फिश द्वारा संपादित 'फिलॉसफी इन अमेरिका' (न्यूयार्क, १६३६), पृष्ठ ४७३।

है। हमारे प्रकार के शासन मे अन्तर्निहित विचार के मूल पक्षो में से अब तक केवल एक ही विकसित हुआ है—भंगुर व्यक्तिवाद—जिसमें राष्ट्रीय एकता एक बाह्य उपकरण प्रतीत होती थी, जिससे शीघ्र ही पूरी तरह छुटकारा पा लेना था और उसके स्थान पर निजी मनुष्य या उसका स्थान लेने वाले निगम के उद्यम को रखना था। अब हम अन्य मूल पक्ष की चेतना तक पहुँचे है, और हर व्यक्ति राज्य को अपने एक ठोस पक्ष के रूप में स्वीकार करता है। नागरिक की स्वतन्त्रता मात्र निरकुशता में नही है, वरन् उस तार्किक विश्वास की सिद्धि मे है, जो सस्थापित कानून मे व्यक्त होता है। राष्ट्रीय जीवन के इस नये पक्ष को समझने और आत्मसात् करने की आवश्यकता है, यह परिकल्पित (दर्शन) के अध्ययन का एक और कारण है।"[१]

'राष्ट्रीय जीवन को समझने और आत्मसात् करने' के सामान्य रूप को ब्रॉकमेयर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया—

"चेतना के मूल मे तीन स्थितियाँ होती है—अभिव्यक्ति उपलब्धि और वस्तुकरण। इनमे से प्रथम स्थिति जिस पर अन्य दो परवर्ती स्थितियाँ निर्भर हैं, व्यक्ति मनुष्य में होती है। तर्क-बुद्धि पहले उसमें व्यक्त होती है, तभी वह इस या उस राजनीतिक, सामाजिक या नैतिक सस्था को उपलब्ध कर सकती या उसमें स्थित हो सकती है। और केवल इतना ही आवश्यक नही है कि वह व्यक्ति में अपने को व्यक्त करे। उसे उन सस्थाओ में अपने को उपलब्ध भी करना होगा, इसके पहले कि कला, धर्म या दर्शन में उसका वस्तुकरण हो सके।"[२]

अमरीकी इतिहास के द्वन्द्व का (बहुत कुछ हीगेल की रचना 'फिलॉसफी आफ राइट' के सन्दर्भ में) पर्यवेक्षण करते हुए स्नाइडर अन्त मे उसके महान् संकट पर आते हैं, जिसका विश्लेषण द्वन्द्वात्मक रूप में प्रस्तुत तीन अवधियो में करने के बाद अपना सक्षिप्त निष्कर्ष इस प्रकार रखते हैं—

"अमरीकी लोक-आत्मा, जैसा हम उसे कह सकते हैं, महान् सकट मे है, जो सहन-बिन्दु के बहुत आगे, बढता ही जाता है। वह अपने अन्दर ही दो, अगर युद्धरत नही, तो विद्वेषयुक्त हिस्सो मे बँटी है जो कैन्सास में तो सीधे टकरा जाते हैं। यह एक बँटी हुई लोक-आत्मा बनती जाती है, उत्तर और दक्षिण, या मुक्त-राज्यो और गुलाम-राज्यो मे बँटी हुई। हर दिल में यह सवाल जल रहा

---

१. 'जर्नल ऑफ स्पेकुलेटिव फिलासफी', अंक एक (१८६७), पृष्ठ १।

२ फ्रासेस बी० हारमॅन, 'दी सोशल फिलॉसफी ऑफ दी सेण्ट लुई हीगेलियन्स' (न्यूयार्क, १९४३), पृष्ठ ७-८।

है—क्या यह कथित सघ एक अनन्त झगड़े में फँसा, द्वैतपूर्ण बना रहेगा, या एक और वास्तविक सघ बनेगा? युग की भावना, इतिहास की चेतना, पहले धीमे स्वर मे आदेश देती सुनी जा सकती है, जो शीघ्र ही गर्जन भरे स्वर में फूट पड़ेगा। नियति का वह सूत्र जो सविधान के जन्म के समय ही उसमें बुन दिया गया और जिसने अपने गम्भीरतम अन्तर्विरोध का बोझ उस पर डाल रखा है, उसे अब निकालना होगा। आने वाले नेता के भविष्य-द्रष्टा शब्दो में, यह (लोक-आत्मा) आधी गुलाम आधी मुक्त नहीं रह सकती।"[1]

स्नाइडर द्वारा गृह-युद्ध की व्याख्या में हैरिस ने एक रोचक टीका जोड़ी।

"फ्रास की क्रान्ति मानव इतिहास में द्वन्द्ववाद का एक विशाल विषय-पाठ थी और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस आन्दोलन के अन्तर्विरोधो को हीगेल ने जिस गहराई तक देखा, वह आश्चर्यजनक है। किन्तु मुझे सन्देह है कि कार्लायल की भाँति, हीगेल ने भी शायद उस दिशा-सकेत के निश्चयात्मक महत्व को नही समझा जो विश्व-इतिहास में ऐसे रूप मे व्यक्त होने लगा कि केवल सयुक्त-राज्य के इतिहास में उसे न समझना सम्भव नही था। शायद हम कह सकते है कि 'अमरीकी दस वर्षीय युद्ध' के बाद ही, जिसके बारे में आपने इतनी योग्यता से लिखा है, इस दिशा-सकेत में एक निश्चित अर्थमयता आयी। स्पेन और पुर्त्तगाल द्वारा औपनिवेशीकरण और फ्रान्स, स्पेन और इटली में लोकतान्त्रिक शासन के प्रयोग केवल तर्क को मर्यादाहीन बनाने के प्रयास हैं। वास्तव मे कुछ ऐसा लगने लगा है, जैसे हमारे मजदूर सगठन और आन्दोलन, हमारी खुली चाँदी, हमारे वाल स्ट्रीट (न्यूयार्क का व्यापार-केन्द्र) के ट्रस्ट और इसी प्रकार के सकेतो की एक लम्बी कड़ी हमारे सामने आ रही है या भविष्य में उनकी छाया दिख रही है, जैसे मैकबेथ को देखकर विलाप करने वाले बैंक्वो के प्रेतो की पक्ति (मैकबेथ और बैंक्वो—शेक्सपियर के प्रसिद्ध दुखान्त नाटक 'मैकबेथ' का नायक और एक पात्र), और लोकतान्त्रिक शासन के लिए खतरा उत्पन्न कर रही है। हमारे विश्वास को बनाये रखने वाली एकमात्र वस्तु यह है कि राजतन्त्र के पुराने रूप की वापसी सम्भव नही।

"फिर हीगेल ने अपने घटना-क्रिया-विज्ञान के एक तिहाई में फ्रास की क्रान्ति की विवेचना की है।"[2]

ये उदाहरण पाठक को कुछ आभास देने के लिए पर्याप्त होगे कि हीगेल के विचारो को अमरीकी राजनीति पर किस प्रकार लागू किया गया। आर्थिक

१. वही, पृष्ठ ६२।

२. वही, पृष्ठ ६३-६४।

द्वन्द्व और भी रोचक और अमरीकी के लिए बिल्कुल नया है। सस्थाओ के द्वन्द्व का सर्वेक्षण करने के बाद—परिवार (वाद), वैयक्तिक सम्पत्ति (प्रतिवाद) और राज्य (संवाद)—स्नाइडर उसको स्वय अपने काल और वातावरण पर इस प्रकार लागू करते हैं—

"इस प्रकार व्यक्तिगत स्वामित्व के बाद एक और सस्थात्मक रूप आना चाहिए, या व्यक्तिगत स्वामित्व उसके द्वारा परिवर्तित और सशोधित होना चाहिए, जिसे हमने यहाँ नागरिक साम्यवाद कहा है। . समाज को पुन. सम्पत्ति का स्वामी होना चाहिए, विशेषत. उसे स्वय अपनी सम्पत्ति पर अधिकार करना चाहिए, धीरे-धीरे सावधानी से और न्यायपूर्वक यह निर्णय करते हुए कि उसकी अपनी सम्पत्ति क्या है। कारण, कि स्वतन्त्र व्यक्ति ने परिग्रहण की अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके समाज के धन को भी हथिया लिया है। फिर भी, निजी स्वामित्व के उचित अधिकार क्षेत्र मे उस पर कोई खतरा नही आये, बल्कि नयी सामाजिक व्यवस्था मे उस पर लगायी गयी सीमाओ के कारण उसे और अधिक सावधानी से सुदृढ और सुरक्षित किया जाये। किन्तु जहाँ यह स्वतन्त्रता का नाश करने वाला, और सचमुच आत्मघाती बन गया है, वहाँ इसे अपने-आप से बचाना जरूरी है। ..

"आज के सभ्य ससार मे सामाजिक एकतन्त्रवादी (मोनोक्रैट) सबसे रोचक व्यक्ति है। दोनो महाद्वीपो के लोग उसे एक प्रकार के भय के साथ देख रहे है, यह सोचते हुए उससे आगे क्या निकलने वाला है। किसी गणतन्त्र का कोई राष्ट्रपति, कोई राजा या सम्राट्, मनुष्य-जाति की दृष्टि को इस प्रकार आकर्षित नही करता, उसकी कल्पना को उद्वेलित नही करता, जैसे हमारा एकतन्त्रवादी। उनमें से तीन या चार ने विशाल आकृतियाँ प्राप्त कर ली हैं और सारे ससार का ध्यान उनकी ओर जाने लगा है। इस सम्बन्ध में विचित्र तथ्य यह है कि वह लोकतन्त्र की ही उत्पत्ति है और एकतन्त्र, लोकतन्त्र का ही उदीयमान् प्रतिरूप और उसकी परिपूर्ति प्रतीत होता है।

"अभी तक सामाजिक एकतन्त्रवादी अपने कार्य मे पूर्णत वैयक्तिक है, अपने निजी लाभ के लिए ही सचेष्ट है। क्या यही उसका अन्त है, या कि वह एक अन्य और उच्चतर सामाजिक उद्देश्य के लिए विकसित हो रहा है? हम समझते हैं कि वह सामाजिक इकाई का मान्य सस्थात्मक प्रशासक बनने के लिए प्रशिक्षित हो रहा है, जो इकाई उसे अन्तत किसी प्रकार से चुनेगी। इस समय वह अपनी प्रतिभा के द्वारा अपनी शक्ति को ग्रहण करता है और निरकुश रीति से अपने लिए उसका प्रयोग करता है। किन्तु उसे अपनी वैयक्तिक स्थिति से ऊपर उठना है, और केवल अपने लिए ही कार्य न करके, सामाजिक रूप में

सभी के लिए करना है। वह सामाजिक सस्था का प्रशासन बाहर से नही, बल्कि अन्दर से करेगा, क्योकि वह स्वय उसका अभिन्न अग होगा और इस रूप मे उसका लक्ष्य सभी सस्थाओ का अन्तिम लक्ष्य होगा—ससार मे स्वतन्त्रता का वस्तुकरण। उसकी सत्ता मनमानी या पितसत्तात्मक भी नही रह जायेगी, वल्कि सस्थात्मक होगी, शायद सयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की भाँति संवैधानिक होगी। एक सघबद्ध सामाजिक ससार उसे अपना प्रमुख बना सकता है। ऐसी उन्च सेवा के लिए उसे पर्याप्त मुआवजा मिलेगा, लेकिन उसे वह अपने लिए स्वय ही निर्धारित नही करेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि आसन्न सामुदायिक स्वामित्व अभी ही उसकी माँग कर रहा है, और इस समय अपने भावी सस्थात्मक कार्य की तैयारी की प्रक्रिया में है।"[१]

दूसरे शब्दो में, स्नाइडर ने राजकीय समाजवाद या उनके अपने शब्दो मे 'एकतान्त्रिक लोकतन्त्र' की कल्पना संस्थागत स्वतन्त्र इच्छा के अन्तिम रूप की शक्ल मे की थी। वे और ब्राकमेयर दोनो ही स्थानीय राजनीति मे सक्रिय भाग लेते थे। ब्राकमेयर मिसौरी के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर थे (१८७६-८०)।

दूसरी ओर हैरिस ने अपने मुख्य योगदान के लिए राष्ट्रीय शिक्षा का क्षेत्र चुना। सयुक्त राज्य के शिक्षा-आयुक्त के रूप में (१८८६-१६०६) सेन्ट लुई के दर्शन को शिक्षा के एक सिद्धान्त के रूप मे प्रतिपादित करके और राष्ट्रीय, सार्वजनिक शिक्षा को स्वतन्त्रता के अन्तिम मूर्त्तरूप के रूप मे प्रस्तुत करके, उन्होने उस दर्शन को कार्यरूप मे परिणत करने का प्रयास किया। 'शिक्षा अपनी मात्र पशु प्रवृत्ति के स्थान पर सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार करने की प्रक्रिया है। यह अनन्त काल की स्वतन्त्रता के लिए क्षण की स्वतन्त्रता का परित्याग है।[२]

जब ब्रान्सन ऐलकॉट ने सेन्ट लुई की यात्रा के समय यह सब जाना, तो वे अचम्भित रह गये। ये बातें न्यू-इगलैड के परात्परवाद से बहुत दूर थी, जिसमें वे पले थे। फिर भी वे इनसे आकर्षित हुए, क्योकि उन्होने तत्काल समझ लिया कि 'आध्यात्मिक सम्बन्ध' मे उनकी अपनी रुचि, लोकतन्त्र की इस हीगेलवादी व्याख्या के साथ समरस हो सकती थी। कॉन्कॉर्ड मे दर्शन के ग्रीष्म विद्यालय के पीछे (१८७७-८७), जिसे ऐलकॉट और हैरिस ने सगठित किया था, यही आशा

---

१. डेण्टन जे० स्नाइडर, 'सोशल इंस्टिट्यूशन्स' (सेण्ट लुई, १६०१). पृष्ठ ३१६-३२०; ३३१, ३३२, ३३३-३३४।

२. पेसन स्मिथ द्वारा 'इन ऐप्रिसिएशन ऑफ विलियम टी० हैरिस' में उद्धृत, 'दी एजुकेशनल रेकार्ड' अंक सत्रह (१६३६) पृष्ठ १३४।

और योजना थी कि न्यू-इंगलैंड के परात्परवाद और पश्चिम के लोकतान्त्रिक आदर्शवाद को एक जगह लाया जाये। किन्तु पूर्व और पश्चिम कॉन्कॉर्ड में केवल मिले भर ही, क्योंकि इस समय तक इनमें से किसी मे भी इतनी शक्ति शेष नहीं थी कि किसी बडी दार्शनिक परम्परा का सूत्रपात कर सके।

हीगेलवादी लोकतान्त्रिक आदर्शवाद को एक बहुत-कुछ असम्भाव्य दिशा से एक नयी प्रेरणा मिली। रेवरेण्ड डाक्टर एलिशा मुलफोर्ड, जो एपिस्कोपेलियन सम्प्रदाय (विशपो द्वारा चर्च के प्रशासन को मानने वाला सम्प्रदाय) के पादरी थे और जीवन के अन्तिम वर्षों में (१८८०-८५) कैम्ब्रिज के धर्मशास्त्र विद्यालय मे प्राध्यापक थे, उपदेशक से अधिक अध्येता थे। उन्होने कई वर्ष जर्मनी में अध्ययन किया और ऐंग्लिकन मतानुयायी हीगेलवादी और सुधारक फ्रेडरिक डेनिसन मॉरिस के निजी मित्र बन गये। अमरीका वापस आने पर उन्होने एक पुस्तक 'दी नेशन' (१८७०) प्रकाशित की, जिसे दर्शन और धर्मशास्त्र के पाठको मे बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उसके बाद १८८१ में 'दी रिपब्लिक ऑफ गॉड' आई जिसमें उनके राष्ट्रवाद के धार्मिक पहलुओ को अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त किया गया। मुलफोर्ड की 'दी नेशन' कई दृष्टियो से ब्राउनसन की रचना 'दी अमेरिकन रिपब्लिक' का प्रोटेस्टेण्ट प्रति रूप थी। मुलफोर्ड ने अपनी पुस्तक मे ब्राउनसन की रचना से बहुतेरे उद्धरण भी दिये, किन्तु उसके लक्ष्य और प्रभाव भिन्न थे। अमरीकी सविधान को पवित्रता का जामा पहनाने के बजाय, उसने लोकतन्त्र की राजनीति से ध्यान हटा कर, लोकतन्त्र के आदर्शों की धार्मिक अभिव्यक्ति की ओर खीचने का कार्य किया और इस प्रकार सामाजिक सिद्धान्त को, अतिरिक्त प्रेरणा प्रदान की। इंगलिस्तान से भिन्न, अमरीका मे ईसाई समाजवाद का प्रादुर्भाव पहले आदर्शवादी समुदायो मे हुआ। मुलफोर्ड ने अमरीका को 'ईश्वर के राज्य' की उस राष्ट्रवादी धारणा से परिचित कराया, जिसका इंगलिस्तान में कोलरिज और थॉमस आर्नल्ड ने बडे प्रभावकारी ढंग से प्रचार किया था।

भूमिका में लेखक ने 'लन्दन के रेवरेण्ड श्री मॉरिस, हीगेल और स्टाल, ट्रेण्डेलेनबुर्ग और ब्लण्टश्ली' के प्रति आभार प्रदर्शित किया है, किन्तु उनके स्रोतो के इस स्पष्ट वक्तव्य के बिना भी रचना की हीगेलवादी प्रकृति स्पष्ट होती। रचना का आरम्भ इस प्रकार होता है—

"राष्ट्रीय कानूनो और सस्थाओ मे स्वय राष्ट्र का साररूप अपनी उपलब्धि की ओर अग्रसर हो रहा है। राष्ट्र इस प्रकार राजनीतिक ज्ञान की एक वस्तु बन जाता है। ..

"राज्य की इस कल्पना को जिसमें एकता और निरन्तरता निहित है, जो राजनीति-शास्त्र की शर्त्त है, राजनीतिक अनुभववादी और राजनीतिक रूढिवादी

दोनो के विरुद्ध रखना है।...यह ऐसा तर्क है जो राजनीति मे पहले से मान लिया जाता है—अगर राजनीति ज्ञान का एक विषय हो—किन्तु यह तर्क राष्ट्र की आवश्यक अवधारणा मे निर्मित होता और राष्ट्र की उपलब्धि मे व्यक्त होता है। यह तर्क के उन अनुर्वर रूपो मे नही है, जो स्कूली धारणाओ में मिलते हैं। इस अवधारणा मे जो कुछ सुचारु रूप से चलता है, उसे निश्चय ही कायम रखना है, किन्तु राजनीति-शास्त्र को इसके कार्य के नियमो और स्थितियो को समझना है।...

"राष्ट्र एक नैतिक सघटन है। .."[1]

मुलफोर्ड जनता की अगीय इच्छा को, जो प्रभु है, उसके सदस्यो के व्यक्तित्वो की उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत करते है। हर व्यक्ति को 'मानवी प्रकृति के अधिकार' हैं, क्योकि 'मनुष्य ईश्वर की आकृति में बना है।' इन प्राकृतिक अधिकारो की उपलब्धि विधेयात्मक अथवा नागरिक अधिकारो के द्वारा होती है, जिसका अर्थ है कि अधिकार को 'संस्थागत' बनाना आवश्यक है। राष्ट्र का प्रभु या 'वास्तविक' सविधान एक कानूनी सविधान का निर्माण करके और संवैधानिक अधिकारो को निरूपित करके अपने को 'औपचारिक' रूप प्रदान करता है। कानूनी व्यवस्था अपने आप में कोई लक्ष्य नही है। 'उसका मूल्य उस जीवन पर ही आधारित है, जिसका वह सरक्षण करती है।' अत जनता का प्रतिनिधि किसी विशेष-क्षेत्र या हित के प्रति उत्तरदायी नही है, वरन् राष्ट्र के हर सदस्य के निजी विकास के लिए 'केवल राष्ट्र और ईश्वर के प्रति' उत्तरदायी है।

अत. आन्तरिक रूप में 'राज्य-सघ' की भावना, प्रभुत्व चाहने वाले व्यापार या निजी हितो की भावना है। राष्ट्रीय भावना, स्वाधीनता चाहने वाले प्रजाधिपत्यो की भावना की प्रतिपक्षी है। स्वतन्त्रता की माँग है कि वे राष्ट्र के अधीन हो। वाह्य रूप मे, राष्ट्रवाद का प्रतिपक्षी साम्राज्यवाद है, क्योकि साम्राज्य स्वतन्त्रता के वजाय अपना फैलाव चाहने वालो का समूह है।

इस अन्तिम विषय को मुलफोर्ड ने 'दी रिपब्लिक ऑफ गॉड' में सार्विक धर्म-सगठन के एक सिद्धान्त के रूप मे विकसित किया। राष्ट्र ईश्वर के हाथो वनते हैं, वे सभी पवित्र, चुने हुए लोग हैं, जिनका लक्ष्य एक ही है, अर्थात् मानवता का उद्धार। धार्मिक भाषा और भावना का लोकतान्त्रिक राष्ट्रवाद से यह मिश्रण अमरीकी समाज में भी वैसी ही सवल शक्ति प्रमाणित हुआ, जैसे यूरोप में। उसने स्पष्टत: सामाजिक सुधार को एक धार्मिक प्रेरणा प्रदान की

---

१ एलिशा मुलफोर्ड, 'दी नेशन, दी फाउण्डेशन ऑफ सिविल ऑर्डर ऐण्ड पोलिटिकल लाइफ इन दी यूनाइटेड स्टेट्स' (वोस्टन, १८८१), पृष्ठ ५-३।

और इस प्रकार धर्म सगठनो को 'आध्यात्मिकता' पर उनके कथित एकाधिकार से वचित किया। वस्तुतः इसने सामाजिक लक्ष्य के लिए कार्य करने वालो में धर्म-सगठनो को भी शामिल कर लिया। किन्तु इसका कुछ और भी महत्व था, क्योकि इसने अत्यधिक शास्त्रीय प्रतीत होने वाली व्यवस्था को एक सामान्य सामाजिक अर्थ प्रदान किया। बहुतेरे शास्त्रीय आदर्शवादियो के लिए हीगेल के दर्शन का यह रूप एक आस्था बन गया और इसने उन्हे धार्मिक निष्ठा का ऐसा क्षेत्र प्रदान किया जो धर्म-सगठन नही दे सके थे। राजनीति के शास्त्रीय और राष्ट्रीय दोनो ही क्षेत्रो में दार्शनिक-राजनेताओ की एक पीढी आयी।

इस आदर्शवाद ने शिक्षा के एक दर्शन और एक सामाजिक नीतिशास्त्र को भी जन्म दिया, जिनका अमरीकी सस्कृति पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा और उन्होने लोकतन्त्र को विचार और कार्य की एक व्यापक पद्धति प्रदान की। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को सभी नागरिको की क्षमताओं की 'उपलब्धि' के द्वारा प्राप्त होने वाले एक विधेयात्मक लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने से सार्वजनिक शिक्षा-व्यवस्था को अतिरिक्त महत्व मिला और उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्कूल के बाहर के सामाजिक अनुभव से स्थापित हुआ। आदर्शवाद के एक शिक्षक ने कहा—

"हमें हीगेल के सामने 'प्रभु-प्रभु' की गुहार लगाने की कोई जरूरत नही, किन्तु उनके व्यापक प्रभाव के कारणो को स्वीकार करना पडेगा। जिस निरपेक्षवाद को बहुतेरे लोग भ्रम उत्पन्न करने के लिए सुविधाजनक पाते हैं, उसका अन्तत. मनुष्य द्वारा अपने को ईश्वर की अनुकृति बनाने के प्रयास से बहुत थोड़ा सम्बन्ध है। बल्कि, उसका सम्बन्ध दार्शनिक और धर्मशास्त्रीय प्रगति की स्थितियो को मिलने वाले कुछ योगदान से है, जिसके बिना वस्तुओ का कोई सिद्धान्त असम्भव या असम्बद्ध हो जायेगा। अनुभव स्वयं ही अपना निर्णायक है। एक शब्द में, यही हीगेल की युग-प्रवर्त्तक खोज है।"[1]

यह विश्वास कि 'अनुभव स्वयं अपना निर्णायक है,' अमरीकी दर्शन और अमरीकी लोकतन्त्र दोनो के लिए एक आधारभूत सिद्धान्त बन गया। इसके दो नेताओ के दो वक्तव्यो से हमे कुछ पता चलेगा कि इसका व्यवस्थित, प्राविधिक विकास किस प्रकार हुआ।

"मन सहकारी व्यक्तित्वो से मिलकर बनी हुई एक आगिक इकाई है, कुछ उसी तरह, जैसे किसी वाद्य-वृन्द का संगीत भिन्न किन्तु सम्बन्वित ध्वनियो से मिलकर बनता है। कोई इस बात को आवश्यक या तर्कसगत नही मानेगा कि

---

१ आर० एम० वेनली 'कण्टेम्परेरी थियॉलॉजी ऐण्ड थीइज्म' (न्यूयार्क, १८६७), पृष्ठ १८७।

संगीत को दो प्रकारो मे विभक्त किया जाये—सम्पूर्ण वाद्य-वृन्द का और अलग-अलग वाद्यो का। इसी प्रकार, सामाजिक मन और व्यक्ति-मन दो प्रकार के मन भी नही हैं।

"सामाजिक मन की एकता सहमति में नही, बल्कि सगठन में होती है, इस तथ्य मे कि उसके अगो के बीच पारस्परिक प्रभाव या कारणता होती है, जिसके द्वारा जो कुछ भी होता है, वह अन्य हर वस्तु से सम्बन्धित होता है और इस प्रकार सम्पूर्ण का एक परिणाम होता है। परिणाम, वाद्य-वृन्द के सगीत की भाँति समरस होता है या नही, यह विवाद का विषय हो सकता है, किन्तु उसकी ध्वनि, चाहे मधुर हो अथवा नही, एक मार्मिक सहयोग की अभिव्यक्ति होती है, इससे इनकार नही किया जा सकता।

"सामाजिक चेतना, या समाज का एहसास, आत्म-चेतना से अभिन्न है, क्योंकि किसी प्रकार के सामाजिक समूह के सन्दर्भ के बिना हम अपने बारे में नही सोच सकते और उस समूह के बारे में भी अपने सन्दर्भ मे ही सोच सकते हैं। दोनो चीजें साथ-साथ चलती हैं और वास्तव में हमें एक बहुत कुछ उलझी हुई निजी या सामाजिक इकाई की चेतना होती है जिसका कभी विशिष्ट पक्ष प्रमुख होता है, कभी सामान्य।

"व्यक्ति और समाज जुडवाँ' होते हैं, एक को जानने के साथ ही हम दूसरे को भी जान लेते हैं और एक अलग स्वतन्त्र अह की धारणा भ्रामक है।...

"हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था का लक्ष्य नैतिक एकता का अधिक विशाल सगठन बनना है और जहाँ तक व्यक्ति की भावना में यह इस लक्ष्य को प्राप्त करती है, वहाँ तक उस व्यक्ति में अन्य मनुष्यो के प्रति इस खुले और सीधे दृष्टिकोण का पोषण करती है। विचार में और बहुत-कुछ तथ्य में भी हम एक प्रजाधिपत्य हैं, जिसमे हर एक, आवश्यकता के साथ-साथ अपनी इच्छा और बुद्धि के अनुसार सदस्य है और तदनुसार जिसमें सदस्यो के बीच पारस्परिक निष्ठा की मानवी भावना स्वभावतः व्याप्त है।

"यह तथ्य ही कि हमारे युग ने बड़ी हद तक सभी प्रकार के गठन का परित्याग कर दिया है, एक दृष्टि से स्थायी उत्पत्ति के अनुकूल है, क्योकि इसका अर्थ है कि हम फिर से मानव-प्रकृति का सहारा ले रहे हैं, उसका, जो स्थायी और सारभूत है, जिसका पर्याप्त अभ्यास मन की किसी उत्पत्ति को सप्राण बनाने का प्रमुख माध्यम होता है।"[१]

---

१. चार्ल्स हार्टन कूले, 'सोशल आर्गेनाइज़ेशन, ए स्टडी ऑफ दी लार्जर माइण्ड' (न्यूयार्क, १९१२), पृष्ठ ३, ४, ५, १८२, १७६।

"लोकतान्त्रिक समाज वाह्य सत्ता के सिद्धान्त का खण्डन करता है, अत उसके लिए आवश्यक है कि उसके स्थान पर स्वेच्छया प्रवृत्ति और रुचि को रखे। इन्हे केवल शिक्षा द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। किन्तु एक अधिक गम्भीर व्याख्या भी है। लोकतन्त्र केवल एक प्रकार का शासन ही नही है। यह मुख्यत सम्बद्ध जीवन का, संयुक्त सम्प्रेपित अनुभव का एक ढँग है। धरती पर ऐसे व्यक्तियो की संख्या में वृद्धि जो किसी एक रुचि में इस प्रकार सहभागी हो कि हर एक को अपना कार्य दूसरो के कार्यों के सन्दर्भ में करना हो और अपने कार्य को अर्थ और दिशा प्रदान करने के लिए दूसरो के कार्य को ध्यान में रखना हो, वर्ग, जाति और राष्ट्रीय क्षेत्र की उन वाधाओ को तोडने का कार्य है जिन्होने मनुष्यो को अपने कार्यकलाप के सम्पूर्ण अर्थ को समझने से रोका है। सम्पर्क-स्थलो की सख्या और विभिन्नता में यह वृद्धि उन उद्दीपनो की विभिन्नता मे वृद्धि को व्यक्त करती है जिनकी किसी व्यक्ति पर प्रतिक्रिया होती है। फलस्वरूप यह उसके कार्य में विभिन्नता को प्रोत्साहित करती है। जो शक्तियाँ उस समय तक दबी रहती है, जब तक कार्य की प्रेरणाएँ आशिक होती है, वे इससे मुक्त हो जाती हैं। किसी भी ऐसे समूह में शक्तियाँ दबी रहेगी जो अपने अलगाव के द्वारा वहुसख्यक रुचियो को अपने से बाहर रखेगा।

"रुचियो मे सहभाग के क्षेत्र का विस्तार और अधिक भिन्नतापूर्ण निजी क्षमताओ की मुक्ति, जो लोकतन्त्र की विशेषता है, नि सन्देह विचार और चेतन-प्रयास का फल नही है। इसके विपरीत, ये विशेषताएँ विनिर्माण और व्यापार, यात्रा, निष्क्रमण और पारस्परिक सम्पर्क की पद्धतियो के विकास से उत्पन्न हुई, जो प्राकृतिक ऊर्जा पर विज्ञान के अधिकार के फलस्वरूप हुआ। किन्तु एक ओर अधिक वैयक्तीकरण और दूसरी तरफ रुचियो मे अधिक व्यापक सहभाग, ऐसा हो जाने के बाद, फिर उन्हे कायम रखना और उनका प्रसार करना सुविचारित प्रयास का विषय है। स्पष्टत ऐसे समाज को, जिसके लिए अलग-अलग वर्गों में बँट कर जम जाना घातक होगा, यह देखना पडेगा कि वौद्धिक अवसर सभी को समान और आसान शर्तों पर उपलब्ध हो।"[1]

समानता और समन्वय

"भ्रष्ट लोकतान्त्रिक शासन अन्ततः राष्ट्र को भ्रष्ट कर देगा और जब

---

१ जान डुई, 'डेमाक्रेसी ऐन्ड एजुकेशन, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु दी फिलॉसफी ऑफ एजुकेशन' (न्यूयार्क, १९१६), पृष्ठ १०१-१०२।

कोई राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है, तो फिर उसका उद्धार नही होता। प्राण निकल जाते हैं, केवल लाश बच रहती है और उसे भी भाग्य अपना हल चला कर लुप्त हो जाने के लिए दफन कर देगा।

"लोकप्रिय शासन का अधिकतम गन्दे और पतनशील प्रकार की निरंकुशता में यह परिवर्तन, जो धन के असमान बँटवारे का अनिवार्य फल होता है, अब कोई सुदूर भविष्य की बात नही है। संयुक्त-राज्य मे यह शुरू हो चुका है और हमारी आँखो के सामने तेज़ी से हो रहा है। हमारी विधान-मण्डलीय सस्थाओ का स्तर निरन्तर गिर रहा है। उच्चतम योग्यता और चरित्र के व्यक्ति राजनीति का परित्याग करने को बाध्य हो रहे हैं और दलाल की चालाकी, राजनेता की प्रतिष्ठा से अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। मतदान अधिक लापरवाही से होने लगा है और धन की शक्ति बढ रही है। सुधारो की आवश्यकता के प्रति लोगो को जागरूक बनाना अधिक दुश्कर और उन्हे क्रियान्वित करना अधिक कठिन हो गया है। राजनीतिक मतभेद, सैद्धान्तिक मतभेद कम होते हैं और अमूर्त्त विचार अपनी शक्ति खोते जा रहे हैं। दल ऐसे नियन्त्रण में जा रहे हैं जिन्हें सामान्य शासन में अल्प तन्त्र और तानाशाही कहा जायगा। ये सब राजनीतिक ह्रास के प्रमाण हैं।"[1]

विवेकशील लोकतन्त्रवादी अधिकाधिक समझ रहे थे कि न केवल दलीय पद्धति, बल्कि आर्थिक व्यवस्था भी ठीक से काम नही कर रही है। विशेषत: आठवें दशक की मन्दी के बाद, प्रगति में जिस विश्वास का उपदेश दिया जाता था, उसे कायम रखना असम्भव था। जैसा हेनरी डेमारेस्ट लॉयड ने निर्विवाद रूप में सिद्ध कर दिया, धन से प्रजाधिपत्य नही बन रहा था। नियन्त्रण एक धनिक-तन्त्र के हाथ में आ गया था और अब प्रश्न 'धन बनाम प्रजाधिपत्य' का था। अगर लोकतन्त्र को जीवित रहना था, तो पुन. समानता प्राप्त करना आवश्यक था। समस्या अत्यधिक यथार्थ और व्यावहारिक थी। इसी तरह समस्या के हल भी व्यावहारिक अनुभव से निकले थे और उनका उद्देश्य उपयोगी होना था। हेनरी जार्ज की रचना 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी' (१८७६), एडवर्ड बेलामी की पुस्तक 'ईक्वालिटी' (१८६७) और इनके बीच में आने वाले अन्य ग्रन्थो के घरेलू सिद्धान्त, जो पापुलिस्ट मतानुयायियो के लिए धर्मग्रन्थ के समान थे, विद्वान् राजनीति-शास्त्रियों को प्राविधिक त्रुटियो और अनालोचित मान्यताओ से भरे प्रतीत होते थे। फिर भी इन्हे अदार्शनिक कह कर नही छोड़ा जा सकता,

---

१. हेनरी जार्ज, 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी' (मॉडर्न लाइब्रेरी संस्करण, न्यूयार्क, १६२६), पृष्ठ ५३२-५३३।

क्योकि अपने अधिक वैज्ञानिक समकालीनो की अपेक्षा इन्होने अमरीकी समाज के रोग को अधिक गहराई तक पकडा। इनके लेखक स्वयं अपने लोकतान्त्रिक विश्वास के दृष्टिकोण से ये आलोचनाएँ करने मे सफल हुए, जिससे उनके तर्क उसी समाज द्वारा पसन्द किये गये, जिसकी उन्होने आलोचना की, किन्तु जिसके वे सामान्य उदाहरण भी थे। ऐसे लोकतन्त्रवादी दार्शनिक "राजनीतिक अर्थशास्त्र का चरित्र बिल्कुल बदल दे सकते हैं, उससे वास्तविक विज्ञान की सम्बद्धता और नैश्चित्य दे सकते हैं और जनसाधारण की आकाक्षाओ के साथ उसकी पूर्ण सहानुभूति स्थापित कर सकते हैं, जिनसे यह अब तक दूर रहा है।"[1] इस प्रकार की रचनाएँ, कठिनाई के समय, सदैव तत्पर सहायको का काम देती हैं और अब भी अमरीकी पुस्तको की महान् सूची में रखी जाती हैं, और जब भी कभी कोई बड़ा सकट, या समय-समय पर होने वाली मन्दी के कारण सामयिक अन्तर्दर्शन की प्रवृत्ति जागती है, तो इनकी याद की जाती है।

हेनरी जार्ज की 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी' की शक्ति को अंशत इस तथ्य से समझा जा सकता है कि उसका जन्म प्रत्यक्षतया उनके अपने कष्टो और प्रेक्षणो से हुआ। तेजी के दिनो में, कैलिफोर्निया में एक सघर्षरत मुद्रक और सवाददाता के रूप में, प्रकृति द्वारा धन के एक अत्यधिक उन्मुक्त प्रदर्शन के बीच स्वयं अपनी गरीबी उन्हें उलझन में डालती थी। वे फिलाडेल्फिया से आये थे और बेंजामिन फ्रैंकलिन द्वारा बताये दूरदर्शिता, मितव्ययिता और सद्गुणो के उपाय द्वारा बड़ी ईमानदारी से धनी और ज्ञानी बनने का प्रयास कर रहे थे। आम नई जगह बसने वाले लोगो की तरह मेहनत करते हुए, वे कल्पनाएँ करने लगे और सपने देखने लगे। उन्होने अपनी बहन को, जो पूर्व में ही थी, लिखा—

"स्वर्ण-युग की, भविष्य के नवयुग की मुझे कितनी चाह है, जब हर कोई अपनी सर्वोत्तम और श्रेष्ठतम प्रवृत्तियो का अनुसरण करने को स्वतन्त्र होगा, उन प्रतिबन्धो और आवश्यकताओ से मुक्त होगा जो हमारे समाज की वर्त्तमान स्थिति उस पर लादती हैं तब गरीब से ग़रीब और छोटे से छोटे को भी अपनी सारी ईश्वर प्रदत्त मन शक्तियो का उपयोग करने का अवसर मिलेगा और वह अपने समय के सर्वोत्तम अश को ऐसी ज़रूरतें पूरी करने के लिए मेहनत करने में लगाने को मजबूर नही होगा, जो पशु के स्तर से कुछ ही ऊँची हैं। ..

"इसमें क्या आश्चर्य कि मनुष्यो को स्वर्ण की लालसा रहती है और वे उसके लिए लगभग कुछ भी देने को तैयार रहते हैं, जबकि स्वर्ण हर जगह व्याप्त है—उनके हृदयो की शुद्धतम और पवित्रतम आकाक्षाओ और उनकी

---

१ वही, पृष्ठ १६।

श्रेष्ठतम शक्तियो के उपयोग मे भी। कितने खेद की बात है कि हम सन्तुष्ट नही रह सकते। क्या ऐसा है ? कौन जानता है ? कभी-कभी हमारे अत्यधिक सभ्य जीवन के भयकर संघर्ष से मुझे पूर्ण अरुचि हो जाती है और मैं सोचता हूँ कि अच्छा हो मै शहरो और व्यापार की धक्कमधक्का, खीचतान और चिन्ताओ से बिल्कुल दूर चला जाऊँ और किसी पहाड़ी ढाल पर, जो दूर से इतनी धुँधली और नीली दिखाई देती है, कोई ऐसा स्थान खोज लूँ जहाँ मैं उन सबको एकत्र कर सकूँ जिनसे मुझे प्रेम है और प्रकृति व हमारे अपने साधन जो कुछ प्रदान करें, उसी में सन्तुष्ट होकर रहूँ। लेकिन दुर्भाग्य कि उसके लिए भी धन आवश्यक है।"[1]

"प्राकृतिक" बाहुल्य के बीच गरीबी के इस विरोधाभास से परेशान और निरुत्साहित, उन्हे बड़ा धक्का लगा और अचम्भा हुआ, जब वे (व्यापार के सिलसिले में) न्यूयार्क गये और वहाँ उन्होने 'सामाजिक' विषमता की पराकाष्ठाएँ देखी, अमीर और गरीब को साथ-साथ देखा। यह समस्या मूलत उनकी अपनी समस्या जैसी ही थी, उन्होने इसे हल करने की 'शपथ ली'। शैशव के विश्वास और बाद के अनुभव दोनो से ही उन्हे यह यकीन था कि ईश्वर उदार है और भोजन के अभाव को कष्टो का कारण बताने के मैल्थसवादी प्रयास 'धर्म-निन्दक' हैं। उन्होने निरन्तर 'परमपिता के विदान्य' की बात कही। इसके अतिरिक्त, उन्हें ईश्वरीय न्याय मे एक 'प्राकृतिक व्यवस्था' या ईश्वरेच्छा के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था मे विश्वास था। अन्य प्राकृतिक अधिकारो के साथ, मनुष्य के 'सम्पत्ति का प्राकृतिक अधिकार' भी है, एक पवित्र अधिकार, जो इस पर आधारित है कि ईश्वर सबका समान रूप से ध्यान रखता है। ऐसे अधिकारो के खण्डन को जार्ज ईश्वरीय व्यवस्था का श्रद्धालु खण्डन मानते थे।

यह विश्वास, ईश्वर के समाजीकृत राज्य में हीगेलवादी विश्वास से बिल्कुल भिन्न था। राजकीय समाजवाद और साम्यवाद, दोनो ही जार्ज के विचार में आदर्शवादी समुदायो से जुडे हुए थे। "ऐसे रूप के निकट किसी रूप में समाजवाद का सफल प्रयोग आधुनिक समाज नही कर सकता। एकमात्र उस शक्ति का, जो इसके लिए कभी भी सक्षम प्रमाणित हुई है—एक सबल और निश्चित धार्मिक विश्वास—अभाव है, और वह दिन व दिन कम होती जाती है।"[2]

---

१. जार्ज रेमान्ड गीगर 'दी फिलॉसफी ऑफ हेनरी जार्ज' (ग्रैण्ट फॉक्स, एन० डी०, १६३१) पृष्ठ ३०-३१। यहाँ जार्ज की बहन के नाम १६ सितम्बर, १८६१ का एक पत्र उद्धृत किया गया है।

२. हेनरी जार्ज, 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी', पृष्ठ ३२०।

निजी सम्पत्ति मे जार्ज के विश्वास के साथ-साथ उनका यह विश्वास भी था कि पूँजी और श्रम मे कोई स्वभावत. अन्तर्निहित सघर्ष नही है।

पूँजी और श्रम केवल एक ही वस्तु के भिन्न रूप है—मानवी प्रयास। पूँजी श्रम द्वारा उत्पन्न होती है। यह वस्तुत: केवल वस्तु पर लगाया गया श्रम है।...अत. जिन परिस्थितियो मे मुक्त प्रतियोगिता चल सकती है, उनमें वेतनो को एक सामान्य स्तर पर लाने वाला और मुनाफो मे बहुत-कुछ समानता लाने वाला सिद्धान्त, वेतनो और व्याज मे यह सन्तुलन स्थापित करने और कायम रखने का भी काम करता है।...व्याज और वेतन का एक साथ ही बढना या घटना जरूरी है।"[1]

इतना कुछ उन्होने जे० एस० मिल की 'पोलिटिकल एकॉनमी' से सीखा था और इस 'सिद्धान्त' को वे न्यायपूर्ण प्राकृतिक व्यवस्था का अग मानते थे। इसी प्रकार वे यह भी मान कर चले कि श्रम-विभाजन लाभदायक होता है। वे इसे 'समाकलन की, कार्यो और शक्तियो के विशिष्टीकरण की प्रक्रिया' कहते थे, जो मनुष्यो को सामाजिक सगठन मे एकत्रित करती है।

इन सिद्धान्तो के आधार पर उन्होने एक 'प्रगति का नियम' निरूपित किया, जिससे उनका तात्पर्य उत्पादन-व्यवस्था का एक ऐसा ढँग सुझाना था, जिसमें मनुष्यो को अवसर मिले कि वे मानवो ऊर्जाओ का अधिकतम अश सुधार करने मे लगायें और न्यूनतम अश 'केवल अस्तित्व को कायम रखने' में।

"मनुष्य जब परस्पर अधिक निकट आते है और परस्पर सहयोग के द्वारा सुधार में लगाई जा सकने वाली मानसिक शक्ति मे वृद्धि करते है, तो वे प्रगति की ओर उन्मुख होते हैं, किन्तु जैसे ही सघर्ष उत्पन्न होता है, या सम्बद्धता से स्थिति की असमानता उत्पन्न होती है, वैसे ही प्रगति करने की यह प्रवृत्ति क्षीण होती है, रुक जाती है और अन्तत दिशा उलट जाती है।"[2]

यह निरूपण, इतिहास का नियम उतना नही है, जितना सुख-प्राप्ति का उपाय। यह एक 'नैतिक' नियम है। इतिहास-दर्शन के प्रति जार्ज का दृष्टिकोण शोपेनहॉर[3] के समान तिरस्कार का था। इतिहास प्रगति नही है। यह प्रगति और ह्रास के चक्रो का एक क्रम है।

---

१. वही, पृष्ठ १९८-१९९।

२. वही, पृष्ठ ५०८।

३. हीगेल और स्पेन्सर, दोनो की अपेक्षा जार्ज का झुकाव शोपेनहॉर की ओर अधिक था, इसकी चर्चा के लिए गीगर की पुस्तक पृष्ठ ३३०-३३१ देखिए।

"अगर प्रगति का क्रम इस प्रकार चलता कि उससे मनुष्य की प्रकृति में सुधार होता और इस प्रकार आगे प्रगति होती, तो चाहे कभी-कभी अवरोध आ जाते, किन्तु सामान्य नियम यह होता कि प्रगति निरन्तर होती जाती। एक कदम के बाद अगला कदम उठता और सभ्यता का विकास उच्चतर सभ्यता मे होता। न केवल सामान्य नियम, बल्कि 'सार्वत्रिक नियम' इसके विपरीत है। धरती न केवल मृत मनुष्यो बल्कि मृत साम्राज्यो की भी कब्र है। बजाय इसके कि प्रगति मनुष्यो को और अधिक प्रगति के योग्य बनाये, हर सभ्यता जो अपने समय मे उतनी सशक्त और प्रगतिशील थी जितनी हमारी इस समय है, अपने आप ही रुक गयी।"[1]

अत: प्रगति की समस्या ऐतिहासिक समस्या न होकर, नैतिक और आर्थिक समस्या थी। किन स्थितियो मे 'प्रगति के नियम' का उल्लघन होता है ?

जार्ज का उत्तर बडा सीधा-सादा था। साहचर्य से भीड उत्पन्न होती है। भीड होने से किराये बढते हैं। किरायो की असमानता उनके लिए 'अनर्जित आय' उत्पन्न करती है, जिनके पास मूल्यवान् भूमि का एकाधिकार है। अगर भूस्वामी का किराया उससे ले लिया जाये, तो समानता पुनः स्थापित हो जायेगी और प्रगति फिर हो सकेगी।

हेनरी जार्ज के दुर्भाग्य से, वे हजारो अमरीकी किसान जिन्हें विश्वास हो गया था कि उन्होने गरीबी का कारण खोज लिया है, उनके निदान से उत्साहित नही हुए और उनके निदान का स्वागत करने वाले हजारो शहरी मज़दूर उन्हे समाजवाद की अच्छाइयो का विश्वास नही दिला सके। फिर भी, दार्शनिक दृष्टि से उन्होने अपना मूल लक्ष्य प्राप्त कर लिया। उन्होने अपने देशवासियो मे यह चेतना उत्पन्न की कि राष्ट्र के धन का, विशेषत भू-सम्पति का अ-प्रगतिशील' प्रयोग किया जा रहा था और यह कि अगर केवल मनुष्य 'समानता में साहचर्य' को अपना लें, तो 'ईश्वर के विदान्य' मे प्राकृतिक प्रसाधन उन्हे उपलब्ध हो जायें।

प्राकृतिक प्रसाधनो के सार्वजनिक नियन्त्रण के द्वारा अमरीकियो में गरीबी के विनाश की आशा जगाने मे जो काम हेनरी जार्ज ने किया, वही काम एडवर्ड बेलामी ने उनमे यह भावना उत्पन्न करने मे किया कि औद्योगिक प्रसाधनो और आविष्कारो का अधिक समानतापूर्ण और व्यवस्थित उपयोग करके कितनी प्रगति की जा सकती है। उनके उपन्यास 'लुकिंग बैकवर्ड' (१८८८) ने एक समाजवादी राष्ट्रवादी आन्दोलन को जन्म दिया, जिसने देश के सभी भागो में

---

२. हेनरी जार्ज, 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी', पृष्ठ ४८५।

मध्यमवर्गों के बड़े हिस्से की कल्पना और शक्तियो पर गहरा प्रभाव डाला। अधिकाश बड़े शहरो में 'बेलामी क्लबो' की स्थापना हुई, जिसमें से कुछ अब भी है। इन क्लबो के कार्यकलापो के द्वारा सार्वजनिक स्वामित्व की माँग को बढावा मिला और शताब्दी के अन्तिम दशक में पॉपुलिस्ट आन्दोलन के प्रसार को अतिरिक्त गति मिली।

बेलामी के राष्ट्रवाद का दार्शनिक अभिविन्यास असाधारण है। युवावस्था मे उन्होने एक पुस्तिका 'दी रेलिजन ऑफ सॉलिडेरिटी' लिखी जिसमे उन्होने उन दिनो प्रचलित और लोकप्रिय इस धारणा को एक दार्शनिक व्यवस्था के रूप मे विकसित किया कि मनुष्य मे अपकेन्द्रिक और अभिकेन्द्रिक शक्तियाँ होती हैं। प्रकृति और समाज, दोना मूलतः अभिकेन्द्रिक और अपकेन्द्रिक शक्तियो का सन्तुलन है और यह सन्तुलन ही समैक्य का सार है। भौतिक और सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य एक आगिक इकाई का अग है। यद्यपि यह विचार लोकतान्त्रिक राष्ट्रवाद का सामान्य अंग था, किन्तु अपने साथी लोकतन्त्रवादियो में से अधिकाश की अपेक्षा बेलामी इसे अधिक गम्भीरता से लेते थे। तब उनके मन मे एक असाधारण प्रेरणा आयी—श्रम का समाजीकरण कर दिया जाये और इस प्रकार जनता समैक्य को सम्पूर्ण कर दिया जाये। श्रम एक राष्ट्रीय 'कर्तव्य' हो—

"राष्ट्रवादी...बिना विभिन्न नागरिको की सापेक्ष विशिष्ट सेवाओ का कोई ख्याल किये, सभी लोगो के निर्वाह की समान व्यवस्था को नागरिकता का एक अग और एक अनिवार्य शर्त (बनाएँगे)। दूसरी ओर ऐसी सेवाएँ प्रदान करना, भुखमरी के विकल्प के साथ नागरिक इच्छा पर छोडने के बजाय, एक सामान्य नियम के अन्तर्गत, एक नागरिक कर्तव्य के रूप में आवश्यक होगा, ठीक उसी तरह जैसे अन्य प्रकार के कराधान या सैनिक सेवा, जो ऐसे सामान्य-कल्याण के हित में नागरिको पर लागू की जाती है, जिसमें हर एक का समान भाग होता है।"[१]

राष्ट्रीय सेवा के रूप में श्रम के सगठन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बेलामी और उनके राष्ट्रवादी क्लब मुख्यत उपयोगी सेवाओ के राष्ट्रीयकरण पर निर्भर करते थे। सारी बुराई की जड के रूप में, प्रतियोगिता को पूरी तरह समाप्त कर देना था। इस 'बिरादरी' में सारी मनुष्य-जाति शामिल होती। यह महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीयकरण के कार्य-क्रम में समैक्य की राष्ट्रवादी धारणा निहित नही थी। आन्दोलन का नैतिक आधार मानवतावादी और बहुदेशीय था। सभी मनुष्य

---

१. जार्ज बर्नार्ड शॉ द्वारा सम्पादित 'दी फेबियन एसेज़ इन सोशलिज़्म' मे 'इन्ट्रोडक्शन टू दी अमेरिकन एडिशन' (न्यूयार्क, १८६०) पृष्ठ १७।

समान हैं क्योंकि हर मनुष्य में 'व्यक्ति का मूल्य और गरिमा' है। यह गरिमा, जो मानवी-प्रकृति का गुण है, सभी मनुष्यों में मूलत. एक ही होती है और इस कारण समानता लोकतन्त्र का मर्म-सिद्धान्त है।[1] 'ईक्वालिटी' में बेलामी ने 'मानवता की बिरादरी' की इस धारणा का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया और एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था निरूपित करनी चाही जिसमें 'सभी भौतिक स्थितियाँ' 'व्यक्ति की इस अन्तर्निहित और समान गरिमा' के अधीन हो। इस प्रकार वैयक्तिक स्वतन्त्रता के यान्की आदर्श का परित्याग करते हुए, बेलामी ने व्यक्ति के नैतिक गुणों में परम्परागत अमरीकी आस्था को पुन प्रतिष्ठित किया और आमतौर पर अपने समूहवादी कार्यक्रम को अपने वातावरण की मध्यम-वर्गीय, प्रोटेस्टेएट अन्तर्भावना के अनुकूल बनाया।

बेलामी और उनके समकालीन मध्यम-वर्गीय मज़दूर-नेताओं का समैक्य का सिद्धान्त वर्ग-सहयोग को मान कर चलता था। यह विश्वास मज़दूर समस्याओं में उनके अनुभव का ही परिणाम नहीं था, वरन् यह 'सामान्य-जन' मे आस्था का सारतत्व बना रहा है। यह लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों का न्यूनतम सामान्य तत्व है, किन्तु इसके अलावा, यह एक टिकाऊ किस्म की भावुकता और उत्साह पर आधारित है, जिसकी उपेक्षा अमरीकी विचार के किसी भी विवरण में नहीं की जा सकती। सुबुद्धि की अपेक्षा यह सौभाग्य था जिसने अमरीका को, मार्क्सवाद के कदम रखने के पहले, एक राष्ट्रीय समाजवाद प्रदान किया। फलस्वरूप समैक्य और अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा (बेलामी के मामले मे एक औद्योगिक सैन्य-दल) के हमारे कट्टरपन्थी समर्थक, सब मिलाकर उदार हृदय, महत्वाकाक्षाहीन और बिखरे हुए गरीब लोकोपकारियों का एक समूह थे। उनमें न वर्ग-चेतना थी, न अन्तर्राष्ट्रीय लड़ाकूपन। इन्हीं सिद्धान्तों पर अगर असन्तुष्ट भूतपूर्व सैनिकों के किसी संगठन का विश्वास होता, तो उनमे आसानी से क्रान्तिकारी शक्ति आ सकती थी।[2] अमरीकी राष्ट्रीय समाजवाद मार्क्स के पहले का था किन्तु क्रान्ति के बाद का। यह सघर्ष की पिछली पीढ़ियों के अनुभव पर एक टीका थी। बेलामी ब्रायन, पाउडरली और कार्नेगी के काल की अपेक्षा, जब आगे सघर्ष ने बचने का

---

१ एडवर्ड बेलामी, 'ईक्वालिटी' (न्यूयार्क, १६३४), पृष्ठ २६।

२. हम अब भी सन् २००० की ओर आगे देख सकते हैं, जहाँ से बेलामी पीछे देख रहे थे। और आधी दूरी के इस पड़ाव पर यह बिल्कुल ही निश्चित नहीं है कि अमरीका का राष्ट्रीय समाजवाद मर कर समाप्त हो चुका। किन्तु इसकी सम्भावना अवश्य हैं कि सन् २००० के राष्ट्रीय समाजवादी इतना काफी पीछे नहीं देखेंगे कि अपने साथ बेलामी के सम्बन्ध को देख सकें।

एक चेतन प्रयास था, जेम्स मैडिसन, कैलाउन और वेब्सटर की राजनीति और उनके सिद्धान्तो में, जब औद्योगिक क्रान्ति अपने शिखर पर नही पहुँची थी, वर्ग-संघर्ष की स्वीकृति अधिक थी। सहयोग के उपदेश के पीछे संघर्ष की कटु स्मृतियाँ थी। यह औद्योगिक भोलेपन, किन्तु राजनीतिक प्रौढता का दर्शन था। अमरीकी मध्यम-वर्गीय समाजवाद की इन परिस्थितियो के कारण आवश्यक है कि हम उनकी व्याख्या एक स्थानीय आन्दोलन के रूप मे करें, यूरोपीय आन्दोलनो के प्रसार-मात्र के रूप में नही। इसी कारण यह भी आवश्यक है कि हम उसके आदर्शात्मक और धार्मिक गुणो का मूल्याकन इस प्रकार करें जो यूरोपीय लोगो को अप्रौढ प्रतीत हो सकता है। अमरीका मे इस प्रकार का धर्म न लोगो के लिए अफीम था, न वैज्ञानिकता-पूर्व की पुराकथा। इसका रूप ऐसी ध्यानपूर्वक निर्मित पुराकथा का था, जिसका उद्देश्य शुद्धतावादियो को सुरक्षा की मिथ्या भावना से जगाना था।

चौथा अध्याय

•

रूढ़िवादिता

उपदेशात्मक दर्शन

"'अच्छे और स्वस्थ ज्ञान का यह एक गुण है कि वह सड जाता है और बहुसख्यक सूक्ष्म, व्यर्थ, अस्वस्थ और (जैसा मै कह सकता हूँ) कीडो भरे प्रश्नो में विघटित हो जाता है।"[1]

कीडो भरे ज्ञान को देखने पर पहचान लेना कठिन नही है, किन्तु दर्शन क्यो सडता है और सडी हुई अवस्था में उसका अस्तित्व क्यो बना रहता है, इसकी आलोचनात्मक व्याख्या करना कठिन और अरुचिकर कार्य है, क्योकि किसी विचार के जीवन को परिभाषित करना आसान नही है और ककालो मे जीवन के चिह्न खोजना सुखद कार्य नही है। बेकन का अनुसरण करते हुए हम जीवित और मृत दर्शन में अन्तर इस आधार पर करेंगे कि दर्शन का प्रयास और अभ्यास सभी कलाओ और विज्ञानो में 'ज्ञान की अभिवृद्धि' के लिए किया जा रहा है, या कि उसे एक विशिष्ट प्रकार के ज्ञान के रूप मे पढाया और परिष्कृत किया जा रहा है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि शुद्धतावाद और प्रबुद्धता, दोनो की ही परम्पराओ मे 'दर्शन' नाम का कोई अलग विषय नही था। धर्मशास्त्र, विज्ञान, शासन, लोकोपकार, सभी दार्शनिक थे। प्राकृतिक और नैतिक दर्शन में एक भेद प्रचलित था, कुछ वैसे ही जैसे आजकल हम प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानो मे भेद करते है। लेकिन खोज के विशिष्ट क्षेत्र या सिद्धान्त-समूह के रूप में दर्शन का कोई अस्तित्व नही था। सत्य की खोज कही भी हो, चाहे व्यापक हो या विशिष्ट, उसे दार्शनिक उद्यम के रूप मे स्वीकार किया जाता था। इस प्रकार दर्शन बिना पढाये ही पनपता रहा। कोई सिद्धान्त या आस्था का विशिष्ट विषय

---

१. फ्रांसिस बेकन, 'ऐडवासमेण्ट ऑफ लर्निंग' खण्ड १, भाग—५।

हुए विना ही, दर्शन कलाओ और विज्ञानो की आत्मा था। अब हमें यह देखना होगा कि किस प्रकार अमरीकी लोगो की सामान्य संस्कृति से दर्शन के जीवित सम्बन्ध टूट गये और वह शैक्षिक पाठ्यक्रमो मे एक प्राविधिक विषय बन गया। साथ ही हमे यह भी देखना होगा कि धर्म और नैतिकता ने धीरे-धीरे अपने दार्शनिक बन्धन किस प्रकार तोडे और दार्शनिको की शब्दावली मे, अप्रबुद्ध बन गये।

धार्मिक और शैक्षिक रूढियो और अनुदारता के बीच अन्तर करना होगा। अनुदारता का दार्शनिक होना आवश्यक नही है और रूढिवाद का अनुदार होना आवश्यक नही है। एक दार्शनिक भाव के रूप मे रूढ़िवाद का नैतिक अनुदारता से कोई सीधा सम्बन्ध नही है। इससे केवल इतना सकेत मिलता है कि दर्शन की रुचि परिकल्पनात्मक खोज से हट कर व्यवस्थित शिक्षण पर आ गयी है। अठारहवी सदी मे प्रचलित अर्थ के अनुसार दार्शनिक लोग खोज करने वाले थे (चाहे प्राकृतिक हो या नैतिक)। किन्तु उन्नीसवी सदी मे शिक्षको के एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो दर्शन के प्राध्यापक कहलाते थे। वे मुख्यतः शिक्षक थे और उनकी आकाक्षा थी कि वे रूढिवादी हो, सत्य को सिखाएँ, अर्थात्, सर्वश्रेष्ठ लेखको का सहारा लेकर, व्यवस्थित रचनाओ का उपयोग करके और परिशुद्ध शब्दावलियो का निर्माण करके, सही सिद्धान्त अपने छात्रो को सिखाएँ। इसी प्रकार धर्मशास्त्रियो की अधिकाश परिकल्पनात्मक या दार्शनिक रुचि खतम हो गयी और वे अनुयायियो को प्रसन्न करने और प्रतियोगी धर्मशास्त्रियो को विमूढ करने की दृष्टि से अपनी व्यवस्थाओ का परिष्कार करने में ही सन्तुष्ट रहे। सक्षेप में, अमरीकी दर्शन का हमारा इतिहास अब हमें कालेजो और शिक्षालयो की कक्षाओ में ले जाता है। नैतिक विज्ञान सम्बन्धी अपनी प्रसिद्ध रचना के बारे में फ्रासिस वेलैण्ड ने जो कुछ कहा, वही रूढ़िवाद का सामान्य आदर्श था—"शिक्षण के उद्देश्य से रचित होने के कारण, इसका लक्ष्य है कि सरल, स्पष्ट और पूर्णतः उपदेशात्मक हो।"[१]

उदारवादियों में रूढ़िवाद

हमने न्यू-इगलैंड के धार्मिक उदारवाद की देशीय जडें और विलियम एलेरी चैनिंग में उसका प्रस्फुटन देखा। अब हमें देखना है कि यह उदारवाद, जो

१. फ्रासिस वेलैण्ड, 'दी एलेमेण्ट्स ऑफ मॉरल सायन्स (बोस्टन, १८४६), पृष्ठ ४।

मुख्यत: प्लेटोनी भाववाद और गणतन्त्रवादी दर्शन से प्रेरित था, किस प्रकार धीरे-धीरे एक एकत्ववादी रूढ़ि बन गया, जिसके दार्शनिक मित्र उससे अधिकाधिक अलग होते गये और वह अमरीकी नैतिक प्रश्नो के लिए अधिकाधिक अप्रासंगिक बन गया।

चैनिंग के उदारवाद ने मानव-प्रकृति की गरिमा से अपनी प्रेरणा ग्रहण की थी और सृष्टि के नियोजित उद्देश्य के तर्क के पिटे-पिटाये विषयो का तथा आमतौर पर प्राकृतिक धर्म का परित्याग किया था। न्यू-इंगलैण्ड का एकत्ववाद प्रारम्भ में सर्वप्रथम मानवीय और मानवतावादी था और उसका ध्यान मुख्यत: आत्म-संस्कार और सामाजिक प्रगति पर केन्द्रित था। इसके विपरीत एकत्ववादी रूढ़िवाद ने तार्किक धर्मशास्त्र पर ज़ोर दिया, दिव्य-ज्ञान और अन्य छोटे-मोटे चमत्कारो का विरोध किया, उच्चतर आलोचना के प्रति अधिक उत्साह नही दिखाया और उदारता की कीमत पर तर्क बुद्धि का अधिकाधिक आत्म-तुष्टि भरा उपयोग किया। यह इतना संकीर्ण हो गया कि उन उदारवादियो की दार्शनिक रुचियो और व्यावहारिक निष्ठा को क़ायम नही रख सका जिनके लिए स्वतन्त्रता का प्रेम राजनीतिक विरासत भी था और परात्परवादी मनोवेग भी। प्रमुख परात्परवादियो को खो देने पर एकत्ववाद ने अपनी अधिकांश बौद्धिक स्फूर्ति और नैतिक उदारवाद भी खो दिया। कई पीढियो तक इसका अस्तित्व विकसनशील दिमागो के लिए एक उर्वर भूमि के रूप मे बना रहा, किन्तु ये दिमाग आमतौर पर अपनी ज्योति आकाश में खोजते थे और अपनी जडो को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे।

मुक्त-विचारको का भी ऐसा ही पतन हुआ। जहाँ पहले उनकी गिनती अमरीकी विद्रोह और जेफरसनवादी क्रान्ति के प्रमुख वक्ताओ में होती थी, वहाँ वे केवल लडाकू तर्कनावादियो का एक छोटा-सा गुट रह गये। जब फ्रान्स की क्रान्ति के प्रति उत्साह घट गया और जैकोबिनवाद महत्वपूर्ण प्रश्न नही रहा, तो मुक्त-विचारको ने पेन का अनुसरण करते हुए अपना ध्यान मुख्यत पादरियो की कट्टरता और विशेषाधिकारो का विरोध करने पर केन्द्रित किया। कई दशको तक (१८३० के बाद तक) प्रेस्बिटीरियन लोगो द्वारा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के प्रयासो और उत्साही रूढ़िवादियो (जैसे जेदिदिया मॉर्स) द्वारा सामान्यत श्रद्धाहीनो पर किए गये हमलो को लेकर एक जीवन्त संघर्ष चलता रहा। इन वर्षों में मुक्तविचार को कोई नयी दार्शनिक प्रेरणा नही मिली। ऐबनर नीलैण्ड भूतपूर्व सर्ववादी थे और सैमुएल अण्डरहिल भूतपूर्व क्वेकर थे। दोनो ही इसाई प्रमाणो के प्रति अधिकाधिक शंकालु बने और चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन ने अण्डरहिल को भौतिकवाद की ओर झुकाया। अमरीका में अपनी भाषण यात्राओं

के समय फ्रासेस राइट ने बेन्थैम के विचारो का प्रचार करने की चेष्टा की। ओ० ए० ब्राउनसन ने फ्रास और इगलिस्तान के सर्ववाद के एक मिश्रण का प्रचार किया। इन योग्य नेताओ के बावजूद, कोई महत्वपूर्ण विकास नही हुआ, कोई ऐसी चीज नही हुई जिसकी तुलना इगलिस्तान मे उदारवाद के उदय से की जा सके। १८४० के बाद जाकर जर्मन मुक्त-विचारक नये विचार-स्रोत और उद्देश्य लेकर बडी सख्या मे आये। दूसरी ओर अमरीका मे मजदूर आन्दोलन ने कभी भी अनीश्वरवाद से अधिक सहायता नही ली। प्रबुद्धताकाल के तर्कनावाद की मशाल को अब भी लेकर चलने वाले उग्रतावादियो के छोटे-छोटे समूहो को हक्सले और स्पेन्सर की रचनाएँ सामने आने के बाद ही कुछ प्रेरणा मिली।

इस उत्तर-कालीन तर्कनावाद का एक विशिष्ट उदाहरण केन्टुकी के जॉसेफ बुकानन (१७८५-१८२६) का दर्शन था। वे बेंजामिन रश के शिष्य थे, और उत्साही जेफरसनवादी थे। एक पत्रकार और शिक्षक के रूप मे जैकसनवादी लोकतन्त्र और प्रचारवादी धर्म की बढती हुई शक्तियो के विरुद्ध उन्होने सघर्ष किया, यद्यपि उसमें उनकी हार निश्चित थी। उनकी पुस्तक 'फिलॉसफी ऑफ ह्यूमन नेचर' (मानव-स्वभाव का दर्शन १८१२) तर्कनावादी (अगर भौतिकवादी नही तो) मनोविज्ञान के पक्ष में एक सुगढित तर्क है, जो मुख्यत स्कॉटलैण्ड मे उस समय प्रचलित चिकित्सा-मनोविज्ञान पर आधारित है, और उसमे ह्यूम, हार्टले, थॉमस ब्राउन, और एरास्मस डार्विन के विचारो का समावेश है। वे मन को मनुष्य के भौतिक गठन का और फलस्वरूप मनुष्य की (रश के शब्द में) 'उत्तेजनात्मकता' का अभिन्न अग मानते हैं। बुकानन के विचार से शिक्षा और आदत पड़ने से मनुष्य की स्वाभाविक 'उत्तेजना की एकता' कृत्रिम रीति से प्रसारित होती है और 'भावनाएँ' कार्यों से सम्बद्ध हो जाती हैं। शिक्षा के द्वारा भावनाओ के नियन्त्रण में अपनी रुचि के फलस्वरूप उन्होने बाद मे अपने को शिक्षा-सुधार मे लगाया। उन्होने पेस्टालॉजी की विधियो को आगे विकसित किया, और उन्हें आशा थी कि उनकी व्यवस्था लगभग मनचाही रीति से प्रतिभा उत्पन्न कर सकेगी।

"मानव-स्वभाव में भावना कार्य का एकमात्र स्रोत है—एकमात्र शक्ति जो सम्पूर्ण मनुष्य को गतिशील बनाती है और बडे अश तक उसकी योग्यताओ का स्तर निर्धारित करती है। स्वय प्रतिभा के लिए बौद्धिक भावना की शक्ति और स्थायित्व से अधिक आवश्यक और कुछ नहीं। स्वय समझ का विकास करने मे शिक्षक की सफलता इस पर निर्भर है कि वह अपने शिष्यो की भावनाओ पर कितना निर्माणात्मक प्रभाव और तार्किक नियन्त्रण स्थापित कर पाता है।

स्वभाव मे उत्साहपूर्ण लगन की प्रतिष्ठा करके वह क्षमता, योग्यता और प्रतिभा उत्पन्न कर सकता है ।"[1]

इसी प्रकार बुकानन ने अपने अन्तिम वर्षो में 'लोक प्रियता की कला' (दी आर्ट ऑफ पॉपुलेरिटी १८२०) का निरूपण किया, जिसके द्वारा उन्हें आशा थी कि वे राजनीतिक नेता उत्पन्न कर सकेंगे ।

बुकानन का सक्रिय जीवन उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों के धार्मिक और वैज्ञानिक उग्रतावाद के भाग्य का एक प्रतिनिधि उदाहरण है—उसका आरम्भ सार्वजनिक जीवन और चिकित्सा सम्बन्धी खोज मे हुआ और अन्त एक शिक्षण-व्यवस्था मे, जो व्यवहार मे असफल हुई, किन्तु जो सयोगवश मनोविज्ञान के एक वास्तविक विज्ञान के निरूपण मे सहायक हुई ।

मानसिक दर्शन का उदय

लगभग सन् १८२० तक दर्शन को प्राकृतिक और नैतिक, दो अगो में विभाजित करने का चलन था । तर्कशास्त्र, तत्वमीमासा और प्राकृतिक धर्मशास्त्र जैसे अलकार-शास्त्र और आलोचना, आमतौर पर स्वतन्त्र विषयो के रूप मे पढाये जाते थे और इन्हे शायद ही कभी दर्शन के अन्तर्गत रखा जाता था । प्राकृतिक दर्शन के पाठ्यक्रमो मे छात्र प्राकृतिक विज्ञानो (जैसे वे उस समय थे) का अध्ययन करते थे ।

किन्तु १८२० के लगभग दर्शन के शिक्षण के अतिरिक्त इस विचार में ही एक महत्वपूर्ण क्रान्ति हुई कि दर्शन क्या है । स्कॉटलैण्ड का दर्शन इस देश में आया और उसने तेज़ी से पुराने अठारहवी सदी के ग्रन्थो को स्थानच्युत कर दिया । थॉमस रीड की 'इण्टलेक्चुअल ऐन्ड ऐक्टिव पावर्स' (जैसा उनकी दो रचनाओ को आमतौर पर सक्षेप में कहा जाता था) और डुगाइल्ड स्टेवार्ट की रचनाएँ 'एलेमेन्ट्स ऑफ दी फिलॉसफी ऑफ दी ह्यूमन माइण्ड' (जिसे बहुधा 'इण्टलेक्चुअल फिलासफी' कहा जाता है) और 'दी ऐक्टिव ऐण्ड मॉरल पावर्स' ने दर्शन को मानसिक और नैतिक मे विभाजित करने की नयी पद्धति आरम्भ की ।

लॉक, बर्कले और ह्यूम के अध्ययन को अब ऐसे पाठ्यक्रम में शामिल

---

१. 'केन्टुकी गैज़ेट', २ फरवरी, १८१२ ।

कर लिया गया, जिसे मानसिक या बौद्धिक दर्शन या मानव मन का विज्ञान कहा गया। इसके साथ नैतिक दर्शन या नैतिकता के विज्ञान का पाठ्य-क्रम था। प्राकृतिक विज्ञान कई भौतिक विज्ञानो मे बँट गया। प्राकृतिक धर्मशास्त्र (अर्थात् पाले की रचनाएँ) को आमतौर पर बिल्कुल छोड दिया गया और उसका स्थान 'ईसाई प्रमाणो' ने ले लिया। राजनीतिक और आर्थिक विज्ञान या तो नैतिक दर्शन के पाठ्यक्रम से बिल्कुल अलग हो गये—मन की 'नैतिक और सक्रिय' शक्तियाँ नैतिक दर्शन का क्षेत्र बनी—या फिर व्यावहारिक नीतिशास्त्र या कर्तव्यो के सिद्धान्त के रूप में उन्हे मनोवैज्ञानिक नीतिशास्त्र के साथ जोड़ दिया गया। लोगो का ध्यान केन्द्रित था, नये मन.शक्ति मनोविज्ञान या मानव मन की शक्तियो के सिद्धान्त पर। अतः ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगी कि शैक्षिक उद्देश्य के लिए दर्शन का रूप मानसिक दर्शन का हो गया और बौद्धिक तथा नैतिक उसके उप-विभाग हो गये।

यद्यपि स्कॉटलैण्ड के ग्रन्थो ने अमरीकी शैक्षिक रूढिवादिता को प्रेरणा और नमूने प्रदान किये, किन्तु अमरीकी ग्रन्थो की भी बाढ आ गयी, जो सभी एक ही पद्धति से लिखे गये थे। यह विचित्र बात है कि यह शैक्षिक पद्धति हमें काफ़ी पहले सैमुएल जॉन्सन की पुस्तक 'एलेमेण्टा फिलॉसाफिका' (दर्शन के तत्व, १७५२) मे मिलती है, जिसके बौद्धिक (नोएटिका) और नैतिक (एथिका) दो विभाग थे। किन्तु न तो उनका ग्रन्थ सफल हुआ न बर्कले के विचारो का प्रचार करने का उनका प्रयास।

१८३७ और १८५७ के बीच मानसिक दर्शन पर लगभग प्रतिवर्ष एक अमरीकी ग्रन्थ निकलता रहा। इस उत्पादन की परिणति नोह पोर्टर की पुस्तक 'ह्यूमन इण्टलेक्ट' (१८६८) और जेम्स मैक्कॉश की 'साइकॉलॉजी' (१८८६) में हुई। इस क्षेत्र के प्रमुख लेखको में (आसा मॉहन फ्रेडरिक रॉश, फ्रान्सिस बॉवेन, लॉरेन्स पी० रिकॉक, जॉसेफ हैवेन, हेनरी एन डे, नोह पोर्टर, जेम्स मैक्कॉश) मैक्कॉश लगभग अकेले थे, जिन्होने स्कॉटलैण्ड की धारा का लगभग पूरी तरह अनुसरण किया। हार्वर्ड में बॉवेन वर्षों तक स्कॉटलैण्ड के दर्शन के समर्थक रहे, किन्तु वे अधिकाधिक परात्परवादी नवीनताओ की आलोचना करने, ऐतिहासिक अध्ययन करने और 'ईसाई प्रमाणो' के अधिक सामान्य कार्य में अपना योग देने में लग गये। इगलिस्तान के अनुभववाद के अतिरिक्त जर्मन और फ्रासीसी प्रभावो ने भी रूढ़िवाद में और मानसिक शक्तियो के सिद्धान्त में बड़ी हद तक अपना स्थान बना लिया और विलियम हैमिल्टन के लेखन ने, जिसे बहुत अधिक प्रतिष्ठा मिली, रीड और स्टेवार्ट के पूर्ववर्ती विचारो की आलोचना को प्रोत्साहित किया। अत जेम्स के पूर्व शैक्षिक दर्शन की सारी अवधि को स्कॉटलैण्ड की धारा

और रूढ़िवाद की प्रबलता के अन्तर्गत मान लेना बड़ी भूल होगी। यह सच है कि कुछ अपवादो के अतिरिक्त दर्शन के प्राध्यापक और कालेजो के अध्यक्ष पादरी ही थे। किन्तु पादरियो में तेज़ी से दर्शन का स्वतन्त्र रूप में अध्ययन करने की प्रवृत्ति बढी, अरूढ़ विचारो का स्वागत होने लगा और दुरूह, परम्पराओ से भिन्न, रचनाएँ लिखी गयी, जिन्हे मौलिक ग्रन्थ कहना कठिन है। शैक्षिक रूढिवादियो से शैक्षिक भाववाद के इस विकास की चर्चा आगे की गयी है। मनोविज्ञान और नैतिक दर्शन में लारेन्स पी० हिकॉक, जॉन बेस्कम, हैनरी एन० डे, जूलियस एच० सील्ये, जे० एम० बाल्डविन और जॉन डुई के महत्वपूर्ण ग्रन्थो मे एक ओर तो हमें शैक्षिक व्यवस्था के इस लम्बे प्रयास का फल मिलता है। दूसरी ओर इनके द्वारा वह आलोचनात्मक आन्दोलन आरम्भ हुआ जो नवें और दसवें दशक मे बीसियो कालेजो और विश्वविद्यालयो में प्रतिष्ठत हो गया।

नैतिक मनःशक्तियों का उपयोग

उन्नीसवी सदी में शैक्षिक नैतिक-दर्शन के मनःशक्ति-मनोविज्ञान से प्रभावित होने का भी ऐसा ही विवरण दिया जा सकता है। इस क्षेत्र में प्रथम प्रभावशाली अमरीकी ग्रन्थ ब्राउन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष फ्रांसिस वेलैण्ड द्वारा लिखे गये। यद्यपि वेलैण्ड एक बपतिस्मावादी उपदेशक थे, किन्तु उन्हें चिकित्साशास्त्र की भी कुछ शिक्षा मिली थी, उन्होने ऐण्डोवर सैमिनरी (शिक्षालय) मे मॉमिज स्टुअर्ट से शिक्षा ग्रहण की थी, यूनियन कॉलेज के छात्र रहे थे और आमतौर पर उन्होने अपने को और अपने ग्रन्थो को सम्प्रदायगत धर्मशास्त्रियो की सीमाओ से मुक्त कर लिया था। पाले और बटलर की रचनाएँ पढाते हुए उनका असन्तोष बढता गया और अन्त में उन्होने इन लेखको द्वारा मान्य प्राकृतिक धर्मशास्त्र के सारे प्रयास का ही परित्याग कर दिया। उन्होने बटलर के अन्तरात्मा के सिद्धान्त को स्वीकार किया और उसे अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की चेष्टा की।

वेलैण्ड के बाद अमरीका मे नैतिक दर्शन के सबसे प्रभावशाली शिक्षक शायद विलियम्स कॉलेज के मार्क हापकिन्स थे। उनके लेखन की अपेक्षा उनका मौखिक शिक्षण अधिक महत्वपूर्ण था। फिर भी, 'लेक्चर्स ऑन मॉरल सायन्स' (नैतिक विज्ञान पर भाषण) शीर्षक के अन्तर्गत लॉवेल इन्स्टीट्यूट में दिये गये भाषण, जो १८३० मे ही तैयार किये गये थे, किन्तु प्रकाशित १८६२ में हुए, एक उपयोगी और विशिष्ट ग्रन्थ बने। नीतिशास्त्र में हॉपकिन्स का दृष्टिकोण,

वेलैण्ड के दृष्टिकोण का एक रोचक वैपरीत्य प्रस्तुत करता है। दोनो व्यक्ति पाले के विचारो के विरोधी वन गये और हॉपकिन्स ने अनुभव किया कि पाले के स्थान पर उन लक्ष्यो का विश्लेषण करना आवश्यक है, जिनके लिए 'मनुष्य का सघटन' वना है। इस प्रकार मनुष्य के 'संघटन' की ओर मुडकर (यह शब्द और विचार उन्होने शायद कॉम्बे के कपाल-विज्ञान से लिया हो), हॉपकिन्स सचेत रूप मे मात्र 'मानसिक दर्शन' का परित्याग एक अधिक व्यापक अभिस्थापन के पक्ष में कर रहे थे। उन्होने धर्मशास्त्र की नही, वरन् चिकित्साशास्त्र की शिक्षा पायी थी, और मानसिक शक्तियो का भौतिक शक्तियो के साथ एक क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित किये बिना वे मन:शक्तियो का अस्तित्व प्रतिपादित करने को तैयार नही थे। अत. उन्होने एक नियम निरूपित किया, जिसे उन्होने 'परिसीमा का नियम' कहा, जिसके अनुसार अनुकूल और अनुकूलित शक्तियो के अपने स्वभावगत क्षेत्र होते हैं, या सीमाएँ होती हैं। इसके अनुसार, प्रकृति में अनुकूलन के स्तरो का एक आरोही क्रम होता है। मनुष्य तक आकर वे पाते हैं कि उसमें (तर्कबुद्धि के अतिरिक्त) सवेदना और संकल्प दोनो होते हैं, अत. उसमें 'नैतिक रूप में अनुकूलित' होने की क्षमता होती है, अर्थात् वह लक्ष्यो के तार्किक चयन द्वारा परिचालित हो सकता है। मार्क हॉपकिन्स शक्तियो के (गुरुत्वाकर्षण से अन्तरात्मा और पूजा तक) इस 'सघटन' को मात्र एक प्राकृतिक व्यवस्था के रूप में नही, बल्कि एक प्राकृतिक विकास के रूप मे प्रस्तुत करते हैं, और वडे सुन्दर ढग से उस सिद्धान्त का साराश प्रस्तुत करते है, जिसे बाद में उद्गामी विकास कहा गया।

"ईश्वर की पूजा करने मे मनुष्य केवल अपनी ओर से ही कार्य नही करता। वह प्रकृति की ओर से पुजारी है। वह प्रकृति में सबसे आगे खडा है और केवल वही सृजनकर्त्ता को पहचानता है। ईश्वर की सृष्टि के सभी अगो से जो यशोगान उठता है, वह मनुष्य के द्वारा ही बुद्धिपूर्ण अभिव्यक्ति पा सकता है। आदिकाल से ही यह सृष्टि ईश्वर की परिपूर्णता की अभिव्यक्ति रही है। सृजन की प्रगति को देखकर आज हम पाते है कि यह अभिव्यक्ति आरम्भ मे अपेक्षतया दुर्वल थी, किन्तु हर नये युग मे अधिक पूर्ण और अधिक स्पष्ट होती गयी है। समय की प्रगति के साथ उन शक्तियो और उत्पत्तियो की अभिव्यक्ति में उच्चतर दिशा की ओर प्रगति होती गयी हैं, जिनके क्रम को हम अपने सामने देखते हैं, किन्तु मनुष्य के आने के पहले यशोगान की अभिव्यक्ति चेतन और व्यक्त नही हुई थी। उसे समेटना और स्वर प्रदान करना, मनुष्य का कार्य था और यह कार्य उसका एक उच्च और विशिष्ट परमाधिकार है। उसके लिए इतना ही आवश्यक है कि वह ठीक से कान लगाए, जैसा उसने किया था, जिसने

आकाश को ईश्वर की महिमा घोषित करते सुना, या जैसा पैटमास मे पैगम्बर जॉन ने किया था और सृष्टि को ईश्वर ने जैसा बनाया है, उससे कान मिलाए तो वह गुरुत्वाकर्षण से उठता हुआ, ईश्वर का यशोगान करता एक धीमा स्वर सुन सकता है। और तब जैसे-जैसे वह सम्बद्धता और रासायनिक बन्धुता, वनस्पति जीवन और पशु जीवन और तार्किक जीवन से गुजरता हुआ उठेगा, वह उस स्वर को भी उठते हुए सुनेगा, यहाँ तक कि ईश्वरीय सन्देश के वाहक के साथ उसकी पूर्ण सहानुभूति स्थापित हो जायेगी और उनके साथ ही वह समग्र सृष्टि से ईश्वर के बारे में कहने को तत्पर हो जायेगा, 'और हर प्राणी जो स्वर्ग में है, पृथ्वी पर है और पृथ्वी के नीचे है, और वे जो समुद्र में हैं और वे सारे जो उनमे हैं, सबको मैंने कहते सुना कि धन्यता और सम्मान और महिमा और शक्ति, उसको अर्पित जो सिंहासन पर बैठता है और ईसा को, सदा और सदा के लिए।"[1]

हॉपकिन्स ने मानव प्रकृति के अपने विश्लेषण पर लम्बे समय तक मेहनत की और उसके द्वारा एक तार्किक उद्देश्यवाद प्राप्त किया।

"जब ये भाषण सर्वप्रथम लिखे गये उस समय यहाँ और कॉलेजो में आमतौर पर पाठ्य-पुस्तक पाले की थी। उनसे असहमत होकर और साध्यो के सिद्धान्त को अन्त तक ले जाने में असफल होकर, मैंने काण्ट और कोलग्जि द्वारा सिखाये गये अन्तिम औचित्य के सिद्धान्त को अपनाया और उसे साध्य बनाया।"[2]

पाठ्य ग्रन्थ आमतौर पर जोड़ो में लिखे जाते थे। मनोविज्ञान के द्वारा नीति-शास्त्र का आधार स्थापित किया जाता था। ऐसे जोडो की परिणति नोह पोर्टर की 'दी एलेमेण्ट्स ऑफ इण्टलेक्चुअल सायन्स' (१८७१) और 'दी एलेमेण्ट्स ऑफ मॉरल सायन्स' (१८८५) मे हुई। येल विश्वविद्यालय के अध्यक्ष के ये ग्रन्थ एक पूरी पीढी तक प्रमुख रहे। ये व्यापक, स्पष्ट, व्यवस्थित और शान्तिपरक थे। आरम्भ मे उन्होने धर्मशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में नॅथेनिएल टेलर के नरमपन्थी काल्विनवाद का अध्ययन किया और फिर स्कॉटलैण्ड के मान्य ग्रन्थ पढे। तब उन्होने दो वर्ष बर्लिन मे विताये और अपने अधिकाश समकालीनो की अपेक्षा जर्मन विचारो से कही ज्यादा अच्छी तरह परिचित हो गये। इन विचारो के बडे अंग का अपने ग्रन्थो मे समावेश करने में उन्हें सफलता मिली।

---

१. मार्क हॉपकिन्स, 'ऐन आउटलाइन स्टडी ऑफ मैन' (न्यूयार्क, १८७३), पृष्ठ ३००-३०१।

२ मार्क हॉपकिन्स, 'लेक्चर्स ऑन मॉरल सायन्स' (बोस्टन, १८६२), पृष्ठ ८।

यद्यपि वे मनःशक्ति-मनोविज्ञान को मानते थे, किन्तु अंग्रेज अनुभववादियों, विशेषतः मिल, स्पेन्सर और बेन का उन्होने गम्भीर अध्ययन करके उनकी आलोचना की। आमतौर पर उन्होने अपने ग्रन्थो में ऐतिहासिक अभिस्थापन और स्पष्टीकरण की बडी सामग्री का समावेश किया। सबसे बडी बात थी कि उनमें वैज्ञानिक तटस्थता प्रतीत होती थी और सचमुच उनकी अपनी परिकल्पना बहुत कम थी जो उनके ग्रन्थो को बोझिल बनाती।

अमरीकी यथार्थवाद के रूप में स्कॉटलैण्ड की सामान्य बुद्धि

अमरीकी प्रबुद्धता में सर्वाधिक सशक्त अकेली परम्परा शायद स्कॉटलैण्ड की प्रबुद्धता की थी। हचेसन से फर्गुसन तक, ह्यूम और आडम स्मिथ सहित, दार्शनिक साहित्य का ऐसा समूह आया, जिसने अटलाण्टिक के दोनो ओर लोगो को उनकी रूढिवादी तन्द्रा से जगाया। अमरीका में बसे स्कॉट और आयरी लोग इस स्रोत से आने वाली प्रबुद्धता के प्रति विशिष्ट रूप में ग्रहणशील थे, क्योकि धार्मिक और सामाजिक, दोनो दृष्टियो से उखडे हुए होने के कारण वे अपने देशवासियों के 'तर्कबुद्धि' और 'नैतिक भावना' की बातें सुनने को अपेक्षतया स्वतन्त्र थे। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि जिसे सामान्यतः एडिनबरा धारा कहा जाता है, उसका प्रभाव मुख्यतः इस कारण था कि उसने तर्कबुद्धि और नैतिक भावना, दोनो का व्यवस्थित विवेचन मानव जीवन के पूरक उपादानो के रूप में और अलौकिक प्रसाद तथा श्रुति के स्थानापन्न रूप में किया। एडिनबरा धारा सामान्य बुद्धि पर नही, वरन् प्लेटोवाद पर आधारित थी। जब प्रतिक्रिया आरम्भ हुई, जब अमरीका और स्कॉटलैण्ड दोनो मे ही शैक्षिक सत्ता प्रस्विटीरियन लोगो के हाथ में आई, तो ऐबरडीन और प्रिंसीटन उसी प्रकार परम्परावाद के चरम केन्द्र बन गये, जैसे एडिनबरा और हार्वर्ड धर्मनिरपेक्षता और आलोचना के केन्द्र रहे थे।

अमरीका में, कम से कम डुगाल्ड स्टेवार्ट और थॉमस ब्राउन अब भी प्रबुद्धता-युग के ही थे, जबकि ग्लासगो के थॉमस रीड निश्चित रूप से प्रतिक्रिया को व्यक्त करते थे। यह सच है कि थॉमस कूपर जैसा चरम भौतिकवादी उन सबको एक ही कोटि में रख सकता था, क्योकि एडिनबरा में चिकित्साशास्त्र के किसी छात्र को सभी धर्मशास्त्री और तत्व-मीमासक अन्धकार-ग्रस्त प्रतीत होते थे। उसकी शिकायत थी कि उन्हें 'शरीर-विज्ञान के अवयवो' का भी ज्ञान नहीं

था। किन्तु ऐसे वैज्ञानिको और चिकित्सा-विशेषज्ञो को छोड़ दें तो थॉमस जेफ़रसन और चैनिंग जैसे व्यक्तियो ने स्टेवार्ट को 'प्रबुद्ध करने वाला' पाया। थॉमस ब्राउन शैक्षिक 'विज्ञान' की सीमारेखा के अधिक निकट थे। वे धर्मशास्त्रियो के विरोध का मुख्य केन्द्र बने, क्योकि धर्मशास्त्री समझते थे कि उनका 'तर्कनावाद'—जैसा वे आमतौर पर एक पूर्णतः यान्त्रिक या सम्बद्धतावादी मनोविज्ञान निर्मित करने के ब्राउन के प्रयास को कहते थे—भौतिकवाद की ओर ले जायेगा। जैसा हमने बार-बार कहा है, नैतिकता और धर्म के साथ प्राकृतिक विज्ञान का निकट सम्बन्ध प्रबुद्धता का मर्म था। ब्राउन और एरास्मस डार्विन की विचार-व्यवस्थाएँ शारीरिक मनोविज्ञान और जीव-विज्ञान में वैज्ञानिक कार्य का आधार थी, किन्तु नैतिक और धार्मिक ज्ञान मे उनका कोई उपयोग नही था। यहाँ आकर रास्ते अलग-अलग हो गये। रीड, बीएटी और सामान्य-बुद्धि की विचारधारा ने नैतिक और धार्मिक निश्चयात्मकता के आधार पुन. स्थापित किये, किन्तु अधिक विवेकशील वैज्ञानिको को उन्होने अपने से दूर कर दिया। सक्षेप में, स्कॉटी सामान्य- बुद्धि 'कीडो भरी' इस कारण हो गयी कि पादरियो ने हमारे कॉलेजो में दार्शनिक तर्क का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में एक नैतिक-शमक के रूप में किया। उन्होने आशा की कि इस प्रकार वे प्रयोगात्मक विज्ञानो के सशक्त उद्दीपनो के प्रभाव की काट कर सकेंगे।

अमरीका में स्कॉटी सामान्य-बुद्धि का साहित्य केवल इस कारण ही बड़ा नीरस नही है कि वह शास्त्रीय है, क्योकि एडिनबरा के सारे भाषण भी आखिरकार शास्त्रीय थे। इसका बडा कारण उसका आडम्बर है। सामान्य बुद्धि को विज्ञान का शास्त्रीय आवरण प्रदान करना बुद्धिमत्ता नही है और पुरानी, बेकार रूढियो को सामान्य बुद्धि के रूप में प्रस्तुत करना और भी बुरे प्रकार का आडम्बर है। मैक्कॉश जैसे 'सामान्य-बुद्धि' वाले प्रोफेसरो के इस दावे को गम्भीरता से नही लेना चाहिए कि वे प्रबुद्धता के उत्तराधिकारी थे और उसका प्रयोग अमरीका की दार्शनिक स्वतन्त्रता के लिए बौद्धिक पूँजी के रूप में कर रहे थे। यह दावा केवल एक याकी 'आविष्कार' था। किन्तु यह, रूढिवाद के अर्थ मे, यथार्थवाद की एक उत्तम परिभाषा है। भाववाद और अनीश्वरवाद, दोनो की ही अमरीकी विचार-जगत् में शक्ति काफी थी, किन्तु शिक्षा-जगत् में उनका प्रवेश नही था। दूसरी ओर स्कॉटी यथार्थवाद की सुरक्षित और समझदार व्यवस्था, युवको को परिकल्पनात्मक पराकाष्ठाओ की ओर जाने से रोकने का एक आदर्श उपाय थी।

किन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। एडवर्ड्स के बाद धर्म-सन्देहवादी चर्चों के पास अपने विश्वास का कोई दार्शनिक आधार नही रह गया था। मैक्कॉश और उनके प्रेस्बिटीरियन सहयोगियो ने उन्हे फिर से एक दार्शनिक

आधार प्रदान किया। इन चर्चो ने बहुत बड़ी सख्या में कॉलेजो और शिक्षालयो की स्थापना की थी, जिनमें दर्शन का कोई स्थान नही था और जिनके लिए सारा दार्शनिक प्रयास निरर्थक था। उनके लिए मैक्कॉश जैसे शिक्षक, जो रूढ धर्मशास्त्र के 'प्रथम और मौलिक सत्यो' की व्याख्या एक तर्कसगत तत्वमीमासा के रूप मे कर सकते थे और इसके साथ ही जो विज्ञान के प्रति, यहां तक कि विकासवाद के प्रति भी, सहानुभूति दिखा सकते थे और जो वस्तुनिष्ठवाद और अनीश्वरवाद का सामना उनके अपने क्षेत्र मे जाकर करने की चेष्टा करते थे, एक वरदान के समान थे और एक बहुत बडी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। अगर यह बात धर्मसमुदायवादियो और प्रेस्बिटीरियन लोगो के लिए सच थी, तो मैथॉडिस्ट लोगो मे व्यक्तित्ववादियो के लिए और भी अधिक सच थी। इनकी चर्चा हम बाद मे करेंगे किन्तु शास्त्रीय रूढिवाद में भी इनका स्थान है। प्रिंसीटन मे मैक्कॉश और बोस्टन में ब्राउन के अध्यापन की खासतौर पर यह विशेषता थी कि वे 'सफाई देने वालो' का परम्परागत दृष्टिकोण न अपनाकर, स्पष्ट और धर्मनिरपेक्ष तर्कों के द्वारा 'तात्विक सत्य' की व्याख्या करते थे और धर्मशास्त्रीय पक्ष को निश्चित रूप से गौण स्थान देते थे। उनका रूढिवाद पूर्णत दार्शनिक था। विशेषत· मैक्कॉश ने यह बुद्धिमत्ता दिखाई कि अमरीका आकर अपने अध्यापन में उन्होने सामान्य बुद्धि के स्थान पर यथार्थवाद को और 'मन की अन्तःप्रज्ञा' के स्थान पर 'प्रथम और मौलिक सत्यो' को रख लिया।

मैक्कॉश अमरीका में इस हद तक असफल रहे कि अपने स्कॉटी दर्शन के द्वारा यथार्थवाद की नीव डालने मे सफलता नही मिली। उन्होने स्वय जिस प्रकार यथार्थवाद की व्याख्या करने मे यथार्थ के तात्कालिक बोध के लिए मनोवैज्ञानिक तर्कों का और स्वयंसिद्ध सत्यो के लिए तर्कशास्त्र का सहारा लिया, उससे पता चलता है कि मैक्कॉश के पहले से ही स्कॉटलैण्ड का यथार्थवादी अन्त प्रज्ञावाद तेज़ी से वस्तुनिष्ठ भाववाद का मार्ग साफ कर रहा था। रूढिवाद की स्थापना करने के बजाय स्कॉटलैण्ड के इस 'मन·शास्त्र' (न्यूमेटॉलॉजी) ने फ्रांसीसी 'विचार-दर्शन' को हटाकर केवल जर्मन मनोविज्ञान और परात्परवाद का मार्ग प्रशस्त किया।

पाँचवाँ अध्याय

•

परात्परवादी धारा

प्रबुद्धता की सन्तान

नेपोलियन के बाद, राजनीतिक और बौद्धिक प्रतिक्रिया की शक्ति का अनुभव अमरीका की अपेक्षा यूरोप को अधिक हुआ। नेपोलियनकालीन संघर्ष के समय अमरीका को बढती हुई शक्ति और भूक्षेत्र ने उसे न केवल 'सन्तोष का युग' प्रदान किया बल्कि यह भावना भी प्रदान की कि उसके पास असीमित विकास के साधन हैं। यूरोपीय शक्तियो के गन्दे वर्ग-सघर्षों और वहाँ पर सामन्ती और सस्थाओ के बने रहने के विपरीत अमरीका के भौतिक विकास का रोमानी चरित्र स्पष्ट दिखता था। प्रबुद्धता के सिद्धान्तो के विरुद्ध बेन्थामवादी प्रतिक्रिया का और मध्यमवर्गीय तथा सुखवादी उपयोगितावाद की शक्ति का अनुभव भी अमरीका को कम ही हुआ। अत. प्रबुद्धता से तर्कबुद्धि की सृजन शक्ति और धर्म-निरपेक्ष नैतिकता के सिद्धान्तो में विश्वास को लेकर बिना किसी आघात या प्रतिक्रिया के उन्हे परात्परवाद मे समाविष्ट कर लिया गया। रोमानी भाववाद ने अपना महल तर्कबुद्धि में रोमानी विश्वास के खण्डहरो पर नहीं, उसकी नींव पर खडा किया। सक्षेप मे, १८१५ के बाद अमरीका की स्थिति फ्रांस, इगलिस्तान, या आस्ट्रिया की अपेक्षा स्कॉटलैण्ड और प्रशा के अधिक निकट थी। एमर्सन को बर्क की तरह लडना नही पडा, बल्कि काण्ट के जर्मन अनुयायियो, और स्कॉटलैण्ड मे फर्गुसन, कार्लायल और एरास्मस डार्विन की भांति वे आसानी से प्रबुद्धता के विश्वास को राष्ट्रीय और वैयक्तिक दोनो स्वरो पर आत्म-संस्कार और आत्म-निर्भरता के सिद्धान्त का रूप दे सके।

ईसाइयों में आध्यात्मिकता

"ईश्वर के गुणो और सम्पूर्णताओ का ज्ञान हमे कहाँ से प्राप्त होता है? मेरा उत्तर है कि हम उन्हे स्वय अपनी आत्माओ से प्राप्त करते हैं। ईश्वरीय गुण पहले हमारे अपने अन्दर विकसित होते हैं और तब हमारे सृजनकर्त्ता में अन्तरित होते हैं। ईश्वर का विचार, उदात्त और भय उत्पन्न करने वाला, हमारी अपनी आध्यात्मिक प्रकृति का विचार है, जो परिशुद्धि और विस्तार के द्वारा असीम का रूप लेता है। ईश्वरीयता के तत्व हमारे अपने अन्दर हैं। अत. ईश्वर के साथ मनुष्य की समानता केवल आलकारिक नही हैं। यह जनक और सन्तान की समानता है, सम्बन्धित प्रकृतियों की समानता है।"

— — —

"मैं जानता हूँ कि इन मतो के सम्बन्ध में यह आपत्ति की जा सकती है कि हम ईश्वर का विचार केवल अपनी आत्माओ से ही नही वरन् सृष्टि से, ईश्वर की कृतियो से प्राप्त करते हैं। मै जानता हूँ कि सृष्टि में ईश्वर व्याप्त है। आकाश और पृथ्वी उसकी महिमा की घोषणा करते है। सक्षेप मे शक्ति, ज्ञान और अच्छाई के चिह्न और प्रभाव सारी सृष्टि में व्यक्त हैं। लेकिन किसके लिए व्यक्त हैं? वाह्य चक्षु के लिए नही, सूक्ष्मतम अनुभवेन्द्रियो के लिए भी नही। वरन् सम्बन्धित मन के लिए, जो अपने द्वारा सृष्टि की व्याख्या करता है। केवल विचारो की उस ऊर्जा के द्वारा ही जिससे हम विभिन्न और उलझे हुए साधनो को दूरस्थ साध्यो के अनुकूल बनाते हैं और बहुगुणित प्रयासो को समरसता और सामान्य सन्दर्भ प्रदान करते हैं, हम उस सृजनात्मक बुद्धि को समझ पाते हैं, जिसने प्रकृति की व्यवस्था, आश्रयिताओ और समरसता को सस्थापित किया है। हम ईश्वर को अपने चारो ओर देखते हैं, क्योंकि वह हमारे अन्दर रहता है।"[1]

चैनिग के प्रसिद्ध धर्मोपदेश के इस अश को बहुधा अमरीका में परात्परवादी धर्मशास्त्र की पहली स्पष्ट अभिव्यक्ति के रूप में उद्धृत किया जाता है। धर्मोपदेश के विशिष्ट सन्दर्भ से अलग करके देखने पर यह थियोडोर पार्कर के अश्रद्धालु

---

१. दी वर्क्स ऑफ विलियम ई. चैनिग' मे लाइकनेस टु गाड : डिस्कोर्स ऐट दी ऑर्डिनेशन ऑफ दी रेवरेण्ड एफ० ए० फार्ले, प्राविडेन्स, आर० आई० १८२६ (बोस्टन १८६८), पृष्ठ २६३-२६४; जासेफ ब्लॉ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलॉसफिक ऐड्रेसेज् १७००-१६००' (न्यूयार्क, १६४६), पृष्ठ ५६६-५८५।

कथनो जैसा लगता है, किन्तु चैनिंग का कथन होने के कारण, इसे केवल काल्विनवाद के विरुद्ध तत्कालीन प्रतिक्रिया का एक और उदाहरण मान कर बिना किसी शंका के ग्रहण कर लिया गया। वास्तव मे यह उस गम्भीर परिवर्तन का एक चिह्न था, जो न केवल धर्मशास्त्र मे, वरन् सामान्यतः दर्शन में हो रहा था, जिसके फलस्वरूप प्रकृति के अध्ययन का स्थान आत्मा का अध्ययन ले रहा था। मानसिक दर्शन और 'आध्यात्मिक' धर्म ने परिकल्पनात्मक खोज को एक नया आयाम प्रदान किया। शीघ्र ही ये उत्तेजक विचार बन गये, जिनमें एक नये प्रकार के उदारवाद और मुक्ति की सम्भावना व्यक्त हुई।

इस प्रकार की सस्कृत आध्यात्मिकता के प्रति सर्वप्रथम उत्साह एकत्ववादियो ने नही प्रदर्शित किया। एक समूह के रूप मे वे अपनी तर्कसगति के सम्बन्ध में सन्तुष्ट और जिज्ञासाविहीन थे। यह उत्साह उन पादरियो ने दिखाया जो अपने आलोचनात्मक धर्मशास्त्र के बावजूद, ईसाइयत के परम्परागत प्रतीको और संस्कारो की शक्ति का अनुभव करते थे, जिन्होने अशिक्षितो के बीच पवित्रता के धर्मसन्देशवादी पुनर्जागरण को ईर्ष्याभरी दृष्टि से देखा और जो अपने विश्वास का तार्किक समर्थन करने में अपने को असमर्थ पाते थे। उनके लिए कोलरिज की पुस्तक 'एड्स टु रिफ्लेक्शन' बड़े समय पर आयी।

'आध्यात्मिक' मनन सम्बन्धी कोलरिज का अनुरोध उन लोगो के लिए दैवी सन्देश बन गया जिन्होने दिव्य-ज्ञान के सत्यो और दैवी प्रसाद के अवतरण का खण्डन किया था, फिर भी जिन्हे बचत के लिए किसी सहारे की आवश्यकता थी। पुनर्जीवन का स्थान प्रेरणा को लेना था, और 'लिखित शब्द' का अन्तः-प्रज्ञा को। स्वयं कोलरिज के लिए और उनके अधिकाश पाठको के लिए 'एड्स टु रिफ्लेक्शन' ने इस उद्देश्य की पूर्ति की। दार्शनिक मनन एक नये प्रकार का धर्म था और तर्कबुद्धि के इस उपयोग से धर्म निरपेक्ष बुद्धि और विज्ञान का अन्तर स्पष्ट करने के लिए इसे 'आध्यात्मिक' कहा गया। प्रेरणा, अन्तर्दृष्टि या ज्ञान के लिए मनन की पद्धति को, कोलरिज ने, शैलिंग का अनुसरण करते हुए एक अलग और अनुपम मानवी मनःशक्ति के रूप मे प्रतिष्ठा दी। वर्णनात्मक या प्रदर्शनात्मक 'समझ' से इसका अन्तर स्पष्ट करने के लिए इसे 'तर्कबुद्धि' कहा गया। इस प्रकार 'प्राकृतिक धर्म' और 'श्रुत धर्म' दोनो से ही 'आध्यात्मिक धर्म' गुणात्मक रूप में भिन्न था। इसमे बिना अन्धविश्वास के पवित्रता थी और बिना पन्थ के आध्यात्मिकता थी। मार्श तत्काल कोलरिज को अमरीकी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने में लग गये और उनकी पुस्तक के अपने संस्करण (१८२९) में एक लम्बा परिचयात्मक निबन्ध और बहुसंख्यक टिप्पणियां जोडी। मार्श प्राचीन ग्रन्थों के प्राध्यापक थे और यूनानी दर्शन के साथ-साथ कैम्ब्रिज के प्लेटोवाद का उन्हें

अच्छा ज्ञान था। कोलरिज के साधनो और संकेतो का आसानी से उपयोग करके उन्होंने अपनी कक्षाओ के समक्ष न केवल एक आध्यात्मिक धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत की, वरन् भाववादी भौतिकी, सौन्दर्य-शास्त्र और तत्व-मीमासा भी निरूपित किये। इन नवीनताओ ने धीरे-धीरे धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, और ईसापूर्व के ग्रन्थो सम्बन्धी उनके भाषणो को धीरे-धीरे बिल्कुल बदल दिया, जिससे वे पाठ्यक्रम और शिक्षा-पद्धति में एक स्थायी सुधार ला सके और कोलरिज के दर्शन को उन्होंने वरमॉण्ट विश्वविद्यालय की एक शैक्षिक परम्परा बना दिया। मार्श ने कहा कि स्वतन्त्र रूप मे मन का विश्लेषण अधिकाश मनुष्यो की रुचि और अध्ययन से बहुत दूर जा पड़ता है और इस कारण 'शिक्षण की सर्वाधिक प्रभावशाली विधि' यह है कि 'मनुष्य के आन्तरिक स्वत्व ..और तर्कबुद्धि, अन्तरात्मा और इच्छाशक्ति की रहस्यमय शक्तियो और साधनो' सम्बन्धी विचार को नैतिकता और धर्म के अध्ययन के साथ जोडा जाय। इस प्रकार नैतिक और धार्मिक दर्शन के पाठ्यक्रम, मनोविज्ञान के सहायक बन गये। किन्तु शिक्षा के क्षेत्र के बाहर स्थिति उलटी थी। नया मनोविज्ञान, धार्मिक मनन का एक साधन था और उसने एक नये धर्मशास्त्र को जन्म दिया। पादरियो के लिए कोलरिज के 'अन्तर' राहत का एक नया सन्देश लाये।

"यह प्रदर्शित करना भी इस रचना के लेखक का एक विशेष उद्देश्य है कि आध्यात्मिक जीवन या जिसे हम प्रयोगात्मक धर्म कहते हैं, वह अपने आप में और अपनी समुचित वृद्धि और विकास में, समझ की प्रक्रियाओ और रूपो से मूलत भिन्न है। और यह कि यद्यपि कोई सच्चा धर्म परिकल्पनात्मक तर्क के किसी सार्विक सिद्धान्त का खण्डन नही कर सकता, फिर भी एक अर्थ में वह दर्शन की चर्चाओ से भिन्न होता है और अपनी वास्तविक प्रकृति में वह 'वस्तुनिष्ठ विज्ञान और सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि' की पहुँच के परे होता है। 'ईसाइयत कोई सिद्धान्त या परिकल्पना नही है, वरन् एक जीवन है। जीवन का दर्शन नही वरन् एक जीवन और एक जीवन-प्रक्रिया।' अतः इसे ज्ञान का एक प्रकार कहना उतना उचित नही है, जितना जीवन का एक रूप कहना।"[1]

'प्रयोगात्मक धर्म' ने अन्ततः एक दर्शन प्राप्त कर लिया था जो एडवर्ड्स का स्थान ले सके।

सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप मे जीवन का दर्शन, मार्श द्वारा परात्परवाद की

---

१. सैमुएल टेलर कोलरिज, 'एड्स टू रिफ्लेक्शन' मे, जेम्स मार्श का प्रेलिमिनरी एसे (बर्लिंगटन, वरमाण्ट, १८२९), पृष्ठ २६।

विवेचना का मुख्य विषय बन गया। वस्तुनिष्ठ तर्कबुद्धि, जो हमारी 'स्वैच्छिक समझ' से भिन्न हमारी 'स्वत: स्फूर्त्त' चेतना का नियन्त्रण करती है, एक 'जीवन की अंगागि शक्ति' है, अत: जीवन की शक्ति नीचे से, निकृष्ट तत्वो से नही आती, वरन् ऊपर से आती है।'[1] सही कहे, तो हम अलौकिक रचनाएँ हैं।—स्वचेतन शक्ति

"एक उच्चतर जन्म है, एक उच्चतर और आध्यात्मिक ऊर्जा का सिद्धान्त है, जिसके अपने समुचित सम्बन्ध आत्मा के जगत् के साथ होते हैं। कुछ अर्थों में, वह प्रकृति के जीवन मे उसी प्रकार प्रवेश करता है, जैसे चेतन जीवन की शक्ति जड़ पदार्थ में प्रवेश करती है। स्वय अपने सार-रूप मे और अपने उचित अधिकार मे, यह अलौकिक है और प्रकृति की सारी शक्तियो के ऊपर है।... प्रकृति के जीवन के क्षणिक अनुभवो को, स्वय अपने अमूर्त्त रूपो में समझना, विचारना और पुनः प्रस्तुत करना,...इच्छा-शक्ति को भ्रष्ट करके, इस प्रकार निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति के प्रयास की ओर ले जाता है। और इस प्रकार आध्यात्मिक सिद्धान्त प्रकृति के जीवन के बन्धन मे फँस जाता है।"[2]

"व्यक्ति प्रकृति द्वारा निर्धारित सकीर्ण और वैयक्तिक लक्ष्य से आध्यात्मिक सिद्धान्त को मुक्त करके और उसे आध्यात्मिक नियम के अन्तर्गत लाकर ही, जो उसके अपने सार-रूप के अनुकूल होता है, वह पूर्णत स्वतन्त्र हो सकता है। उस मुक्तावस्था में आकर, जो ईश्वरीय भावना उसे प्रदान करती है, वह स्वतन्त्र होकर उन महान् और महिमामय लक्ष्यो के लिए प्रयास करता है, जिन्हें तर्कबुद्धि और ईश्वरीय भावना निर्धारित करती हैं।"[3]

इन उद्धरणो से पर्याप्त सकेत मिल जाता है कि यहाँ मार्श ने पाप और प्रसाद का एक दर्शन पाया (जिसे हम उद्गामी विकासवाद का उलटा रूप कह सकते हैं) जिसके फलस्वरूप वे उद्धार के पुराने शुद्धतावादी सिद्धान्त को और 'प्रयोगात्मक धर्म' के सत्यो को एक नया, 'आन्तरिक' अर्थ प्रदान कर सके। उन्होने इसे आध्यात्मिकता का एक शिक्षित रूप बता कर, मनन की इस आध्यात्मिक कला का उपदेश दिया और साथ ही सामान्यजनो में प्रचलित, भावनात्मक पुनरुत्थानो की भर्त्सना की। उन्होने कैम्ब्रिज के प्लेटोवादियो की कुछ रचनाओं

---

१. जोसेफ टारे द्वारा सम्पादित 'दी रिमेन्स ऑफ दी रेवरेण्ड जेम्स मार्श' (बोस्टन, १८४३), पृष्ठ ३७३।

२. वही पृष्ठ ३८२-३८३।

३. वही, पृष्ठ ३८६।

का सम्पादन किया और साधारणतः शुद्धतावादी भाववाद को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

सम्भवतः रेवरेण्ड फ्रेडरिक एच० हेज की गिनती यहाँ ईसाई परात्परवादियो मे नही करनी चाहिए। वे क्रमशः मेन राज्य में बेगोर, रोड आइलैण्ड में प्रॉविडेन्स और मॅसाचुसेट्स मे ब्रुकलिन के एकत्ववादी धर्म-समुदायो में पादरी रहे। १८५७ से १८८४ तक उन्होने हार्वर्ड में पहले धर्म का इतिहास, फिर जर्मन साहित्य पढाया। अपनी मुख्य दार्शनिक प्रेरणा उन्हे जर्मन स्वच्छन्दतावादी साहित्य का अध्ययन और अनुवाद करने से प्राप्त हुई। उन्होने १८१० से १८२२ तक जर्मनी मे अध्ययन किया था और जर्मन दर्शन के सम्बन्ध में उनकी जानकारी न्यू इंगलैण्डवासियो में शायद सबसे अधिक थी। स्पष्टतः हेज परात्परवादी धारा में सम्मिलित नही थे, और यह व्यग्यपूर्ण है कि उनका नाम परात्परवादी क्लब के साथ इतने निकट से जुडा हुआ था। इसे कभी-कभी 'हेज-क्लब' भी कहा जाता था, क्योकि हेज के नगर में आने पर उसकी बैठक होती थी।

फिर भी, उनके धर्मोपदेशो और निबन्धो में मुख्य परात्परवादी विषयो की बहुतेरी प्रतिनिधि विवेचनाएँ हैं। उनके विचार शेलिंग के सर्वाधिक निकट थे। प्रकृति और चेतन-आत्मा की एकता उनका प्रिय विषय था—'विश्राम की स्थिति मे प्रकृति जड़-वस्तु होती है, कार्यशील प्रकृति चेतन-आत्मा होती है।' प्राकृतिक इतिहास और मानवी इतिहास केवल प्रकृति की आत्म-चेतना के विकास के सोपान हैं। 'जो कुछ भी प्राकृतिक है, वह अपने आरोह और कारणता में आध्यात्मिक है; जो कुछ भी आध्यात्मिक है, वह अपने अवरोह और अस्तित्व में प्राकृतिक है।' पौराणिक शब्दावली में—

"आध्यात्मिक बनने में, मनुष्य एक नया प्राकृतिक जन्म प्राप्त करता है, जिसका अर्थ है कि वह ईश्वर के साथ चेतन समागम मे प्रवेश करता है, जिसके द्वारा उसकी आत्मा अचेतन रूप में पोषित हुई है। पहली अवस्था आदम की है, दूसरी ईसा की। 'किन्तु दोनो वही, एक ही व्यक्ति हैं—विकास की भिन्न स्थितियो मे वही मानवी प्रकृति। पहली पाशविक स्थिति है, दूसरी आध्यात्मिक'।"[1]

---

१. रोनाल्ड वेल वेल्स, 'थ्री क्रिश्चियन ट्रान्सेण्डेण्टलिस्ट्स : जेम्स मार्श, कैलेब स्प्राग हेनरी, फ्रेडरिक हेनरी हेज' (न्यूयार्क, १६४३), पृष्ठ १०६-१०७। हेज का उद्धरण 'रीजन इन रेलिजन' (वोस्टन, १८६५), पृष्ठ २६ से लिया गया है।

इस उद्गामी विकास में—इसे यह नाम देना अनुचित न होगा—तीन सोपान हैं—गति के नियमो द्वारा सचालित प्रकृति, कर्त्तव्य के नियम द्वारा सचालित नैतिकता और प्रेम के नियम द्वारा संचालित आत्मा।

हेज के अनुसार आत्मा का क्षेत्र, जिसमे धर्म प्रभावी होता है, व्यावहारिक नैतिकता से बिल्कुल कटा हुआ नही है। प्रेम और कर्त्तव्य एक-दूसरे मे ढल जाते हैं। हेज ने मुख्यत: इस बात पर जोर दिया कि नैतिकता और धर्म, दोनो में ही सुधार की भावना नकारात्मक न होकर रचनात्मक हो। जिसे उन्होने अपना 'व्यापक चर्च' कार्यक्रम कहा, उसके आधार के रूप में उन्होने सामाजिक और बौद्धिक उदारवाद का समर्थन किया। वे एकत्ववाद के उन नेताओ में से थे, जिन्होने अलगाव और सकीर्णता से बचने का प्रयास किया।

एमर्सन

अमरीकी सस्कृति में ऐसी कई प्रवृत्तियाँ थी, जिनका परात्परवाद ने विरोध किया। इनमे से कुछ प्रबुद्धता से उत्पन्न हुई थी, कुछ उसकी प्रतिक्रियाएँ थी। कुछ प्रवृत्तियाँ किसी भी प्रकार के भाववाद की सामान्य शत्रु थी, कुछ अन्य ऐसी विशिष्ट परिस्थितियाँ थी, जिनसे अमरीकी विकास के कुछ विशिष्ट गुणो को समझा जा सकता है।

प्रबुद्धता द्वारा प्राकृतिक नियम की सर्वोच्च प्रतिष्ठा के साथ प्राकृतिक विज्ञान में हुए विकास को हमने देखा। जैसे-जैसे प्रकृति के अध्ययन का रोमानी आकर्षण समाप्त होता गया और वह प्रयोगशाला का कार्य बनता गया, न केवल उसमें नैतिकतावादियो की रुचि समाप्त हो गयी, वरन् उन्होने यह भी कहा कि "प्रकृति पर मनुष्य का साम्राज्य निरीक्षण द्वारा नही आता।" परात्परवादियो के इस सूत्र और नारे मे विज्ञान का खण्डन नही था, वरन् यह अनुभूति थी कि दर्शन या धर्म का स्थान विज्ञान नही ले सकता, जिसकी सम्भावना पर लोग प्रबुद्धता काल में विश्वास करने लगे थे। मनुष्य की विजय प्रकृति के 'द्वारा' न होकर प्रकृति के 'ऊपर और परे' होने वाली थी। परात्परवादियो ने एक उच्चता का-सा दृष्टिकोण अपना कर, प्रकृति का जो कुछ भी नैतिक मूल्य उनकी नजर में था, उसके अनुसार उसका 'उपयोग' किया, किन्तु विस्तृत प्राकृतिक ज्ञान या प्रयोगात्मक प्रगति मे बहुत कम रुचि दिखाई। तदनुसार उन्होने मनुष्य की प्रगति की व्याख्या प्रकृति से एक उच्चतर और अधिक शुद्ध वातावरण में विकास के

रूप में की। 'निरीक्षण' और प्रकृति की शक्तियो की खोज के दृष्टिकोण के विरुद्ध उनकी मुख्य आपत्ति यह थी कि उसमे एक अधीनता और आज्ञाकारिता की भावना निहित है, जो कभी भी मनुष्य को उसकी वाछित स्वतन्त्रता के उपयोग की ओर नही ले जा सकती। परात्परवादी स्वतन्त्रता और विप्रतिषेधवादी थे। वे किन्ही ऐसे नियमो को नही मानते थे जो उनके अपने नियम न हो। बल्कि, वे किन्ही ऐसे ससारो को भी नही मानते थे, जो व्यक्ति आत्माओ द्वारा अपने लिए, वाह्य शक्तियो के ऊपर अपनी प्रभुता की अपनी अभिव्यक्ति के रूप में 'निर्मित' न किये गये हो। यद्यपि वे ईश्वर को 'परमात्मा' के रूप में स्वीकार करते थे, किन्तु उन्होने स्पष्ट कर दिया कि ईश्वर कोई अधिपति नही है और उसकी भावना उस अनुशासन से जुडी हुई और उसे व्यक्त करने वाली है, जिसे स्वतन्त्र इच्छा-शक्तियाँ स्वय अपने सम्बन्ध में व्यक्त करती हैं। या, इस सिद्धान्त को अधिक प्राविधिक रूप में रखें तो, ईश्वर इसी कारण प्रकृति से ऊपर है कि वह मनुष्य की आत्मा मे निहित है।

इतिहास के प्रति परात्परवादियो का दृष्टिकोण भी, प्रकृति के प्रति उनके दृष्टिकोण के समान था। वे अपने को उससे ऊपर समझते थे। उन्नीसवी सदी के तीसरे और चौथे दशक में न्यू इगलेण्ड इतिहासकारो का अपना पहला समूह उत्पन्न कर रहा था—बैंक्रॉफ्ट प्रेस्कॉट, मोटले, पार्कमैन, हिल्ड्रेथ, और इनसे कम महत्व के अन्य बहुतेरे। पीछे की ओर डाली गयी दृष्टि मजिल पर पहुँच जाने की भावना को व्यक्त करती थी। बोस्टन सस्थापको के प्रयासो का फल लेकर कुछ देर को सुस्ता रहा था और दो शताब्दियो की प्रगति का सर्वेक्षण कर रहा था। शुद्धतावाद अतीत की वस्तु वन चुका था और अब वह न सद्गुण था न खतरा। प्राचीनता के प्रति अगर प्रेम नही, तो एक भावनात्मकता दिखाई पड़ने लगी थी। उदाहरण के लिए हॉथॉर्न शुद्धतावाद और उसकी अन्तरात्मा में किसी रोमानियत की दुनिया का-सा आनन्द पाते थे। अतीत के भण्डार और पुरखों की गलतियो की ऐसी तलाश को परात्परवादी तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। निस्सन्देह वे इतिहास पढ़ते थे और जितना प्राचीन और दूरस्थ इतिहास हो, उतना ही अच्छा, किन्तु वे केवल अपनी कल्पनाओ को जागृत करने या आध्यात्मिक पाठो के लिए सामग्री प्राप्त करने के लिए उसे 'हथिया लेते थे'। उनमे से कुछ आदर्शवादी सुधार की भावना से आगे देखते थे, कुछ शाश्वत की ओर अपने अन्तस् में, किन्तु इतिहासकार की रुचि के साथ पीछे देखने वाले वहुत कम थे। आठरहवी सदी के संवेग का अनुभव वे अब भी कर रहे थे, और उन्हें विश्वास था कि वे अव भी सृजनात्मक कार्यकलाप के केन्द्र में हैं, इतने व्यस्त कि सस्मरणो के लिए समय नही, इतने आशापूर्ण कि कोई खेद नही।

वे सामान्य बुद्धि और गँवारपन के विरुद्ध थे। वे वैयक्तिकता का आदर सनक की हद तक भी करते थे, किन्तु ऐसा नही कि हर बूढे व्यक्ति का आदर करें—वे भद्रता और 'सस्कृति' के प्रस्फुटन थे। उन्हे लोकतन्त्र का दार्शनिक कहा गया है और एक ढीले-ढाले अर्थ में उनका स्वतन्त्रता-प्रेम, परम्परा का तिरस्कार और स्वय अपने साधनो का विकास, जीवन के लोकतान्त्रिक आदर्श के साथ जोडा जा सकता है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से वे लोकतन्त्रवादियो के नही, उदारवादियो के युग के थे। वे प्रतिनिधि मनुष्य नही थे, निश्चय ही राजनीतिक लोकतन्त्रवादी नही थे। उनका आचार और बोलचाल का ढँग शिष्ट और बनावटी था। जो स्वतन्त्रता वे प्रदर्शित करते थे,वह स्वतः स्फूर्त्त नही थी, विवेकशील थी। वे डायरियाँ और जर्नल बहुत अधिक लिखते थे। वे दर्शन का उपयोग साहित्यिक उद्देश्यो के लिए करते थे और उनकी आडम्बरपूर्ण भाषा के पीछे बहुधा बिल्कुल सामान्य विचार झाँकते थे। वे ऐसे यात्री थे जो जानबूझ कर विक्टोरिया-कालीन अग्रेज होने का प्रयास करते थे। वे इतने अधिक 'परिष्कृत' थे कि सुसस्कृत नही हो सकते थे। जो कुछ सस्कृति उनमें थी, वह आश्चर्यजनक रूप मे बहुदेशीय और हर स्थान से उधार ली हुई थी। प्राचीन, जर्मन, फ्रासीसी, इटालवी, कान्फूशियसवादी, वैदिक, बौद्ध, सभी साहित्यो को वे अपना लेते थे और वे (जब भाषण न दे रहे होते) स्वय स्वर्ग को भी सर्वथा अनुकूल पाते, क्योकि आत्मा के किसी भी और सभी रूपो का वे सोत्साह स्वागत करते थे। इस ग्रहणशीलता में वे निश्चय ही परात्परवादी दर्शन के अपने जर्मन और अग्रेज साथियो से आगे थे, सम्भवत इस कारण कि अपनी प्रान्तीयता की सीमाओ के कारण उन्हे बाहर से आयी सामग्री पर अधिक निर्भर रहना पडता था। जो भी हो, अत्यधिक विभिन्न विश्वासो और अभिव्यक्तियो को अपना लेने में उनका उद्योग और उनकी सहानुभूति, उनकी विद्वत्ता का प्रमाण होने के साथ-साथ, अमरीकी शिक्षा को उनकी देन भी है।[1] इसके बावजूद पढने को वे आत्म-

---

१. फ्रेडरिक आई० कारपेण्टर ने इस ओर संकेत किया है कि न्यू-इगलैण्ड के इस मानवतावाद ने न केवल परात्परवादी स्वच्छन्दतावाद को, वरन् लॉन्गफेलो, और लॉवेल आदि की भद्रता को भी जन्म दिया। शुद्धतावादी मानवतावाद अब फैल कर शास्त्रीय मानवतावाद बन गया। बाइबिल का धर्म, पुस्तको का धर्म बन गया। लॉवेल ने इस निरन्तरता का अनुभव किया, जब उन्होने अपने विशिष्ट बोझिल हास्य के साथ भविष्य-वाणी की कि "चौडे माथो और लम्बे सिरो की आखिरकार जीत होगी...और यह काफी होगा कि हम अपने शुद्धतावादी सस्थापको की भाँति तीव्रता से अनुभव करें कि साम्राज्य

निर्भरता के विरुद्ध मान कर उसका तिरस्कार करते थे और इसे केवल वही तक उचित मानते थे, जहाँ तक यह पाठक को प्रतिविम्बित प्रकाश में स्वय अपने को देखना सिखाये।

शायद परात्परवादियो का गम्भीरतम विरोध सस्थाओ के प्रति था। सगठन मे निर्भरता की या भौतिक शक्ति की तलाश की स्वीकृति निहित थी और ये दोनो ही भावनाएँ आत्मा के जीवन के लिए विजातीय थी। वे प्रवुद्ध-काल के व्यक्तिवाद को कट्टरपन्थी पराकाष्ठाओ तक ले गये। उन्होने सिखाया कि शासन को शाब्दिक अर्थ में स्वशासन होना चाहिये और किसी भी मनुष्य को अन्य किसी मनुष्य पर शासन करने की चेष्टा नही करनी चाहिये। निम्नतर या 'भौतिक' स्तर पर संगठन और सस्थाओ को उचित ठहराया जा सकता था, लेकिन भौतिक अस्तित्व की समस्याओ और आत्मा के चिन्तन-क्षेत्र में घपला नही करना चाहिये। भौतिक जीवन की समस्याओ को वास्तविक अस्तित्व की आवश्यक 'शर्तों' के रूप में स्वीकार करना चाहिये, उनके 'आधार' के रूप मे नही। सस्थाओ में भी चर्चों का औचित्य सबसे कम था, क्योकि वे शासन और सत्ता को आत्मा के क्षेत्र में ले आते थे, जहाँ स्वतन्त्रता का राज्य है। कम से कम न्यू-इगलैण्ड में, काल्विनवाद से लडना आवश्यक था, क्योकि एकत्ववाद ने वह काम पहले ही कर दिया था। परात्परवादियो ने अपनी कुछ सबसे तीखी आलोचनाओ का लक्ष्य एकत्ववादियो को बनाया, जिनसे स्वय उनका विकास हुआ था। एकत्ववादियो और चर्चों के सौभाग्य से, गुलामी-प्रथा की राजनीति ने परात्परवादियो के लिए राज्य को इतना घृणित बना दिया कि उन्होंने अपना पादरियत-विरोध बन्द कर दिया और बहुधा स्वय धर्मपीठो से उन्होने शासन की भर्त्सना की। उनमें स्वतन्त्रता का सिद्धान्त और व्यवहार अपने चरम विन्दु तक पहुँचा।

सेण्ट लुई के हीगेलवादी डेएटन जे० स्नाइडर ने अमरीकी इतिहास के द्वन्द्व का निरूपण करते हुए बताया कि स्वतन्त्रता के हित में एमर्सन ने सस्थाओ को 'नकारा' लेकिन उन्होने अपना लक्ष्य या सश्लिष्ट स्वतन्त्रता, स्वय एक सस्था बनकर प्राप्त की। उनका यह कथन, उनके द्वन्द्ववाद से परे, एक अन्तर्भेदी, आनुभविक सत्य है और इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान खीचता है कि

के उन अंगों को संस्कृति के द्वारा विस्तार और दीर्घता प्रदान की जा सकती है।" यद्यपि यह महत्वपूर्ण है कि उन्होंने संस्कृति को साम्राज्य का एक साधन बताया, किन्तु यह बात और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि उन्होंने इसे शुद्धतावादी अतीत के साथ जोड़ा और उसे उद्धार का एक जारी रहने वाला साधन बताया।—(फ्रेडरिक आई० कारपेण्टर 'दी जेण्टिल ट्रेडिशन; ए रीइण्टरप्रेटेशन,' 'दी न्यू-इंगलैण्ड क्वार्टरली' अंक पन्द्रह (१९४२), पृष्ठ ४३६।

अमरीकी दर्शन के इतिहास मे, न केवल व्यक्ति एमर्सन के मन की व्याख्या करना आवश्यक है, बल्कि अमरीकी सस्कृति में एमर्सन के संस्थात्मक रूप की भी। परात्परवाद जहाँ तक एक सगठित आन्दोलन था और अब भी एक सामाजिक शक्ति है, वहाँ तक वह सस्था-विरोधी सस्था है।

एमर्सन ने अपने को, शाब्दिक अर्थ मे, परात्परवादी आत्म-निर्भरता के द्वारा बचाया। १८३२ मे अपने को एकत्ववादी पादरियत से मुक्त करने के बाद उन्होंने पाया कि स्वतन्त्रता का बोझ और भी भारी था। शरीर और मन से बीमार, उन्होंने यूरोप की यात्रा का सहारा लिया। यद्यपि यह विश्राम उनके लिए लाभकारी था और निस्सन्देह इगलिस्तान के परात्परवादियो से मिलकर उन्होंने प्रोत्साहन और सीख पायी, किन्तु उन्हे नयी शक्ति और नया लक्ष्य इन तथ्यो से नही मिला। इसे उन्होंने विदेशो में बिताये एक साल की अवधि मे, सामाजिक और बौद्धिक दोनो ही क्षेत्रो मे आत्म-निर्भरता की कला सीख कर प्राप्त किया। उन्होंने स्वय अपने लिए सोचना और कार्य करना सीखा और वस्तुओ में स्वय अपने अर्थ प्राप्त किये। यद्यपि आमतौर पर उन्होंने कोई नये अर्थ नही प्राप्त किये, किन्तु उनके लिए महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि उन अर्थों को उन्होंने अपना लिया और वे सचमुच 'उनके अपने' अर्थ बन गये। इस खोज को सकेत चिह्न के रूप में लेकर, वे यह देखने के लिए प्रकृति, इतिहास, पुस्तको, मित्रो, अनुभव आदि की ओर मुडे कि इनमे से हर एक का उनके लिए क्या अर्थ था। जब वे इस पद्धति का साधारणीकरण करने मे सफल हो गये, तो उनके पास न केवल एक भाषण-माला थी, वरन् एक दर्शन भी था। उन्होंने 'स्वय अपना विश्व निर्मित' कर लिया था और अब वे अपने साथी अमरीकियो से कह सकते थे कि उनमें से हर एक स्वय अपने विश्व का निर्माण करे। इस तथ्य से, कि यह व्यक्तिनिष्ठ पद्धति उनके लिए एक निजी मुक्ति थी, एमर्सन के लेखन और भाषण की शक्ति को बहुत कुछ समझा जा सकता है। वे हमेशा अपने अनुभव से बोलते प्रतीत होते थे, चाहे वे केवल किसी पढी हुई बात को दोहरा ही रहे होते। इस पद्धति का ही यह स्वाभाविक परिणाम था कि उनके विचारो में कभी स्पष्टता या व्यवस्था नही आयी। हर उक्ति आत्मा के सच्चे ज्ञान की तरह होती थी और उसका उपयोग वे स्वयं और अन्य उपदेशक सूत्र के रूप मे, लगभग बाइबिल के सूत्रो की तरह, असख्य धर्मोपदेशो के लिए कर सकते थे।

उनके विचारो की ये दो मौलिक विशेषताएँ एक अमरीकी सस्था के रूप में एमर्सन की शक्ति के बडे अश का कारण है—(१) उन्होंने एक-निरपेक्ष उपदेश-पीठ, उपदेशात्मक टीका की एक धर्म-निरपेक्ष पद्धति और एक धर्म-निरपेक्ष 'ज्ञान-

साहित्य' का निर्माण किया, जिससे उनके वाक्यो मे एक प्रकार का पैग़म्बरी गुण आ गया, (२) वे एक मनुष्य के रूप मे दूसरे मनुष्य को सम्बोधित करते थे, एक अनुभव की ओर से दूसरे अनुभव से अपील करते थे। इस प्रकार उनकी शैली और उनके सन्देश, दोनो का ही ऐसी जनता ने विशिष्ट रूप में स्वागत किया जो धर्मोपदेशो पर पली थी और उनसे ऊब चुकी थी। उन्होने अन्य विचारको को भी, (चाहे हम उन्हे विद्वान् न भी मानें) वही आत्म-विश्वास, आत्म-संस्कार और वैयक्तिकता प्रदान की, जो उन्होंने स्वयं प्राप्त की थी।

एमर्सन का भाववाद न प्लेटो का अनुयायी था, न बर्कले का, यद्यपि दोनो का ही उन्हे थोड़ा-बहुत ज्ञान था। उन्हे न वस्तुओ के सार्वत्रिक रूपो मे रुचि थी, न उनके प्राकृतिक अस्तित्व मे। उनकी रुचि वस्तुओ में (मनुष्य की) काव्यात्मक कल्पना को जागृत करने की योग्यता मे थी, जिसे वे और उनके साथी परात्परवादी विवेक या आत्मा कहते थे।

"यह 'आत्मा' दोहरे रूप में व्यक्तिनिष्ठ थी—यह ज्ञान की अपेक्षा कल्पना थी, विज्ञान नही, कविता थी और आत्म-ज्ञान उसका स्वीकृत लक्ष्य था। यह अन्वर्दर्शन और विमर्श का सयोग था और इसने एक आत्माभिमान उत्पन्न किया, जो कभी साहसिक होता, कभी कारुणिक।

"काल स्वयं हमारे लिए देखता है, हमारे लिए सोचता है। यह ऐसी खुर्दबीन है, जैसी दर्शन के पास कभी नही रही। हमारे लिए अन्तर्दृष्टि जो कुछ है, कभी किसी के लिए नहीं रही। कोई शका न करे कि यह क्षण और अवसर ईश्वरीय हैं। वह जो इस दिन की प्रतिमा का प्रतिनिधित्व करेगा, वह जो अतीत और भविष्य के बीच इस महान् दरार पर खडा होकर आलोचना, नीतिशास्त्र, इतिहास के नियम लिखेगा, एक युग के बाद वह न झूठा होगा, न अभागा, बल्कि उसकी गिनती तत्काल उन सभी गुरुओ के समान स्तर पर होगी, जिन्हें हम आज मान्यता देते हैं।.. मैं अभी भी प्रमुख व्यक्तियो में इस प्रयास को देखता हूँ। वे उसका परित्याग कर रहे हैं, जिस पर पहले उन्हे गर्व था। वे तिरस्कार का सामना करते हैं और तिरस्कृत व्यक्तियो के साथ रहते है। वे एक अधिक सौम्य, अधिक दिव्य मुखाकृति प्राप्त करते हैं।"[1]

१ 'दी जर्नल ऑफ राल्फ वाल्डो एमर्सन' (बोस्टन, १६०६-१४), खण्ड पाँच, पृष्ठ २६३, ३११। थोरे ने यही बात कुछ विनोद के स्वर मे कही—

"देयर इज सच हेल्थ ऐण्ड लैंग्थ आफ ईयर्स

"इन दी एलिक्जिर ऑफ दाई नोट,

"दैट गाड हिमसेल्फ मोर यंग ऐपीयर्स,

"फ्राम दी रेयर ब्रैगिंग ऑफ दाई थ्रोट।"

एमर्सन ने अपने में और अपने समाज मे बुद्धि के काव्यात्मक प्रयोग के अभाव का अनुभव किया। विज्ञान और नैतिकता सामान्य वस्तुएँ थी और प्रबुद्धता की परम्परा में, उन्हे तर्कबुद्धि के जीवन के दो केन्द्र समझा जाता था। आवश्यकता थी सार-ज्ञान, अन्त. प्रज्ञात्मक अन्तर्दृष्टियो, काव्यात्मक परिप्रेक्ष्यो और भविष्यद्दृष्टा विचारो को विकसित करने की। "संस्कृति, प्रकृति की अपरिष्कृत दृष्टियो को अपवर्तित कर देती है और फलस्वरूप मन जिसे पहले यथार्थ कहता था उसे भासमान् लगता है और जिसे स्वप्नदृष्टि कहता था, उसे यथार्थ कहने लगता है।"[1]

"सामान्य में चामत्कारिक को देखना ज्ञान का अचूक चिह्न है।...प्रकृति की जडता या पाशविकता, आत्मा का अभाव है। शुद्ध आत्मा के लिए वह तरल, चपल और आज्ञाकारी होती है। हर आत्मा अपने लिए घर बनाती है और घर के परे एक ससार, और ससार के परे एक स्वर्ग। अतः जान लीजिये कि ससार का अस्तित्व आपके लिये है। पूर्ण दृश्य-घटना आपके लिये है।... अत स्वय अपना ससार बनाइये। जितनी तेजी से आप अपने जीवन को अपने मन के शुद्ध विचार के अनुरूप बनायेंगे, उतना ही उसके महान् अनुपात व्यक्त होगे। आत्मा के अन्तर्प्रवाह के साथ-साथ वस्तुओ में भी तदनुकूल क्रान्ति आयेगी। प्रकृति पर मनुष्य का साम्राज्य—ऐसा स्वामित्व जो अभी मनुष्य द्वारा ईश्वर की कल्पना के भी परे है—तब वह उसी तरह बिना आश्चर्य किये पा सकेगा, जैसे वह अन्धा आदमी जिसकी सम्पूर्ण दृष्टि धीरे-धीरे वापस लौट आती है।"[2]

एमर्सन का प्राथमिक लक्ष्य यह था कि दिमाग प्रकृति को अस्तित्व के रूप मे न देखकर, आत्मा के भोजन के रूप मे देखे और भाववाद के पक्ष मे यही उनका मुख्य तर्क था। उन्होने उस मुक्ति का अनुभव किया जो काव्यात्मक कल्पना प्रदान करती है, किन्तु वस्तु की उपेक्षा करके मन की उपलब्धियो का स्वागत करने की उत्सुकता में वे (और उनके अधिकाश मित्र) लगभग हर उस वस्तु का स्वागत करने की फूहड़ हदो तक चले गये, जिसमें असामान्य शक्ति दिखाई पडे।

प्राकृतिक समझ की आदतो से आत्मा को मुक्त करने के प्रयास मे, लगभग

(तेरे स्वर के अमृत मे ऐसा स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन है कि तेरे कण्ठ की दुर्लभ ढ़ोंग से, ईश्वर भी अधिक युवा प्रतीत होता है।)

'कलेक्टेड पोएम्स' में 'अपान दी बैंक ऐट अर्ली डॉन' से। कार्ल बोट द्वारा सम्पादित (शिकागो, १९४३) पृष्ठ २०४।

१. 'नेचर' में भाववाद सम्बन्धी अध्याय से।

२ 'नेचर'।

हर अवैज्ञानिक वस्तु को बिना परखे सहानुभूति देने के तत्कालीन फैशन में परात्परवादी भी हिस्सेदार और बढ़ावा देने वाले बने। इस विशेषता में, और आमतौर पर भी, एमर्सन न्यू इंगलैण्ड के परात्परवाद के मध्यममार्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि उन्होने अपने आसपास के सुधारको और रहस्य-वादियो को सरक्षण दिया और उनसे सहानुभूति रखी, लेकिन वे स्वय इन दिशाओ में नही भटके। विचारो और उत्साहो का आलोचनात्मक आत्म-संस्कार के लिए उपयोग करते हुए, उन्होने अपने को अलग रखा। न केवल व्यक्ति रूप में, बल्कि संस्था के रूप में भी, एमर्सन उदार आलोचक और रचनात्मक भाववादी दोनो ही थे। उनमें याकी विनोद और गम्भीरता के साथ काव्यात्मक कल्पना और स्वतन्त्रता का मिश्रण था। अपने बौद्धिक और सामाजिक वातावरण और परम्परा के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध रखने की उनकी योग्यता ने उन्हें एक महान् अमरीकी मध्यस्थ बनाया। उनके श्रोता और पाठक उनकी ऐसी बातो को वेदवाक्य की तरह स्वीकार कर लेते, जो अन्य स्वरो या शब्दावलियो में आने पर धर्मविरुद्ध या पाखण्डपूर्ण कह कर अस्वीकार कर दी जातीं।

आध्यात्मिक साहचर्य

न्यू इगलैण्ड के अधिकाश मानवीयतावादी सुधार आन्दोलन प्रबुद्धता से उत्पन्न हुए थे और परात्परवाद के साथ उनका सम्बन्ध अप्रत्यक्ष ही था। चैनिंग, ब्राउनसन, पार्कर, गैरिसन—सभी को अपनी प्रेरणा और प्रारम्भिक आदर्श तर्कबुद्धि के युग से मिले थे। यह बात एक हद तक फौरिएरवादी उत्साह और समाज के पुनर्जीवन की आदर्शवादी योजनाओ के लिए भी सच थी। डब्ल्यू एच० चैनिग, रिपले, ब्रिस्बेन और अन्य दूसरो ने अपने सम्बद्धता के सिद्धान्त ऐसे स्रोतो से प्राप्त किये जिनमे सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त परिलक्षित होते थे, और जब उन्होंने परात्परवादी दर्शन सीखा, तो अपनी सामाजिक योजनाओं को परात्परवादी वार्त्तालाप के लिए अधिक अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने के अवसरो के रूप में देखा। यद्यपि बुक फार्म मुख्यत परात्परवादियो का समुदाय था, किन्तु शाब्दिक अर्थ में वह परात्परवादी समाज नही था। फिर भी, आदर्शवादी समाजवाद पर परात्परवादो सिद्धान्त का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, क्योकि इन समुदायों का, जिनकी कल्पना मूलतः सुधार योजनाओ के रूप में, श्रम की प्रतिष्ठा, सम्पत्ति की समानता और नैतिक शुद्धि के लिए की गयी थी, परात्परवादियों ने

इस रूप मे समर्थन किया कि वे आत्मा को भौतिक चिन्ताओ की गुलामी से बचाती थी। अन्त मे ये समुदाय रोमानी भाववाद की समाजीकृत अभिव्यक्तियाँ बन गये।

किन्तु ब्रान्सन ऐल्कॉट का मामला कुछ भिन्न है। उनका सामाजिक सिद्धान्त आरम्भ से ही परात्परवादी था। शिक्षक के रूप मे उनका कार्य और फ्रूटलैण्ड्स का उनका सामाजिक प्रयोग, एक भाववादी दर्शन को व्यावहारिक रूप देने के प्रयास थे। उन्होने बोस्टन के टैम्पिल स्कूल में बच्चो मे आत्म-अभिव्यक्ति और नैतिक विमर्श की आदतो को प्रोत्साहित करना शुरू किया। शैक्षिक अनुशासन के लिए उन्होने बातचीत और डायरियो को (उनके अपने जीवन की दो बुनियादी आदतें) आधार बनाया। वे पेस्टालॉजी[1] के अनुयायी सुधारक थे, किन्तु शिक्षा सम्बन्धी अपने विचारो मे उन्होने भाववाद मे अपनी उस रुचि को भी जोड़ा जो उन्हे मार्श द्वारा प्रकाशित कोलरिज के सस्करण और फिर वर्ड्सवर्थ हर्डर, प्लेटो, प्लोटिनस और उसके बाद अधिकाधिक सख्या मे पूर्व और पश्चिम के रहस्यवादियो को पढकर प्राप्त हुई। यद्यपि बोस्टन में उनका स्कूल चल नहीं सका, किन्तु उसकी ख्याति इगलिस्तान तक फैली और इसके फलस्वरूप ऐलकॉट का परिचय इगलिस्तान के 'संघटनवादी' सुधारको के एक समूह से हुआ, जिन्होंने 'मानव प्रगति के मित्रो' के रूप मे अपनी बैठक की 'सुधार, सक्रमण और निर्माण' पर चर्चा की, और तय किया कि एक स्थान चुना जाये जहाँ नया अदन का बाग लगाया जाये और मनुष्य, बुराई के फन्दे से बचा हुआ, अपने जनक, अपने-आप, अन्य मनुष्यो और सारी बाह्य प्रकृतियो के साथ समरस होकर रहे।[2] फलस्वरूप, १८४३ मे, हार्वर्ड मॅसाचुसेट्स में 'फ्रूटलैण्ड्स' का प्रयोग आरम्भ हुआ जिसके लिए धन की व्यवस्था ऐल्कॉट के अग्रेज दोस्त चार्ल्स लेन ने की, और 'प्रबन्ध' भी उन्ही के हाथ में था। ऐल्कॉट के लिए यह मूलतः 'पाइथागोरस के' यति-सिद्धान्त के साथ 'सम्बद्ध परिवार' के जीवन को मिश्रित करने का प्रयास था। फ्रूटलैण्ड्स के नये अदन में सेब एक मुख्य भोजन था, लोभ का प्रतीक नही। मनुष्य, पशु और यहाँ तक कि धरती को भी अनावश्यक बन्धन और विकारो से बचाना था। परिशुद्ध 'परिवार' को, सारे समाज की आधारभूत सस्था के रूप में अपना औचित्य सिद्ध करना था। इसके अतिरिक्त इसे

---

१. पेस्टालॉज़ी—स्विट्ज़रलैण्डवासी शिक्षा-सुधारक १७४६-१८२७। —अनु०

२. ओडेल शेपर्ड 'पेड्लर्स प्रोग्रेस, दी लाइफ ऑफ ब्रॉनसन ऐलकॉट' (बोस्टन, १६३७), पृष्ठ ३२६।

आध्यात्मिक जनन की सृजनात्मक शक्ति का उदाहरण बनना था। ऐल्कॉट का सचमुच विश्वास था कि आत्मा वस्तु के पहले आयी और सारी 'उत्पत्ति' आत्मा की है। ईश्वर ने मनुष्य की आत्मा का सृजन किया और मनुष्य ने जैसे-जैसे वह अधिकाधिक पतित और पशुवत् होता गया, अस्तित्व की निम्नतर और भौतिक भ्रष्टताओ को जन्म दिया। संक्षेप में, ऐल्कॉट का भाववाद, रहस्यवाद द्वारा भ्रष्ट हो गया। उनके रहस्य-कथन (आर्फिक सेइग्स) जिनकी शैली और भावना आरम्भ मे कोलरिज जैसी थी, बाद में ऐसे बन गये कि विशिष्ट सस्कारयुक्त लोग ही समझ सकें।

डब्ल्यू० टी० हैरिस और सेण्ट लुई के हीगेलवादियो ने उन्हे अशत: उनके झटकाओ से बचाया और उन्हे बाध्य किया कि वे अपने भाववाद को परिभाषित करें और अपने रोमानी व्यक्तिवाद का परित्याग करें। उन्होने फ्रूटलैण्ड्स की असफलता का कारण भी, आर्थिक और राजनीतिक सस्थाओ की उपेक्षा करते हुए, परिवार पर अपने अत्यधिक 'व्यक्तिवादी' आग्रह को बताया। सेण्ट लुई के हीगेलवादियो के साथ ऐल्कॉट के परिचय के फलस्वरूप कॉन्कॉर्ड में दर्शन के ग्रीष्म स्कूल (१८७९-८७) का जन्म हुआ, जो अमरीकी भाववाद के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण घटना थी, क्योकि उससे हीगेलवादी और न्यू-इगलैण्ड के परात्परवादी एक जगह एकत्र हुए।

आध्यात्मिक एकान्त

हेनरी थोरो एक स्फूर्त्तिमय, भले स्वभाव के विद्रोही थे। उन्होने न केवल शुद्धतावादी अन्तरात्मा को अस्वीकार किया, वरन् परात्परवादी अन्तरात्मा को भी अस्वीकार किया और आत्मसस्कार के एक सिद्धान्त के रूप में व्रात्यवाद (पैगनिज्म) को अभिव्यक्ति दी। वे न्यू-इगलैण्ड के नीत्शे थे। उनका 'सिविल नाफरमानी' का सिद्धान्त केवल समाज के प्रति, विशेषत अपने समाज के प्रति उनके पूर्ण तिरस्कार का चेतन और दार्शनिक औचित्य मात्र था। उन्होने निजी विद्रोह की एक आलोचनात्मक व्यावहारिक योजना खोज ली। ऐसा नही था कि उन्हे प्रकृति से अधिक प्यार था, वल्कि उन्होने पाया कि उनकी आत्मा (अर्थात् कुछ पढने पर उनका मनन) एकान्त और खुली हवा मे अधिक मुक्त होती थी। वे अगर प्रकृतिवादी थे तो केवल आकस्मिक रूप में। वे एक कवि थे जिन्हे संस्थात्मक नैतिकता की आवश्यकता का अनुभव नही होता था।

"मैं व्यर्थ प्रयासो का एक समूह हूँ, वँधे हुए सयोग के बन्धन से एक साथ,

"इधर-उधर झूलते हुए, उनकी कड़ियाँ इतनी ढीली और चौड़ी बनी थी,
"मै सोचता हूँ, अधिक कोमल मौसम के लिए।"[१]

उन्होने न्यू-इगलैण्ड के परात्परवाद के सर्वप्रमुख विषय—अर्थात् आर्थिक और राजनीतिक चिन्ताओ मे डूब जाने से स्वतन्त्र आत्मा के जीवन को खतरा—को आकर्षक अभिव्यक्ति प्रदान की।

"छह दिन तुम मेहनत करोगे और अपनी सारी बुनाई करोगे, लेकिन सातवें दिन निश्चय ही अपनी पढाई। वह सुखी है, जो कृतज्ञता की भावना के साथ सितम्बर की इस गुनगुनी धूप मे नहा सकता है, जो विश्राम और श्रम दोनो के समय सभी प्राणियो को प्रकाशित करती है। कोई स्वस्थ मनुष्य, जिसका रोजगार टिकाऊ हो, जैसे पचास सेण्ट प्रति गट्ठर के लिए लकड़ी काटना और जगल मे एक तम्बू हो, वह ईसाइयत के लिये अच्छा विषय नही है। बाइबिल का न्यू टेस्टामेण्ट उसके लिये किन्ही दिनो उसकी पसन्द की पुस्तक हो सकती है, लेकिन सभी या अधिकाश दिनो के लिये नहीं। वह आराम के घण्टो मे मछली पकड़ने जाना ज्यादा पसन्द करेगा। इसाई सन्त भी यद्यपि मछुआरे थे, किन्तु वे समुद्री मछुआरो की गम्भीर जाति के थे और उन्होने धरती की नदियो मे कभी छोटी मछलियाँ पकडने के लिए बसी नही लगाई थी। मनुष्यो में एक विचित्र इच्छा होती है कि वे किसी खास बात के सम्बन्ध मे अच्छे हुए बिना अच्छे बनें, क्योकि, शायद वे अस्पष्ट रूप मे सोचते है कि अन्ततः यह उनके लिए अच्छा होगा।...हर जगह 'अच्छे मनुष्य' पीछे हट रहे है, और दुनिया आगे जाकर फिर भोलेपन पर भरोसा करने लगी है। बेहतर हो कि आगे जो कुछ भी हो, उसकी ओर बढें। ईसाइयत केवल आशा करती है। उसने अपना साज पेड पर टाँग दिया है और वह अपरिचित देश में गीत नही गा सकती। उसने एक उदास सपना देखा है और अभी आनन्द के साथ सुबह का स्वागत नही करती।"[२]

किन्तु यह धार्मिक और नैतिक विद्रोह नीत्शे के व्रात्यवाद से इस अर्थ में बिल्कुल भिन्न है कि यह मिलनसार आडम्बरहीन और श्रद्धालु है।

थोरो के नैतिक व्यक्तिवाद के बावजूद, उनमे समग्र जीवन की एकता की एक भावना, एक प्रकृति-रहस्यवाद, जीवन की सार्वत्रिक धड़कन के साथ संग

---

१. कार्ल बोड द्वारा सम्पादित, हेनरी डेविड थोरो, 'कलेक्टेड पोएम्स' मे माइ ऐम ए पार्सेल ऑफ वेन स्ट्रायविग्ज टाइड' (शिकागो, १९४३), पृष्ठ ८१।

२. हेनरी डेविड थोरो, 'ए वीक ऑन दी कॉण्कॉर्ड ऐण्ड मेरीमैक रिवर्स' मे 'सनडे'।

लेने की चेतना विकसित हुई। 'मै उस अनन्त कुछ को देखता, सूँघता, स्वाद लेता, सुनता और अनुभव करता हूँ, जिसके साथ हम सम्बद्ध हैं।' आशिक रूप मे वौद्ध दर्शन और भगवद्गीता पढ़ने के फलस्वरूप और आशिक रूप में जगल मे अपने जीवन के वारे में लिखने की आदत के फलस्वरूप, वे केवल समाज से निष्कासित एक अकेले व्यक्ति ही नही रहे। वे एक सच्चे ब्राह्मण वन गये और उन्होने अनन्त जीवन के साथ सबसे कम मुखर किन्तु सवसे अधिक व्यापक समागम मे आनन्द पाया। अगर हम उनके 'जर्नल' (डायरी) के आधार पर फैसला करें, तो वे ऐसे व्यक्ति वन गये जिसे पूर्व मे 'वन-निवन्ध' लिखने वाला 'वन्य-यति' कहा जाता है।

"मै प्रकृति मे एक विचित्र स्वतन्त्रता के साथ आता-जाता हूँ। क्या मै धरती के साथ मौन वार्त्तालाप न करूँ? क्या मैं स्वय आशिक रूप में पत्तियाँ और वानस्पतिक उपज नही हूँ?"[१]

प्रकृति में यह तन्मयता, प्रकृति की व्यवस्था की स्पिनोज़ावादी पूजा नही थी, न प्रकृति के प्राणियो और प्रक्रियायो के निरीक्षण का प्रेम था, वरन् उस जीवन के अनन्तरूप की एक भावना थी, जिसमें मनुष्य भाग लेता है। थोरो उसी प्रकार अनायास अपने को प्रकृति में विलय कर सकते थे, जैसे ह्विटमैन ब्रुकलिन में।

समुद्र पर

मध्य-शताब्दी के विद्रोहियो में सर्वाधिक विद्रोही प्रकृति, हरमॅन मेल्विले (१८१९-९१) भौगोलिक और दार्शनिक दोनो ही दृष्टियो से न्यू-इगलैण्ड के परात्परवादियो के सीमान्त क्षेत्र से आये थे। उन्होने अपने प्रारम्भिक और अन्तिम वर्ष न्यूयार्क नगर में विताये, वे हडसन नदी की घाटी से अल्वानी तक परिचित थे, और कुछ समय तक पश्चिमी मॅसाचुसेट्स में अपने कृषि-फार्म में रहे। सत्रह वर्ष की आयु में उन्होने 'पिस्तौल और गोली के स्थान पर' समुद्र को अपनाया। 'अधेड़ आयु और वाद के जीवन की कटुता की वात न करो, एक लडका भी उस सव का अनुभव कर सकता है। . अपने पिता की मृत्यु के पहले मैंने कभी जीविका के लिए काम करने की वात नही सोची थी और नहीं जाना था कि दुनिया मे कठोर हृदय भी होते हैं।.....अपने समय के पूर्व ही मैंने वहुत

---

१. हेनरी डेविड थोरो, 'वाल्डेन'।

और कटुता के साथ सोचना सीख लिया था।"[१] समुद्री जीवन उनके लिए 'पिस्तौल और गोली' की अपेक्षा कार्य का स्थानापन्न अधिक था। उनकी रोमानियत भी इसी प्रकार नित्यप्रति के काम से भागकर, मन का एकान्त भटकना था। कागज के एक कारखाने 'लड़कियों का नरक' का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा—"खाली दिखते हुए पटलों पर खाली दिखीत हुई लडकियाँ, अपने खाली हाथों में खाली सफेद, मुडे कागज लिए, खाली कागज को खाली ढंग से मोडती बैठी थी।"[२] तथाकथित सभ्य मनुष्यों और सम्बन्धों में संवेदनशीलता के अभाव को वे कभी सहन नही कर सके और न कभी अपने व्यावहारिक पड़ोसियों के व्यावहारिक आदर्शों को स्वीकार कर सके। जिन सिद्धान्तों को वे समझ सकते थे, वे परात्परवादी निरपेक्षताएँ थी, अपने आप में सम्पूर्ण, लेकिन जिनकी कोई उपयोगिता नहीं थी। शारीरिक साहसिकता को वे समझ पाते थे, और प्राकृतिक शक्तियों के खेल में उनको मजा मिलता था, किन्तु परिकल्पना और नैतिकता दोनो का ही अदृश्य संसार उन्हें आतंकित कर देता था। "यद्यपि अपने बहुतेरे दृश्यमान् पक्षों में, संसार का निर्माण प्रेम में हुआ प्रतीत होता है, किन्तु अदृश्य क्षेत्रों का निर्माण भय मे हुआ।"[३] अतः परात्परवादी भावना से पूर्णत. ओत-प्रोत होने के कारण, मेल्विले पर निरपेक्षों का संसार छाया हुआ था। जोना की भाँति उनका मन होता था कि ईश्वर से भागे, लेकिन मॉबी डिक के कप्तान अहाब की भाँति वे दृढ़ थे कि अवज्ञा से उसका सामना करेंगे। "अधिकांश मनुष्य ईश्वर से डरते हैं और मूलतः उसे नापसन्द करते हैं, इस कारण कि उसके हृदय पर उन्हें पूरा विश्वास नहीं है और वे उसकी कल्पना घड़ी की तरह केवल दिमाग़ के रूप में करते हैं।"[४] मेल्विले का मूल बौद्धिक दृष्टिकोण यह था कि ईश्वर की ओर 'दिमाग़' के द्वारा नही, 'दिल' के माध्यम से पहुँचा जाये। उनकी कल्पना थी कि यद्यपि मनुष्य और ईश्वर दोनो ही अपने लिये और एक-दूसरे के लिए अनन्त रहस्य हैं, फिर भी वे एक दु खान्तिका में

---

१. रेमॉण्ड वीवर 'हरमॅन मेल्विले मैरिनर ऐण्ड मिस्टिक' (न्यूयार्क, १९२१) पृष्ठ ७५।

२. एफ० ओ० मैथीसेन, 'अमेरिकन रेनासाँ, आर्ट ऐण्ड एक्सप्रेशन इन दी एज ऑफ एमर्सन ऐण्ड ह्विटमैन' में उद्धृत, 'दी टारटारस आफ मेड्स' (लंदन और न्यूयार्क, १९४१), पृष्ठ ४०१।

३. रेमॉण्ड वीवर की पुस्तक, पृष्ठ २९।

४. रेमॉण्ड वीवर की पुस्तक में उद्धृत. हॉथॉर्न के नाम एक पत्र से. पृष्ठ ३२२।

एक साथ प्रवेश करते हैं, जिसमें वे दोनो अनुभव और कार्य कर सकते हैं। 'मन की दु खान्तिका' जैसा श्री सेजविक ने इस विषय को उपयुक्त ही कहा है, प्रोमेथियस, जॉब और जोना की दु खान्तिकाओ का मिश्रण है। यह डर कि ईश्वर कही सचमुच भयानक न हो, केवल 'बुरा एक-विषयी पागलपन' नही है, जैसा कि अहाब की घृणा और पागलपन विवेकहीन पाठक को प्रतीत होते हैं। यह असीम में साहसपूर्ण दार्शनिक प्रवेश के परिणामो का निडर होकर सामना करना है।

परात्परवादी सिद्धान्तो को 'सभ्य' प्रतिमानो से मिलाने का कोई भी प्रयास मेल्विले को शैतानियत प्रतीत होता था। एमर्सन जैसे विचारको के प्रति उनके मन मे केवल तिरस्कार था। उन्होने कहा कि मुआवजो और 'पारस्परिकताओ' मे विश्वास करने वालो के 'माथे फूटे हुये हैं'। किन्तु ऐसे लोगो के प्रति उनके मन में अगर तिरस्कार नही, तो केवल दया थी, जो इसके विपरीत परात्परवादियो की पूर्णतः उपेक्षा करते थे और बडी आसानी से, नियतिवादी ढँग से यह कहने को तैयार हो जाते थे कि 'पापी, जीवन की छोटी सी अवधि पाप करते काट दे।'[1] वे ईसा के इस सुझाव को पूरी गम्भीरता से लेते थे कि 'नया जन्म' लेना एक मात्र उपाय है, किन्तु उनके अनुसार 'इस' जन्म मे 'नये' जन्म के सिद्धान्तो को समझने का आधारभूत महत्व है और उनकी मुख्य परात्परवादी अन्तर्दृष्टि सचमुच यह समझने में थी कि निरपेक्ष और सापेक्ष प्रतिमान एक-दूसरे के लिए आवश्यक हैं, किसी एक को अपने-आप मे नही समझा जा सकता।

'ह्वाइट जैकेट' मे वे मनुष्य जाति को, गुप्त आदेशो के अनुसार चल रहे 'एक तेज चलने वाले, कभी न डूबने वाले जहाज, जिसका शिल्पी ईश्वर था' पर चित्रित करते हैं। इस पुस्तक की अन्तिम पक्तियो की व्याख्या आस्था की स्वीकृति के रूप मे भी की जा सकती है, निराशा की स्वीकृति के रूप में भी।

"हम निचली मजिल की अन्ध-विश्वासी गप्पो पर कान न दें, कि हम किधर जा रहे है, क्योकि अभी तक, जहाज पर हममें से कोई भी इसे नही जानता—स्वय कप्तान भी नही। निश्चय ही पादरी नही। हमारे प्रोफेसर के वैज्ञानिक अनुमान भी व्यर्थ है। ..और तहखानो मे रहने वाले सदा-मुहर्रमी लोगो पर विश्वास मत करो, तो तिरस्कार भरी हँसी के साथ तुमसे कहेंगे कि हमारा विश्व-जहाज किसी भी अन्तिम बन्दरगाह की ओर जाने वाला नही है।...कारण कि यह विश्व-जहाज हमारा अन्तिम निवास स्थान कैसे प्रमाणित हो सकता है,

---

१. हरमॅन मेल्विले, 'क्लारेल' खण्ड दो, पृष्ठ २५३।

जबकि गोद के बच्चो के रूप मे पहली बार इस पर चढने पर इसके जोर से हिलने-डुलने से—जिसका बाद की जिन्दगी मे पता नही चलता—हममे से हर एक को समुद्र-रोग हो जाता है ? क्या इससे यह भी पता नही चलता कि जिस वायु में हम यहाँ साँस लेते हैं, यह भी अनुकूल नही है और केवल धीरे-धीरे आदत पड जाने से सहनीय बन जाती है और यह कि कोई श्रेष्ठ शान्त बन्दरगाह अभी चाहे जितनी दूर हो, हम सब के भाग्य में अवश्य होगा ?

'ओ जहाज के साथियो और ससार के साथियो, चारो ओर हम, जो लोग हैं, बहुतेरी बुराइयाँ सहते हैं।...व्यर्थ हम नीचे अफसरो के बारे में कप्तान से अपील करते हैं। व्यर्थ ही—अपने विश्व-जहाज पर चढे हुए—अनिश्चित नौसेना कमिश्नरो से अपील करते हैं, जो हमारी दृष्टि से परे, इतनी दूर ऊपर हैं। फिर भी, अपनी सबसे बड़ी बुराइयाँ हम स्वयं अन्धे होकर अपने पर लादते है। हमारे अफसर चाहे भी तो उन्हे कम नही कर सकते। अन्तिम बुराइयो से कोई व्यक्ति किसी दूसरे को नही बचा सकता। उसमे हर व्यक्ति को स्वय ही अपना उद्धारक बनना होगा। शेष के लिए हम विद्रोह न करें...हम कभी भी यह न भूलें कि,

"चाहे जो हमें पीड़ित करे, चाहे जो कुछ हमे घेरे,

"जीवन एक यात्रा है, जिसका अन्त घर है।"[1]

उनकी लम्बी कविता 'क्लारेल' इसी प्रकार अस्पष्ट है। यह 'पवित्र भूमि' और उसकी यात्रा करने वालो पर एक टीका है। ईसा की भाँति, क्लारेल यरुशलम के लिए रोता है, घृणा से अधिक दया मे, किन्तु ईसा की भाँति वह विभिन्न प्रकार के तीर्थयात्रियो और उनके आदर्शों में एक निजी रुचि भी लेता है। तीन पात्रो का चित्रण विशेषत. बडी सहानुभूति से किया गया है—क्लारेल (धर्मशास्त्र का एक विद्यार्थी), वाइन (एक सन्यासी)[2] और रोल्फ, जो थोरो के प्रकार का परात्परवादी है। मेल्विले के अपने दिमाग के तीन प्रमुख सूत्रो के प्रतिनिधि ये तीन अमरीकी विभिन्न प्रकार के लातिनी, यूनानी, यहूदी और अरब लोगो के सामने आते हैं और अन्तत. सभ्यता, विशेषत अमरीकी सभ्यता के दो योरोपीय आलोचको के सशयवाद को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। एक अमरीकी (उगार) अपने भाग्यवाद की व्याख्या के साथ अमरीका सम्बन्धी निम्नलिखित कटु विचारो को भी जोड देता है—

---

१. हरमॅन मेल्विले, 'ह्वाइट जैकेट' (न्यूयार्क, १८५०), पृष्ठ ४६३-४६५।

२. हेनरी वेल्स के अनुसार वाइन के रूप में हॉथॉर्न का चित्रण है।

"ऐ, लोकतन्त्र,

●

"एक अश्रद्धालु युग की प्रमुख वेश्या,
"और भी गन्दी दुष्टता से उत्पन्न,
"अच्छा है कि उस पर प्रतिबन्ध लगें,
"नही तो विश्व के विशाल भवन को क्षय कर देगी.
"कम से कम एशिया उसे रोकेगा,
"पूर्व की वह पुरानी निष्क्रियता।

●

"किन्तु नई दुनिया में चीज़े जल्दी करती है,
"न केवल मनुष्य 'राज्य' तेज़ी से चलता है
"गर्भवान अण्डे और साँपियाँ तेज़ी से जन्म देती हैं,
"उनीदें दहनशीलो को जिनका विस्फोट निश्चित है—वह आएगा, वह आएगा।
"एक जनोत्तेजक बहुत परेशान कर सकता है.
"ऐसे लाख हो तो कैसा होगा ?
"और प्रदत्त बालिग़ मताधिकार
"छा जाने वाली पशु-शक्ति से
"उनका समर्थन करने को ? क्या बाँधेगा
"तीव्र प्रतिद्वन्द्वी समुदायो के समुद्रो को
"ईसाइयत विहीन ? हां, लेकिन वह आयेगा।
"क्या आयेगा ? तुम्हारा वर्षो (का) युद्ध।"

●

"गन्दी सामान्यता का मृत स्तर
"एक आंग्ल-सैक्सन चीन, देखो,
"शायद तुम्हारे विशाल मैदानो पर जाति को लज्जित करे
"लोकतन्त्र के अन्धे युगो में।"

●

"आशा की प्रगति को रुकते अनुभव करना,
"और अन्तिम विरासत को नष्ट होते,
"और पुकारना-सीमाओ के देवता के मन्दिर निर्मित करो !

"कोलम्बस ने धरती की रोमानियत समाप्त कर दी .

"अब मनुष्य जाति के लिए कोई नयी दुनिया शेष नही ।"[1]

ये निराशावादी पंक्तियाँ, कम से कम मेल्विले के लिए असाधारण रूप मे सशक्त हैं और उनके अपने मतो को परिलक्षित करती प्रतीत होती हैं। किन्तु कविता का अन्त इस स्वर पर नहीं होता। तीनो अमरीकी, इन आरोपो का खण्ड तो नही कर पाते, किन्तु अपनी नियति मे सामान्य रूप से आस्था व्यक्त करते हैं और अपने यूरोपीय आलोचको की 'वैज्ञानिक' आस्था और प्रकृतिवादी विकासवाद का खण्डन करते है।

आध्यात्मिक समाजवाद और स्वतःस्फूर्ति

विद्रोहियो मे, बडे हेनरी जेम्स (प्रसिद्ध लेखक के पिता) सर्वाधिक खोजी बुद्धि के व्यक्ति थे, किन्तु उनके विद्रोह का रूप इतना विरोधाभासपूर्ण था कि एक ओर तो उन्हे 'स्वतः स्फूर्ति' की निरर्थक मुद्राओ का सहारा लेना पड़ा और दूसरी ओर मनुष्य-जाति के देवत्व मे एक रहस्यवादी आस्था का। वे उस समूह के सर्वाधिक प्रमुख व्यक्तियो में से थे, जिन्होने असाधारण रीतियो से वैयक्तिकता के विकास की चेष्टा की। किन्तु उनका विश्वास था कि उनकी विशिष्ट स्वत स्फूर्ति कोई वैयक्तिक गुण नही थी, वरन् एक आध्यात्मिक प्रसाद था, जिसमे सभी मनुष्य सहगामी हैं। उनका प्रयास था कि आध्यात्मिकता की धर्म-निरपेक्ष धारणा के सन्दर्भ मे व्यक्तिवाद और समूहवाद मे मेल बिठायें। किन्तु व्यवहार में वे कुछ कटुतारहित विचारोत्तेजना उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ नही कर पाये। अपने तीखे व्यंग्य को उन्होने अत्यधिक सहृदय श्रद्धा से ढँका और उसे एक बडी ही प्रिय, सरल, शैली में व्यक्त किया। वे एक प्रतिभाशाली लेखक और विप्रतिषेधवाद के इतिहास में निश्चय ही सर्वाधिक साहसपूर्ण और मौलिक धर्मशास्त्रियो मे से एक थे।

विप्रतिषेधवाद को समझाने की आवश्यकता है। यह कानून और नैतिक व्यवस्था के विरुद्ध नैतिक विद्रोह है। यह आत्मा के जीवन को आत्म-निर्भर, आत्म-केन्द्रित नैतिकता के प्रतिपक्षी के रूप में देखता है। हेनरी जेम्स का विप्रतिषेधवाद इस कारण विशेषतः महत्वपूर्ण है कि उन्होने इसे एक धर्म-

---

१ मेल्विले, क्लारेल, खण्ड दो, पृष्ठ २४०, २४९-२५०।

निरपेक्ष रूप दिया। उन्होने राजनीतिक लोकतन्त्र को मानव-प्रकृति में, और ऐसे समाज की ओर प्रगति मे आस्था की अभिव्यक्ति माना, जिसमे नियम, शासन और सभी निजी भेदो का लुप्त हो जाना निश्चित है। 'हमारी वर्तमान नैतिकता की अस्वच्छता' के आर्थिक पक्षो के विरुद्ध ईश्वर अभिमुख आध्यात्मिक समाज को प्रस्तुत करके, जिसमें 'प्रोप्रियम' (स्वत्व के लिए स्वीडेनवर्ग का शब्द) के साथ सम्पत्ति का लोप हो जाता है, वे विप्रतिषेधवाद को आर्थिक क्षेत्र में ले गये।[1]

अमरीकी प्रेस्बिटीरियन लोगो की आत्म-तुष्टि और संकीर्ण झगडो से चिढकर वे इगलिस्तान गये, जहाँ उनके मित्र जॉसेफ हेनरी ने उनका परिचय महान् भौतिकशास्त्री माइकेल फैरेडे से कराया। बौद्धिक और वैयक्तिक दोनो दृष्टियो से फैरेडे जेम्स के निकट थे और उन्होने जेम्स का परिचय एक अत्यधिक असाधारण प्रकार के काल्विनवाद से कराया। फैरेडे ग्लासवादी चर्च के सदस्य या सैण्डेमैन के अनुयायियो में से थे। यह अलगाववादियो का एक छोटा-सा स्कॉटी पन्थ था, जिसका विश्वास था कि ईश्वर का साम्राज्य केवल आध्यात्मिक है। धर्मसन्देशवादियो के प्रचलित उत्साह का प्रतिकार करने के लिए वे आस्था द्वारा औचित्य को बड़े ही सरल सन्दर्भो में प्रस्तुत करने मे सफल हुए थे। अपने ससुर जॉन ग्लास का अनुसरण करते हुए, रॉबर्ट सैण्डेमैन ने कहा था कि प्रमाण की दृष्टि में, किसी स्थापना के सत्य मे सामान्य विश्वास ही आस्था है, और यह कि ऐसा विश्वास या तो स्वतः स्फूर्त होता है, या असम्भव। उन्होने कहा था कि धर्म का सार, विश्वास करने की इच्छा मे नही, वरन् उन श्रद्धालुओ के बीच भाई-चारे के सस्कारो में होता है, जिन्हे ईश्वर ने अपनी प्रभु इच्छा से प्रसाद प्रदान किया हो। उनके अनुयायियो ने धर्म-सामुदायिक भाई-चारे का एक सरल रूप विकसित किया—बहुधा होने वाले समागम, सम्पत्तियो मे सहभाग, सवैतनिक पादरियो और लोकपरक रुचियो का अभाव। "यहाँ किसी व्यक्ति के गर्व को तुष्ट नही किया जाता। किसी के पास यह मानने का कोई आधार नही है कि ईश्वर की उस पर दूसरो से अधिक कृपा है।"[2] इस अति-लोकतान्त्रिक, अति सरल-श्रद्धा को जेम्स ने सम्पूर्ण हृदय से स्वीकार कर लिया। इसके बाद

---

१. हेनरी जेम्स, 'लेक्चर्स एन्ड मिसलेनीज़' (न्यूयार्क १८५२), पृष्ठ १५, ३७, ४८। पहला भाषण, 'डेमाक्रेसी एण्ड इट्स इश्यूज; दूसरा भाषण, 'प्राप्टी ऐज ए सिम्बल।'

२. राबर्ड सैण्डेमैन, 'लेटर्स ऑन थेरान एण्ड ऐस्पैसियो', आस्टिन वारेन कृत 'दी एल्डर हेनरी जेम्स' (न्यूयार्क, १६३४), में उद्धृत पृष्ठ ३६।

से, वे सैन्डेमैन की भाँति सारे पादरी-धर्म को 'पाखण्ड' और 'अहकारपूर्ण नैतिकतावाद' मानने लगे। उन्होने सैन्डेमैन के 'लेटर्स' का एक अमरीकी सस्करण १८३८ मे प्रकाशित किया और १८४० मे 'रिमार्क्स ऑन दी एपॉस्टॉलिक गॉस्पेल' (धर्म-पैगम्बरो के उपदेश पर टिप्पणियाँ) शीर्षक एक सक्षिप्त निवन्ध लिखा।[1] उनके द्वारा अपनी आध्यात्मिक दशा और उससे उत्पन्न संकटावस्था के निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने नये विश्वास को बडी गम्भीरता से लेते थे।

"अपने जन्म के समय से ही, न केवल मैंने यह नही जाना कि किसी सच्ची आवश्यकता, अपनी प्रकृति की किसी आवश्यकता की पूर्त्ति न कर पाना कैसा होता है, वरन् अपनी मनमर्ज़ी के अनुसार मै इतना अपव्यय भी कर सकता था, जो किसी सद्गुणी परिवार के निर्वाह की आवश्यकता के बराबर हो। फिर भी, मेरे निकट ही हज़ारो व्यक्तियो ने, जो हर दृष्टि से मेरे समकक्ष हैं और कुछ दृष्टियो से मुझसे ऊँचे हैं, कभी अपने सारे जीवन में अच्छा भोजन नही पाया, अच्छी नीद नही पायी, अच्छा वस्त्र नही पाया, सिवाय अपनी निजी मेहनत के वल पर या किसी माता-पिता या सन्तान की कीमत पर और विना कठोर सामाजिक दण्ड के लज्जाजनक रूप में भाजन वने, वे कभी एक बार भी अपनी मनमर्ज़ी को छूट न दे सके। निश्चय ही यह विल्कुल न्यायोचित है कि मुझे भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधा हो और अपने निजी अज्ञान से निकाल कर मुझे शिक्षित किया जाय। किन्तु ईश्वरीय न्याय या औचित्य की यह घोर अवज्ञा है कि जिसे समाज कहा जाता है, उसके द्वारा मुझे आजीवन ऐश्वर्य और अपनी मर्ज़ी करने की सुरक्षा प्राप्त हो, जब कि इतने सारे अन्य स्त्री-पुरुष जो मुझसे ऊँचे हैं, सब दिन भोजन, वस्त्र और निवास का कष्ट उठाते रहे और अन्तत: अपने शैशव के से ही अज्ञान और शक्तिहीनता में मर जाये, यद्यपि, दुर्भाग्यवश वैसे भोलेपन में नही।

"मैं लम्बे अरसे से अनुभव कर रहा था कि उल्लघित और अपमानित ईश्वरीय न्याय से उत्पन्न यह गम्भीर आध्यात्मिक विनाश, बडे समय से आत्मा के अन्दर दवा हुआ, आहत अन्तरात्मा की ज्वालामुखी जैसी ध्वनियो और आशङ्काओ मे व्यक्त होता था, किन्तु निकलने का कोई स्पष्ट मार्ग मुझे नही दिखता था। अर्थात् असीम कुशाग्रता के साथ, मैंने यह समझ लिया कि ईश्वरीय विधान का हाथ अगर मेरे गर्व और अहकार की हर गुप्त आकाक्षा को निरन्तर अपमानित और नष्ट न कर देता, तो मै भी अत्यधिक अन्यायपूर्ण वर्त्तमान वस्तुस्थिति को स्वीकार कर लेने वाले अन्य किसी भी मनुष्य की तरह होता।

१. वारेन की पुस्तक, पृष्ठ २३६।

किसी वाह्य अभाव का मुझे ज्ञान न था। अधिकतम सामाजिक प्रतिष्ठा मुझे प्राप्त थी। मै प्रख्यात व्यक्तियों के वार्त्तालाप और मित्रता का आनन्द उठाता था। वस्तुत: मै अनौचित्यपूर्ण बाहुल्य के समुद्र पर उतराता था। और सारे समय ईश्वरीय न्याय के प्रति मै अगर हृदय से विरुद्ध नही, तो इतना उदासीन था कि रह-रहकर मेरी प्रमादपूर्ण प्रवृत्तियो और गन्दी महत्वाकाक्षाओ के समक्ष ईश्वरीय न्याय अगर आध्यात्मिक आतङ्क न उत्पन्न करता, तो मैं अपने सारे दिन आत्म तुष्टि के उस कूडे में ही गुज़ार देता और मुझे कभी यह स्वप्न भी न आता कि मेरे साथी मनुष्यो की वाह्य आवश्यकताएँ—प्रकृति और समाज सम्बन्धी उनकी आवश्यकताएँ—वास्तव मे केवल मेरी अपनी अधिक सच्ची आवश्यकता के, ईश्वर के सन्दर्भ में मेरी अपनी अधिक आन्तरिक कगाली के चिह्न और फल हैं। अत मेरे प्रसन्नता भरे आश्चर्य और सुखद राहत की कल्पना करें जब स्वस्थ धार्मिक नग्नता की इस स्थिति मे, जब ईश्वरीय अप्रसन्नता से मेरी रक्षा करने के लिए, पादरियत के आवरण की एक नन्ही सी पत्ती भी मेरे पास नही थी, मैंने दिव्य-ज्ञान की आध्यात्मिक वस्तु की पहली झलक देखी, या ईसाई सत्य की गम्भीर दार्शनिक अर्थमत्ता को पहचाना। इस सत्य ने तत्काल मुझे यह साहस प्रदान किया कि मै बिना हिचके, चर्च का परित्याग करके, और अपने धार्मिक चरित्र की चिन्ता शैतानो के लिए छोड कर स्वय अपनी पुनर्जीवित बौद्धिक प्रवृत्तियो का अनुसरण करूँ, केवल जिनका ही ऐसा ध्यान प्रेरणाप्रद है। आध्यात्मिक ईसाइयत का अर्थ है, ईश्वर के नाम को पूर्णत. धर्म-निरपेक्ष बनाना, या आगे के लिए उसे केवल मनुष्य की सामान्य या प्राकृतिक आवश्यकता से सम्बद्ध करना—वह आवश्यकता जिसमें सभी मनुष्य पूरी तरह एक है और फलस्वरूप मनुष्य की निजी या वैयक्तिक पूर्णता से उसका पूरी तरह सम्बन्ध-विच्छेद करना, जिसमे हर मनुष्य चेतन रूप मे अपने पडोमी से अलग है। ताकि, सिवाय अपने सामाजिक या उद्धारित प्राकृतिक रूप मे, मै कभी भी ईश्वरीय कृपा की आकाक्षा न करूँ और ईश्वर की सहनशीलता का पात्र भी कठिनाई से ही बनूँ—अर्थात् उस रूप में, जिसमे सभी जातियो और धर्मो के मनुष्यो के विशाल समुदाय के साथ नैतिक दृष्टि से एक रूप रहूँ, किसी अन्य मनुष्य के प्रति विरोधी हितो की चेतना न ग्रहण करूँ, बल्कि, इसके विपरीत ईश्वर मे हर ऐसी निजी आशा को अस्वीकार करूँ, जो पूर्णत उसके द्वारा मानव-प्रकृति के उद्धार मे उत्पन्न न हो, या शुद्ध और सारे मानवजाति के प्रति ईश्वर के पक्षपातहीन प्रेम पर आधारित न हो।"[1]

१. विलियम जेम्स द्वारा सम्पादित, 'दी लिटरेरी रिमेन्स ऑफ दी लेट हेनरी जेम्स' (बोस्टन, १८८४), पृष्ठ ८६-६१, ६२, ६३।

हेनरी जेम्स को यह 'दिव्यज्ञान की आध्यात्मिक वस्तु की झलक' १८४१ मे स्वीडेनबर्ग की रचनाएँ पढकर प्राप्त हुईं। सैण्डेमैन के अनुयायियो ने उनमे 'स्वत्व' को नष्ट कर दिया था और उन्हे पूर्णरूप से एक विप्रतिषेधवादी बना दिया था। स्वीडेनबर्ग की रचनाओ (विशेषत: गार्थ विलकिन्सन द्वारा उनकी उदार व्याख्या) ने उन्हे 'दैवी प्राकृतिक मानवता' की एक विध्यात्मक धारणा प्रदान की।

जेम्स के लोकतन्त्र के दर्शन की सबसे प्रभावशाली और नाटकीय अभिव्यक्ति गृह-युद्ध आरम्भ होने के बाद, न्यूपोर्ट, रोड आइलैण्ड मे उनका चार जुलाई (अमरीकी स्वतन्त्रता दिवस) का भाषण है। इसमे वे अमरीका को वर्ग समाज के विरुद्ध यूरोप के सघर्षों के उत्तराधिकारी के रूप मे, प्रस्तुत करते है और इस कारण एक ऐसे राष्ट्र के रूप में, जिसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे अपना विश्वास सुरक्षित रखकर यात्रा 'आरम्भ' करने की विशेष सुविधा है। वे एक ऐसे सामूहिक लोकतन्त्र की उपलब्धि को राष्ट्र का सर्वोच्च लक्ष्य मानते है, जिसमे सभी मनुष्य, मनुष्य जाति के एक आध्यात्मिक सघ के सदस्य के रूप मे पवित्र हो। यह लोकतान्त्रिक आदर्श निरूपित करने के बाद वे पूँछते हैं—

"अब, हमारे राज्य की सन्देह-रहित रूप मे यह भावना होने पर उसकी भौतिक सरचना मे, हमारे शाब्दिक अर्थ में मातृक उत्तराधिकारी मे क्या दोष था, जिसने इस औचित्यपूर्ण पैतृक भावना की अवज्ञा की और उसकी समृद्ध सम्भावना को निष्फल बनाया, इस तरह से कि हम उसके बच्चो को, सार्विक लक्ष्यो के लिए कटिबद्ध मनुष्यो की आशापूर्ण और प्रेममय बिरादरी से, लोभी, ऐश्वर्यपूर्ण पशुओ का झुण्ड बना दिया, मर्यादाहीन राजनीतिक साहसिको और धोखेबाजो का समूह बना दिया, जिसकी भ्रष्टता की दुर्गन्ध सागर के नीले विस्तार पर छाई है, यूरोप के अन्दर तक फैली है और हर सवर्परत, उगती हुई आशा को निराशा से रुग्ण कर देती है।"[1]

उनका उत्तर था कि गुलामी-प्रथा और 'धनलोभ' की दो बुराइयाँ, जो अमरीकी राजनीति और सभ्यता की जड मे रही हैं, उन्हे राष्ट्र के आध्यात्मिक जीवन से निकालना आवश्यक है, अन्यथा अमरीकी 'पृथ्वी पर सर्वाधिक तिरस्करणीय लोग' बन जायेंगे। 'किसी राष्ट्र को जन्म के समय ऐसी सुन्दरतम

---

१. हेनरी जेम्स 'दी सोशल सिगनिफिकैन्स ऑफ आवर इन्स्टीट्यूशन्स, ऐन ओरेशन डेलिवर्ड. ऐट न्यू पोर्ट, आर० आई० जुलाई, फोर्थ, १८६१' (बोस्टन १८६१), पृष्ठ ३१। जोसेफ ब्लॉ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलॉसफिक एड्रेसेज १७००-१६००' (न्यूयार्क, १६४६) मे यह भाषण पूरा का पूरा उद्धृत है, पृष्ठ २३४-२५६।

आध्यात्मिक विरासत नही मिली।' किन्तु कहा जाएगा कि उन्होने 'उसे निर्लज्ज कामना और सफलीभूत छल से बने गन्दे से गन्दे भौतिक मिश्रण के लिए बेच दिया।'[1]

फौरिएर का अनुसरण करते हुए, हेनरी जेम्स ने 'सभ्यता' शब्द का प्रयोग तिरस्कार व्यक्त करते हुए 'नैतिकता मे ढले हुए' मनुष्य के लिए किया और परात्परवादियो मे अपने सर्वाधिक सुसंस्कृत निकट मित्रो को भी नही छोडा। उन्होने विशेषरूप से 'उन बहुसंख्यक व्यक्तियो' की ओर इशारा किया।

"जो समाज की वर्तमान अति दुर्बल सरचना से सन्तुष्ट होकर रहते और समृद्ध होते हैं—कवि, साहित्यिक निबन्धकार, अध्येता, कलाकार, परात्परवादी आकांक्षी या भाववादी, वैज्ञानिक ··जो सारे ही अन्धे होकर नैतिकता को मानव जीवन का परम नियम समझते है।"[2]

जेम्स एमर्सन के विचारो के तीव्र आलोचक थे, यद्यपि उनके निजी सम्बन्ध अच्छे थे। उनकी दृष्टि में आत्म-निर्भरता का सिद्धान्त गर्व और पाप की पराकाष्ठा था। एकत्ववादियो ने 'चर्च का एक रूप कायम रखा', इस कारण जेम्स ने उनकी हँसी उडाई और वे सभी चर्चों से अधिक नैतिकतावादी थे, इस कारण उनकी भर्त्सना की। उन्होने चर्चो के बाहर 'परात्परवाद', या 'नैतिक सस्कृति' या 'लोकोपकार' के रूप मे भी नैतिकतावाद पर व्यग्य किया और 'आडम्बरपूर्ण आत्मचेतना, और आत्म-सस्कृति वाली न्यू-इगलैण्ड की अन्तरात्मा'[3] को आमतौर पर अपने व्यग्य का लक्ष्य बनाया।

परात्परवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध हेनरी जेम्स के विद्रोह की पूर्णता, को प्रदर्शित करने के लिए उनकी रचनाओ मे से और भी प्रमाण इकट्ठा किये जा सकते हैं। किन्तु इस तथ्य की ओर ध्यान खीचना आवश्यक है कि उनके द्वारा काल्विनवाद का पुन.स्थापन, प्लेटोनी भाववाद के पुनर्जीवन का प्रयास था।

हेनरी जेम्स के विचारो मे निहित भाववाद इन सुबोध, सक्षिप्त पक्तिया मे स्पष्ट हो जाता है—

"मनुष्य के जीवन के तीन क्षेत्र हैं, एक बाहरी या शारीरिक, दूसरा आन्तरिक या मानसिक और तीसरा अन्तरतम का या आध्यात्मिक। इनमे से हर एक अपनी समुचित एकता या सगठन की माँग करता है, पहला 'सवेद्य' सगठन की, दूसरा 'वैज्ञानिक' सगठन की और तीसरा 'दार्शनिक' सगठन की। अब, इनमे से हर एक सगठन या इकाई अपना उपयुक्त प्रकाश मांगती हैं। बोध का प्रकाश

---

१. वही, पृष्ठ ४०।

२. वारेन की पुस्तक, पृष्ठ २०२।

३. वही, पृष्ठ २०३।

सूर्य है। विज्ञान का प्रकाश तर्क-बुद्धि है। दर्शन का प्रकाश दिव्य-ज्ञान है। दिव्य-ज्ञान सारी मनुष्य जाति के लिए, ईश्वर के समक्ष मनुष्य की एकता स्थापित करता है, जिसका एक बपतिस्मा, और सभी का एक ईश्वर और पिता है, जो सबके ऊपर है, सबके द्वारा और सब में है। इस मनुष्य के स्पष्टत सामाजिक होने के कारण, इसमे सभी सदस्यो के साथ हर व्यक्ति की और हर एक के साथ सब की, ऐसी एकता निहित है जो अन्तत' सारी जातीय विषमताओ को इस पृथ्वी पर से समाप्त करेगी या मनुष्यो के बीच उस सारी आधारहीन और बलात् लादी गयी असमानता का अन्त करेगी जो हमारी वर्त्तमान बुराई और अपराध का बीज-स्रोत है।"[1]

उदारवाद की इससे अधिक उग्र आलोचना इस देश में कोई और नही हुई, यद्यपि इससे अधिक यथार्थवादी आलोचनाएँ कई है। शायद हेनरी जेम्स के दर्शन की सबसे तात्कालिक व्यावहारिक उपलब्धि थी, विलियम जेम्स के मन पर पड़ा उसका प्रभाव। इसके बारे मे अधिक हम आगे चलकर कहेगे, किन्तु अपने पिता के 'लिटरेरी रिमेन्स' की विलियम द्वारा लिखित भूमिका से निम्न उद्धरण हेनरी जेम्स की विशिष्टता प्रकट करने के साथ-साथ विलियम के विरोधी दृष्टिकोण का पूर्वानुमान लगाने मे भी सहायक होगा—

"हर परम नीतिज्ञता, बहुत्ववादी होती है। हर परम धर्म एकवादी होता है। इससे श्री जेम्स की धार्मिक अन्तर्दृष्टि की गहराई का पता चलता है कि उन्होने आरम्भ से अन्त तक हमेशा नीतिज्ञता को अपनी तीव्रतम आलोचना का लक्ष्य बनाया और उसे धर्म के समक्ष शत्रु के रूप मे रखा, जिनमे से एक के सच्चे रूप मे जीवित रहने के लिए दूसरे का पूर्ण नाश आवश्यक है। नीतिज्ञता और धर्म का मेल ऊपरी है। उनका विरोध बुनियादी है। केवल दोनो पक्षो के गम्भीरतम विचारक ही यह देख पाते हैं कि एक को जाना पडेगा।"[2]

---

१. हेनरी जेम्स की ऊपर उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ ४३-४५।

२. विलियम जेम्स, 'दी लिटरेरी रिमेन्स ऑफ दी लेट हेनरी जेम्स' (बोस्टन, १८८५), पृष्ठ ११८-११६।

छठा अध्याय

•

विकासवाद और मानवी प्रगति

ब्रह्माण्डीय दर्शन

१८५६ मे, जबकि इग्लिस्तान में 'दी ओरिजिन ऑफ स्पीसीज' (डार्विन की प्रसिद्ध पुस्तक) छप रही थी, मिडिलटन, कॉनेक्टिकट, मे एक लडका उत्कण्ठा से किसी ऐसी आस्था की तलाश कर रहा था, जो 'काल्विनवाद के सर्वाधिक अरुचिकर रूप' का स्थान ले सके, जिसमें वह पला था और जिसे अब वह निश्चित रूप से अस्वीकार करता था। जॉन फिस्क केवल सत्रह वर्ष के थे, लेकिन वे यूनानी साहित्य और इतिहास, तुलनात्मक भाषाशास्त्र और 'भूगर्भशास्त्रीय परिकल्पनाओ' मे डूबे थे। ज्ञान के इन क्षेत्रो में से किसी का भी ईसाई धर्मशास्त्र से मेल नही बैठता था। प्रकाश की आशा में वे उदार काल्विनवादियो की ओर मुड़े, किन्तु वे उनके लिए व्यर्थ से भी बुरे थे। उन्होने बाद मे स्वीकार किया कि 'अन्य किसी वस्तु से अधिक, बुश्नेल की आलकारिक रचनाओ ने, जिनमें भौतिक विज्ञान का पूर्ण अज्ञान था, मेरे विश्वास को हिला दिया।' अपनी तलाश में उन्हे अचानक दो पुस्तके मिली, जिन्होने तत्काल एक ज्वलन्त आस्था भी प्रदान की और एक जीवन-लक्ष्य भी—वान हम्बोल्ट की 'कॉसमॉस' और बकिल की 'हिस्टरी ऑफ सिविलाइजेशन'। पहली पुस्तक उनके लिए सृष्टि का महाकाव्य थी। दूसरी ने उन्हे प्रगति का कारण समझाया। दोनो को मिला देने पर प्रकृति और नैतिकता का एक पूर्ण विज्ञान उपलब्ध हो जाता। लेकिन क्या उन्हे मिलाया जा सकता था ? क्या यह प्रदर्शित किया जा सकता था कि मानवी क्रिया के विज्ञान, प्रकृति के विज्ञानो पर निर्भर हैं ? क्या कोई सार्विक नियम है, जो प्राकृतिक इतिहास और मानव-इतिहास, दोनो का सचालन करता हो ? ऐसा नियम अगर उसका पता चल सके, तो न केवल प्राकृतिक धर्मशास्त्र को पुन उस उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करेगा जहां से वह च्युत हो

गया था, वरन् सभ्यता के उदय के विकासमान् नये विज्ञान को, मानव प्रगति के दर्शन को भी अपने में समेट लेगा। एक सामाजिक भौतिकी! उन्हें इसका पता लगाना होगा। कुछ महीनो के अन्दर ही उन्होने वस्तुनिष्ठावाद को खोज लिया जिसमे विज्ञानो का अपना वर्गीकरण और ऐतिहासिक सोपानो का अपना नियम था, जिससे यह प्रमाणित होता था कि सामाजिक विज्ञानो का भौतिक विज्ञानो पर आधारित होना आवश्यक है। उन्हे यह भी पता लगा कि हर्बर्ट स्पेन्सर अपने सार्विक प्रगति के नियम और एक सर्वव्यापी, सश्लेषी दर्शन के विवरण के द्वारा कॉम्टे की विचार-व्यवस्था मे सुधार करना चाहते थे। फिस्क ने तत्काल 'सिंथेटिक फिलॉसफी' के अक मँगाने शुरू कर दिये।

ब्रह्माण्डीय दर्शन की माँग यूरोप के साथ-साथ अमरीका मे भी व्यापक और गहरी थी, क्योकि यहाँ भी प्राकृतिक विज्ञान की प्रतिष्ठा बढ रही थी और एक सामान्य भय नीतिज्ञो और धर्मशास्त्रियो में फैल गया कि अगर वे प्राकृतिक नियम और प्राकृतिक इतिहास से समझौता नही करते, तो उन्हे या तो कॉण्ट-समर्थक परात्परवादियो की ऊँची और अ-रूढ भूमि ग्रहण करनी होगी, या फिर आगम पद्धतियो के प्रयोग के दावे छोडने होगे और तथ्यो का सहारा लेना होगा। नैतिक विज्ञान की स्वतन्त्रता अधिकाधिक अमान्य ही नही, अवाछनीय भी हो गयी। यह कही ज्यादा अच्छा था कि मानव इतिहास में सृष्टि के प्रतिरूपो को देख सकें, जो स्वय, हम्बोल्ट के शब्दो मे 'निरन्तर नये रूपो में विकसित और व्यक्त' हो रही है। या, जॉन फिस्क के अतिपूर्ण शब्दो में, 'मनुष्य और प्रकृति एक समान ही काल के पुल को पार कर रहे हैं, जिसका आदि और अन्त शाश्वत के पूर्ण अन्धकार मे डूबे हुए हैं।' रोमानी प्रकृतिवाद का यह ब्रह्माण्ड, प्रकृति की वह स्थिर अनन्त व्यवस्था नही थी जिसमे ईश्वरवाद का विश्वास था, वरन् एक चल व्यवस्था थी, पार्थिव, घटनात्मक और प्रगतिशील। ससार स्वय अब एक जैविक गठन के रूप मे प्रकट हुआ, काल में जिसकी गति को देखा जा सकता है, यद्यपि उसका मूल और वस्तु हमेशा अज्ञेय रहेंगे। ऊपर छाये हुए विधाता के हाथ मे होने की अपेक्षा, ऐसा विश्व कम सुरक्षित प्रतीत होता था। किन्तु रूढिवाद मे चित्रित घृणित वस्तु की अपेक्षा, या न्यूटन-समर्थको की केवल घूमने और चक्कर काटने वाली सृष्टि की अपेक्षा, यह विश्व अधिक बोधगम्य, अधिक उत्तेजक और मनुष्य के लिए अधिक उपयुक्त घर प्रतीत होता था। इस प्रकार ईश्वर की मानव-समरूपता को समाप्त करने के नाम पर उन्नीसवी शताब्दी के इन ब्रह्माण्डीय दार्शनिको ने अपने लिए एक ऐसी प्राकृतिक व्यवस्था निर्मित कर ली, जो इनकी अपनी विशिष्ट समाज-व्यवस्था के अनुकूल थी।

"असीम और परम शक्ति, जिसे मानव-समरूपता के सिद्धान्त ने अनन्त रीतियो से तत्वमीमासा के निरूपणो द्वारा परिभाषित और सीमित करना चाहा है, वह शक्ति है जिसे ब्रह्माण्डवाद तत्वमीमासक निरूपणो द्वारा परिभाषित और सीमित नही करता और इस तरह स्वीकार करता है—जहाँ तक मानवी बोली और विचार की आवश्यकताएँ इसकी इजाजत देती हैं—कि वह असीम और परम है। इस प्रकार मानव-समरूपता से ब्रह्माण्डवाद तक प्रगति में धार्मिक दृष्टिकोण आरम्भ से अन्त तक अपरिवर्तित रहता है। इस प्रकार, विज्ञान और धर्म मे जो विरोध दिखाई पडता है, जो भीरु या छिछले दिमाग के लोगो को हमेशा आतंकित करता है और जिसे दूर करने मे वस्तुनिष्ठ दर्शन को अपेक्षतया कम ही सफलता मिली, ब्रह्माण्डीय दर्शन मे पूरी तरह और हमेशा के लिए खतम हो जाता है।"[1]

यहाँ इस ओर ध्यान दे कि फिस्क किस प्रकार देववाद[2] के लिए मानववाद की तुलना में प्रकृतिवाद के लाभो पर जोर देते हैं। उनके लिए और उस काल के अन्य कई गम्भीर रूप में धार्मिक दार्शनिको के लिए, प्राकृतिक ज्ञान की सापेक्षता की खोज आस्था की एक महान् मुक्ति बन गयी, एक असीम, बीजातीत शक्ति का अस्तित्व प्रतिपादित करने का एक नया आधार बन गयी और इससे उन्हे भाववादियो की अपेक्षा 'परम' के स्वयं अपने लक्ष्य तक पहुँचने की एक अधिक वस्तुनिष्ठ विधि प्राप्त हो गयी। फिस्क विद्वान् थे, किन्तु उनमें आविष्कार-बुद्धि नही थी। ब्रह्माण्डीय देववाद के प्रति इस उत्साह के दृष्टिकोण से स्पेन्सर के दर्शन की व्याख्या करने के अतिरिक्त फिस्क ने कुछ विशेष नही किया। और वे यह जान कर रुष्ट और परेशान दोनो ही हुए कि स्वय स्पेन्सर ब्रह्माण्ड के विचार को समाविष्ट करने का महत्व नही समझते थे। स्पेन्सर के लिए वस्तुनिष्ठ विज्ञानो की सश्लिष्टि प्राथमिक लक्ष्य थी। इसके विपरीत फिस्क के लिए, विज्ञान इस कारण रोचक थे कि वे उन्हे 'प्रकृति के महाकाव्य' तक ले जाते थे और प्रकृति इसलिए रोचक थी कि वह उन्हे ईश्वर तक ले जाती थी।

उनका ब्रह्माण्डीय दैववाद फिस्क को वस्तुनिष्ठावाद के प्रति उनके युवा उत्साह से कितनी दूर ले गया, इसका पता उस समय चला जब कॉन्कॉर्ड मे

---

१. जॉन फिस्क, 'आउटलाइन्स ऑफ कॉस्मिक फिलासफी' (लन्दन, १८७४), खण्ड १, पृष्ठ १८४।

२. थीइज्म अथवा ईश्वर के दिव्य-ज्ञान मे विश्वास। इसके विपरीत ईश्वरवाद (डाइज्म) ईश्वर मे विश्वास करता है, किन्तु उसके दिव्य-ज्ञान में नहीं।—अनु०

दर्शन के ग्रीष्म स्कूल मे उन्होने दो महत्वपूर्ण भाषण दिये। १८८४ के भाषण को उन्होने 'मनुष्य की नियति' (दी डेस्टिनी ऑफ मैन) का शीर्षक दिया और १८८५ के भाषण को 'ईश्वर का विचार' (दी आइडिया ऑफ गॉड) का। अपने दूसरे भाषण की भूमिका में फिस्क ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि 'मनुष्य की नियति' को सामान्यत इस रूप में समझा गया कि उसमे उनके 'मत-परिवर्तन' का सकेत मिलता था। अत उन्होने समझाया कि अब इस ओर इशारा करके कि विकास-सिद्धान्तो के फलस्वरूप एक कॉपेर्निकन-विरोधी क्रान्ति हुई थी और उसने मनुष्य को 'सृष्टि मे प्रमुखता के पुराने स्थान पर' पुन. प्रतिष्ठित कर दिया था, उसी तरह जैसे वह दॉते और ऐक्विनॉस के काल मे था। वे केवल अपने 'ब्रह्माण्डीय दर्शन' मे एक और अध्याय जोड रहे थे। उन्होने यह नही बताया कि उनकी व्याख्या कहाँ तक स्पेन्सर के 'अज्ञेय' के सिद्धान्त के अनुकूल थी। 'ऐसे कठिन मसले पर यही सबसे उत्तम है कि आदमी महज अपनी ओर से बोले।'[1] इसके बाद उन्होने इस प्रकार ईश्वर का वर्णन किया—

"वह 'असीम और अनन्त ऊर्जा जिससे सारी वस्तुएँ निकलती है' और जो वही शक्ति है जो 'हमारे अपने अन्दर चेतना के रूप मे उभरती है,' निश्चय ही वह शक्ति है जिसे यहाँ ईश्वर के रूप मे मान्य किया गया है। 'अज्ञेय' शब्द का मैने जानबूझ कर प्रयोग नही किया। इस निबन्ध मे यह शब्द कही नही है। यह केवल ईश्वर के एक पक्ष को व्यक्त करता है, किन्तु इसे हर विचारधारा के छिछले लेखक पकड लेते है, इसका ऐसे प्रयोग होता है जैसे यह पूर्णत ईश्वर का पर्याय हो और इसे अत्यधिक निराशाजनक निरर्थक वार्त्ता का विषय बनाया जाता है, जिसकी बाढ मध्य-युगीन शास्त्रीयता के बाद अब आयी है।

"सम्पूर्ण सृष्टि के हर तन्तु मे जीवन धडक रहा है—वस्तुत जीवन के सामान्य सीमित अर्थ मे नही, वरन् व्यापक अर्थ मे। जीवित और अजीवित का अन्तर, जो कभी पूर्ण समझा जाता था, अब सापेक्ष अन्तर बन गया है और

---

१. जान फिस्क, 'दी आइडिया ऑफ गॉड ऐज ऐफेक्टेड बाइ मॉडर्न नॉलेज' (कैम्ब्रिज, १८८७) भूमिका, पृष्ठ २५। १८७६ मे हक्सले के साथ 'ईश्वर सम्बन्धी एक गम्भीर वार्त्ता' का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, 'हक्सले ने अपने अन्तरतम के कुछ विचार मेरे सामने व्यक्त किये—हम दोनों दयनीय प्राणी, ऐसे विचारो को समेटने की चेष्टा करते हुए, जो मानव मन के लिए बहुत बडे है।'—जॉन स्पेन्सर क्लार्क, 'लाइफ ऐण्ड लेटर्स ऑफ जॉन फिस्क' (बोस्टन और न्यूयार्क, १९१७), पृष्ठ ४१२।

जैविक गठन में व्यक्त जीवन, सार्विक जीवन का केवल एक विशिष्ट रूप माना जाता है।

"पदार्थ को मृत या जड मानने की धारणा वस्तुतः एक ऐसी विचार-व्यवस्था की है जिससे आधुनिक ज्ञान आगे निकल गया है। अगर भौतिकी का अध्ययन कुछ सिखाता है, तो यही कि प्रकृति मे कही भी जड़ता या स्थिरता नही है। सब कुछ ऊर्जा से कम्पित है।

"सृष्टि की हर धडकन मे जो असीम और अनन्त शक्ति व्यक्त होती है, वह और कुछ नही, जीवित ईश्वर है। दृश्य-घटना का अनन्त स्रोत और कुछ नही, वह अनन्त शक्ति है, जो औचित्य का निर्माण करती है। आप उसे खोज कर नही पा सकते। आप उसमें अपनी आस्था रखें और आपके विरुद्ध नरक के द्वार हावी नही होगे, क्योकि अनन्त के विरुद्ध न ज्ञान है, न समझ, न विमर्श।"[1]

फिस्क के श्रोताओ का यह सोचना सम्भव था कि वे अपने पूर्वजो के विश्वास पर वापस लौट गये थे। कारण कि यद्यपि उनके ब्रह्माण्डीय दर्शन की भाषा कुछ बदली हुई थी, किन्तु आत्मा ईसाई थी और उद्देश्य मेल करने का था। कॉन्कॉर्ड मे एकत्रित परात्परवादी भी उनसे झगड नही सकते थे।

चार्ल्स सैण्डर्स पीयर्स की ब्रह्माण्डीय परिकल्पना बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी, क्योकि उन्होने यूरोपीय विचार-व्यवस्थाओ, विशेषत. जर्मन का ध्यानपूर्वक अध्ययन तो किया, किन्तु उनमे अत्यधिक मौलिक और चतुर सशोधन किये, जिनका ऐतिहासिक महत्व निरन्तर बढ़ रहा है, यद्यपि उनकी अपनी पीढी के समय उनकी बातें विभिन्न प्रकार की अज्ञातावस्था में पडी रही। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने शैलिग के प्रभाव मे अपने 'सिनेकिस्टिक अगापास्टिक टाइकिज्म' (नैरन्तर्यवादी, स्नेहपूर्ण सयोगवाद) का निरूपण करना आरम्भ किया।

"मै कॉन्कॉर्ड के पडोस में—यानी कैम्ब्रिज मे—उस समय पैदा हुआ और पला था, जब एमर्सन, हेज और उनके मित्र उन विचारो का प्रचार कर रहे थे जो उन्होने शैलिग से प्राप्त किये थे और शैलिग ने प्लोटिनस, बोएम और पूर्व (एशिया) के वाहियात रहस्यवाद से पीड़ित ईश्वर जाने किन-किन लोगो से प्राप्त किए थे। किन्तु कैम्ब्रिज के वातावरण मे कॉन्कॉर्ड के परात्परवाद के कीटाणुओ का नाश करने वाले बहुतेरे तत्व मौजूद थे और मुझे इसका ज्ञान नही है कि उन कीटाणुओ मे से किसी ने मेरे अन्दर प्रवेश किया हो। फिर भी यह सम्भव है कि कुछ सम्बंधित कीटाणु, रोग का कोई हल्का रूप अनजाने

1. फिस्क, 'दी आइडिया ऑफ गॉड', पृष्ठ २५—२८, १४६-१५०, १६६, १६७।

ही मेरी आत्मा मे प्रविष्ट हो गया और वह अब लम्बे परिपाक के बाद गणितीय धारणाओ और भौतिक खोज-कार्य मे प्रशिक्षण द्वारा सशोधित होकर ऊपर आ गया है।"[१]

निरपेक्ष भाववाद से पीयर्स ने एक विकासवादी विचार ग्रहण किया, जो 'परिवर्धन' या 'व्यक्तीकरण' की सामान्य धारणा से बिल्कुल भिन्न था। सृष्टि, जो पहले मात्र अव्यवस्था थी, धीरे-धीरे 'मन की आदतें' ग्रहण करके व्यवस्थित और बोधगम्य बनती जा रही है। यह प्रक्रिया तीन सिद्धान्तो द्वारा निर्देशित होती हैं—(१) स्वत स्फूर्त्ति, स्वतन्त्रता, परिवर्त्तनीयता, सयोग—विश्व मे 'खेल करने' की, संयोग का सहारा लेने की एक प्रवृत्ति है और प्रकृति का कोई भी कार्य पूर्णत परिशुद्ध नही होता। पीयर्स का विचार था कि सयोग या स्वत स्फूर्त्ति का यह तत्व जीव-द्रव्य के गठन और व्यवहार मे विशेषत स्पष्ट और महत्वपूर्ण होता है। इस जीवित पदार्थ, 'मनुष्य के काचोपम सार' में सीखने और आदतें डालने की योग्यता प्रमुख है, किन्तु ऐसा मानने का कोई कारण नही कि 'केवल' जीवित ऊतक (टिशू) ही आदते डाल सकते है। (२) एकरूपता, नियम, निरन्तरता, दूसरा सिद्धान्त है। आदि स्वत स्फूर्त्ति के स्थान पर नियमितता आ जाती है। व्यक्ति पारस्परिक तनाव या 'सघर्ष' मे, एक दूसरे को अपने-अपने स्थान पर रखते हुए, एक साथ चलते है। जड-वस्तु का नियम पालन, एक पूर्णतः यान्त्रिक व्यवस्था का प्रमाण नही है। इसके विपरीत, जडवस्तु जहाँ तक व्यवस्थित है, वहाँ तक मानसिक गुण प्रदर्शित करती है। (३) सामान्यता, आदत, आत्मीकरण प्रकार-विकास में यह तत्व दिशा प्रदान करने वाला है। नियमितता वढती या 'फैलती' है। पीयर्स ने प्रकृति मे व्यवस्थित गति के फैलाव या सामान्यता को, मन मे सार्विकताओ या धारणाओ की अभिवृद्धि के साथ जोडा। वह प्राकृतिक आकर्षण जो वस्तुओ को वर्गो या जातियो मे व्यवस्थित करता है, विकास का मूल सिद्धान्त है—यह उद्देश्य, आकाक्षा या 'विकासात्मक प्रेम' है और प्लेटोनी प्रेम की भाँति ज्ञान का स्रोत है, क्योकि इसका लक्ष्य सामान्यता है।

"विकास और कुछ नही है, सिवाय एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के। कोई वर्ग उन वर्गो से अधिक आधारभूत और व्यापक नही हो सकते, जो किसी उद्देश्य द्वारा निरूपित होते हैं। कोई भी उद्देश्य एक सक्रिय आकाक्षा होता है। अब, आकाक्षा हमेशा सामान्य होती है। अर्थात् हमेशा किसी 'प्रकार' की वस्तु या

---

१. चार्ल्स हार्टशॉर्न और पॉल वीस द्वारा सम्पादित, 'कलेक्टेड पेपर्स आफ चार्ल्स सैण्डर्स पीयर्स' (कैम्ब्रिज, १९३१-३५), खण्ड ६, पृष्ठ ८७।

घटना होती है, जिसकी आकाक्षा की जाती है। कम से कम उस समय तक, जब तक इच्छा-शक्ति का तत्व, जो हमेशा किसी विशिष्ट अवसर पर किसी विशिष्ट वस्तु के लिए सक्रिय होता है, इतना प्रभावी नही हो जाता कि आकाक्षा के सामान्य चरित्र को दबा दे। इस प्रकार, आकाक्षाएँ वर्गों को और अत्यधिक व्यापक वर्गों को जन्म देती हैं। किन्तु आकाक्षाएँ, उनकी पूर्त्ति के प्रयास मे, अधिक विशिष्ट हो जाती है।"[1]

पीयर्स ने डार्विन के नैसर्गिक वरण के सिद्धान्त की व्याख्या 'केवल आकस्मिक परिवर्त्तनो' के रूप मे की और विकासात्मक प्रेम के अपने सिद्धान्त के साथ इसका मेल विठाने का विशेष प्रयास नही किया।

अमरीकी वैज्ञानिक-दार्शनिको के बीच, ऐसी सारी ब्रह्माण्डीय और विकासवादी परिकल्पनाओ का कम से कम एक कट्टर विरोधी था —नार्थम्पटन, मसॉचुसेट्स के चॉन्सी राइट, गणितज्ञ, 'नाटिकल अलमनक' (नाविक पचाग) के गणक, 'अमेरिकन ऐकेडेमी ऑफ आर्टस ऐण्ड सायन्सेज़' के अभिलेखन सचिव, कुछ समय तक हार्वर्ड में प्राध्यापक, प्रसिद्ध 'मेटाफिजिकल क्लब' के सदस्य, मिल और डार्विन दोनो के निष्ठावान् शिष्य। राइट और पीयर्स मे प्राकृतिक विज्ञान की दार्शनिक व्याख्या के सम्बन्ध मे कई वार लम्बी वहसें हुईं। पीयर्स यथार्थवाद, उद्देश्यवाद और अव्यवस्था से व्यवस्था के विकास के रूप में विकास के अपने सामान्य सिद्धान्त का समर्थन करते। राइट उन्हे समझाने की चेष्टा करते कि सृष्टि के इतिहास मे कोई दिशा नही है, वरन् केवल 'ब्रह्माण्डीय मौसम' होता है और यह कि डार्विनवाद की व्याख्या विकास की एक सामान्य पद्धति के रूप मे नही, वरन् शारीरिक अतिजीविता की समस्याओ में उपयोगितावाद के एक विशिष्ट प्रयोग के रूप में करना चाहिये। राइट ने आलोचनात्मक रीति से और हठपूर्वक प्राकृतिक विज्ञान के एक अनुभववादी रूप और नैतिकता तथा उद्देश्यवाद के एक उपयोगितावादी सिद्धान्त का समर्थन किया। सृष्टि के साथ-साथ मानव जीवन सम्बन्धी उनकी सामान्य धारणा उनके एक प्रारम्भिक लेख मे वडे सुन्दर और संक्षिप्त रूप मे व्यक्त हुई है।

"मनुष्य हर जगह अपने को प्रकृति मे प्रतिविम्बित पाता है। मनमौजी, अस्थिर, हमेशा आराम खोजता हुआ, हमेशा नई बुराइयो से प्रेरित, जिनमे से सबसे बडी वह स्वय उत्पन्न करता है—एक पतित प्रकृति के खण्डित जीवन की रक्षा और उसका पोषण करता हुआ, या नष्ट और ध्वस्त करता हुआ—स्वय नई क्षमताओ को जन्म देने मे असमर्थ, किन्तु जो वच रही है, उन्हे समृद्धि के

---

१. हार्टशॉर्न और वीस की पुस्तक, खण्ड १, पृष्ठ २०५-२०६।

समय पोषित करता और सकट के समय तीव्रतर बनाता हुआ—वह स्वय अपने जीवन के कार्यकलाप को प्राकृतिक तत्वो के सघर्ष में देखता है। उसकी शक्तियाँ और कार्यकलाप उसकी आध्यात्मिक क्षमताओ से सम्बन्धित होते है, जैसे अजैविक गतियाँ सघटक जीवन से सम्बन्धित होती हैं। उसकी उच्चतर प्रकृति का पुनर्जीवन एक गुप्त, आकस्मिक, असम्बद्ध सृजन के समान होता है। हवा जहाँ चाहती है, बहती है और तुम उसकी आवाज़ सुनते हो, लेकिन यह बता नही सकते कि वह कहाँ से आती है और कहाँ जाती हैं।"[1]

एक स्थल पर, जिसका लक्ष्य निस्सन्देह पीयर्स के विकास सिद्धान्त का विरोध था, यद्यपि उसमे ज़िक्र ऐनेक्सागोरस का है, राइट ने आदि-व्यवस्था के सिद्धान्त की आलोचना की और 'वास्तविक' अव्यवस्था मे अपना विश्वास प्रकट किया।

"ऐसा सामान्यत कहा जाता है कि ऐनेक्सागोरस ने प्रकृति के दर्शन मे 'नाउस' (यूनानी शब्द) या एक स्वतन्त्र कर्त्ता के रूप मे बुद्धि का प्रवेश कराया। इस बात की जानकारी उतनी नही है कि उसके साथ ही और इसके प्रतिपक्ष के रूप मे, उन्होने एक और भी विशिष्ट विचार, आदि-अव्यवस्था का विचार रखा। ऐनेक्सागोरस की अव्यवस्था विरोधी बुद्धि, भौतिकविदो और समग्र सृष्टि मे ईश्वर को देखने वालो की धारणा नही है। एकमात्र अव्यवस्था जिस पर प्राचीन अणुवादियो ने विचार किया, वह अव्यवस्था है जो उन्होने हमेशा अपने चारो ओर अस्तित्व मे देखी। वह अव्यवस्था, जो किसी भी समय, समग्र सृष्टि की अनिश्चित, उलझी हुई, वास्तविक अवस्था मे हमेशा रही थी।"[2]

राइट चक्र-प्रक्रियाओ मे विश्वास करते थे, लेकिन किसी सामान्य विकासात्मक प्रवृत्ति मे नही। उनका विचार था कि इन चक्र-प्रक्रियाओ को यान्त्रिक सिद्धान्तो के आधार पर समझा जा सकता है। मिसाल के लिए, उन्होने सौर-मण्डल की गतियो को सामान्य ऊष्मागतिक सिद्धान्त के अनुसार समझाने की चेष्टा की। विकास सिद्धान्त के विरुद्ध और विशेषत स्पेन्सर के सिद्धान्त के विरुद्ध उन्होने स्पष्ट रूप से लिखा—

"हमें बडा शक है कि 'विकास' का नियम उन घटनाओ मे दिखाई नही पडेगा जिनका प्रत्यक्ष या दूरस्थ सम्बन्ध व्यक्ति सघटनो के जीवन मे न हो, या

---

१. चॉन्सी राइट, 'दी विण्ड्स ऐण्ड दी वेदर', 'दी अटलाण्टिक मन्थली' खण्ड १ (१८५८), पृष्ठ २७८।

२. चॉन्सी राइट, 'फिलॉसाफिकल डिस्कशन्स' (न्यूयॉर्क, १८७७), पृष्ठ ३८२।

जिनके परिवर्धन का यह सिद्धान्त एक अमूर्त्त वर्णन है। और, यह राय रूढ़िविरोधी प्रतीत हो सकती है, किन्तु हमारा झुकाव, वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर, अरस्तू के अल्प-मान्य सिद्धान्त को सर्वाधिक सगत और औचित्यपूर्ण स्थापना स्वीकार करने की ओर है, जो ब्रह्माण्ड को वैज्ञानिक खोज के क्षेत्र मे स्थान नही देता और प्राकृतिक दृश्य-घटनाओ के ब्रह्माण्डीय सम्बन्धो को (बिना सम्पूर्ण की किसी ज्ञातव्य प्रवृत्ति के) ऐसे कारणो और नियमो की असख्य प्रकार की अभिव्यक्तियो के रूप मे प्रस्तुत करता है, जिनके मूल तत्व सरल और स्थिर है।"[१]

यद्यपि राइट ने दार्शनिक परिकल्पना के वैज्ञानिक मूल्य को स्वीकार नही किया, किन्तु धर्म, नैतिकता और कलाओ के समकक्ष, अपने-आप में एक महत्वपूर्ण मानवीय उद्यम के रूप मे उन्होने उसका समर्थन किया। उन्होने कहा कि उसका मूल्याकन—

"उसकी अपनी उपलब्धियो के बजाय, उसके उद्देश्यो की गरिमा के आधार पर, जिन मूल्यो की ओर वह हमे ले जाती है, उसके आधार पर होना चाहिये। इस कार्य की इस कारण आलोचना करना कि उसकी उपलब्धियाँ विज्ञान के समान नही है, उस सब का परित्याग करना होगा जिससे मानव-प्रकृति की वे आदतें, विचार और सम्बन्ध निर्मित हुए हैं, जिन पर हमारा सर्वश्रेष्ठ आधारित है। ..धर्मशास्त्र, धर्म या धार्मिक भावना के हित मे विकसित दर्शन था और तत्व-मीमासा का विकास धर्मशास्त्र के हित में किया गया। दोनो का लक्ष्य सत्य था। दोनो पर उस सरलता के प्रेम और ज्ञान की एकता का निर्णायक प्रभाव था, जो सत्य की सारी खोज को निर्धारित करती है। किन्तु दोनो को केवल सरल सत्य की चिन्ता नही थी। जब वे केवल तथ्यगत सत्य के लिए प्रयास करते, तो दोनो ही बिगड कर आडम्बर और खोखलेपन की स्थिति मे आ जाते।"[२]

"विज्ञान से नैतिक नतीजे निकाले जा सकते हैं और नैतिकता से एक विज्ञान निकाला जा सकता है। यह अस्पष्ट औदात्य के बजाय शायद हास्यास्पद भीरुता है कि हम नीचे लिखी बातें सोचकर वैज्ञानिक प्रयास न करें, फिर भी मै ऐसा सोचता हूँ—सत्य के लिए, आज्ञाकारी निगमन, विनम्रता और निर्णय स्वीकार करने की अपेक्षा, धैर्यपूर्ण आगमन और निर्णय का प्रयोग कही ज्यादा अच्छा है। .सत्य सम्बन्धी ऐसी धैर्यपूर्ण व्यस्तता जो कभी-कभी गलती से विनम्रता

१ वही, पृष्ठ ८।

२ वही पृष्ठ ५२।

कहा जाता है। वास्तव में यह उचित गर्व है, यद्यपि कोई तत्वमीमासक अगर इस पर आ जाये, तो उसे विनम्रता कहा जा सकता है। जब हम साफ देखते हो कि हम उड नही सकते, तो चलना और चढना निम्रता नहीं है, केवल सुबुद्धि है।''[1]

परिकल्पनात्मक जीव-विज्ञान

'मूल-प्रवृत्ति से तर्क-बुद्धि' को हुए सक्रमण को डार्विनवादी शब्दावली मे समझाने की समस्या ने स्वय डार्विन को भी चिन्तित किया और उन्होने अपनी चिन्ताएँ अपने प्रथम अमरीकी शिष्य चॉन्सी राइट के समक्ष व्यक्त की। डार्विन का झुकाव 'अचेतन चयन' के द्वारा होने वाले भाषा के परिवर्त्तनो के सन्दर्भ मे इस समस्या का हल प्रस्तुत करने की ओर था और इस सम्बन्ध में उन्होने राइट को लिखा—''आपका दिमाग चूँकि इतना साफ है और आप चूँकि शब्दो के अर्थ पर इतने ध्यानपूर्वक विचार करते हैं, अत. मेरी इच्छा है आप इस पर विचार करने के लिए कोई अवसर निकालें कि उचित रूप मे ऐसा कब कहा जा सकता है कि कोई वस्तु मनुष्य के मन द्वारा प्रभावित होती है।''[2] चॉन्सी राइट तत्काल काम मे जुट गये और उन्होने अपना महत्वपूर्ण निबन्ध 'दी इवॉल्यूशन ऑफ सेल्फ-कान्शसनेस' (आत्मचेतना का विकास) लिखा। यह निबन्ध डार्विन की समस्या तो हल नही कर सका, किन्तु इसने अमरीका मे आनुभविक मनोविज्ञान को नयी गति प्रदान की। राइट के तर्क मे उपयोगितावाद और प्राकृतिक चयन के मिश्रण का प्रयास था। बिना यह माने कि मनुष्य के पशु-पूर्वजो मे नयी मन शक्तियाँ प्रकट हुईं, उन्होने सोचा कि वे भाषा और तर्क-बुद्धि के प्रकट होने की व्याख्या इस आधार पर कर सकते है कि वातावरण के परिवर्त्तनो के फलस्वरूप पुरानी मन शक्तियो (विशेषत स्मृति और कल्पना) के नये 'उपयोग' हुए। बिना इस इरादे से उनका प्रयोग किये, बिम्बो और मुद्राओ ने सम्भवत' सकेत-चिह्नो का काम किया होगा। और तब, सकेत-चिह्नो का आविष्कार करने की आदत से (विशेषत एक सामाजिक प्राणी में) स्वभावत

---

१ 'लेटर्स ऑफ चॉन्सी राइट' (कैम्ब्रिज, १८८८) पृष्ठ २४६।

२. देखिए, फिलिप पी० वीनर, 'चॉन्सी राइट, डार्विन ऐण्ड साइण्टिफिक न्यूट्रैलिटी', 'जर्नल ऑफ दी हिस्ट्री ऑफ आइडियाज' ग्रन्थ ६ (१९४५), पृष्ठ २८।

सकेत-चिह्नो के चेतन प्रयोग और अन्तत आत्म-चेतना का उदय हुआ होगा। इसलिए कि यद्यपि चेतना स्वभावत: वहिर्मुखी होती है, किन्तु यह 'अपने आप में इतनी स्पष्ट होती है कि अलग से ध्यान आर्कषित करे' और इस तरह एक विशिष्ट प्रकार का कार्य, अर्थात् विमर्श उत्पन्न करे।

"इस प्रकार विमर्श, अधिकाश तत्वमीमासक जेसा मानते प्रतीत होते है, उसके विपरीत, मनुष्य मे एक मूलत. नयी मन.शक्ति नही होगी, जो उतनी ही आदि और तात्विक हो जितनी स्मृति, या अमूर्त्त ध्यान-शक्ति या साधारणीकरण मे सकेत-चिह्नो और प्रतिनिधि विम्बो का कार्य। बल्कि यह अपनी वस्तुओ की प्रकृति द्वारा अन्य मन शक्तियो से अपने विरोधो मे निर्धारित होगी। व्यक्ति-पक्ष मे उसकी सरचना उन्ही मन:शक्तियो से होगी—अर्थात् स्मृति, ध्यान, और अमूर्त्तन—जो इन्द्रियो के प्राथमिक उपयोग में प्रयुक्त होती हैं। इन्द्रियाँ स्मृति को जो कुछ प्रदान करती हैं, यह उन्ही पर कार्य करेगा, किन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत समूहीकरण या अनुक्रम की किन्ही व्यवस्थाओ से स्वतन्त्र होकर कार्य करेगा, उसी तरह जैसे विभिन्न इन्द्रियाँ स्वय एक-दूसरे से स्वतन्त्र कार्य करती हैं।"[1]

इस निबन्ध में सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि राइट ने चेतना और आत्म-चेतना के अन्तर को समझा है और आत्म-चेतना की व्याख्या करने का गम्भीर प्रयास किया है, जब कि उनके समकालीन अधिकाश लोग चेतना के साथ ही व्यस्त थे।

डार्विन से प्रोत्साहन पाकर, राइट ने मन के एक नये प्रकार के विज्ञान की अवधारणा की, एक नया उद्देश्यवाद, जो चेतना, आदते, आचार और नैतिकता का मूल्याकन (मानव) जाति की अतिजीविता के सम्बन्ध मे, या 'अधिकतम सख्या के अधिकतम सुख' के लिए उनकी उपयोगिता के आधार पर करे। यह विज्ञान उपयोगितावाद और डार्विनवाद की सश्लिष्टि होता।

पश्चिमी सफरमैना समाज मे विकास-सिद्धान्त आदर के साथ सुना जाने लगा, इसमे जासेफ लाकॉण्टे के सृजनात्मक विकास के दर्शन का काफी प्रभाव था। वे न्यूयार्क नगर के चिकित्सको और सर्जनो के कालेज के स्नातक थे, अगासिज और ग्रे के अधीन हार्वर्ड मे अनुसन्धानकर्त्ता छात्र रहे और तब उन्होने भूविज्ञान मे सैद्धान्तिक व्याख्या और व्यवहार दोनो ही क्षेत्रो में महत्वपूर्ण योग दिया। वे उत्तर, दक्षिण और पश्चिम के दूर-दूर तक विखरे हुए क्षेत्रो मे रहे, पढाया और खोज की, किन्तु उनका सर्वाधिक प्रभाव

---

१. चॉन्सी राइट, 'फिलॉसॉफिकल डिस्कशन्स' (न्यूयार्क, १८७७), पृष्ठ २१७।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में पढा, जहाँ उन्होने १८७४ से लेकर १६०१ मे अपनी मृत्यु तक पढाया। भू-विज्ञान मे अपनी बहुसख्यक खोजो के अलावा, वे अपनी मुख्य वैज्ञानिक देन शक्तियो के तत्वान्तरण के अपने सिद्धान्त को मानते थे, जिसे उन्होने १८५६ मे 'दी कोरिलेशन ऑफ फिजिकल, केमिकल, ऐण्ड वाइटल फोर्सं' (भौतिक, रासायनिक और जीवशक्ति का सहसम्बन्ध) शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित किया। दर्शन मे वे विकास के साधारण सिद्धान्त के उत्साही समर्थक थे। अपने प्रारम्भिक काल मे उन्होने डार्विन के नये 'व्युत्पत्ति द्वारा विकास' (इवाल्यूशन बाइ डेराइवेशन) के सिद्धान्त के विरुद्ध अगासिज के 'अभिवृद्धि' (डेवेलपमेण्ट) सिद्धान्त का समर्थन किया, किन्तु नैरन्तर्य और तत्वान्तरण सम्बन्धी अपने अध्ययन के प्रभाव से वे नये विकासवाद के उत्साही प्रचारक बन गये, जिसकी व्याख्या प्रकृति में एक निहित इच्छाशक्ति द्वारा सृजन की निरन्तर प्रक्रिया के रूप में की गयी। उन्होने कहा कि विकासवाद, "सचमुच, महान् आनन्द की महान् सूचना है, जो सभी लोगो को प्राप्त होगा। मेरा बुरा हो, अगर मै इस सन्देश का प्रचार न करूँ। इसे शाब्दिक अर्थ मे प्रदर्शित किया जा सकता है कि विज्ञान मे जो सारे अधार्मिक और भौतिकवादी निहितार्थ प्रतीत होते हैं, वे विज्ञान की इस अन्तिम सन्तान, या यूँ कहे कि विज्ञान और दर्शन के परिणय की इस पुत्री द्वारा उलट दिये गये हैं।"[1]

वे विकासवाद को न केवल भू-विज्ञान और जीव-विज्ञान के तथ्यो से निकलने वाला सगत आगमन मानते थे, वरन् काल मे कारणता के नियम के रूप मे, विज्ञान का एक स्वयसिद्ध सिद्धान्त मानते थे, उसी प्रकार, जैसे गुरुत्वाकर्षण दिक् मे कारणता का नियम है।

"विकास 'पूर्णत निश्चित' है। . विकास, पूर्व रूपो से रूपो की व्युत्पत्ति के नियम के रूप मे, विकास, नैरन्तर्य के नियम के रूप मे, 'बनने' के एक सार्विक नियम के रूप में। इस अर्थ में यह न केवल निश्चित है, वरन् स्वयसिद्ध है।. .'काल मे क्रमिक घटनाओ' का सम्बन्ध (कारणता) कही अधिक निश्चित है, बनिस्बत 'दिक् मे एक साथ उपस्थित वस्तुओ' के सम्बन्ध (गुरुत्वाकर्षण) के। पहला 'एक आवश्यक सत्य है', दूसरे को आमतौर पर आकस्मिक सत्य के अन्तर्गत रखा जाता है।"[2]

---

१ विलियम डालम आर्मेस द्वारा सम्पादित, 'दी आटोबायग्राफी ऑफ जासेफ लाकॉण्टे' (न्यूयार्क, १६१३), पृष्ठ ३३६।

२ जासेफ लाकॉण्टे, 'इवाल्यूशन, इट्स नेचर, इट्स एविडेन्स, ऐण्ड इट्स रिलेशन टु रेलिजस थॉट', दूसरा. संशोधित संस्करण (न्यूयार्क, १८६४), पृष्ठ ६५-६६।

लाकॉण्टे ने 'जड पदार्थ' से लेकर, जीवन से होते हुए, 'आत्मा' आत्म-चेतना तक, ऊर्जा के 'वैयक्तीकरण' की रेखा खींची। जीव वैयक्तीकरण की चरम परिणति मनुष्य मे होती है और आत्मा के वैयक्ती की ईसा के 'देवी व्यक्तित्व' मे। इस 'सार्विक अभिकल्पना' की दृष्टि से पर, सारे 'अलग अभिकल्पना' के तर्क अनावश्यक हो जाते हैं और सारी का अन्त अच्छाई में होता दिखाई देता है। लाकॉण्टे ने इस सिद्धान्त 'वैकासिक भाववाद' कहा। यद्यपि उनके शिष्य जोसिया रॉयस ने इसके त तत्वो और उत्साहो को अस्वीकार किया, किन्तु रॉयस के अपने भाववा इसका निर्माणात्मक प्रभाव था।

एक अन्य जीवशास्त्री, जिन्होने दर्शन मे बहुत अधिक हाथ ब पेन्सिलवेनिया के क्वेकर एडवर्ड ड्रिंकर कोप (१८४०-९७) थे। वे एक जीव शास्त्री (फासिल-विज्ञान के अध्येता) थे, पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय मे प्रो थे और कई पश्चिमी वैज्ञानिक अभियानो के खोज-कार्यो मे उन्होने भाग l था। बडी देर से, उन्होने जीव-विज्ञान मे लैमार्क के सिद्धान्तो का समर्थन l था। एक वैज्ञानिक के रूप मे, उन्होने प्राग्-अनुभविक परिकल्पना का ख किया और स्वय अपने शब्दो मे 'सत्य को तत्व मीमासा से अलग करने चेष्टा की। किन्तु 'योग्यतम के उद्गम' सम्बन्धी उनकी परिकल्पनाएँ, जो उनके लिए सच्ची वैज्ञानिक स्थापनाएँ थी, उनके साथी जीवशास्त्रियो की ı में सन्देहास्पद अनुमितियाँ थी, जो ऐसी मान्यताओ पर आधारित थी, जि प्रामाणिकता जाँची नही जा सकती थी। वे स्वय अपने 'आर्कैस्थेटिज्म सिद्धान्त को (आदि-मन या चेतना सम्बन्धी स्थापना) 'तत्वमीमासात विकासवाद' कहते थे, किन्तु उनका विचार था कि उनके पास उसके लिए अ प्रमाण है। उनके विचार में यह एक वैकासिक मनोविज्ञान के साथ-साथ वैज्ञानिक देववाद का भी आधार था। वे विकासवाद के सिद्धान्त के लिए आवश्यक समझते थे कि जैविक विकास की प्रक्रियाओ को केवल वाताव द्वारा 'प्राकृतिक चयन' के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय, आन्तरिक शक्तियो कार्य के रूप मे समझाया जाये।

तदनुसार कोप ने 'योग्यतम के उद्गम' की व्याख्या एक विशिष्ट प्रकार ऊर्जा की कल्पना करके की, जिसे उन्होने 'अभिवृद्धि-शक्ति' या 'बाथमिक' ऊ कहा और जिसमें ऊर्जा या शरीर मे कार्य के लिए उपलब्ध ऊर्जा के सामा क्षय की पूर्ति करने की विशिष्ट शक्ति थी। इस शक्ति को, जिसे जीवन विभाजित होने और जीवों की अभिवृद्धि करने में प्रदर्शित करते हैं, उन्हे

अनुकूली यन्त्र के रूप मे प्रकट हुआ, जो जीव को चेतन-प्रयास के द्वारा अपनी अतिजीविता के लिए उपयोगी आदतें विकसित करने के योग्य बनाता है।

कोप ने इस सिद्धान्त का विकास न केवल एक प्राकृतिक धर्मशास्त्र के रूप में किया, वरन् नैतिकता के इतिहास या 'विकास' की व्याख्या के एक विषय के रूप में भी किया।

"सगठित नैतिक गुणो की शक्ति मानवी कार्य की प्रेरणाओ के रूप मे सामान्यत: उन गुणो से अधिक नही हो सकती, जिनसे मनुष्य को शारीरिक परिरक्षण प्राप्त होता है। ऐसे मनुष्यो के वश, जिनमें सहानुभूति और उदारता के गुण, आत्मरक्षा के गुण पर हावी हो जाते हैं, अनिवार्य ही समाप्त हो जायेंगे। इन दो प्रकार की शक्तियो के बीच समानता से अधिक उच्च-स्तर पर मनुष्य जाति विकास के द्वारा नही पहुँच सकती (व्यक्तियो मे कभी-कभी चाहे जो भी प्रकट हो)। इसके बाद मनुष्य जाति मे मस्तिष्क की सामाजिक शक्तियो का संगठन हमेशा दबा दिया जायेगा। फलस्वरूप, अपने-आप बिना सहायता के विकास के उच्चतम फल के रूप में हम केवल इतनी ही आशा कर सकते हैं कि सामाजिक शक्तियो और ऐसी शक्तियो में जिनमें स्वार्थ मात्र अधिक है, एक सन्तुलन प्राप्त करें। इस स्थिति में, विरोधी प्रकार की प्रेरणाओ के बीच निर्णय स्थगित हो जाता है और साधारणत यह हमेशा सन्देहास्पद रहेगा कि फलस्वरूप होने वाला कार्य न्यायपूर्ण और उचित होगा या इसके विपरीत। अत ऐसा प्रतीत होता है कि मानसिक विकास की प्रक्रिया से 'आत्म-निर्भर नि.स्वार्थ न्याय' की कोई सगठित मन शक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। वरन् परिणाम न्याय और अन्याय के बीच निरन्तर चलने वाला एक सघर्ष होता है।"[1]

यहाँ कुछ मोटी-मोटी रेखाओ में बुद्धि के उस आनुवशिक सिद्धान्त का एक रूप प्रस्तुत है, जिसका आगे चलकर अमरीकी दर्शन में बडा महत्वपूर्ण स्थान रहा। मन. शारीरिक समानान्तरवाद मे प्रचलित विश्वास के विरुद्ध चेतना की अनुकूली शक्तियो के इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए कोप पर बडा ज़ोर डाला गया,[2] और उनके उत्तर से यह स्पष्ट था कि वे नैतिक दर्शन और मनोविज्ञान, दोनो के लिए अपने विचारो के महत्व को अच्छी तरह समझते थे। विलियम जेम्स की भाँति वे उनमें सर्वमनोवाद और स्वतन्त्रता में विश्वास का एक आधार देखते थे, किन्तु उन्हे सबसे अधिक चिन्ता इसकी थी कि उन विचारो को चेतना की एक कार्यात्मक व्याख्या के रूप मे प्रस्तुत करें।

---

१. एडवर्ड ड्रिंकर कोप 'दी ओरिजिन ऑफ दी फिटेस्ट' (न्यूयार्क, १८८६), पृष्ठ २३७-२३८।

२. एडमण्ड मॉण्टगोमरी के साथ हुई एक चर्चा में।

आनुवंशिक सामाजिक दर्शन

"इस बात को जितनी जल्दी समझ लिया जाए उतना अच्छा, कि विज्ञान एक है और हम भाषा को जाँचें या दर्शन, धर्मशास्त्र, इतिहास या भौतिकी को, हमारे सामने वही एक समस्या रहती है, जिनकी परिणति हमें स्वय अपने ज्ञान मे होती है। बोली का ज्ञान केवल मनुष्य की इन्द्रियो से ही सम्बन्धित है, विचार का उसके दिमाग से, धर्म का उसकी आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति के रूप मे, इतिहास का उसके कार्यों के विवरण के रूप मे और भौतिक विज्ञानो का उन नियमो के रूप मे जिनके अन्तर्गत वह रहता है। दार्शनिको और धर्मशास्त्रियो को अभी यह सीखना है कि कोई भौतिक तथ्य उतना ही पवित्र होता है, जितना कोई नैतिक सिद्धान्त। हमारी अपनी प्रकृति हमसे इस दोहरी निष्ठा की माँग करती है।"[1]

इन शब्दो के साथ प्रोफेसर अगासिज़ ने डार्विन की रचना 'दी ऐक्सप्रेशन ऑफ दी एमोशन्स इन मैन ऐण्ड ऐनिमल्स' (मनुष्य और पशुओ मे भावनाओ की अभिव्यक्ति) का स्वागत किया। उन्होने आगे कहा, 'मै केवल हर्षित हो सकता हूँ कि चर्चा ने यह मोड़ ले लिया है, यद्यपि विषय के प्रतिपादन से मै बहुत अधिक असहमत हूँ।' एक विकासवादी पीढी के लिए यह वृद्ध जीवशास्त्री की बौद्धिक वसीयत थी और उस पीढी के समक्ष इसने दार्शनिक पुनर्निर्माण के लक्ष्य प्रस्तुत किये। कारण, कि अगर विज्ञान एक है तो प्राकृतिक ज्ञान अवश्यमेव आत्म-ज्ञान की ओर ले जायेगा। इस कार्य के लिये नये जीव-विज्ञान ने विश्लेषण के श्रेष्ठ साधन प्रस्तुत किये। 'वातावरण के प्रति अनुकूलन', 'स्वत स्फूर्त परिवर्त्तन', 'अस्तित्व के लिए सघर्ष', 'उत्तरजीवन मूल्य' ये एक साथ ही भौतिक और उद्देश्यवादी धारणाएँ सस्कृति के सभी सोपानो पर और सभी सस्थाओ की आलोचनाओ में सरलता से प्रयुक्त हो सकती थी। इस प्रकार आनुवंशिक पद्धति ने नीतिज्ञो और सामाजिक वैज्ञानिको को एक ऐसा कार्यक्रम प्रदान किया जिसमें विकासवादी-रुचि का केन्द्र मानवीय उद्गमो और ईश्वरीय योजनाओ की समस्याओ से हटकर दैनिक जीवन और समकालीन समाज की समस्याओ पर आ गया।

---

१. लुई अगासिज़, 'इवॉल्यूशन ऐण्ड दी परमानेन्स ऑफ टाइप', 'दी अटलाण्टिक मन्थली' खण्ड तैंतीस (१८७४), पृष्ठ ६५।

सामाजिक वातावरण की माँगो के प्रति जैविक अनुकूलन के उदाहरणो के रूप में, और परिवर्त्तनशील स्थितियो के सापेक्ष, तर्कशास्त्र, भाषा, रिवाज और नियम की आनुवशिक व्याख्या, या सामाजिक मनोविज्ञान का नया विज्ञान तेजी से विकसित हुआ। आनुवशिक सामाजिक मनोविज्ञान के प्रयास को विशेष महत्व इस तथ्य ने प्रदान किया कि विकासवादी प्रकृतिवादियो की पूर्व पीढी सामाजिक विकास को गम्भीरता से लेने में असफल रही थी। ऐसा समझा जाता था कि एक ही जाति के अन्दर भी, सभी पशु मूलत. स्वय अपने अस्तित्व के लिए अलग-अलग सघर्ष करते-रहते है। हर जीव, हर अन्य जीवन के 'वाहरी' 'भौतिक वातावरण का अग था। उन लोगो ने भी सघर्ष को व्यक्तिगत रूप में ही देखा, जिनकी रुचि मुख्यत मनुष्य-जाति या 'अनुगृहीत जातियो' के अतिजीवन के सिद्धान्त मे थी। यह वात स्पेन्सर के अनुयायियो के लिए विशेषत सच थी, क्योकि आठवे दशक के आरम्भ में प्रकाशित स्पेन्सर के समाजशास्त्र ने 'योग्यतम के अतिजीवन' के सन्दर्भ में आर्थिक और राजनीतिक व्यक्तिवाद का सिद्धान्त निरूपित किया। इस प्रकार जिसे वैगेहॉट ने अधिक उचित रूप में 'सामाजिक भौतिकी' कहा था, उसे दुर्भाग्यवश 'सामाजिक डार्विनवाद' कहा जाने लगा और हक्सले के अधिकतम प्रयासो के वावजूद डार्विन के जीव-विज्ञान की आमतौर पर भर्त्सना की गयी कि वह स्पेन्सर के समाजशास्त्र को अनिवार्य बनाता है।

अमरीका मे स्थिति इग्लिस्तान से भी अधिक व्यग्यपूर्ण थी, क्योकि स्पेन्सर के सर्वप्रसिद्ध अमरीकी शिष्य, जॉन फिस्क ने योग्यतम के अतिजीवन के नैतिक पक्ष के अधिक कठोर रूपो का परित्याग करके, विकासवादी सिद्धान्त को स्वय अपना सामाजिक, परार्थवादी और धार्मिक रंग प्रदान किया था। अत. स्पेन्सर के समाजशास्त्र का समर्थन करने का भार एक अन्य याकी ने उठाया। ये थे येल कालेज में राजनीति और सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर, विलियम ग्राहम समनर। १८७९ मे, सामान्य मन्दी के समय, वे इस प्रकार के सार्वजनिक भाषण कर रहे थे—

"अगर हमे योग्यतम का अतिजीवन पसन्द नही है, तो हमारे सामने एक ही विकल्प है और वह है अयोग्यतम का अतिजीवन। पहला सभ्यता का नियम है, दूसरा सभ्यता-विरोध का। हमारे सामने ये दोनो ही रास्ते हैं, या हम अतीत की भांति, दोनो के बीच झूलते रह सकते हैं, किन्तु कोई तीसरी योजना—जिसका अभाव समाजवादी महसूस करते है—ऐसी योजना, जिनमें अयोग्यतम का पोषण करने के साथ-साथ सभ्यता की प्रगति हो, कभी किसी से नही मिलेगी।"[1]

---

१. विलियम ग्राहम समनर, 'एसेज', ए० जी० केलर और आर० एम० डेवी द्वारा सम्पादित (न्यू हेवेन १९३४), खण्ड दो पृष्ठ ५६।

निस्सन्देह, समनर न केवल स्पेन्सर के समाजशास्त्र को, वरन् आत्म-निर्भरता, मिताचार और दूरदर्शिता की परम्परागत याकी नैतिकता को भी व्यक्त कर रहे थे। 'हर व्यक्ति गम्भीर, उद्यमी, दूरदर्शी और बुद्धिमान हो और अपने बच्चो को भी ऐसा ही बनाये, तो कुछ ही पीढियो में गरीबी समाप्त हो जायेगी।[1] जब पुराना स्कॉटी अर्थशास्त्र इस प्रकार सामाजिक डार्विनवाद की भेडिये की खाल पहन कर सामने आया, तो अच्छे प्रकृतिवादी गड़रियो के लिए यह अत्यधिक महत्वपूर्ण था कि वे रक्षा के लिए डार्विनवाद का अधिक सामाजिक रूप सामने रखें।

पशु-बुद्धि के नये मनोविज्ञान के विकास से समस्या और भी तीव्र हो गयी। उसने सारे मानसिक दर्शन को 'चयनात्मक विचार' के सिद्धान्त में अन्तरित कर देना चाहा। चेतना की व्याख्या अब वाह्य प्रभावो को निश्चेष्ट ग्रहण करने की, या अन्त·प्रज्ञात्मक यथार्थ की मन:शक्ति के रूप में नही की जाती थी। इसकी व्याख्या 'कार्यात्मक' रूप मे की गयी कि वह जैविक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उचित साधनो के चयन में जीव के अन्दर भावना की ओर टटोलने की व्यवस्था से सम्बद्ध है और इस कारण स्वभावत· भावनाओ के अधीन है। भावनाएँ स्वय व्यवहार मे या 'अवशेष रूप में', अभ्यनुकूलन का माध्यम और अतिजीवन का साधन हैं। जब १८९० में जेम्स का 'मनोविज्ञान' (साइकॉलॉजी) प्रकाशित हुआ, तो सक्रिय, चयनपूर्ण व्यवहार के रूप में मन की यह अवधारणा तत्काल लोकप्रिय हो गयी और जेम्स के शब्दो में इसने मनोविज्ञान को 'एक प्राकृतिक विज्ञान' बनने की महत्वाकाक्षा प्रदान की। मन की प्रकृति सम्बन्धी यह अवधारणा व्यक्तिवादी समाजशास्त्र के लिए वडी अनुकूल थी, क्योकि इस पुरानी मान्यता के स्थान पर कि मन का लक्ष्य तर्कबुद्धि है और त·बुद्धि का सत्य, अब यह आवश्यक हो गया कि प्राकृतिक चयन की जैविक प्रक्रिया मे, उपयोगी परिवर्तनो के रूप मे, तर्कबुद्धि की श्रेणियो और वैज्ञानिक विधियो का ही औचित्य सिद्ध किया जाये। जेम्स ने स्पेन्सर के इस सारे सिद्धान्त का ही खण्डन करने के लिये कि मन 'वाह्य' शक्तियो द्वारा ढलता है और वह अनुभव की व्यवस्था को ही पुन निर्मित करता है, डार्विनवाद का उपयोग प्रभावशाली रीति से किया। जेम्स के अनुसार, मनुष्य का मन 'स्वत· स्फूर्त' परिवर्त्तनो के एक अनुक्रम का फल है, जिनमे से किसी को भी प्राकृतिक नियम के सन्दर्भ में नही समझा जा सकता। हम नही जानते कि परिवर्त्तन कैसे आते हैं, किन्तु एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद, वातावरण उनका मूल्याकन करता है और जो उपयोगी होते हैं,

१. वही, खण्ड १, पृष्ठ १०६।

वे बने रहते है। जेम्स ने विश्व की व्याख्या करने वाली उपयोगी व्यवस्थाओ का आविष्कार करने के मनुष्य के विभिन्न प्रयत्नो को भी मनुष्य के मानसिक 'परीक्षण द्वारा मूल-सुधार' और 'वाह्य व्यवस्था' के बीच सघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। इस सघर्ष मे विचार को 'वैज्ञानिक' पद्धतियाँ 'सगत' सिद्ध हुई और इस कारण वच रही।

"हमारे विचार की वस्तुओ में उन सम्बन्धो की, जिन्हे 'वैज्ञानिक' कहा जाता है, विशेषता यह है कि यद्यपि वे नैतिक और सौन्दर्यात्मक सम्बन्धो की भाँति ही, वाह्य व्यवस्था का आन्तरिक 'प्रतिरूप' नही है, किन्तु उनका उस व्यवस्था से टकराव नही है। आन्तरिक शक्तियो की क्रिया से एक वार उत्पन्न हो जाने के वाद, ऐसा पाया जाता है कि उनकी—कम से कम उनमे से कुछ की, अर्थात् वे ही जो इतने काफी समय तक जीवित रहे हैं कि अभिलेखन की वस्तु वनें—उन दिक्-काल सम्बन्धो से 'सगति' है, जो हमारे द्वारा गृहीत प्रभावो मे—प्रकट होते है।

"दूसरे शब्दो मे, यद्यपि प्रकृति की सामग्री, हमारे प्रयासो के फलस्वरूप, नैतिक रूप धीरे-धीरे और कठिनाई से ही ग्रहण करती है और सौन्दर्यात्मक रूप उसकी अपेक्षा कुछ सरलता से ग्रहण करती है, किन्तु वैज्ञानिक रूप वह अपेक्षतया आसानी से और पूर्णता के साथ ग्रहण कर लेती है। यह सच है कि यह रूपान्तर शायद कभी भी समाप्त नही होगा। केवल हमारे कहने मात्र मे ही वोध-व्यवस्था समाप्त नही हो जाती और न उसके स्थान पर उचित प्रत्यय ही तत्काल उत्पन्न हो जाते है। वहुधा यह एक कठिन संघर्ष होता है और वहुतेरे वैज्ञानिक किसी जाँच के वाद, जोहान्स मुलर की भाँति कह सकते हैं—'इस कार्य में रक्त जम जाता है।' किन्तु एक के वाद एक हुई विजय हमे आश्वस्त करती है कि हमारे शत्रु का अन्त पराजय मे होगा।

" 'वैज्ञानिक' होने की आकाक्षा वर्त्तमान पीढी को ऐसी इष्ट है, हममें से हर एक, माँ के दूध के साथ उसे इस तरह पी लेता है कि हमें किसी ऐसे प्राणी की कल्पना कठिन लगती है जो इसका अनुभव न करता हो और इसे मुक्त रूप में एक विल्कुल विशिष्ट और एकागी रुचि मानना, जो यह वास्तव में है, और भी कठिन लगता है। किन्तु वास्तव मे, हमारी जाति के सुसस्कृत व्यक्तियो में भी कम ही ऐसे हैं जो इसमे सहभागी रहे हो। इसका आविष्कार तो केवल एक या दो पीढी पहले हुआ था।"[१]

---

१. विलियम जेम्स, 'दी प्रिंसिपिल्स ऑफ साइकॉलाजी' (न्यूयार्क, १८९०), खण्ड २, पृष्ठ ६३९-६४०।

अत' जेम्स के अनुसार, मानसिक विकास का निरूपण प्राकृतिक नियमो के सन्दर्भ मे नही, वरन् 'मनुष्य के अत्यधिक अस्थिर दिमाग के कार्यात्मक क्रिया-कलाप मे आकस्मिक बिम्बो, कल्पनाओ और स्वतःस्फूर्त्त परिवर्त्तनो की आकस्मिक उत्पत्तियो[1]' के सन्दर्भ मे करना चाहिये। अत. इतिहास के कोई नियम नही हैं।

"मूलत ये सभी वस्तुएँ और अन्य सभी संस्थाएँ किसी व्यक्ति के दिमाग मे प्रतिभा की चमक थी, जिनका हमारे वातावरण मे कोई चिह्न नही था। जाति द्वारा स्वीकृत होने और उसका उत्तराधिकारी बन जाने के वाद ये जिन नयी प्रतिभाओ को आवृत करती है, उन्हे नये आविष्कारो और खोजो की प्रेरणा देती हैं और इस तरह प्रगति होती चलती है। किन्तु प्रतिभाओ को निकाल ले, उनकी विशिष्टताओ को बदल दें, तो वातावरण मे कितनी बढती हुई एकरूपताएँ दिखाई देंगी ? हम चुनौती देते हैं कि श्री स्पेन्सर या अन्य कोई व्यक्ति इसका उत्तर दे।

"सीधा-सा सत्य यह है कि विकासवाद का 'दर्शन' (परिवर्त्तन के विशिष्ट मामलो सम्बन्धी हमारी विशेष जानकारी से अलग) एक तत्वमीमासक सिद्धान्त है और अन्य कुछ नही। "[2]

मानवी इतिहास और मानसिक शक्तियो सम्बन्धी यह रोमानी धारणा लेकर जेम्स ने डार्विनवादी सामाजिक दर्शनो मे व्यक्तिवाद का अपना रूप भी जोड दिया। स्पेन्सर-विरोधी, प्राकृतिक नियम-विरोधी और निर्वन्धता-विरोधी होते हुए, यह समनर के व्यक्तिवाद का प्रतिपक्षी था। फिर भी, इसने उन नीतिज्ञो के सामने एक और कठिनाई उपस्थित की, जिनकी सभ्यता की प्रगति में विकासवादी आस्था थी।

आनुवशिक सामाजिक मनोविज्ञान की दिशा में पहली महत्वपूर्ण देन जॉन फिस्क के इस सिद्धान्त की थी कि विकास ने एक 'मानसिक' मोड ले लिया था। लेस्टर एफ० वार्ड ने इस सिद्धान्त को अत्यधिक विस्तृत रूप दिया। १८६३ में उनकी रचना 'दी साइकिक फैक्टर्स ऑफ सिविलाइजेशन (सभ्यता के मानसिक तत्व) प्रकाशित हुई, जिसमें, जैसा कि उन्होने कहा, 'ऊपरी ढांचे को ज्यादा ऊँचा, और नीव ज्यादा गहरी बना कर' उन्होने अपनी 'डाइनैमिक सोशियोलाजी' (गत्यात्मक समाजशास्त्र —१८८३) को सम्पूर्ण करने की चेष्टा की थी। ज्यादा

---

१. विलियम जेम्स, 'दी विल टु बिलीव, ऐण्ड अदर एसेज इन पॉपुलर फिलासफी' (न्यूयार्क, १८६७), पृष्ठ २४७।

२. वही, पृष्ठ २५३।

गहरी नीव शोपेनहॉर से प्राप्त की गयी थी। ज्यादा ऊँचा ऊपरी ढाँचा, व्यावहारिक सामाजिक समस्याओ का हल करने मे, सामाजिक शक्तियो के सिद्धान्त का उपयोग करने का, और इस प्रकार एक नये विज्ञान की नीव डालने का प्रयास था जिसे उन्होने 'उन्नयनवाद, मानवी या सामाजिक स्थिति के सुधार या उन्नयन का विज्ञान' कहा। शोपेनहॉर से वार्ड को बुद्धि और सकल्प का सही सम्बन्ध समझने मे सहायता मिली थी। अब उन्होने सामाजिक कार्य की व्याख्या सकल्प या इच्छा की शक्ति द्वारा प्रेरित एक विध्यात्मक कला के रूप में की। बुद्धि या वस्तुनिष्ठ मन, भावना या वैयक्तिकता के पहले नही आता, जैसा कि सम्बद्धतावादी मनोविज्ञान के अनुसार पहले माना जाता था। यह इच्छा की व्यक्तिनिष्ठ शक्तियो के पीछे आता है, क्योकि वैयक्तिकता या सकल्प ही यथार्थ और जीवन है। शोपेनहॉर के मनोविज्ञान से, जो साधारणत जेम्स के समान ही था, वार्ड को यह विचार मिला कि सामाजिक सकल्प या सामाजिक कार्यकलाप के प्रादुर्भाव से विकास ने एक नया मोड ले लिया था।

"निम्नतर पशुओ की भाँति ही, केवल उनसे अधिक तीव्रता के साथ, इच्छाओ द्वारा प्रेरित होकर, उन उच्चतर और अधिक सामान्य खुशियो की तलाश करते हुए, जिन्हे सामूहिक रूप मे सुख कहा जाता है, मनुष्य ने, लगभग निम्नतर पशुओ की भाँति ही अचेतन रूप मे सार्वत्रिक, निरन्तर और बेचैनी भरे कार्यकलापो के द्वारा विभिन्न, बहुगुणित और अथक प्रयास किये है, जिनके फलस्वरूप उसके चारो ओर के वातावरण में व्यापक, उग्र और विशाल परिवर्तन हो गये हैं। निम्नतर प्राणियो मे हुए परिवर्त्तनो की भाँति, ये परिवर्तन हमेशा उपयोगी ही नही रहे, किन्तु सब मिलाकर प्रगतिशील रहे है और सामूहिक रूप मे, जिसे हम सभ्यता कहते हैं, उसका निर्माण करते हैं। अपने आप में ये न प्रकृति का लक्ष्य है न मनुष्य का, और जहाँ तक इनके फलस्वरूप लाभ हुआ है, वहाँ इनका सच्चा लाभ समाज को हुआ है, जो इनके प्रति उतना ही निर्वैयक्तिक और चेतनारहित है, जितना पशु-क्रियाकलाप के सम्बन्ध में 'विकास' को मानना होगा। .

"समाज की गत्यात्मकता, मुख्यत, पशु जीवन की गत्यात्मकता की प्रतिपक्षी है। जिस मानसिक तत्व की चर्चा की गयी है, वह प्रकृति के स्थान पर कला को ले आता है। अगर हम जैविक प्रक्रियाओं को प्राकृतिक कहते है, तो हमें सामाजिक प्रक्रियाओं को कृत्रिम कहना होगा। जीव-विज्ञान का मूल सिद्धान्त प्राकृतिक चयन है, समाजशास्त्र का कृत्रिम चयन। योग्यतम का अतिजीवन, केवल सबल का अतिजीवन है और उसमे दुर्बल का विनाश निहित है और हमें यही कहना अधिक उचित होगा। अगर प्रकृति मे दुर्बल के विनाश द्वारा प्रगति

होती है, तो मनुष्य की प्रगति दुर्बल के सरक्षण द्वारा होती है और सर्वत्र ऐसा ही है। सारे सन्दर्भ उलट जाते है।"[1]

वार्ड ने देखा कि बुद्धि, या जैसा कि विवाद के उद्देश्यो के लिए अब उन्होने उसे कहा, 'अन्त:प्रज्ञा' विमर्श की मन:शक्ति नही है, वरन् सामाजिक वातावरण मे 'अत्यधिक व्यावहारिक' होती है।

"मनुष्य जब, चाहे कितनी भी आदिम, सामाजिक स्थिति में आया, तो दूरदर्शिता का प्रयोग हुआ, जो अपने आप में एक प्रकार की अन्त प्रज्ञात्मक मन.शक्ति है और भविष्य के लिए 'व्यवस्था' करने की आदत पैदा हुई। इसका तात्कालिक फल हुआ कि उसकी आवश्यकताओ पर तात्कालिक भूख की सीमा नही रही। परिणामस्वरूप, जीविका के साधनो की उसकी इच्छा सावधिक होने के बजाय निरन्तर हो गयी, और इस लक्ष्य की पूर्ति के प्रयास असमाप्य बन गये। मनोवेग और उसकी तुष्टि के साधन, दोनो ही स्वय समाज के विकास की शर्ते थी और सही दृष्टि से देखें तो ये सभ्यता के भी प्रमुख तत्व रहे हैं। किन्तु यहाँ चूँकि मनुष्य को मनुष्य से निपटना पडता है, वैसा ही एक सघर्ष चलता रहा, यद्यपि एक उच्चतर बौद्धिक स्तर पर, जैसा पशु-जगत् मे चलता है, वस्तुत अपने अस्तित्व को बनाये रखने का सघर्ष।

"इस महान् सघर्ष मे पशु-शक्ति का स्थान घटता गया और मन का बढता गया। निम्न प्रकार की चतुराई और पशुवत् बुद्धिमत्ता बहुत प्रमुख होने पर भी, उनका स्थान उसी मानसिक सिद्धान्त की अधिक सूक्ष्म और परिष्कृत अभिव्यक्तियो ने ले लिया। सस्थाओ की अभिवृद्धि और सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक आचार-सहिताओ की स्थापना से इस विकास मे बडी तेजी आई। प्रनगढ पशु-पद्धतियाँ असहनीय थी, और अगर अन्यथा नही तो प्राकृतिक चयन के द्वारा समाज ने उनका परित्याग कर दिया।"[2]

वार्ड ने इस प्रकार एक 'सामाजिक सकल्प' के कार्य को समझाया और इससे उन्हे 'समाज-तन्त्र' या सामूहिक सामाजिक कार्य के कॉम्टे के आदर्श में विश्वास करने का एक नया आधार मिला। अत उनका गत्यात्मक समाजशास्त्र न केवल समनर और गिडिंग के समाजशास्त्र का प्रत्युत्तर बना, बल्कि उसने अमरीकी समाजशास्त्रियो की नयी पीढी को स्पेन्सर द्वारा प्रदर्शित विकासवादी पूर्वग्रहो का परित्याग करने की भी प्रेरणा की। इसने उदार धर्मशास्त्रियो द्वारा

---

१. लेस्टर एफ वार्ड, 'दी साइकिक फैक्टर्स ऑफ सिविलाइज़ेशन' (बोस्टन, १८९३), पृष्ठ १२९-१३०, १३५।

२. वही. पृष्ठ १५६-१५७।

विकासवादी विश्वास को एक विध्यात्मक सामाजिक सन्देश में परिवर्तित करने के प्रयास का भी समर्थन किया।

सामाजिक विश्लेषण को एक अधिक दीर्घजीवी देन शिकागो के एक समूह की थी—ऐल्बियन स्माल, जान डुई, जेम्स एच० टफ्ट्स, जार्ज एच० मीड, डब्ल्यू, आई० थॉमस और थार्स्टीन वेबलेन। बाल्डिवन और पूर्ववर्त्ती आनुवशिकी विज्ञो की भाँति उन्होने सामाजिक कार्यों और आदतो, तथा मात्र भौतिक वातावरण के प्रति शारीरिक अभ्यनुकूलन के गुणात्मक अन्तर पर ज़ोर दिया। व्यवहारात्मक विश्लेषण के द्वारा उन्होने यह दिखाया कि सामाजिक सम्बन्धो और अन्य सम्बन्धो में निरुपाधि अन्तर होता है। उनके सामाजिक कार्यों के मनोविज्ञान ने मन के आनुवशिक सिद्धान्त के प्रति एक नया और अधिक गम्भीर दृष्टिकोण प्रदान किया।

सामाजिक मनोविज्ञान को डुई की मुख्य देन यह थी कि उन्होने मानवी अनुभव के विकास मे कार्यात्मक और नैतिक रुचियो का महत्व प्रदर्शित किया। १८६४ मे उन्होने इस ओर इगित किया कि लेस्टर वार्ड और अन्य विकासवादियो ने आनुवशिक विश्लेषण को पर्याप्त गम्भीरता से नही लिया, वल्कि उन्होने अत्यधिक मात्रा मे डार्विन-पूर्व के मनोविज्ञान को अनालोचनात्मक रीति से अपना लिया था। और १६०२ में उन्होने स्पेन्सर द्वारा नृवशशास्त्रीय सामग्री के प्रयोग का मज़ाक उडाया।

थॉमस ने 'भोजन और योनि' में आदिम मनुष्य की व्यस्तता मे सभ्य मनुष्य की विभिन्न रुचियो के विकास का वर्णन किया और "समाज के विभिन्न परिवर्त्तनीयो—विचार, सस्थाएँ, विश्वास, भावनाएँ, भाषा, कलाएँ, साहित्य—से होकर चेतना के 'लाल सूत्र' का मार्ग चिह्नित करने" की चेष्टा की। इस प्रकार उन्होने वुण्ट के लोक-मनोविज्ञान की अपेक्षा अधिक जीवशास्त्रीय और व्यवहारात्मक लोक-मनोविज्ञान की नीव डाली।

कार्यात्मक परिवर्तनो द्वारा शिकार-ग्रन्थि के रूपान्तरण और संस्कृति के नये प्रकारो के विकास के इस विचार ने शिकागो शाखा को एक नया सामाजिक मनोविज्ञान प्रदान किया। आनुवशिक तर्कशास्त्र के लिए इनके महत्व को तो छोड ही दें। डुई और उनके साथियो ने तत्काल शिक्षा और नैतिकता की समस्याओ मे इस सामाजिक मनोविज्ञान का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए, ऐल्बियन स्माल के 'गत्यात्मक' समाजशास्त्र ने समाज के विज्ञान को सामाजिक 'अभिवृद्धि' या सुधार के एक अभिन्न अग के रूप में देखा। टफ्ट्स ने दिखाया कि नीति-शास्त्र मे ऐसी विकासवादी पद्धति का प्रयोग किस प्रकार आत्म-सिद्धि के सापवादी सिद्धान्त को एक नया अर्थ प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। साथ

करना शुरू किया। उन्होंने संस्थापित अंग्रेजी अर्थशास्त्र (जिसे उन्होंने बाद मे 'सीमान्त तुष्टि का अर्थशास्त्र' कहा) और श्मॉलर के जर्मन ऐतिहासिक अर्थशास्त्र, दोनो से विद्रोह किया। उनके लिए सच्चा विज्ञान 'कारणात्मक' विज्ञान था, कारणता 'निर्वैयक्तिक' और 'सचयी' थी और एक सचमुच आनुवशिक सामाजिक विज्ञान 'सास्कृतिक अनुक्रम में आर्थिक हितो' के सचित फलन का पता लगाता।[1] उन्होंने नये 'सक्रिय' मनोविज्ञान की भावना को खुले दिल से स्वीकार किया और आर्थिक प्रक्रियाओ की व्याख्या प्राकृतिक नियमों के सन्दर्भ में न करके, हितो या उद्देश्यपरक कार्यों के सन्दर्भ मे की और इन हितो की व्याख्या उन्होंने उनके कारणात्मक सम्बन्धो मे, अर्थात् उनकी सामाजिक प्रभावात्मकता और निपुणता के सन्दर्भ मे की। उनके सचित प्रभावो या विकास को तटस्थ होकर बिल्कुल निर्वैयक्तिक रीति से देखा जा सकता था। कारणता के विज्ञान से अलग, प्रगति के सिद्धान्त के लिए उनके मन मे केवल तिरस्कार था। खोज की ऐसी सारी आदतो को वे 'जीववाद' या विधाता मे विश्वास के अवशेष मानते थे।

अपने आनुवशिक अर्थशास्त्र का पहला महत्वपूर्ण प्रयोग उन्होंने 'दी थियरी ऑफ दी लेज़र क्लास, ऐन एकॉनामिक स्टडी इन दी इवॉल्यूशन आफ इन्स्टिट्यूशन्स' (अवकाशमय वर्ग का सिद्धान्त, सस्थाओ के विकास का एक अर्थशास्त्रीय अध्ययन—१८९९) मे किया। इस ग्रन्थ मे उन्होंने बताया कि वर्तमान अवकाश युक्त वर्ग की आदतें और प्रतिमान—उसका 'स्पष्ट अपव्यय', अकौशल, खेल-कूद मे रुचि और शोषक चरित्र— किसी काल के योद्धा वर्ग के अवशेष है, जिसमे वास्तविक 'वीरता' थी और जो लूटमार या गुलामी के सहारे जिन्दा रहता था। इस वर्ग द्वारा आर्थिक शक्ति के प्राचीन प्रयोग से लेकर आर्थिक शक्ति के वर्त्तमान प्रदर्शन तक, इसके क्रमिक पतन की कहानी ने वेबलेन को एक असाधारण अवसर प्रदान किया कि जिन्हे वे डार्विनवादी पद्धतियां समझते थे, उनका प्रयोग सामाजिक इतिहास में करें और उसके साथ ही समकालीन 'अन्यायपूर्ण' और 'अकारणात्मक' वर्ग सम्बन्धो की प्रतिभापूर्ण आलोचना लिखें। कारणात्मक प्रक्रियाएँ 'औद्योगिक गणतन्त्र' की थीं, अर्थात् आधुनिक यान्त्रिकी के उत्पादक कौशलो की। 'मूल्य-पद्धति' को और पूंजी-विनियोग मे वित्तीय हितो को वे पुरानी सस्कृतियो के अनार्थिक, अनुत्पादक अवशेष मानते थे।

वेबलेन का अर्थशास्त्र इस शिकागो समूह की सामान्य प्रवृत्ति का विशेषन

---

१ थॉर्स्टीन वेब्लेन, 'ह्वाइ इज एकॉनामिक्स नाट ऐन इवाल्यूशनरी सायन्स ?' 'क्वार्टरली जर्नल ऑफ एकानॉमिक्स', खण्ड १२ (१८९८), पृष्ठ ३९४।

अच्छा उदाहरण है कि अपनी रुचियो को धीरे-धीरे आनुवंशिक पद्धतियो से हटाकर कार्यात्मक आलोचनाओ की ओर और सामाजिक विकास से हटाकर सामाजिक पुनर्निर्माण की ओर ले जाये।

हताश प्रकृतिवाद

हेनरी आडम्स की निराशा एक ऐसे व्यक्ति की निराशा थी जिसने एमर्सन की सलाह मानी थी कि 'सुधार के पथ पर अपना रथ हांक दो' और इस कारण जो सिद्धान्त में गति और परिवर्त्तन का प्रेमी था, किन्तु जिसने यह समझना सीख लिया था कि उसका अपना और सामान्यत मनुष्य जाति का जीवन ऐसी शक्तियो के शिकजे में है, जो मानवी नियन्त्रण के बाहर है और यह जीवन ऊर्जा का ऐसा क्षय है जो प्रगति से अधिक अराजकता के निकट है। युवावस्था मे, गृह-युद्ध आरम्भ होने के समय उन्होने बडे उत्साह से राजनीति मे प्रवेश किया और उनका विश्वास था कि उन्हे ह्वाइट-हाउस (राष्ट्रपति निवास) मे रहना है। उच्च अंग्रेज समाज में अपना कूटनीतिक जीवन, साहित्यिक पत्रकार का जीवन और वाशिंगटन निवास उन्होने बडे आत्म-विश्वास के साथ आरम्भ किया, इस आशा में कि वे एक राजनेता बनने वाले हैं। उनके अचम्भे का कोई अन्त न था, जब उन्होने देखा कि प्रेसीडेण्ट ग्राण्ट और उनके जैसे लोग सत्तापीठो पर जमे हुए हैं, शरणस्थल के रूप मे लोकतान्त्रिक दल बिल्कुल व्यर्थ है और सारा आडम्स परिवार उन्हें सलाह दे रहा है कि हार्वर्ड में मध्यकालीन इतिहास के सहायक प्रोफेसर का पद स्वीकार कर लें। न केवल अपने सम्बन्ध में, वरन् सामान्यत लोकतन्त्र के प्रति भी उन्हे राजनीतिक निराशा हुई, क्योकि उन्हे आशा थी कि अपने पितामह की भाँति वे गम्भीर, वैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर एक नये राष्ट्रीय लोकतन्त्र के निर्माण का नेतृत्व करेंगे। लेकिन अब, १८८० में प्रकाशित उनके उपन्यास के एक पात्र के शब्दो में—

"क्या मूल्य था इस सब का, स्त्रियो और पुरुषो का यह जगत, उतना ही एकरस जितने वे भूरे मकान जिनमे वे रहते हैं? अपनी निराशा में उसने हताश उपाय अपनाये थे। उसने मूल जर्मन में दर्शन पढ़ा था और जितना अधिक वह पढती, उतनी ही अधिक निरुत्साहित होती कि इतनी अधिक संस्कृति का फल कुछ भी न हो— कुछ भी नहीं।"[1]

---

१. हेनरी आडम्स, 'डेमॉक्रेसी, ऐन अमेरिकन नॉवेल' (न्यूयॉर्क, १८८०), पृष्ठ २।

एक सेनेटर को, जो विकासवादी सिद्धान्तो के विरुद्ध भाषण देते रहे थे, यही पात्र उत्तर देता है—

"आप बन्दरो के प्रति बड़े कठोर है।...बन्दरो ने कभी आपका कोई नुकसान नही किया। वे सार्वजनिक जीवन मे नही है। वे तो मतदाता भी नही हैं। अगर होते, तो आप में उनकी बुद्धि और सद्गुण के प्रति बड़ा उत्साह होता। आखिरकार हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि इस उदास ससार में मनुष्य क्या करते, अगर बन्दरो से उन्हे वसीयत मे उल्लास न मिला होता—और भाषण कला भी।"[1]

---

१. वही, पृष्ठ १०२-१०३। एक अन्य पात्र, नथान गोर, मसाचुसेट्स का एक साहित्यिक जो विदेश में किसी सरकारी पद का अभिलाषी है, इस प्रश्न का उत्तर बड़ी गम्भीरता से देता है कि 'क्या तुम स्वयं सोचते हो कि लोकतन्त्र सर्वोत्तम शासन है और बालिग मताधिकार सफल हुआ है?' उसके द्वारा व्यक्त मत शायद वही हो जो आडम्स का उस समय था—

"ये ऐसे मामले हैं जिनके बारे में मैं शायद ही कभी समाज में बात करता हूँ। ये निजी ईश्वर के सिद्धान्त, या अगले जन्म, या श्रुत-धर्म के समान हैं—ऐसे विषय जिन्हे आदमी स्वभावत: निजी विमर्श के लिए सुरक्षित रखता है। किन्तु आपने चूंकि मेरा राजनीतिक मत पूछा है, अत आपको बताऊंगा। मेरी केवल यही शर्त्त है कि यह बात केवल आपके लिए होगी, इसे आप कभी दोहराएंगे नही, न मेरी कह कर उद्धृत करेगे। मैं लोकतन्त्र मे विश्वास करता हूँ, मै उसे स्वीकार करता हूँ। मैं निष्ठापूर्वक उसकी सेवा और रक्षा करूंगा। मै इसमे विश्वास करता हूँ, क्योंकि जो कुछ इसके पहले हो चुका है, यह मुझे उसका अनिवार्य परिणाम प्रतीत होता है। लोकतन्त्र इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि जनसामान्य की बुद्धि का स्तर अब पहले से ऊंचा हो गया है। यह लक्ष्य हमारी सारी सभ्यता का साध्य है। इसमें सहायक होने के लिए हम जो कुछ कर सकते हैं, करना चाहते हैं। मैं स्वयं इसका फल देखना चाहता हूँ। मै स्वीकार करता हूँ कि यह एक प्रयोग है, किन्तु यही एक दिशा है जिसे समाज ग्रहण कर सकता है, जो उसके ग्रहण करने योग्य है। उसके कर्त्तव्य की एकमात्र इतनी काफी व्यापक धारणा है जो उसकी मूल-प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट कर सके। एकमात्र फल है, जो प्रयास करने या जोखिम उठाने के योग्य है। हर अन्य सम्भव कदम पीछे जाना है और अतीत को दोहराने में मेरी कोई रुचि नहीं है। समाज को ऐसे प्रश्नो मे उलझते देख कर मुझे खुशी होती है, जिनके प्रति कोई भी व्यक्ति तटस्थ नहीं रह सकता।

दोष-दृष्टि के ऐसे दौरो के द्वारा हेनरी आडम्स ने अपने को दिलासा देने की चेष्टा की, किन्तु उनसे उन्हे सामान्य ह्रास के कारणो सम्बन्धी कोई अन्तर्दृष्टि प्राप्त नही हुई।

१८९३ की जबरदस्त मन्दी के समय तक उन्होने नही समझा था, जैसा उन्होने बाद मे कहा कि वे और उनकी पीढ़ी 'रेल-कम्पनियो के पास बन्धक रख दिये' गये थे और यह कि बोस्टन और वाशिंगटन दोनो ही न्यूयार्क के 'स्वर्णकीटो' और वाल स्ट्रीट (न्यूयार्क का व्यापार-केन्द्र) के लुटेरे सरदारो की मुट्ठी मे थे। इतिहास का एक ऐसा दर्शन निरूपित करके, जो इस स्थिति की व्याख्या करता था, उनके छोटे भाई ब्रुक्स आडम्स, बौद्धिक-दृष्टि से अपने को इस स्थिति के अनुकूल बनाने मे सफल हुए। उन्होने पाया कि सारा इतिहास ऊर्जा के केन्द्रीकरण और क्षय के बीच, लोभ और भय के बीच, रस्साकशी का एक सघर्ष है।

"प्रस्तावित सिद्धान्त इस मान्य वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है कि शक्ति और ऊर्जा का नियम प्रकृति मे सर्वत्र लागू होता है और यह कि पशु जीवन उन माध्यमो मे से एक है, जिनके द्वारा सूर्य की ऊर्जा क्षय होती है।

"इस मूल स्थापना से आरम्भ करके, पहला निगमन यह है कि मानवी समाज चूँकि पशु जीवन के ही रूप हैं, अत. इन समाजो की ऊर्जा मे परस्पर उस अनुपात मे अन्तर होगा, जिस अनुपात में प्रकृति ने उन्हे ऊर्जामय सामग्री की कम या अधिक बहुलता प्रदान की है।

"विचार मानवी ऊर्जा की अभिव्यक्तियो मे से एक है और विचार के प्रारम्भिक और अधिक सरल सोपानो में दो सोपान स्पष्ट दिखाई देते हैं—भय और लोभ। भय, जो कल्पना को उद्दीपित करके एक अदृश्य ससार में विश्वास उत्पन्न करता है और अन्तत एक पादरियत का विकास करता है और लोभ, जो युद्ध और व्यापार में ऊर्जा को क्षय करता है।

"सम्भवत किसी समुदाय के सामाजिक आन्दोलन की गति उसकी ऊर्जा और घनत्व के अनुपात में होती है और उसका केन्द्रीकरण उसकी गति के अनुपात में होता है। अत. मानवी आन्दोलन की गति तीव्र होने पर समाज केन्द्रित होते हैं। केन्द्रीकरण की प्रारम्भिक अवस्थाओ में, भय वह माध्यम प्रतीत

"...मुझे विश्वास है। शायद पुराने मताग्रहों पर नहीं, किन्तु नये मताग्रहों पर है। मानव प्रकृति में विश्वास है। हम अपने काल के प्रति सच्चे हों, श्रीमती जी! अगर हमारे युग को हारना है, तो हम युद्धपंक्ति में मरें। अगर उसकी विजय होनी हो, तो हम पंक्ति का नेतृत्व करने वालो में प्रथम हों। किसी भी सूरत में हम रूठने या शिकायत करने वाले न बनें।" (वही, पृष्ठ ७६-८८)।

होता है जिसके द्वारा ऊर्जा सर्वाधिक सरलता से मार्ग पाती है। तदनुसार, आदिम और बिखरे हुए समुदायों मे कल्पना स्पष्ट होती है और उत्पन्न मानसिक प्रतिरूप धार्मिक, सैनिक या कलात्मक होते हैं। समन्वय बढने के साथ-साथ भय के स्थान पर लोभ आ जाता है और भावनात्मक या रणात्मक गठन के ऊपर आर्थिक गठन के हावी होने की प्रवृत्ति आती है।"[1]

किन्तु हेनरी आडम्स को ऐसी सरल व्याख्या से कोई सन्तोष नही मिला। उनका अपना स्वभाव ऐसा था कि बारी-बारी से लोभ और भय उन पर हावी हो जाते थे। अपना आधा समय वे किसी 'स्वर्णकीट' की भाँति अपने पैतृक धन को सचित करने मे व्यतीत करते और शेष आधा सम्पूर्ण व्यवस्था के अन्तिम रूप से ध्वस्त होने की निराशापूर्ण भविष्यवाणियाँ करने में। ऊर्जा के केन्द्रीकरण और क्षय की ऐसी लहरें, अनुभव की सामग्री थी, किन्तु ये इतिहास का 'वैज्ञानिक नियम' नही थी। उनका विचार था कि ब्रुक्स के सिद्धान्त को डार्विनवाद का रूप माना जा सकता था, क्योकि उससे 'सबसे सस्ते का अतिजीवन' प्रमाणित होता था। किन्तु उन्हे स्वय इतिहास के एक वास्तविक भौतिक विज्ञान की खोज थी, अर्थात् कोई ऐसा सूत्र जो भौतिक विज्ञान के ज्ञात नियमो के सन्दर्भ में मानवी अनुभव और इतिहास को नाप सके। यान्त्रिक कार्य के लिए उपलब्ध ऊर्जा का सिद्धान्त (एन्ट्रॉपी) केवल उष्मागतिकी का दूसरा नियम था। इतिहास का सच्चा विज्ञान ऊर्जा के क्षय के सिद्धान्त को और भी अधिक साधारण शक्ति के सिद्धान्त मे सश्लिष्ट करेगा, जो मानवी कम होगा, गणितीय अधिक। इस तरह वर्षों तक वे अपने समकालीनो पर 'किसी अँग्रेज की तरह गुर्राते', नि:शक्त और ज्वाराक्रान्त से किसी 'अनुदारवादी ईसाई अराजकतावादी' की भाँति विनाश के दिन की ओर उसे बोधगम्य बनाने वाली प्रेरणा की प्रतीक्षा करते, अपने मे ही डूबे रहे।

जब वे इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था का तिरस्कार करते हुए जॉब (बाइबिल का एक पात्र) के समान अपने सिद्धान्तों को प्रमाणित कर रहे थे, जॉब के समान ही ईश्वर की प्राकृतिक शक्ति ने उन्हें छुआ कर विनम्रता का मौन प्रदान किया। १८७० में उन्हें अपनी बहन के पास जाना पडा, जो धनुस्तम्भ रोग की पीडा में मर रही थी। अचानक उनमें 'एक भयकर स्वप्न, शक्तियो के एक पागलपन' के रूप में प्रकृति के 'जीवन के प्रति दृष्टिकोण' की 'गम्भीर चेतना' आयी।

---

१. ब्रुक्स आडम्स, 'दी लॉ ऑफ सिविलाइजेशन ऐण्ड डिके, ऐन एसे ऑन हिस्टरी' (न्यूयार्क, १९४३), पृष्ठ ५९-६०।

"पहली वार, इन्द्रियो की मच-सज्जा ध्वस्त हो गयी। मानव मन ने अपने को नग्न होते अनुभव किया, आकारहीन ऊर्जाओ के एक शून्य में कांपते हुए, जो अदम्य घनत्व के साथ उसी को टकरा, दवा, नष्ट और ध्वस्त कर रही थी, जिसे इन्ही ऊर्जाओ ने निर्मित किया था और अनादि काल से सम्पूर्ण बनाने के लिए श्रम करती रही थी। समाज सगतिहीन हो गया, यान्त्रिक गति वाले मौन-नाट्य का एक दृश्य। और उसका कथित विचार, मात्र जीवन के एक भाव में और उस भाव की खुशी में विलयित हो गया। सामाजिक चिकित्सा की सामान्य पीडा नाशक औषधियाँ स्पष्टत. छल वन गयी। समभाव (स्टॉइकिज्म) शायद सर्वोत्तम था। धर्म सर्वाधिक मानवीय था। किन्तु यह विचार कि मनुष्य मे केवल विकृत और पागल स्वभावो में मिलने वाली पाशविक क्रूरता से किसी वेचारी स्त्री को यातना देने मे किसी निजी दैव को खुशी या लाभ मिल सकता था, एक क्षण को भी नही माना जा सकता। यह ऐसी शुद्ध धर्म निन्दा है कि इसकी तुलना मे शुद्ध अनीश्वरवाद बेहतर है। जैसा चर्च कहता है, ईश्वर एक पदार्थ हो सकता है, किन्तु वह कोई व्यक्ति नही हो सकता।"[1]

फिर, १८८४ में जव उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी, तो उन्होने अपनी सामाजिक और राजनीतिक रुचियाँ त्याग दी और आग्रह किया कि दुनिया के लिए वे मर चुके और अपने कलाकार मित्र जॉन ला फार्ज के साथ पूर्व (एशिया) की यात्रा पर चले गये। वहाँ उन्हे निर्वाण या जैसा वे उसे कहना पसन्द करते थे, 'ईश्वरीय शान्ति' मिली, अनिवार्य की एक स्तब्ध स्वीकृति, शोक और दु.ख के परे—वाशिंगटन के रॉक क्रीक कब्रिस्तान में आडम्स की समाधि पर सगमरमर की वनी सेन्ट गॉडेन की प्रतिमा इस दृष्टिकोण को वडे प्रभावोत्पादक रूप मे व्यक्त करती है। किन्तु पूर्व में, निर्वाण में प्रवेश करने के समय ही, उनमे रग, रूप और मौन- नाट्य के प्रति एक स्वत.स्फूर्त आनन्द भी उत्पन्न हुआ, भाव और बिम्बो में समृद्ध कलात्मक जीवन, किन्तु जिसके परिणाम उद्वेलित करने वाले या नैतिक नही थे। इस दोहरी तटस्थता का दृष्टिकोण लेकर वे यूरोप लौटे और अचानक उन्होने देखा कि मध्यकालीन इतिहास, जिसमे हार्वर्ड में उन्हे ऊब होती थी, उनके अन्दर जीवित हो उठा है। उन्होने 'माण्ट सेण्ट मिचेल ऐण्ड चार्ट्रेस' की रचना की और उनमें कुमारी मरियम की शक्ति को चेतना आयी। वे 'विद्युत्-यन्त्र और कुमारी मरियम' के विषय मे डूब गये, दो शक्तियाँ जिनके बीच वे अपने को जकडा हुआ महसूस करते थे, वे जकडा हुआ इस अर्थ मे

---

१. हेनरी आडम्स, 'दी एजुकेशन ऑफ हेनरी आडम्स' (वोस्टन १९१८). पृष्ठ २८८-२८९।

महसूस करते थे कि उन्हें ऐसी शक्तियाँ बहा ले जाती जिन्हें वे निरूपित नही कर पाये। चामत्कारिक शक्ति के धर्मशास्त्र से उन्हें कुमारी मरियम की 'यथार्थ उपस्थिति' को समझने में सहायता नही मिली, किन्तु गोथिक कला से मिली।

धीरे-धीरे आडम्स ने शक्ति का एक बड़ा ही चतुर और संगतिहीन दर्शन निरूपित किया। अब उनका विचार था कि शक्ति के 'सोपानो' में प्रगति हो सकती है, जिसे ऊर्जा के उद्गामी रूपो का विकास कहा जा सकता है, किन्तु जिसका मानव प्रगति के परम्परागत सिद्धान्तो से कोई सम्बन्ध नही। इस सिद्धान्त ने इतिहास को भौतिकी बना दिया। उन्होने ऐतिहासिक गुरुत्वाकर्षण (आकर्षण या दबाव) और सास्कृतिक त्वरा का एक सिद्धान्त निरूपित किया, जिसके अनुसार पदार्थ के 'सोपान' (ठोस, तरल, वायवी, विकीर्ण, ईथरीय और अवकाशिक) क्रमिक युगो के अनुकूल होते हैं। शक्तियाँ सघनता के अनुसार प्रकट हुईं। पहले मूल-प्रवृत्ति का, या पशु-प्रकृति की स्वचालित शक्तियो द्वारा नियन्त्रण का 'ठोस' युग था, जिन शक्तियो में मुख्य प्रजनन की उर्जा थी। दूसरा आस्था की शक्ति के अन्तर्गत धार्मिक काल था। फिर यन्त्र काल, फिर बिजली काल, जो विद्युत्-यन्त्र (डाइनेमो) के आविष्कार और साधारण उपयोग से आरम्भ हुआ। एक अल्प 'ईथरीय सोपान' आने वाला था, जब विचार 'अपनी सम्भावनाओ की सीमा' तक पहुँच जायेगा। इससे इतिहास का अन्त हो जायेगा, किन्तु 'अवकाश' या शुद्ध गणित का एक अनिश्चित काल तब भी बच रहेगा, जिसकी आनुभविक वस्तु की भविष्यवाणी करना कठिन है। ऐसा हो सकता है कि ऊर्जा निर्वाण में, 'सम्भाव्य विचार के सागर मे' प्रविष्ट होकर शान्त हो जाये। किन्तु—

"अगर, इसके अन्तिम सोपानो के अत्यधिक तीव्र कम्पन में, विचार उसी तरह सार्विक विलायक का कार्य करता रहे, जैसा कि वह अब है और अणु, परमाणु व एलेक्ट्रॉन को वैसा ही निर्मूल्य सेवक बना ले जैसा उसने पृथ्वी और वायु, आग और पानी के पुराने तत्वो को बना लिया है, अगर मनुष्य प्रकृति की असीमित शक्तियो को मुक्त करता रहे और ब्रह्माण्डीय पैमाने पर ब्रह्माण्डीय शक्तियो का नियन्त्रण प्राप्त कर सके, तो परिणाम उतने ही आश्चर्यजनक हो सकते हैं, जितना पानी का भाप में, कीड़े का तितली में, रेडियम का एलेक्ट्रान मे परिवर्त्तन।"[१]

अगर त्वरण का नियम इतिहास के लिए सही है, जैसा कि होगा ही, तो प्रतिलोम-वर्ग नियम के आधार पर ऊर्जा के महान् रूपान्तरों की तिथियों का

१. हेनरी आडम्स, 'दी डिग्रेडेशन ऑफ दी डेमाक्रेटिक डॉग्मा' में 'दी रूल ऑफ फेज एप्लाइड टु हिस्टरी', (न्यूयार्क १९२०). पृष्ठ ३०९।

मोटा हिसाब लगाना सम्भव हो सकता है। पहली अवधि की लम्बाई का हिसाब नहीं लगाया जा सकता। धार्मिक काल (लगभग ६०,००० वर्ष) का अन्त सन् १६०० में गैलिलियो के साथ हुआ। यन्त्र-काल १८७० मे समाप्त हुआ।[1] बिजलीकाल का अन्त १६१७ में हुआ। चार त्वरित वर्षों के बाद, ईथरीय काल का १६२१ में। १६१८ में जब हेनरी आडम्स की मृत्यु हुई, तो वे सोचते थे कि उनकी भविष्यवाणियाँ शायद शब्दश: प्रमाणित हो जायें।

'इतिहास के विज्ञान' के रूप मे, यह तर्कहीन योजना हास्यास्पद है और इतिहासकारो को गम्भीरता से इसका अध्ययन करते देख कर निश्चय ही हेनरी आडम्स को हँसी आती। उद्गामी विकासवाद के एक दर्शन के रूप में भी यह एक बूढे व्यक्ति के खिलौने से अधिक विशेष कुछ नही है। इसमें महत्व इस बात का था, जिसने स्वयं हेनरी आडम्स के लिए भी इसे अर्थमय बनाया कि इसने उन्हें उनके इस विश्वास के लिए एक आकर्षक पुराकथा प्रदान की कि उन्नसिवी से बीसवी शताब्दी में संक्रमण का समय शक्ति के इतिहास में संकट का समय था। उन्हे भय था कि प्रकृति जिन ऊर्जाओ को मनुष्य के माध्यम से क्षय करती है, वे उसे जितना तोडती हैं, बीसवी सदी में मनुष्य उससे भी अधिक टूटेगा। उन्होने लिखा—

"बम बडी सबलता से शिक्षित करते हैं और बेतार के तार या वायुयानो से भी समाज का पुनर्निर्माण आवश्यक हो सकता है...नया अमरीकी—प्रगरण[illegible] ...विद्युत्-शक्ति और विकीर्ण ऊर्जा...की सन्तान . प्रकृति की किसी पूर्व रचना की तुलना में एक प्रकार का ईश्वर होगा।"[2]

"हम भिखारी नही हैं। हमें क्या परवाह
"आशाओ या भयो की, प्रेम या घृणा की ?
"सृष्टि की क्या ? हम देखते हैं
"केवल अपनी निश्चित नियति
"और भाग्य का अन्तिम शब्द।"
"पकड़ो फिर, परमाणु को। तोडो उसके जोड।
"खीच लो उससे उसके गुप्त स्रोत !
"उसे पीस कर मिटा दो।—यद्यपि वह संकेत करता है
"हमें, और उसका जीवन-रक्त अभिषिक्त करता है
"मुझे—मृत परमाणुराज।"

---

१. इस काल की लगभग ३०० वर्ष की लम्बाई सारे हिसाब का आधार है।

२. 'दी एजुकेशन ऑफ हेनरी आडम्स', पृष्ठ ४६६।

महसूस करते थे कि उन्हें ऐसी शक्तियाँ बहा ले जाती जिन्हें वे निरूपित नही कर पाये। चामत्कारिक शक्ति के धर्मशास्त्र से उन्हें कुमारी मरियम की 'यथार्थ उपस्थिति' को समझने में सहायता नही मिली, किन्तु गोथिक कला से मिली।

धीरे-धीरे आडम्स ने शक्ति का एक बड़ा ही चतुर और संगतिहीन दर्शन निरूपित किया। अब उनका विचार था कि शक्ति के 'सोपानो' मे प्रगति हो सकती है, जिसे ऊर्जा के उद्गामी रूपो का विकास कहा जा सकता है, किन्तु जिसका मानव प्रगति के परम्परागत सिद्धान्तो से कोई सम्बन्ध नही। इस सिद्धान्त ने इतिहास को भौतिकी बना दिया। उन्होने ऐतिहासिक गुरुत्वाकर्षण (आकर्षण या दबाव) और सास्कृतिक त्वरा का एक सिद्धान्त निरूपित किया, जिसके अनुसार पदार्थ के 'सोपान' (ठोस, तरल, वायवी, विकीर्ण, ईथरीय और अवकाशिक) क्रमिक युगो के अनुकूल होते है। शक्तियाँ सघनता के अनुसार प्रकट हुई। पहले मूल-प्रवृत्ति का, या पशु-प्रकृति की स्वचालित शक्तियो द्वारा नियन्त्रण का 'ठोस' युग था, जिन शक्तियो मे मुख्य प्रजनन की उर्जा थी। दूसरा आस्था की शक्ति के अन्तर्गत धार्मिक काल था। फिर यन्त्र काल, फिर बिजली काल, जो विद्युत्-यन्त्र (डाइनेमो) के आविष्कार और साधारण उपयोग से आरम्भ हुआ। एक अल्प 'ईथरीय सोपान' आने वाला था, जब विचार 'अपनी सम्भावनाओ की सीमा' तक पहुँच जायेगा। इससे इतिहास का अन्त हो जायेगा, किन्तु 'अवकाश' या शुद्ध गणित का एक अनिश्चित काल तब भी बच रहेगा, जिसकी आनुभविक वस्तु की भविष्यवाणी करना कठिन है। ऐसा हो सकता है कि ऊर्जा निर्वाण में, 'सम्भाव्य विचार के सागर में' प्रविष्ट होकर शान्त हो जाये। किन्तु—

"अगर, इसके अन्तिम सोपानो के अत्यधिक तीव्र कम्पन में, विचार उसी तरह सार्विक विलायक का कार्य करता रहे, जैसा कि वह अब है और अणु, परमाणु व एलेक्ट्रॉन को वैसा ही निर्मूल्य सेवक बना ले जैसा उसने पृथ्वी और वायु, आग और पानी के पुराने तत्वो को बना लिया है, अगर मनुष्य प्रकृति की असीमित शक्तियो को मुक्त करता रहे और ब्रह्माण्डीय पैमाने पर ब्रह्माण्डीय शक्तियो का नियन्त्रण प्राप्त कर सके, तो परिणाम उतने ही आश्चर्यजनक हो सकते हैं, जितना पानी का भाप में, कीड़े का तितली में, रेडियम का एलेक्ट्रान में परिवर्त्तन।"[1]

अगर त्वरण का नियम इतिहास के लिए सही है, जैसा कि होगा ही, तो प्रतिलोम-वर्ग नियम के आधार पर ऊर्जा के महान् रूपान्तरो की तिथियो का

---

1. हेनरी आडम्स, 'दी डिग्रेडेशन ऑफ दी डेमाक्रेटिक डॉगमा' में 'दी रूल ऑफ फेज एप्लाइड टु हिस्टरी', (न्यूयार्क १६२०), पृष्ठ ३०६।

एकमात्र रूप था। 'भाग्य के विधान द्वारा, कुछ लोग ससार को उस ओर ले जाते प्रतीत होगे, जिस ओर वह जाता है,'[१] किन्तु यह एक भ्रम है।

मनुष्य की एकमात्र शक्ति आत्म-ज्ञान की शक्ति है और इस शक्ति का प्रयोग करने मे भी उसे संघर्ष और निराशा का सामना करना पडता है। इसलिए कि ज्ञान के प्रकाश में केवल अन्धकार ही दिखता है। किन्तु अन्धकार के ज्ञान मे रहना, केवल अन्धेरे मे रहने से बहुत भिन्न है। साहस के द्वारा मनुष्य भाववादी हो सकता है, यद्यपि उसका अस्तित्व भौतिक है। रॉबिन्सन की लगभग सारी ही कविता मे यह विचार और आदर्श निहित है।

रॉबिन्सन ने अपने को एक 'न्यू-इगलैण्ड की अन्तरात्मा' कहा था और यह उनका अपना लक्षरा-वर्णन विशिष्ट रूप में उलझन में डालने वाला है। उनका भाग्यवाद, भौतिकवादी यान्त्रिकता से सम्पुष्ट, शुद्धतावादी पूर्व-निर्धारणवाद का एक धर्म-निरपेक्ष रूप कहा जा सकता है। उनके द्वारा आत्मज्ञान की लगनपूर्ण, अनथक खोज, मनःविश्लेषण मे रूपान्तरित, पाप की शुद्धतावादी भावना और स्वीकारोक्ति हो सकती है। उनकी कविता, 'अन्तिम निर्णय' का अभ्यास-लेखन हो सकती है। निश्चय ही उन्होने तटस्थ रीति से, बिना भावुकता के और पूरी ईमानदारी के साथ जानने की चेष्टा की। वे नरक-दण्ड का निर्णय बिना हिचके सह सकते थे। इस प्रकार वे एमर्सन और थोरो की अपेक्षा पुराने न्यू-इगलैण्ड के अधिक निकट थे। आत्म-निर्भरता और पलायन दोनो का वे तिरस्कार करते थे।

किन्तु रॉबिन्सन के भाववाद का विशिष्ट और कटु गुण, न्यू-इगलैण्ड की विशिष्टता नही था। उन्नीसवी सदी के अन्तिम दशक मे, हार्वर्ड कालेज मे अपनी युवावस्था मे उन पर हार्डी और शोपेनहॉर का प्रभाव पडा और जैसा कि उस समय चलन था, भावुक निराशावाद में वे आनन्द लेते थे। बहुत सम्भव है कि रॉयस की रचना 'स्पिरिट ऑफ मॉडर्न फिलासफी' का, जिसमें शोपेनहॉर की सहानुभूति पूर्ण व्याख्या की गयी थी और नैतिक निर्णय के जीवन को साहस और सहनशीलता के जीवन के रूप में चित्रित किया गया था, उन पर दीर्घकालिक प्रभाव पडा। जो भी हो, दु ख सम्बन्धी हार्डी की धारणा की भावुक करुणा को छोड़कर रॉबिन्सन शीघ्र ही आगे बढ़ गये और ज्ञान की पीडा, वास्तविक सत्य, मानवी बन्धन के सत्य तक पहुँचने के लिए, भ्रम की परत के बाद परत को चीरने की यातना उन पर छा गयी। यह विश्वास करने में भी उन्होने रॉयस का

---

१. एडविन आर्लिंगटन रॉबिन्सन, 'कलेक्टेड पोएम्स' में 'दी मैन अगेन्स्ट दी स्काई' (न्यूयार्क, १९३७), पृष्ठ ६७।

"डाइनेमो से प्रार्थना' की इन पंक्तियो के साथ-साथ 'कुमारी मरियम से प्रार्थना' की कुछ पंक्तियो को भी रखना चाहिये।

"मुझे उठाने मे सहायता दो। मेरा अपना शिशु-भार नही,
'वरन् तुम्हारा, जिसने उठाया असफलता को, ईश्वर की
"ज्योति, शक्ति, ज्ञान और विचार की—
"असीम की निष्फल मूर्खता की।"

●

"सदियो तक मैं अपनी चिन्ताएँ तुम्हारे पास लाया,
"और एक बच्चे की बोलियो से तुम्हे तग किया,
"तुमने मेरी प्रार्थनाओ की बोझिल बात सुनी;
"तुम उन्हे स्वीकार नही कर सकती थी, किन्तु तुम कम से कम मुस्कुराई।"
"अगर तब मैंने तुम्हे छोड़ दिया, तो यह मेरा अपराध नही था,
"या अगर अपराध था, तो केवल मेरा ही नही।
"घुमक्कड़ समय के साथ सभी बच्चे भटकते हैं।
"मुझे भी क्षमा करो! तुमने एक बार अपने पुत्र को क्षमा दी थी!"
"क्योकि उसने तुमसे कहा—'क्या तुम नही चाहती कि मैं
"अपने पिता के कार्य में लगूँ?' इसलिए
"अपने पिता को खोजता वह अपने मार्ग पर गया
"सीधे उस सलीब को जिसकी ओर हम सभी को जाना पडता है।"
"इस तरह मै भी उस दल के साथ भटक गया
"जिसने पिता का चिह्न खोजने के लिए धरती को छान डाला।
"मैंन पिता को नही पाया, लेकिन मैंने खो दिया
"जिसकी कदर अब मै ज्यादा करता हूँ, माँ—तुमको।"[1]

एडविन आर्लिंगटन रॉबिन्सन ने बिल्कुल भिन्न प्रकार की कविता की रचना की यद्यपि छिछले पाठक को वे भी असीम की व्यर्थता के अन्तहीन गीत गाते प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत, जिनके जीवन भाग्य द्वारा निर्दिष्ट हैं, उनके लिए पूर्ण सत्य की अनन्त खोज ही रॉबिन्सन के अनुसार स्वतन्त्रता और अर्थमयता का

---

१. मेबेल ला फार्ज 'लेटर्स टु ए नीस ऐण्ड प्रेयर टु दी वर्जिन ऑफ चार्ट्रेस' (कैम्ब्रिज १६२०), पृष्ठ १२५, १२६,

एक प्रतीकात्मक नाटक के रूप मे, और अन्ततः अज्ञान और ज्ञान तथा आकांक्षा के एक साध्यावसान रूपक के रूप में।''[1]

इस दु:खान्तिका में, सामाजिक तूफान से बच निकलने वाला एकमात्र पात्र 'जो' है, जो जीवन शक्ति और बुद्धि का मूर्त्त रूप है और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की सारी आदतो व 'न्यू-इंगलैण्ड की अन्तरात्मा' के नैतिकतावाद से मुक्त है। यह कविता व्यंग्य का श्रेष्ठ उदाहरण है और इससे पता चलता है कि रॉबिन्सन मे गम्भीर भावना के साथ-साथ पूर्ण निस्संगता से, प्रयोजनो की आन्तरिक प्रक्रियाओ के अतिरिक्त, सामाजिक वातावरण का विश्लेषण करने की भी क्षमता थी, जैसे जञ्जीरो में जकड़ा हुआ कोई प्रॉमेथियस अन्य सभी जीवो की बेचैन, अन्धी गतियो को देख रहा हो।

हार्वर्ड के उदास युवा तत्वमीमासक कवियो में, जिनमे से हरएक उसी सत्य द्वारा प्रेरित था, किन्तु जो निरपवाद असामाजिकता मे अलग-अलग रहते थे, जार्ज सान्तायना भी एक थे। स्नातकीय छात्र के रूप में उन्हें भी रॉयस द्वारा प्रस्तुत शोपेनहॉर ने आकृष्ट किया था और उत्तर-स्नातकीय शिक्षा के लिए बर्लिन मे विताये एक या दो वर्षों मे उन्होने शोपेनहॉर और निर्वाण पर ड्यूसेन के भाषण सुने थे। जब वे १८८८ में रॉयस के अधीन डॉक्टर की उपाधि लेने को वापस आये, तो उन्होने अनुरोध किया कि उन्हे शोपेनहॉर पर लिखने की अनुमति दी जाये, किन्तु उन्हें लोत्जे पर निबन्ध लिखना पड़ा, जो एक सामान्य, अगम्भीर कार्य प्रमाणित हुआ। इस बीच उनके अन्दर, बहुत कुछ शोपेनहॉर के समान, एक दोहरा उत्साह पलता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उत्साह बर्लिन में पॉलसेन द्वारा प्रथम उपसत्र में यूनानी नीति-शास्त्र पर और दूसरे उपसत्र में स्पिनोजा के 'नीतिशास्त्र' पर दिये गये भाषणो से उत्पन्न हुआ। उन्होने हिब्रू (यहूदी) विचार-पद्धति और यूनानी विचार-पद्धति के प्रतिस्थापन और सस्थापन को समझा—मनुष्य-जाति के उद्गम और इतिहास के सम्बन्ध में प्रकृतिवाद और नैतिक भावना में, तर्कबुद्धि की प्रेरणा के रूप में निष्ठा, जिसके द्वारा मानव मन सत्य और शाश्वत की अवधारणा करता है और आदर्श रूप मे उनमें भाग लेता है।''[2]

अपने युवा स्वच्छन्दतावाद में सान्तायना ने यूनानी, स्पिनोजावादी और निराशावादी नीतिशास्त्र के एक मिश्रण के रूप में प्राकृतिक पवित्रतावाद को

---

१. हरमन हैगेडॉर्न, 'एडविन आर्लिंगटन रॉबिन्सन' (न्यूयार्क, १९३८), पृष्ठ ३६६।

१. जार्ज सान्तायना, 'दी मिडिल स्पैन' (न्यूयार्क, १९४५), पृष्ठ ६-७

अनुसरण किया कि पूर्ण अवबोध वैज्ञानिक वर्णन के द्वारा नही, वरन् सहानुभूति-पूर्ण रस-ग्रहण के द्वारा होता है।

रॉबिन्सन की कविताओ का वर्गीकरण मानव अस्तित्व के विभिन्न पक्षो पर इस सिद्धान्त को लागू करने के क्रमिक प्रयोगो के रूप मे किया जा सकता है। सर्वप्रथम समूह ने, जिसकी परिणति 'दी मैन अगेंस्ट दी स्काइ' में हुई, मनुष्य को उसकी ब्रह्माण्डीय पृष्ठभूमि में और भौतिक अस्तित्व की 'छायाओ' पर 'प्रकाश' के लिए सघर्ष करते हुए प्रस्तुत किया।

"हम, रात्रि की सन्तान,
"उस आवरण को उतार दें जो दाग को छिपाता है।—
"हम प्रकाश की सन्तान बनें,
"और युगो को बतायें कि हम क्या हैं।[1]"

इन कविताओ में उनका दर्शन और उनकी छन्द-रचना, दोनो ही अपेक्षतया परम्परानुगत हैं। फिर कुछ ऐसी कविताएँ आयी जो मनुष्य द्वारा अपने 'किलो' से निकलने के प्रयास पर केन्द्रित थी—किले रोमानी प्रेम और शौर्यात्मक कर्त्तव्य के मिले-जुले प्रतीक थे। उन्होने प्रेम और कर्त्तव्य के सघर्ष और पलायन की रोमानी प्रक्रिया का चित्रण करने के लिए आर्थर (इंग्लिस्तानी इतिहास मे शौर्य के प्रतीक) की किम्वदन्ती का प्रयोग किया। इस क्रम की सर्वप्रमुख कविता 'मर्लिन' है। इसके बाद उन्होने मनुष्य के घरो पर, विवाह की समस्याओ पर विचार किया और उनके विभिन्न द्वारो में सभी को 'रात्रि' की ओर खुलने वाला चित्रित किया। अन्त में उन्होने 'दैत्यो और चिमनियो' के बारे मे, जनता की अन्धी इच्छा और शक्ति के लिए आर्थिक सघर्ष के बारे में लिखा। इस विषय पर उनकी महान् रचना 'किंग जैस्पर' है जो सचमुच एक श्रेष्ठ दुःखान्तिका है।

" 'किंग जैस्पर' का विचार रॉबिन्सन को, फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के पदासीन होने के बाद बैंक की छुट्टी के समय बोस्टन के स्टेट स्ट्रीट में टहलते हुए मिला। इसके मुख्य पात्र का नाम, उस खदान का नाम था जिसमें पैंतीस वर्ष पूर्व उन्होने अपनी पैतृक विरासत खोयी थी। समकालीन विषय के सम्बन्ध में वे शंकालु थे, किन्तु जिसे उन्होने अपना 'अर्थशास्त्र पर निबन्ध' कहा, उसे लिखने का लोभ वे सवरण नही कर सके। उन्होने कविता को तीन स्तरो पर अर्थसत्ता प्रदान की। सर्वप्रथम दुःखी व्यक्तियो की कहानी के रूप में, जो ऐसे तूफान में फँसे है, जो उनके लिए सारा जीवन है, फिर पूँजीवादी व्यवस्था के विघटन के

१. 'चिल्ड्रेन ऑफ दी नाइट' मे।

"तेरे सिवाय अन्य सारा प्रेम। मेरा मूर्खतापूर्ण जीवन समाप्त हुआ।
"किन्तु ओ पहाड़ियो, जिन्हे मैं दीर्घकाल से जानता हूँ,
"जिन्हें सूर्य ने क्षत नही किया, ओ हिमानी समूह,
"सदा निद्रित, मुझे अपने अचल मे ले लो
"और दृढ़ चट्टानो की अपनी बाहो मे
"मेरा जलता हृदय सुला लो। मेरे ऊपर फैलाओ
"अपना बर्फीला कफन और हिम सुमनो से मुझे ढँक दो,
"कि अनन्त घडियो मे मैं तुम्हारे साथ देखूँ
"और कुछ भाव न रहे। देखो! मैं अपना सर उठाता हूँ,
"शून्य मे, उस सब के तिरस्कार में जो जीवित है,
"आशा और पीड़ा और निरर्थक युद्धो मे।
"इसलिए कि शोक को जानकर, मैं शोक करना भूल गया हूँ,
"और पीडा सहकर, बिना आँसुओ के स्वीकार करता हूँ,
"अपने राशि-ग्रहो का आगमन।"[1]

कवि १८६८ में प्रोफेसर बन गये और इसके बाद एक दर्जन से अधिक वर्षों की ऐसी अवधि आई, जिसे बाद में सान्तायना ने 'निद्राचार' के 'मध्यम-वर्ष' कहा, किन्तु कार्य-फल के आधार पर, जो अत्यधिक फलदायक और सब मिलाकर, शैक्षिक सम्बन्ध और सृजन के सुखद वर्ष थे। अगर हम मानव-प्रगति के सोपानो का वर्णन करने वाली सान्तायना की योजना को स्वयं उनके जीवन पर लागू करें, तो इन वर्षो को हमें उनका 'तर्कनावादी' काल कहना चाहिये, जो उन्हे तर्क-पूर्व की कविता से तर्कोत्तर एकान्त मनन की ओर ले गया। यह गम्भीर अवधि हीगेल के 'फेनामेनॉलाजी डेस जीस्टेस' (बौद्धिक सक्रियता का घटना-क्रिया-विज्ञान) पर रॉयस के भाषणो, मनोविज्ञान पर विलियम जेम्स के भाषणो, और इतिहास-दर्शन पर स्वय सान्तायना के भाषणों से आरम्भ हुआ। दर्शन, कला और धर्म के इतिहास का अधिक निकट से परिचय प्राप्त करने पर, उनके मन मे 'दी लाइफ ऑफ रीज़न' (तर्कबुद्धि का जीवन) का विचार आया। मानव प्रगति की, मनुष्य और समाज मे तर्कबुद्धि के व्यक्तिपरक और वस्तुपरक विकास की यह आकर्षक व्याख्या अरस्तू के नीतिशास्त्र और हीगेल के घटना-क्रिया-विज्ञान का मिश्रण है और भद्र परम्परा के श्रेष्ठ निष्पर्णों के बीच चिरस्थायी स्थान पाने के योग्य है। इसके बारे मे सचाई के साथ वही कहा जा

---

१. जार्ज सान्तायना, 'ल्यूसिफर· ए थियॉलॉजिकल ट्रैजेडी' (शिकागो· १८६६), पृष्ठ १८६-१८७।

अवधारणा की। प्रकट रूप में, अगर हम उनके सॉनेटो पर विश्वास करें तो इसाई धर्म के स्थान पर, जो अब असहनीय था, वे प्राकृतिक धर्म की ओर मुडे। 'शाश्वत माँ, मै गोलगोथा[1] से चलकर तेरे पास आया।' यह कोई आराम देने वाला धर्म नही था, किन्तु सुन्दर था और सबसे अधिक बौद्धिक दृष्टि से साहसपूर्ण था। उन्हे आराम की तलाश नही थी और वे इतना सशक्त अनुभव करते थे कि युवावस्था की 'उस ग्रीष्म तन्द्रा' से 'अपने आगे निराशा और पीछे मिथ्याभिमान पाने के लिए' जागे। अपने अतिशयतापूर्ण नाटक 'ल्यूसिफर' मे अपनी प्रॉमेथियस से भी आगे जाने वाली अवज्ञा को उन्होने काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। इसमें यूनानी और ईसाई देवताओ को एक ही स्थान पर लाने का प्रयास है, किन्तु वे एक-दूसरे से अपनी वात स्वीकार नही करा पाते और अन्त में दोनो नि.शक्त प्रमाणित होते है। आद्यविद्रोही ल्यूसिफर (शैतान) के साथ वे अन्ततः दृढता, किन्तु निराशा के साथ खडे होते हैं।

''ईश्वर महान्, जब गैलिली का तेरा क्षीणकाय पुत्र
''परित्यक्त, सलीब पर अपनी मृत्यु के निकट था,
''तेरे हाथो मे उसने अपनी साँस समर्पित कर दी।
''मृत्यु का व्यर्थ विस्मरण मेरे लिए कोई मरहम नही।
''अब से मैं सूर्य को देखूंगा
''शोक से, क्योकि मेरा चक्र अभी पूरा नही हुआ,
''मेरी अनन्त पीड़ा का चक्र।
''मेरी पीडा ज्यादा बडी है, उससे जितनी किसी व्यक्ति की हो सकती थी।
''जिसका पिता स्वर्ग में था, और जो, सचमुच,
''अपने को सुखी समझता था। और यह आवश्यक है कि मै प्राप्त करूँ,
''उससे बडा, उससे अधिक प्रिय, जो मुझे सहारा दे।
''ओ सत्य, ओ सत्य, अनन्त कटु सत्य,
''तू मेरी शरण बन, जब अन्य सब कुछ अन्धा है।
''तू मेरे उन्नत मन का सार है,
''तेरे शुद्ध स्रोतो पर मै अपना यौवन पुनः नया करूँगा।
''तेरा आनन्द-हीन उर कभी अनुदार नही रहा,
''उसके प्रति जिसने तुझे प्यार किया, अब हम एक हो जायें।
''मेरा कोई अन्य मित्र नही, मैंने छोड दिया है

१. गोलगोथा—यरूसलेम के निकट की पहाड़ी जहाँ ईसा को सलीब पर चढ़ाया गया था।—अनु०

"तेरे सिवाय अन्य सारा प्रेम। मेरा मूर्खतापूर्ण जीवन समाप्त हुआ।
"किन्तु ओ पहाडियो, जिन्हे मैं दीर्घकाल से जानता हूँ,
"जिन्हें सूर्य ने क्षत नही किया, ओ हिमानी समूह,
"सदा निद्रित, मुझे अपने अचल में ले लो
"और दृढ़ चट्टानो की अपनी बाहो मे
"मेरा जलता हृदय सुला लो। मेरे ऊपर फैलाओ
"अपना बर्फीला कफन और हिम सुमनो से मुझे ढँक दो,
"कि अनन्त घड़ियो मे मैं तुम्हारे साथ देखूँ
"और कुछ भाव न रहे। देखो! मैं अपना सर उठाता हूँ,
"शून्य मे, उस सब के तिरस्कार मे जो जीवित है,
"आशा और पीड़ा और निरर्थक युद्धो मे।
"इसलिए कि शोक को जानकर, मैं शोक करना भूल गया हूँ,
"और पीड़ा सहकर, बिना आँसुओ के स्वीकार करता हूँ,
"अपने राशि-ग्रहो का आगमन।"[१]

कवि १८९८ में प्रोफेसर बन गये और इसके बाद एक दर्जन से अधिक वर्षों की ऐसी अवधि आई, जिसे बाद में सान्तायना ने 'निद्राचार' के 'मध्यम-वर्ष' कहा, किन्तु कार्य-फल के आधार पर, जो अत्यधिक फलदायक और सब मिलाकर, शैक्षिक सम्बन्ध और सृजन के सुखद वर्ष थे। अगर हम मानव-प्रगति के सोपानो का वर्णन करने वाली सान्तायना की योजना को स्वयं उनके जीवन पर लागू करें, तो इन वर्षों को हमें उनका 'तर्कनावादी' काल कहना चाहिये, जो उन्हे तर्क-पूर्व की कविता से तर्कोत्तर एकान्त मनन की ओर ले गया। यह गम्भीर अवधि हीगेल के 'फेनामेनॉलाजी डेस जीस्टेस' (बौद्धिक सक्रियता का घटना-क्रिया-विज्ञान) पर रॉयस के भाषणो, मनोविज्ञान पर विलियम जेम्स के भाषणो, और इतिहास-दर्शन पर स्वयं सान्तायना के भाषणो से आरम्भ हुआ। दर्शन, कला और धर्म के इतिहास का अधिक निकट से परिचय प्राप्त करने पर, उनके मन मे 'दी लाइफ ऑफ रीज़न' (तर्कबुद्धि का जीवन) का विचार आया। मानव प्रगति की, मनुष्य और समाज मे तर्कबुद्धि के व्यक्तिपरक और वस्तुपरक विकास की यह आकर्षक व्याख्या अरस्तू के नीतिशास्त्र और हीगेल के घटना-क्रिया-विज्ञान का मिश्रण है और भद्र परम्परा के श्रेष्ठ निरूपणों के बीच चिरस्थायी स्थान पाने के योग्य है। इसके बारे मे सचाई के साथ यही कहा जा

---

१. जार्ज सान्तायना, 'ल्यूसिफर ए थियोलॉजिकल ट्रैजेडी' (शिकागो, १८९९), पृष्ठ १८६-१८७।

सकता है, जो सान्तायना ने अपनी बाद की 'व्यवस्था' के बारे में कहा कि "इसका उद्देश्य केवल मानवीय ज्ञान मे योग देना, एक विमर्शात्मक, चयनात्मक और स्वतन्त्र मन की अभिव्यक्ति बनना है।"[1] इसमें मौलिकता नही है, किन्तु उदार सार्विकता है और यह उस बात को व्यवस्थित, आकर्षक रीति से कहती है, जिसे दर्शन का हर प्रोफेसर कहने की चेष्टा करता है। पहले, और सैद्धान्तिक दृष्टि से आधारभूत खण्ड, 'रीज़न इन कॉमन सेन्स' (सरल समझ में तर्कबुद्धि) मे उन्होने अनुभव के विश्लेषण के रूप में जेम्स के मनोविज्ञान की व्याख्या की। उन्होने बताया कि 'प्रवाह' (जेम्स का 'चेतना-प्रवाह') किस प्रकार 'इरादे' रुचि या संकल्प (जेम्स की 'बुद्धि' या 'कुशाग्रता') की चयनात्मक या विवेकशील क्रिया के द्वारा बोधगम्य सग्रथनों (वस्तुओ) मे सगठित होता है। नैरन्तर्य के साहचर्य पर आधारित सग्रथन भौतिक वस्तुओ का ज्ञान प्रदान करते हैं। समानता के साहचर्य पर आधारित सग्रथन विचार या सम्भाषण के शब्द प्रदान करते हैं। अतः ज्ञान के दो ध्रुव हैं—भौतिकी, अस्तित्व में होने वाले सग्रथनो का उद्घाटन, और द्वन्द्वात्मक तर्क, विचारो, मूल्यो और 'इरादे' के लक्ष्यो का स्पष्टीकरण। 'सम्भाषण में सग्रथन' को वे कभी-कभी 'दीर्घायु सार' कहते है, और उनमे अनुभव के प्रवाह मे एक ओर, तथा भौतिक अस्तित्व मे दूसरी ओर स्पष्ट अन्तर किया गया है।

अपने वस्तुपरक मूर्त्तन में तर्कबुद्धि का जीवन सस्थाओ का रूप लेता है—समाज, धर्म, कला और विज्ञान। अपनी वृत्ति में ये सस्थाएँ जीवन का वही रूप प्रदर्शित करती हैं, जो वैयक्तिक अनुभव प्रदर्शित करता है। प्रगति के तीन स्तर या सोपान देखे जा सकते हैं—पूर्वतार्किक, जिसमें जीवन मूल-प्रवृत्ति, आकाक्षा और रीति के प्राकृतिक आवेगो द्वारा नियन्त्रित होता है; तार्किक, जिसमें जीवन इन आवेगो की चेतन अभिव्यक्ति, स्पष्टीकरण और वस्तुकरण के द्वारा नियन्त्रित होता है और तर्कोत्तर, जिसमें जीवन चेतना और कल्पना की मुक्त प्रक्रिया के अधीन होता है। 'दी लाइफ़ ऑफ़ रीज़न' के विभिन्न खण्ड क्रमशः समाज, धर्म, कला और विज्ञान के इन तीन स्तरो का वर्णन करते हैं।

जैसा उन्होने बाद के निबन्धों में कहा, दर्शन भी इसी जीवन में सहभागी होते हैं। उनका जन्म स्वभावत 'कार्य के नक्शो' या 'पशु-आस्था' की सन्तानो के रूप में होता है, किन्तु वे धीरे-धीरे स्वय अपना एक जीवन उत्पन्न करते है, जिसमें मनुष्य का सामान्य जीवन 'क्रियात्मक आकाश', 'भावनात्मक काल' और 'साहित्यिक मनोविज्ञान' के प्रतिरूपों में रूपान्तरित हो जाता है। विमर्श के इन

---

१ सान्तायना 'दी लिटिल इसेज', पृष्ठ १५६ ।

प्रतिरूपो को उनके उद्गमो और लक्ष्यों के सन्दर्भ में रखकर देखने पर, ये मनुष्य के सुख और उसकी प्रबुद्धता मे सहायक हो सकते हैं, किन्तु यह भी सम्भव है कि वे स्वय लक्ष्य बन जाएँ और अपने स्वाभाविक सन्दर्भ और प्रयोगो की पूर्ण उपेक्षा करते हुए, मन को मुक्त परिकल्पना और रहस्यात्मक आनन्दो के क्षेत्र मे ले जायें।

जैसे ही सान्तायना अपने शैक्षिक कार्यो को छोड़ सके, वैसे ही उन्होंने अपने को मुक्त आत्मा बनने की इस तर्कोत्तर कला मे लगाया। संयोगवश, उनके अमरीका से अपना सम्बन्ध तोडने के शीघ्र बाद ही विश्व-युद्ध शुरू हो गया और तब से अधिकाश मनुष्यो की शक्तियाँ सघर्ष में क्षय होती रही हैं। किन्तु सान्तायना अपने महान् परित्याग पर कायम रहे। वे प्रकृति से भागे नही, न उन्होंने अलौकिक रहस्यवाद में ही पलायन किया, किन्तु वे अपनी एकाकी, सशयालु उच्चता से समाज, मानववाद और नैतिकता को कुछ तिरस्कार से देखते रहे, जहाँ सस्कृत निर्दोषिता और विशाल उदारता के साथ वे साफ देख सकते थे कि मनुष्य की व्यावहारिक चिन्ताएँ 'केवल स्वाभाविक' हैं।

"अन्तिम वस्तुओ पर निष्पक्ष विचार सभी प्राकृतिक आवेगो को, विना उनकी भर्त्सना किये, परिशुद्ध करता है, क्योकि प्राकृतिक होने के कारण वे अनिवार्य और अपने आप में निर्दोष हैं और 'केवल' प्राकृतिक होने के कारण वे सब सापेक्ष और एक अर्थ में, व्यर्थ हैं।...

"आध्यात्मिकता केवल पक्षियो और शिशुओ जैसी निर्दोषिता की ओर एक प्रकार की वापसी है। संसार का अनुभव, विना दृष्टि धुँधली किये, चित्र को उलझा सकता है। यद्यपि अतिजीवन के हितो मे, प्रमुख घटनाओं के पशु-कार्य में वुद्धि का जन्म और विकास विल्कुल प्राकृतिक रीति से होता है, किन्तु मूलत. वुद्धि अपने को इस अधीन कार्य से मुक्त कर लेती है (जो केवल वुद्धि की इन्द्रिय का कार्य है) और आरम्भ से ही उसका अपना दृष्टिकोण परिकल्पनात्मक और निष्पक्ष होता है, और वह ईश्वर, सत्य और शाश्वत का दृष्टिकोण अपनाने को चोरी नही समझती।..

"...जब अन्ततः आत्मा सत्य के समक्ष आती है, तो परम्परा और असगंतता का कोई स्थान नही होता। इसी तरह मानववाद और भद्र परम्परा का कोई स्थान नही होता और स्वय नैतिकता का भी।...

"एक बोझिल पवित्रता, जिसका हमेशा एक अस्वच्छ पक्ष होता है, आदरणीय सद्गुण का स्थान ले लेती है और बहुसख्यक शत्रुओ का भय, आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु बन जाता है। किसी वस्तु की 'प्राकृतिकता' को, उस निर्दोष आवश्यकता को समझे विना, जिसके द्वारा उसने अपना विशेष और शायद

असाधारण रूप ग्रहण किया हो, उस वस्तु को सचमुच समझना सम्भव नही है।''[1]

उन्होने समझा कि वे अकेले खडे होने को तैयार, एक प्राकृतिक पवित्रता और साहस को स्वीकार करते हुए, 'खुले आकाश के नीचे, अप्रतिश्रुत और नग्न' किसी लूथर या स्पिनोज़ा की स्थिति मे हैं। किन्तु उन दोनो के विपरीत, उन्होने विधाता मे विश्वास और प्राकृतिक व्यवस्था से प्रेम को भी त्याग दिया।

''क्या ऐसा प्रतीत नही होने लगा कि एक नग्न आत्मा का एकाकीपन, शायद एकाकी न हो ? जिस अनुपात में हम अपने पशु अधिकारो और दायित्वो का त्याग करते हैं, उसी अनुपात में क्या हम अधिक ताज़ी और अधिक स्वास्थ्य-वर्द्धक वायु में साँस नही लेने लगते ? क्या ऐसा नही हो सकता कि हर वस्तु का परित्याग हर वस्तु को परिशुद्ध कर दे, और हर वस्तु को उसके वास्तविक यथार्थ रूप मे हमे वापस कर दे, और साथ ही हमारे सकल्पो को भी परिशुद्ध करते हुए, हमे उदार बनने की क्षमता प्रदान करे।''[2]

निरुद्विग्न और एकाकी, अब उन्होने अस्तित्व के क्षेत्र का सर्वेक्षण किया और मुक्त आतमा के स्वाभाविक निवास के रूप में एक व्यवस्थित सार-तत्व सिद्धान्त (ऑन्टोलाजी) का निर्माण किया। उन्होने अपनी जेम्स से ली गयी 'सरल-समझ' को, 'इरादे' और 'प्रवाह', सकल्प और चेतना-प्रवाह के आनुभविक मिश्रण मे अपने विश्वास को त्याग दिया और ह्यूम के मनोविज्ञान को पुन अपनाया। उन्होने कहा कि 'विवेकशील सारो की अन्तःप्रज्ञा, वस्तुओ में 'पशु-विश्वास' से बिल्कुल असम्बद्ध हो सकती है। किसी प्रस्तुत वस्तु का अस्तित्व आवश्यक नही है, क्योकि ज्ञान की उत्पत्ति प्रस्तुत की अन्त.प्रज्ञा मे नही होती, वरन् अन्य भौतिक वस्तुओ के साथ जीवो की परस्पर प्रक्रिया से होती है। कल्पना या अन्त प्रज्ञा की प्रक्रिया इस खोज द्वारा मुक्त हो गयी है कि विज्ञान का एक व्यावहारिक, पशु आधार है। इस प्रकार, शोपेनहॉर के प्रति अपने युवावस्था के उत्साह को सान्तायना ने एक अधिक संशयवादी घटना-क्रिया-विज्ञान और अधिक व्यवहारवादी ज्ञान-मीमांसा के द्वारा गम्भीरता प्रदान करके समयानुकूल बनाया। 'दी रिआल्म्स ऑफ़ बीइंग' (अस्तित्व के क्षेत्र) के चार खण्डो में क्रमशः सार, पदार्थ, सत्य और आत्मा का अन्वेषण किया गया है और संशयवाद

[1] जार्ज सान्तायना, 'दी जेण्टील ट्रेडिशन ऐट बे' (न्यूयार्क, १९३१), पृष्ठ ४६, ६४, ६५, ७१-७२, ७३।

[2] जार्ज सान्तायना, 'ऑबिटर स्क्रिप्टा, लेक्चर्स, एसेज एण्ड रिव्यूज' (न्यूयार्क, १९३६), पृष्ठ २८७।

तथा पशु आस्था के इस मिश्रण की व्याख्या एक व्यवस्थित सार-तत्व विज्ञान के रूप में की गयी है। किन्तु यह ग्रन्थ केवल सार-तत्व विज्ञान ही नही है, क्योकि इसमे सान्तायना ने अपने सौन्दर्य-बोध के साथ-साथ, जो कुछ सासारिक ज्ञान उनके पास था उसका भी समावेश किया है। निस्सन्देह यह दार्शनिक सरचना के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणो में से एक है और निश्चय ही हमारे काल के बाद भी जीवित रहेगा, क्योकि यह किसी भी युग और सस्कृति के मननशील पाठक को सम्बोधित करता है और एक दीर्घकालिक सत्य को एक नयी भापा मे व्यक्त करता है। यह आग्रह करके कि हार्वर्ड मे सिद्धान्त की जो कई तूफानी हवाएँ उनके चारो ओर बह रही थी और जो अब भी अमरीकी दर्शन मे विरोधी दिशाओ मे बहती हैं, उन्हे स्थिरता और दिशा प्रदान करने के प्रयास के रूप में, निकट अतीत के अमरीकी विचार के परिप्रेक्ष्य में इस पर विचार किया जाए, इसके लेखक से विवाद करना व्यर्थ होगा, क्योकि जहाँ भी दर्शन पनपे, वहाँ यह ग्रन्थ एक स्मरणीय उपलब्धि के रूप में स्थान पाने के योग्य है। फिर भी, यह बता देना उचित होगा कि इसकी आन्तरिक कठोरता मे 'अन्तिम शुद्धतावादी' का इतना अश है और इसके सिद्धान्त मे प्रकृतिवादी तत्वमीमासा का इतना अंश है कि इससे अवश्य ही अमरीका मे इसके प्राकृतिक उद्गम का पता चल जाता है, चाहे अधिक स्वच्छ आकाशो के नीचे और अधिक सूक्ष्म रुचियो वाले लोगो के बीच, अन्तत. इसका भाग्य जो भी हो।

सातवाँ अध्याय

•

भाववाद

शैक्षिक जागरण

शैक्षिक रूढ़िवाद की भूमि से भाववाद का उद्भव धीरे-धीरे हुआ, किन्तु अपने विकास के साथ यह एक नया जीवन लाया। अमरीकी विचार और शिक्षा में इस नयी भावना का सम्पूर्ण प्रभाव आश्चर्यजनक था और इसे अगर पुनर्जागरण नही, तो पुन.-स्वास्थ्यलाभ अवश्य कहना चाहिये। उन्नीसवी शताब्दी की अन्तिम चौथाई में, हमारे प्रतिष्ठित कॉलेजो और विश्वविद्यालयो के संकायो में, 'दर्शन' एक स्वतन्त्र विभाग का नाम हो गया। दार्शनिक विमर्श की कला को इससे लाभ हुआ या हानि, यह अब भी एक विवादास्पद प्रश्न है, किन्तु स्पष्टत: यह पाठ्यक्रम में एक महत्वपूर्ण परिवर्त्तन था और दर्शन की शैक्षिक प्रतिष्ठा में इस अन्तर के कुछ अधिक सामान्य सास्कृतिक निहितार्थ भी थे। दार्शनिक विचार और लेखन व्यावसायिक बन गये और फलस्वरूप दर्शन की अमरीकी 'व्यवस्थाएँ' उत्पन्न होने लगी। अमरीकी सस्थाओ मे दर्शन की पूर्ण-विकसित, देशीय व्यवस्थाएँ इतनी देर से प्रकट हुईं, यह मुख्यत: इस तथ्य के कारण था, जिसका जिक्र हमने शैक्षिक रूढ़िवाद के उदय की चर्चा करते समय किया था कि दार्शनिक विचार मुख्य धर्मशास्त्रीय, राजनीतिक और आर्थिक विचार-व्यवस्थाओ का एक अभिन्न अग था और यह कि 'मानसिक दर्शन' का उदय होने के पहले एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में दर्शन की मांग बहुत कम थी। अब हमें एक शैक्षिक अनुशासन के रूप में 'मानसिक दर्शन' के विभाजन का वर्णन करना है, एक ओर 'मानसिक विज्ञान' या मनोविज्ञान में, और दूसरी ओर परिकल्पनात्मक विचार के अवशेष में, जिसकी अवधारणा अब बौद्धिक परमता, 'स्वत. दर्शन' या 'प्राथमिक दर्शन' के रूप में की गयी, जिसमें ब्रह्माण्ड-दर्शन, तत्व-मीमांसा और ज्ञान-मीमासा का मिश्रण था। धर्मशास्त्र, अलकार-शास्त्र और राजनीति से

स्वतन्त्र, सार-रूप और आदर्श में शिक्षा-शास्त्र से भी स्वतन्त्र, यद्यपि इसके प्रोफेसर आमतौर पर अध्यापको के रूप में अपनी जीविका अर्जित करते हैं, दर्शन और मनोविज्ञान का व्यावसायिक रूप स्वय जर्मनी से लाया गया था। अतः यह बात समझी जा सकती है कि भाववाद की जर्मन-धाराओ को अमरीकी जीवन मे सबसे पहले व्यवस्थित अभिव्यक्ति मिली।

जर्मन भाववाद की व्यवस्थित व्याख्या करने वाले पहले अमरीकी धर्मशास्त्री और प्रोफेसर, यूनियन कॉलेज के लारेन्स परसियस हिकॉक (१७९८–१८८८) थे। कैलेब स्प्राग हेनरी की भाँति, छात्र-जीवन में उन्होने उस विलक्षण अध्यापक एलिफालेट नॉट से प्रेरणा पायी और (वेस्टर्न रिज़र्व तथा ऑबर्न सैमिनरी में) धर्मशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में उनका दृढ निश्चय था कि एक पूर्णत, आलोचनात्मक, तर्कनावादी धर्मशास्त्र निरूपित करें। यह ध्यान देने योग्य है कि उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना आलोचनात्मक, व्यावहारिक भाववाद की एक अभिव्यक्ति है। १८३३ मे जब वे लिचफील्ड, कानेक्टिकट मे पादरी थे, उन्होने 'कानेक्टिकट पीस सोसायटी' के समक्ष एक आकर्षक रूप मे तर्क-संगत और प्रभावकारी भाषण 'दी सोर्सेज़ ऑफ मिलिटरी डेल्यूज़न ऐण्ड दी प्रेक्टि-केबिलिटी ऑफ देयर रिमूवल' (सैनिक भ्रम के स्रोत और उसे दूर करने की व्यावहारिकता) पर दिया। १८६८ में यूनियन कॉलेज की अध्यक्षता से अवकाश ग्रहण करने के बाद, हिकॉक ऐमहर्स्ट, मॅसाचुसेट्स राज्य मे रहने लगे, जहाँ वे अपने भाजे और भूतपूर्व छात्र, ऐमहर्स्ट कालेज मे दर्शन के प्रोफेसर और बाद मे कॉलेज के अध्यक्ष जूलियस एच-सील्ये के साथ रह सकते थे। सील्ये ने उनके सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थो को सशोधित किया और इस प्रकार उनके प्रभाव को कई शैक्षिक पीढियो तक जारी रखा।

हिकॉक ने काण्ट के पदार्थों के सिद्धान्त को, सवेद, समझ और तर्कबुद्धि की तीन मन शक्तियो से सम्बद्ध तीन 'प्राग अनुभव बौद्धिक क्रियाओ' की एक व्यवस्था मे पुन. निर्मित किया। सवेद्य अनुभव के एक आसाधारण रूप मे आलोचनात्मक विवरण के बाद, जिसका अन्तिम और असामान्य खण्ड 'दृश्य-घटना का वैध अस्तित्व' सम्बन्धी था, उन्होने समझ के 'रचनात्मक' कार्यो का विस्तृत विवेचन किया और 'प्रकृति की झूठी व्यवस्थाओ का पर्दाफाश' किया, जिनमें वे कडवर्थ के प्लेटोवाद और न्यू-इग्लैण्ड के एडवर्ट्स समर्थक धर्मशास्त्रियो को भी गिनते थे। उनकी आलोचनात्मक रचना के अन्त में, तर्कबुद्धि में प्राग् अनुभव 'अर्थग्रहण' का विश्लेषण है। उनके मतानुसार तर्कबुद्धि की प्राग् अनुभव बौद्धिक क्रिया का सम्बन्ध 'पूर्णतः अलौकिक से' था और इसका क्षेत्र वह था "जिसे काण्ट ने सारे परिकल्पनात्मक दर्शन से अलग कर दिया है और उस

विशिष्ट क्षेत्र के अन्तर्गत रखा है, जो उनके अनुसार, व्यावहारिक तर्कबुद्धि है।"[1] हिकॉक के अनुसार तर्कबुद्धि शुद्ध स्वत.स्फूर्ति या क्रिया का अर्थ ग्रहण कर सकती है।

"सरल शुद्ध क्रिया की यह तर्कबुद्धि-अवधारणा, इस प्रकार, दिक्-काल और वस्तुओ की प्रकृति से किसी प्रकार सीमित नही है और सभी रूपो में प्रकृति से आगे जाने की एक प्राग्-आनुभविक शर्त है। सिवाय शुद्ध माध्यम की इस तर्क बुद्धि-अवधारणा के, जो प्रकृति की किन्ही भी स्थितियो के अन्तर्गत नही आती और जिसमें तार्किक निर्णय के आवश्यक सम्बन्धो में से कोई भी उपस्थित नही होता, प्रकृति से अलौकिक की ओर जाने का कोई भी मार्ग खोजना बिल्कुल असम्भव है। और यही व्यक्तित्व का हमारा पहला तत्व होगा।...

"अर्थग्रहण की क्रिया की मन.शक्ति के रूप मे, तर्कबुद्धि के पूर्ण विचार का, इस प्रकार व्यक्तित्व में परम स्थान है। 'प्रकृति को किसी शुद्ध स्वत-स्फूर्ति, स्वायत्तता और स्वतन्त्रता में समझा जा सकता है।' या, वही बात दूसरे शब्दो में—'तर्कबुद्धि प्रकृति को एक परम व्यक्ति के दायरे में समझ सकती है'।"[2]

'राशनल साइकॉलॉजी' (तर्कनावादी मनोविज्ञान) जहाँ समाप्त होती है, वही से 'राशनल कास्पोलॉजी' (तर्कवादी ब्रह्माण्ड- दर्शन) आरम्भ होती है।

"कही कोई स्थिति ऐसी अवश्य होगी जहाँ से साफ देखा जा सके कि सृष्टि के ऐसे नियम हैं जो अवश्यमेव अटल और शाश्वत सिद्धान्तो द्वारा निर्धारित होते हैं। प्रकृति में किसी वस्तु को और उसी प्रकार स्वय प्रकृति को भी, वही तक बोधगम्य बनाया जा सकता है, जहाँ तक वह किसी तार्किक सिद्धान्त के अन्तर्गत आती है। और, ऐसा सिद्धान्त, प्रकृति के उद्गम में ही नियन्त्रक रहा होगा और बनाया गया होगा। अन्यथा, प्रकृति सदैव अर्थहीन और लक्ष्यहीन रहेगी। अत. सिद्धान्त किसी सर्वथा सम्पूर्ण अन्तर्दृष्टि को अपने मे ही दिखा देगा कि तथ्य क्या होंगे और परम-तर्कना के लिए तथ्यो के किसी भी आगमन की आवश्यकता नही हो सकती।"[3]

---

१. लारेन्स परसियस हिकॉक, 'राशनल साइकॉलॉजी, ऑर दी सब्जेक्टिव आइडिया ऐण्ड दी अब्जेक्टिव लॉ ऑफ आल इण्टेलिजेन्स' (श्रेनेक्टैडी, न्यूयार्क, १९५४), पृष्ठ १५६।

२. वही, पृष्ठ ६२०।

३. लॉरेन्स परसियस हिकॉक, 'राशनल कास्मोलॉजी, ऑर दी एटर्नल प्रिंसिपिल्स ऐण्ड दी नेसेसरी लॉज ऑफ दी युनिवर्स' (न्यूयार्क, १८५८), पृष्ठ ३।

परम तर्कना या ईश्वर का ज्ञान कभी भी 'सम्बन्धकारक समझ के निर्णयो की वस्तु' नही हो सकता, वरन् केवल 'तर्कना की अन्तर्दृष्टि की वस्तु' हो सकती है। पर्याप्त है कि सृष्टि में हम प्रकृति में उत्पन्न होने वाले तथ्यो के सम्बन्ध में एक असंदिग्ध । वयात्मकता पाते हैं'।[1]

ईश्वर तर्कनापरक है, इसका एकमात्र प्रमाण हमारे पास यही है कि उसकी सृष्टि की परिणति तर्कबुद्धि मे होती है। हिकॉक ने प्रभावशाली रूप में सृष्टि को बेचैनी से 'अपने को पाने और खोने' की प्रक्रिया के रूप में चित्रित किया, जब तक कि अन्त में उसने मनुष्य में अपने जनक के साथ तार्किक समागम प्राप्त करके विश्राम की स्थिति प्राप्त नही की।

अपनी अगली महान् रचना, 'ह्यूमैनिटी इम्मॉर्टल, ऑर मैन ट्राइड, फालेन ऐण्ड रेडीम्ड' (अमर मानवता, या मनुष्य का विचारण, पतन और उद्धार, १८७२) में हिकॉक ने मनुष्य के इतिहास को, उसके प्राकृतिक जीवन से शाश्वत जीवन में आरोहण की प्रक्रिया के रूप में, 'पूर्ण विचार में समझने' की चेष्टा करके अपने इस सिद्धान्त को पूरा किया कि मनुष्य सृष्टि का अन्तिम रूप है। मनुष्य को एक 'मध्य अवस्था' में चित्रित किया गया है, जिसमें वह अन्तिम निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा है, जब मनुष्य की परिमित आत्मा की सीमाएँ, सृजनकर्ता के 'बहुतेरे कार्यों की साम्यता को समझने' में उसकी अयोग्यता दूर हो जायेगी और ईश्वर का उद्देश्य 'स्पष्ट हो जायेगा'।

मानव इतिहास के इस सिद्धान्त मे निहित संशयवाद का अनुभव सबसे अधिक स्वय हिकॉक ने किया। रूढ़िवादी पादरियो ने उन्हे पैन्थीस्ट[2] कह कर उनकी आलोचना की थी, किन्तु इन आरोपो से उन्हें इतनी चिन्ता नही हुई, जितनी स्वय अपने इस बोध से कि प्रागनुभव सिद्धान्तो और नियमो पर निर्भर रहने से परम तर्कना का अस्तित्व चाहे प्रमाणित हो सके, किन्तु इससे मानवी अनुभव की गति केवल उद्धार की पुराकथा के सन्दर्भ में ही बोधगम्य रह जाती है। अत धर्मशास्त्र या मात्र प्राकृतिक नियम के सन्दर्भ में मानवी अनुभव की एक पूर्णत. तर्कनावादी समझ असम्भव प्रतीत होती थी। अत. हिकॉक का ध्यान इतिहास के तर्क में लगा। अनुभव के युक्तिकरण के रूप में अरस्तू और हीगेल, दोनो के तर्कशास्त्रो का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे कि 'अरस्तूवादी चल नही सकता और हीगेलवादी रुक नही सकता।' अत. उन्होने

---

१. वही, पृष्ठ २५७।

२ पैन्थीज्म—यह सिद्धान्त कि ईश्वर हर वस्तु है और हर वस्तु ईश्वर है।—अनु०

संग्रथित सार्विकता के तर्कशास्त्र का निर्माण करने का अन्तिम और साहसपूर्ण प्रयास किया, जिसे उन्होने 'तर्कना का तर्कशास्त्र, सार्विक और शाश्वत' (दीलाजिक आफ रीजन, यूनिवर्सल ऐण्ड एटर्नल, १८७५) कहा। भाववादी तर्कशास्त्र के इस पुर्नानिरूपण में उन्होने तार्किक और आनुभविक पद्धतियो के द्वैत को दूर करने की चेष्टा की, जो चेष्टा उनकी अन्य सभी रचनाओ मे निहित है और मानवी अनुभव मे परम अनुभव की रेखाओ को चिह्नित करने का प्रयास किया। अर्थात् उन्होने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि यहाँ और इस समय भी मानवी अनुभव मे ऐसे तत्व हैं जिनकी विशेषता है कि वे 'आत्म-सारभूत, आत्म-बुद्धिपूर्ण, आत्म-भरित, आत्म-अधिकृत, और आत्म-स्वीकृत' हैं। उन्होने यह आशा व्यक्त की कि एक पूर्णत: अमूर्त्त विज्ञान के रूप में गणितीय तर्कशास्त्र, अपनी सीमाओ से मुक्त हो सकेगा और एक 'सार्विक' विज्ञान का आधार वन सकेगा, जिसके सन्दर्भ में 'सग्रथित सार्विकताओ' का पर्याप्त निरूपण हो सके।

"यद्यपि अपेक्षतया कम लोग अभी यह देख पाते है कि ऐसा ज्यादा अच्छा तर्कशास्त्र, एक सर्व-व्यापी सशयवाद से बचने का एकमात्र उपाय है, किन्तु इसका पूर्ण विश्वास कि वह समय ज्यादा दूर नही जब यह एक सामान्य विश्वास बन जायेगा और एक नये और बेहतर तर्कशास्त्र की आवश्यकता का व्यापक रूप में अनुभव होगा, हम पर एक अतिरिक्त भार डालता है कि हम न केवल इस स्थिति को शीघ्र लाने के लिए जो कुछ हो सके करें, वरन् इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी जो कुछ हम कर सकते हो करें।"[1]

ऐमहर्स्ट के शैक्षिक जागरण को, जिसकी नीव हिकॉक ने इतनी अच्छी डाली थी, उनके एक शिष्य चार्ल्स एडवर्ड गारमैन की रचनाएँ एक असाधारण पुनर्जागरण तक ले गयी। उन्होने कॉलेज के दिनो में, हिकॉक की रचनाओ को, या कॉलेज के अध्यक्ष सील्ये के अनुसार 'ज्योति' को रटते हुए बहुतेरा समय व्यर्थ गँवाया था। किन्तु बाद के वर्षों में, स्वतन्त्र अध्ययन और मनन के द्वारा, उन्हे भाववादी सिद्धान्त के महत्व का निजी रूप में बोध हुआ। कॉण्ट के दर्शन ने, विशेषत. उनके अपने अनुभव मे एक नया जीवन प्राप्त किया। गारमैन ने अपना सारा जीवन इस कला के विकास में लगाया कि छात्र शैक्षिक समस्याओ को महत्वपूर्ण निजी चिन्ता का विषय समझें। उनका विचार था कि जिस प्रकार उनकी अपनी पीढ़ी प्रकृतिवाद द्वारा उत्पन्न धार्मिक सकट मे व्यस्त रही, उसी प्रकार अगली पीढ़ी उस सामाजिक सकट में व्यस्त रहेगी, जो 'लोभ और भ्रष्टाचार' की अभिवृद्धि मे

---

१. लॉरेन्स परसियस हिकॉक, 'दी लॉजिक ऑफ रीजन, यूनिवर्सल ऐण्ड एटर्नल' (बोस्टन, १८७५), पृष्ठ ८।

उत्पन्न हो रहा था। अतः उनके लिए भाववाद का अर्थ था, दोहरी नागरिकता का सिद्धान्त—प्रकृति की नागरिकता और राज्य की नागरिकता। उन्होंने ज्ञान और आचार दोनो मे ही 'मानव-समरूप' पूर्वग्रहो के आलोचनात्मक स्थानापन्न के रूप में 'आध्यात्मिक सिद्धान्तो' या वस्तुपरक मानको की शिक्षा देने मे हिकॉक के सामाजिक दर्शन का बड़ी प्रभावकारी रीति से उपयोग किया। किन्तु हिकॉक के ग्रन्थो का उपयोग करने के बजाय, दार्शनिक समस्यायो का व्यावहारिक महत्व प्रदर्शित करने के लिए (एक समय मे एक) और इस प्रकार अपने छात्रो को कक्षा में गम्भीर वाद-विवाद के लिए और पाठ्य-ग्रन्थो को बुद्धिपूर्वक पढ़ने के लिए तैयार करने के उद्देश्य से, उन्होने स्वय अपनी कुछ 'पुस्तिकाएँ' अपनी कक्षाओ में बाँटी। इस प्रकार उन्होंने सील्ये के निष्प्राण ग्रन्थ को—सील्ये को 'दर्शन के लेखको मे सबसे गहरा—पैठने वाला, सबसे-अधिक-देर-तक-नीचे-ठहरने-वाला, और सबसे बड़ा कीचड-निकाल-लाने-वाला'[1] कहा जाता था—एक निजी अनुशासन में परिवर्तित कर दिया, जिसने बहुसख्यक प्रतिष्ठित अमरीकी विचारको को जन्म दिया। उनका उत्साह सक्रामक था, क्योकि वे सचमुच विश्वास करते थे कि न्यू-इंगलैण्ड के शैक्षिक क्षेत्र मे हो रहा दार्शनिक जागरण अमरीकी जीवन में एक महान् सुधार का आरम्भ होगा।

अमरीकी जीवन और नैतिकता को सुधारने वाली शक्ति के रूप मे कॉण्ट के भाववाद पर गारमैन की आस्था मे शिक्षको का एक विशिष्ट समूह सहभागी था। इनमे से हर एक की अपनी अलग विचार-व्यवस्था थी, किन्तु वे अपने छात्रो मे दर्शन के महत्व की भावना जगाने मे और इस प्रकार चर्चो मे स्वतन्त्र 'आध्यात्मिक ऊर्जा' के एक स्रोत का निर्माण करने में सफल हुए। ये भाववादी, चर्चो की प्रतिद्वन्द्विता में अलग उपदेशपीठो की स्थापना करना नही चाहते थे, फिर भी इन्होने शैक्षिक आस्था और नैतिकता को पादरियो के प्रभाव से मुक्त किया, जैसा कि साहित्यिक परात्परवादियो ने शिक्षा संस्थाओ के बाहर किया था। ये लगभग सारे ही दैवीवादी थे, किन्तु ईश्वर के प्रति उनकी दृष्टि प्रार्थना की अपेक्षा आलोचना की थी और उन्होंने उस धर्म-निरपेक्ष आध्यात्मिकता का विकास किया, मार्श और हेनरी जिनके पैगम्बर रहे थे। हार्वर्ड में जॉन हर्न्ट पामर ऐसा सामाजिक नीति-शास्त्र पढ़ा रहे थे, जिसका उद्देश्य शुद्धतावाद और हीगेलवाद के बीच मध्यस्थता करना था। 'मैसाचुसेट्स इन्स्टिट्यूट ऑफ

---

१. चार्ल्स एडवर्ड गारमैन, 'लेटर्स, लेक्चर्स ऐण्ड ऐड्रेसेज', एलिज़ा माइनर गारमैन द्वारा सम्पादित (कैम्ब्रिज १६०६), पृष्ठ ४४३।

टेक्नालाजी' में और बाद में कैलिफोर्निया विश्वविद्या जॉर्ज होल्म्स हॉविसन एक बहुत्ववादी, वैयक्तिक भाववाद की शिक्षा दे रहे थे। बोस्टन विश्वविद्यालय में बोर्डेन पार्कर बाउन एक अधिक एकत्ववादी वैयक्तिकता का अध्यापन और प्रचार कर रहे थे। येल, मिडिलबरी और फिर स्मिथ कॉलेजो में मॉसेज स्टुअर्ट फेल्प्स थे, जिनकी अगर चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही आकस्मिक मृत्यु न हो जाती तो वे इस समूह के सर्वप्रमुख सदस्यो में होते। विलियम कॉलेज के जान वैस्कम और जॉन ई० रसेल थे, वेस्लेयन विश्वविद्यालय के ए० सी० आर्मस्ट्रॉना थे, येल के जार्ज ट्रम्बुल लैड थे, पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के जार्ज फुलर्टन थे, जॉन्स हॉपकिन्स और मिशिगन विश्वविद्यालयो के जार्ज सिल्वेस्टर मॉरिस थे, प्रिन्सीटन के जॉन ग्रायर हिबेन और अलेक्जेण्डर टी० आर्मण्ड थे, कॉर्नेल के जैकब गूल्ड शुरमन थे, और फिर कोलम्बिया के निकोलस मरे बटलर थे ही।[1] सामान्य प्रेरणा से अनुप्राणित होकर, इन महान् शिक्षको ने न केवल अमरीका में दर्शन सम्बन्धी व्यावसायिक प्रयत्नो की नींव डाली, वरन् व्यवस्थित दर्शन को अमरीकी जीवन में एक गम्भीर, आलोचनात्मक कार्य-स्थान प्रदान किया, जिसकी शक्ति शीघ्र ही शिक्षा-संस्थाओ से बाहर बहुत दूर तक प्रकट हुई।

---

१. कोलम्बिया की स्थिति विशिष्ट थी। स्कॉटलैण्ड से बुलाये गये प्रोफेसर चार्ल्स एम० नेर्ने रूढ़िवाद के पुराने समर्थक थे। १३ अप्रेल, १८६३ को ही, जी० टी० स्ट्रॉन्ग की अप्रकाशित डायरी के अनुसार, ट्रस्टियो ने निश्चय किया था कि प्रोफेसर नेर्ने के 'आनुभविक सौन्दर्यशास्त्र' सार-तत्व विज्ञान, 'तृतीय सकेतन', जाले, स्कॉटी तत्वमीमासा, हिकॉक और पाखण्ड को साफ करके, इन कोरी कल्पना की छायाओ के स्थान पर साहित्य के इतिहास और दर्शन के इतिहास की ठोस और बोधगम्य शिक्षा प्रतिष्ठित की जाये, जैसी कि मैक्विकार हमें दिया करते थे। अन्ततः आठवें दशक में उन्होंने शरीर-क्रियात्मक मनोविज्ञान के एक प्रोफेसर की तलाश की और दुर्भाग्यवश प्रिन्सीटन के आर्चिबल्ड अलेक्जेण्डर को नियुक्त किया, जो शरीर-क्रियात्मक मनोविज्ञान के सम्बन्ध में कुछ न जानने के अतिरिक्त, नेर्ने से भी खराब अध्यापक सिद्ध हुए। धीरे-धीरे, जर्मनी में अध्ययन करके लौटे हुए निकोलस मरे बटलर ने दर्शन और मनोविज्ञान में आलोचनात्मक शिक्षण संगठित किया। पहला पाठ्य-क्रम १८८५-८६ में आरम्भ हुआ। १८८६ में बटलर दर्शन के प्रोफेसर नियुक्त हुए और १८९० में उन्होंने एक स्नातकीय 'दर्शन विद्यालय' स्थापित किया।

भाववाद की धाराएँ

इस शैक्षिक पुनर्जागरण से, दर्शन के लगभग—महान् प्रोफेसरो की महान् पीढी से, जिनमे से हर एक ने स्वतन्त्र रूप से जर्मन भाववाद का एक अमरीकी सस्करण निरूपित किया, दर्शन की कई धाराएँ विकसित हुई, जो एक पीढ़ी से अधिक समय तक प्रभावी रही हैं और जिनमें से हर एक अपने विशिष्ट प्रकार के भाववाद को प्रतिष्ठित करती है। हम चार मुख्य धाराएँ पहचान सकते हैं, जिनमें से हर एक का एक प्रभावशाली शैक्षिक केन्द्र है, एक संस्थापक है और न्यूनाधिक निष्ठावान् शिष्यो की एक पीढ़ी है। इन्हें सुविधापूर्वक इस प्रकार रखा जा सकता है—

१. वैयक्तिकता : बोस्टन विश्वविद्यालय, बोर्डेन पार्कर बाउन ,

२. परिकल्पनात्मक या वस्तुपरक भाववाद : कॉर्नेल विश्वविद्यालय, जेम्स एडविन क्रीटन ,

३. गत्यात्मक भाववाद; मिशिगन विश्वविद्यालय, जार्ज सिल्वेस्टर मॉरिस, और

४ परम भाववाद : हार्वर्ड विश्वविद्यालय, जोसिया रॉयस।

इनमें से वैयक्तिकता देववाद और शैक्षिक रूढ़िवाद के क्षेत्र के सर्वाधिक निकट रही है, सर्वाधिक व्यक्त रूप में एक धर्म के दर्शन का कार्य करती रही है और इसमे एक सम्बद्ध विचारधारा के बाह्य चिह्न सबसे अधिक कायम रहे हैं। यह मेथॉडिस्ट (धर्म-सन्देशवादी) चर्च की सकीर्ण बौद्धिक सीमाएँ तोडने में सहायक हुई। मेथॉडिस्ट चर्च में अश्रुत सिद्धान्तो के प्रति भय और निरस्कार की धर्म-सन्देशवादी भावना आ रही थी, किन्तु अपने वैयक्तिकतावादी धर्मशास्त्रियों को सुन-सुन कर वह दार्शनिक शब्दावली का और अगर उसके सर्वाधिक साहसपूर्ण नेताओ को देखें, तो मन के दार्शनिक दृष्टिकोणो का भी अभ्यस्त हो गया है। बोस्टन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बाउन अपनी पीढ़ी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली अध्यापको और स्वतन्त्र-बुद्धि व्यक्तियो में थे और यद्यपि उनकी पुस्तको के सिद्धान्त पुराने पड़ गये हैं, किन्तु अपनी स्पष्टता और विचार तथा अभिव्यंजना-शक्ति के कारण पढने में अब भी रोचक हैं। बाउन ने अपना ध्यान साहसपूर्वक अपने काल के शैक्षिक दर्शन की दो मुख्य समस्याओ में लगाया—उन्होने मन.शक्ति मनोविज्ञान की दुर्बलताएँ प्रदर्शित कीं और एक सारवान आत्मा में पुरानी पड़ी आस्था के स्थान पर आत्मा के आनुभविक यथार्थ की विवेचना प्रस्तुत की। सर्वप्रथम दार्शनिक प्रेरणा इन्हें उस समय मिली जब वे न्यूयार्क विश्वविद्यालय में एक छात्र थे, जहाँ उन्होंने स्पेन्सर की एक सशक्त आलोचना

लिखी। फिर, जर्मनी मे स्नातकोत्तर अध्ययन के समय उन पर लॉट्ज़े का प्रभाव पडा। एक ओर शैक्षिक रूढिवाद तथा दूसरी ओर अग्रेजी अनुभववाद की आलोचना करने मे लॉट्ज़े के आनुभविक आत्म के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण प्रासगिकता का उन्हे तत्काल अनुभव हुआ। लॉट्ज़े के सिद्धान्त मे आत्म या व्यक्ति एक अन्तिम, आनुभविक यथार्थ है, जिसकी एकता अनुभव और प्रकृति दोनो के लिए आधारभूत बताई गयी है। बाउन ने इस 'परात्परवादी अनुभववाद' के देववादी निहितार्थों को विकसित किया और कॉण्ट के पदार्थों के सिद्धान्त को पुनर्निरूपित किया। अपने तर्क को पर्याप्त कारण के सिद्धान्त पर आधारित करते हुए वे इस नतीजे पर पहुँचे कि व्यक्तियो का कारण केवल व्यक्ति ही हो सकते हैं, और यह कि अन्तिम कारण या जनक को 'कम से कम वैयक्तिक' अवश्य होना चाहिए। बाउन अच्छी तरह समझते थे कि परिकल्पनात्मक स्थापनाएँ और अभिधारणाएँ 'ज्ञान की प्रगति' मे उपयोगी नही होती, किन्तु इसके बाद भी उन्होने इनको मनुष्य के सकल्प के अनिवार्य और प्राकृतिक रूप कह कर इनका समर्थन किया।

"स्थापनाएँ दो प्रकार की होती है। कुछ केवल तथ्यो की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं और हमे तथ्यो पर कोई नया नियन्त्रण नही प्रदान करती। ये पर्याप्त कारण की माँग को सन्तुष्ट करने के लिए आवश्यक हैं। और जब कोई प्रतियोगी स्थापना मन को उतना अधिक सन्तुष्ट नही करती, तो हम उससे मिलने वाली मानसिक शान्ति के लिये उसे अपनाते है, यद्यपि ज्ञान की प्रगति के लिये हम उसका उपयोग नही कर सकते। अणु सिद्धान्त, भूविज्ञान के अधिकाश सिद्धान्त, भौतिकी के बहुतेरे सिद्धान्त, विश्व का देववादी दृष्टिकोण आदि ऐसी ही स्थापनाएँ है।

"दूसरे प्रकार की स्थापनाओ मे निगमन सम्भव होता है और वे हमे घटनाओ पर नियन्त्रण प्रदान करती है। इनका प्रमाण केवल इतना ही नही होता कि ये ज्ञात तथ्यो के सम्बन्ध मे पर्याप्त होती हैं, वरन् यह भी कि उनके परिणाम अन्य तथ्यो से भी मेल खाते हैं जो मूलत. सोचे या देखे न गये हो। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त और प्रकाश का ईथर सिद्धान्त इसके उदाहरण हैं। उनका उपयोग ज्ञान की प्रगति के लिए हो सकता हैं और ये सामान्यत. गणितीय होते हैं। कभी-कभी कोई वस्तुनिष्ठ प्रवृत्तियो का विचारक निर्णय कर देता है कि केवल दूसरे प्रकार की स्थापनाएँ ही अनुमेय हैं। पहले प्रकार की स्थापनाओ को कल्पना की सन्तान कह कर, जिनकी प्रामाणिकता परखी नहीं जा सकती, वह उनको अस्वीकार कर देता है। दुर्भाग्यवश इस सम्बन्ध में उसकी धारणा हमेशा पूर्णतः

स्पष्ट नही होती कि प्रामाणिकता का अर्थ क्या है और इसके अतिरिक्त, मानव मन उसके विरुद्ध है।''[1]

बाउन की 'स्टडीज़ इन थीज्म' (१८७९), 'फिलॉसफी ऑफ थीज्म' (१८८७) और 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ एथिक्स' (१८९३), लोकप्रिय पाठ्य-पुस्तकें थी, विशेषत. मैथॉडिस्ट शिक्षालयो और कॉलेजो मे। उनकी पुस्तक 'पर्सनलिज्म' (१९०८) ने भाववादी दर्शन और धर्मशास्त्र की एक विशिष्ट धारा को व्यवस्थित निरूपण प्रदान किया। बाउन ने वैयक्तिकता का समर्थन परम्परागत ब्रह्माण्ड-दर्शन के आधार पर किया था, किन्तु बाद में इस धारा के समर्थको, विशेषत जी० ए० को, ई० एस० ब्राइटमैन, ए० सी० नुडसन और आर० टी० फ्लेवलिंग ने इसका समर्थन मूल्यो या आदर्शों के एक दर्शन के रूप में अधिक किया। उनके कथनानुसार चूँकि सारे मूल्य, परिप्रेक्ष्य और अर्थ व्यक्तित्व मे ही स्थित है, अत: व्यक्तित्व ही अन्तिम आनुभाविक यथार्थ है और ईश्वर व्यक्तियो का व्यक्ति है। यह दर्शन स्पष्टत: दैववाद का समर्थक है और इस प्रकार एक रूप मे, ईसाइयत की ओर से सफाई देने का प्रयास है, किन्तु यह केवल भाववाद के पक्ष में 'मानसिकता' के या बर्कले के 'तर्को' की पुनर्प्रतिष्ठा नही है। इसका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है, किन्तु इसका मनोविज्ञान अनुभववाद का आलोचक है। विशेषत. ब्राइटमैन ने अपने दैववाद को और एक 'परिमित ईश्वर' मे विश्वास के अपने समर्थन को, एक साधारण मूल्य-मीमासा या मूल्य की तत्व-मीमासा के अधीन रखा है, जिसके फलस्वरूप वैयक्तिकता का उनका रूप हॉविसन, काल्विन और लेटन की वैयक्तिकता के और भाववादी विचार के अन्य प्रचलित रूपो के कुछ निकट है। ये भाववादी 'परिमित आत्म' या आनुभविक आधार को चेतन क्रिया के रूप में देखते हैं और मूल्याकन या चयन में ऐसी क्रिया सर्वाधिक स्पष्ट रूप में विद्यमान है। वस्तुपरक मन की खोज, अगर उनका अस्तित्व है तो, उन मानको मे की जा सकती है जिनके द्वारा आत्माएँ अपना और एक-दूसरे का सचालन करती है। इस प्रकार ये वैयक्तिकतावादी बाउन के मूल-इकाई सिद्धान्त, उद्देश्यवाद और नीतिशास्त्र को और विकसित करने मे सफल हुए है, यद्यपि उन्होने दैववाद के पक्ष मे ब्रह्माण्ड दर्शन के उन तर्कों को नही अपनाया जिन पर बाउन की प्रारम्भिक रचनाएँ आधारित थी। अधिकतर, वे अपने पक्ष को इस सिद्धान्त पर आधारित करके सन्तुष्ट है कि ''जिसमें मूल्यो और अर्थों की स्थायी, वास्तविक प्रतिष्ठा हो सके, ऐसी एकमात्र

---

१ बोर्डेन पी० बाउन, 'थियरी ऑफ थॉट ऐण्ड नॉलेज' (न्यूयॉर्क, १८९७), पृष्ठ २०८-२०९।

विश्वदृष्टि वही है, जिसके लिए मन, व्यक्तित्व और उनके मूल्य सर्वोच्च हों।''[१]

कॉर्नेल विश्वविद्यालय की धारा का वस्तुपरक भाववाद, वैयक्तिकता का प्रतिपक्षी है। यहाँ आत्मा का एक ऐसा दर्शन पनपा है, जो मनोविज्ञान के प्रति उदासीन है और जो मानवी अनुभव को उसकी ऐतिहासिक काल-गति और सस्थागत रूपो में समझने को ही एकमात्र पूर्ण अनुभववाद मानता है। कॉर्नेल के 'सेज स्कूल ऑफ फिलॉसफी' में 'वस्तुपरक मन' का जो यह अध्ययन होता रहा है, वह भाववाद के अन्तर्गत उस आन्दोलन का अमरीकी पक्ष है, जिसने जर्मनी और इंग्लिस्तान दोनो में ही, पदार्थों के आलोचनात्मक विश्लेषण (कॉण्ट की परम्परा) के साथ मानव आत्मा की ऐतिहासिक अवधारणा (हीगेल की परम्परा) को सम्बद्ध किया। इस प्रकार एक आलोचनात्मक तर्कशास्त्र और एक इतिहास दर्शन को सयुक्त करके, व्यक्ति और समाज दोनो में ही, एक सघटित इकाई के रूप में, अनुभव के एक सिद्धान्त का रूप दिया गया।

सेज स्कूल के पहले आचार्य, बाद में विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, जेकब गूल्ड शुरमन थे। कॉण्ट के प्रति अपना उत्साह उन्हें स्कॉटलैण्ड में प्राप्त हुआ था, जो कनाडा में भी उनके साथ रहा, जहाँ वे कई वर्षों तक डलहौज़ी कॉलेज में दर्शन पढाते रहे। १८८६ में जब उन्हें कॉर्नेल बुलाया गया, तो उनके अन्दर यह विचार विकसित हुआ कि आलोचनात्मक भाववाद का अमरीका के लिये विशेष महत्व है, क्योकि यह सिद्धान्त मूलतः महान् मध्यस्थ था और राष्ट्रो के बीच महान् मध्यस्थ बनना अमरीकी की नियति थी। ह्यूम के अनुभाववाद और लाइबनीज़ के तर्कनावाद के बीच मेल बिठाने में कॉण्ट ने जिस रीति से सफलता प्राप्त की थी, उस पर शुरमन ने कॉण्ट की व्याख्या करते हुए विशेष ज़ोर दिया और उन्होने पदार्थों के सिद्धान्त को आनुभविक तर्कना के आवश्यक रूपो के विज्ञान के रूप में विकसित किया। उन्होने ज्ञान के प्रागनुभव और अनुभवजन्य तत्वों को परस्पर पूरक और किसी भी विज्ञान के लिए समान रूप में आवश्यक माना। इसी प्रकार, विज्ञानो और कलाओ के बीच मध्यस्थता को उन्होने दर्शन का मुख्य कार्य माना। १८९२ में जब उन्होने 'फिलॉसॉफिकल रिव्यू' का प्रकाशन आरम्भ किया, तो इस पत्रिका के कार्य-लक्ष्य की व्याख्या उन्होने सास्कृतिक मध्यस्थता के सन्दर्भ में की और यह विचार भी प्रस्तुत किया कि अमरीकी दर्शन और भी अधिक मध्यस्थता करने वाला होगा क्योकि अमरीकी सस्कृति को सामान्यत· पूर्व और पश्चिम के बीच महान् समाधानकारक बनना होगा।

१. जे० ए० लेटन, 'दी प्रिन्सिपिल ऑफ इण्डिविजुआलिटी ऐण्ड वैल्यू', विलफोर्ड वेरेट द्वारा सम्पादित 'कण्टेम्पोरेरी आइडियलिज्म इन अमेरिका' में, (न्यूयार्क, १९३२), पृष्ठ १६०।

"ऐसा मानने के सभी कारण हैं कि 'उसी' और 'अन्य' (प्लेटो की विशेष उपयुक्त शब्दावली में) के मिश्रण-स्थल के रूप में, अमरीका ही वह मच होगा जिस पर वह श्रेष्ठ सृजनकर्तृ मानव-आत्मा, दार्शनिक अन्वेषण, व्याख्या और रचना का अपना अगला विश्व-सोपान प्रस्तुत करेगी।...यूनानी सस्कृति की विशेषता थी स्वतन्त्रता—नगर राज्यो के लिए शासन की स्वतन्त्रता, व्यक्ति के लिए कार्य की स्वतन्त्रता और धर्म में विचार की स्वतन्त्रता (जिसमें सिद्धान्त की कोई एकरूप व्यवस्था नहीं थी और न कोई वाह्यशक्ति-युक्त, नियमित रूप से सगठित पुजारियत थी)। दूसरी ओर रीति और नियम के प्रति आदर और समग्र के प्रति व्यक्ति की अधीनता भी यूनानी सस्कृति की विशेषता थी। इन विरोधी विशेषताओ ने यूनानी दर्शन के जन्म के समय के लगभग, विकास की पूर्ण समरसता प्राप्त कर ली थी। यूनानी संस्कृति की मौलिकता और स्वतन्त्रता के साथ-साथ उसकी व्यवस्था और क्रम-बद्धता का, उसकी रचनात्मक प्रवृत्तियों का श्रेय भी इन्ही विशेषताओ को है। यूनानी सभ्यता के ये अनुकूल पक्ष आज अमरीका में पुन:प्रकट हुए हैं—स्वतन्त्रता का अमरीकी प्रेम और नियम का अमरीकी आदर; काउण्टी और नगर शासनो सहित लगभग पचास 'प्रभु' प्रजाधिपत्यो की एक संघीय अध्यक्ष के अधीन एकता; अमरीकी चर्चों का लोकतान्त्रिक संगठन और उनके बहुविध तथा लचीले मत; विचार और बोली की अमरीकी स्वतन्त्रता, जिसमें हमेशा मात्र ध्वस की ही नही, वरन् निर्माण की प्रवृत्ति रही है। अन्यथा तो यह कल्पना करना कठिन है कि पृथ्वी के निवासियो में (यूनानी सभ्यता के) ये गुण, सन्निकटता में भी, कहाँ मिल सकते हैं।

"दर्शन के विकास के लिए नैसर्गिक गुणो, संस्कृति और परिस्थितियो का ऐसा अनुकूल सयोग छह-सात करोड़ जन-संख्या के राष्ट्र में विद्यमान हो, यह मानव सभ्यता के भविष्य के लिए अत्यन्त आशाजनक सकेत है। किन्तु यह आवश्यक नही है कि हमारी भावनाएँ मात्र आशा के सहारे जियें। सकेत और शकुन इस समय भी फलीभूति हो रहे हैं। स्थिति में जो कुछ पूर्व अनुमेय है, समय उसे आज भी विकसित करके जन्म दे रहा है। हमारे इतिहास में कभी भी दार्शनिक विषयो में रुचि इतनी गम्भीर और इतनी व्यापक नही रही। पहले की अगम्भीर, अविचारशील, 'आशावादी मन.स्थिति अब भले ही न हो, किन्तु हम इस तथ्य को छिपा नहीं सकते कि राष्ट्र अपने जीवन की दूसरी शताब्दी में बेचैनी की एक नयी भावना और पहले से अधिक गम्भीरता और मनन की प्रवृत्ति लेकर प्रवेश कर रहा है। अगर वस्तुओ, 'बीजो और दुर्बल आरम्भो' को लेकर, 'जिनमे अभी जीवन नही आया है', भविष्यवाणी की जा सकती हो, तो हम इस सशक्त दार्शनिक क्रियाकलाप को लेकर, बशर्ते कि स्थितियाँ ऐसी ही बनी रहें, यह

भविष्यवाणी करने का साहस कर सकते हैं कि इससे विचारो की वैसी ही पौध उत्पन्न होगी जैसी ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी मे यूनानी में हुई थी, या जिसे लगभग तीन पीढी पूर्व ही जर्मनी में प्रौढता प्राप्त हुई थी। किन्तु एक महत्वपूर्ण अन्तर होगा। हमारे राष्ट्र मे दर्शन का जन्म विशेष दार्शनिक रुचियो के प्रति निष्ठा का और विशेष दार्शनिक क्षेत्रो में मार्ग का फल होगा। हमारी संस्थापित विचार-व्यवस्थाएँ, अगर कभी उनका निर्माण हुआ तो, किसी भी पूर्वकालिक दार्शनिक व्यवस्था की तुलना मे, तथ्यो के कही अधिक व्यापक आगमन पर आधारित होगी। यह सचमुच सौभाग्य की बात है कि विशेषज्ञता की भावना दर्शन में व्याप्त हो गयी है और अमरीकियो द्वारा की गयी विशेष खोजो और विशेष प्रकाशनो पर हम अपने को बधाई दे सकते है। किन्तु सहयोग के बिना श्रम-विभाजन से कोई लाभ नही होता।''[1]

जब शुरमन १८९२ में कॉर्नेल विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बन गये, तो सेज स्कूल के आचार्य के रूप में उनका स्थान जेम्स एडविन क्रीटन ने लिया, जो डलहौज़ी मे शुरमन के शिष्य रह चुके थे और १९२४ मे अपनी मृत्यु के समय तक भाववाद की कॉर्नेल धारा के मुख्य प्रतिनिधि रहे। उनके सहयोगी असाधारण रूप में सक्षम अध्यापक थे। अध्यापको और विद्वानो की इस प्रतिष्ठित परम्परा की पहली पीढी में ही फ्रेंक थिली (पॉलसेन के शिष्य, उनकी कुछ रचनाओ और अन्य जर्मन ग्रन्थो के अनुवादक), विलियम ए० हैमाण्ड और अर्नेस्ट ऐल्बी जैसे व्यक्ति थे। अमरीका मे दर्शन के अध्यापको के एक बड़े हिस्से ने कॉर्नेल मे शिक्षा पाई और उनके माध्यम से कॉर्नेल के सिद्धान्तो और पद्धतियो ने दार्शनिक शिक्षण और खोज-कार्य में प्रभावी स्थान प्राप्त किया। १९०२ मे 'अमेरिकन फिलॉसॉफिक एसोसिएशन' (अमरीकी दार्शनिक सघ) के निर्माण में भी कॉर्नेल ने अगुआई की और क्रीटन उसके पहले अध्यक्ष बने। व्यावसायिक और सहयोगी दार्शनिक अध्ययनो मे कॉर्नेल का यह प्रमुख भाग आकस्मिक नही था। इस धारा द्वारा मन की वस्तुपरक अवधारणा और विचार की सामाजिक प्रकृति मे विश्वास का यह व्यावहारिक प्रयोग था। अपने अध्यक्षीय भाषण में क्रीटन ने इसे स्पष्ट कर दिया।

''खोज-कार्य के हर विभाग मे यह विश्वास बढता हुआ प्रतीत होता है कि वास्तविक प्रगति के लिए बौद्धिक साहचर्य और सहयोग आवश्यक है। इसमें अन्तर्निहित मान्यता यह है कि वैज्ञानिक कार्य में आवश्यक है कि शक्तियो का सयोजन हो और कुछ अलग-अलग व्यक्तियो के रूप में नही, वरन् सहयोगी

---

१. जेक्ब गूल्ड शुरमन, 'दी फिलॉसॉफिकल रिव्यू' में 'प्रिफेटरी नोट', खण्ड एक (१८९२), पृष्ठ ३-४, ५।

दिमागो के एक सामाजिक समूह के रूप में कार्य किया जाये। हमने सीख लिया है कि बौद्धिक रूप मे अपने को अलग कर लेना अपने कार्य को निष्फल बनाना है, कि हर पीढ़ी में समस्याओ की एक मुख्य दिशा होती है और अगर सामान्य उद्देश्य की पूर्त्ति मे हम कोई योग देना चाहे, तो हमारे लिए उसी दिशा मे काम करना आवश्यक है।"[1]

और अपने सर्वोत्तम निबन्धो मे से एक में उन्होने इसी विचार को विकसित किया।

"मन एक पूर्ण इकाई है, और अगर अनुभव के कुछ रूपो में उसकी सामाजिक प्रकृति प्रदर्शित होती है, तो हम यह आशा नही कर सकते कि वह अपने किसी पक्ष मे एकाकी और आत्म-केन्द्रित बना रहेगा। फिर भी, सामान्य विचार और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दोनो में ही विचारशील मन को एक विशिष्ट प्रकार का अस्तित्व मानने की प्रवृत्ति है, जो किसी प्रकार एक शरीर के अन्दर स्थित रहता है और एक मस्तिष्क के कार्यों को व्यक्त करता है। जिस प्रकार एक शरीर दूसरे शरीर को अपने स्थान से बाहर रखता है, उसी प्रकार व्यक्ति के विचारशील मन को एकाकी, विकर्षक और अपने मे सीमित माना जाता है। विचारक को एक अकेला व्यक्ति माना जाता है, जो अकेले, बिना सहायता के, स्वय अपनी समस्याओ से उलझता है। ऐसा माना जाता है कि वह अपने मन की शक्ति से, स्वय अपने विश्लेषणो और मनन के द्वारा सत्य का सृजन करता है। . इस मत के विरुद्ध, मै कहना चाहता हूँ कि प्रामाणिकता की जाँच की प्रक्रिया मे हमेशा बहुतेरे मनो का सहयोग और परस्पर-कार्य सम्मिलित होता है। अन्य मनुष्यो के विचारो के सहारे और उनके प्रकाश मे ही, व्यक्ति अपने को वैयक्तिक कल्पनाओ और जल्दीबाजी में किये गये सामान्यीकरण से मुक्त करता है और इस प्रकार सार्विक सत्य को प्राप्त करता है। परिणाम इस अर्थ से मौलिक नही होता कि वह पूरी तरह उसी के दिमाग से निकला हो, बल्कि वह बहुतेरे मनो ने मिलकर काम करने का फल होता है। विचार की क्रिया किसी अमूर्त्त, व्यक्ति-मन के कार्य का फल नही, वरन् मनो के एक समाज के कार्य का फल होती है, उसी प्रकार जैसे नैतिकता और राजनीतिक संस्थाएँ और धर्म, व्यक्तियो की ऐसी ही अगागि एकता से उत्पन्न होते और उसी में स्थित होते हैं। 'बिना समाज के व्यक्ति नही', यह वक्तव्य मनुष्य के विचारक रूप पर उसी तरह लागू होता है, जैसे उसके नैतिक या राजनीतिक रूप पर।"[2]

---

१. जेम्स एडविन क्रीटन, 'स्टडीज इन स्पेकुलेटिव फिलॉसफी' (न्यूयार्क, १९२५), पृष्ठ ७।

२. वही, पृष्ठ ५०-५१।

जिस कारण विचार सामाजिक है, उसी कारण से ऐतिहासिक भी है। अनुभव की निरन्तरता और एकता को (मनुष्य की) एक चेतन सम्पत्ति बनना होगा।

"दार्शनिक विज्ञान, 'प्राकृतिक' विज्ञान नही है और उससे अपने 'तथ्य नही ले' सकता। ऐसा करने का अर्थ होगा दर्शन के स्थान पर 'मनोविज्ञानवाद' और 'प्रकृतिवाद' को स्थापित करना। किन्तु दर्शन को, दर्शन बन सकने के लिए, तथ्यो का मानवीयकरण करना होता है, अर्थात् उन्हे पूर्ण और आत्म-चेतन मानवी अनुभव के दृष्टिकोण से देखना होता है, क्योकि इसी दृष्टिकोण से उनका कोई अर्थ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार, दार्शनिक मूलतः प्रकृतिवादी होने की अपेक्षा मानववादी होता है और उसका निकटतम सम्बन्ध उन विज्ञानो से होता है जिनका कार्य-क्षेत्र मनुष्य के विचार और सोद्देश्य क्रिया-कलाप के फल होते हैं। प्राकृतिक विज्ञान के साथ अपने सम्बन्ध में, उसकी दिलचस्पी तथ्यो के वस्तुपरक रूप की अपेक्षा उन वैचारिक क्रियाओ में अधिक होती है, जिनके द्वारा ये तथ्य प्राप्त किये गये। वह प्राकृतिक विज्ञान के दृष्टिकोण को नही अपनाता, वरन् उसे पूरी तरह रूपान्तरित करके, चेतन अनुभव के सन्दर्भ मे प्राकृतिक तथ्यो को एक नयी व्याख्या प्रदान करता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति के प्रति भौतिक प्रकृतिवादी के अमूर्त दृष्टिकोण को दार्शनिक व्याख्या के द्वारा मानवीय बनाना होता है। दार्शनिक व्याख्या 'भिन्न रीति से तथ्यो के अर्थ ग्रहण करती' है और प्रकृति में मनुष्य के मन के साथ वह अनुकूलता देखती है, जिसके द्वारा ही प्रकृति बोधगम्य होती है। दूसरी ओर दार्शनिक दृष्टिकोण इसे आवश्यक बनाता है कि मनोवैज्ञानिक 'प्रकृतिवादी' द्वारा प्रस्तुत मन के तथ्यो के विवरण से भिन्न एक विवरण प्रस्तुत किया जाये। मनोवैज्ञानिक प्रकृतिवादी के मात्र वैयक्तिक दृष्टिकोण को उसी प्रकार प्रस्थान-विन्दु नही बनाया जा सकता, जैसे भौतिक-विद् के मात्र वस्तुपरक दृष्टिकोण को। जिस प्रकार भौतिक तथ्यों को मन के सन्दर्भ में देखकर दर्शन उन्हें मानवीय रूप देता है, उसी प्रकार वह वैयक्तिक तथ्यो को ऐसे कार्यों के रूप में देख कर, जिनके द्वारा व्यक्ति, प्रकृति के साथ और अन्य मनुष्यो के साथ अपनी एकता को उपलब्ध करता है, उन्हे वस्तुपरक बनाता है।"[१]

पाठक इन पंक्तियो मे 'जीस्टविसेनशाफ्ट' (कला) की भावना को पहचान लेंगे। यह भाववाद पद्धति और रुचि दोनो में ही मानववादी था। प्रकृति की व्याख्या मनुष्य के वातावरण, उसके अनुभव-स्थल के रूप में की जाती थी—

---

१ वही, पृष्ठ २३।

प्रकृति न बाहर थी, न केन्द्र में थी। इसी प्रकार, प्रकृति के विपरीत ध्रुव पर स्थित व्यक्ति, मन के लिये न केन्द्रीय है, न आकस्मिक। प्रकृति, समाज और व्यक्ति मिलकर विचार और सस्कृति का एक समुदाय बनाते हैं। स्वयं अपने विचार में और साथ ही अपने अध्यापन और सम्पादन में भी, क्रीटन ने आग्रह किया कि अब 'सफरमैना' कार्य सम्भव नही था, अब केवल कलाओ और विज्ञानो के विशाल विकसित क्षेत्र मे अशदायी श्रम ही सम्भव था। विचार का अर्थ है सामान्य कार्यों में अन्य मनो के साथ काम करना। स्पष्टत यह सिद्धान्त मात्र ज्ञान-मीमासा या मात्र शैक्षिक अध्ययन का कार्यक्रम भी नही था। जर्मनी और इंग्लिस्तान के समान अमरीका में भी यह मानवी कार्य और स्मृति के यथासम्भव व्यापक क्षेत्रो से दर्शन को सम्बद्ध करके, उसे एक नयी प्राणशक्ति प्रदान करने का (लेबेन्सफिलॉसफी—जीवन्त दर्शन) प्रयास था। जैसा अधिकाश दार्शनिक विचारो के साथ और निश्चय ही अधिकाश आदर्शों के साथ होता है, इसका सिद्धान्त कि यथार्थ क्या है, इसका सूचक है कि महत्वपूर्ण क्या है। अतः यह कथन कि समग्र अनुभव एक सम्पूर्ण, सम्बद्ध आगिक इकाई है, उसे ऐसा बनाने के एक सबल प्रयास का अग था।

कॉर्नेल से भी अधिक जीवन के तर्क से चेतन रूप में सम्बद्ध, गत्यात्मक भाववाद की धारा थी, जो कुछ वर्षों तक जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में और कुछ अधिक समय तक मिशिगन विश्वविद्यालय में पनपी। इस धारा ने मानवी-अनुभव की सांस्कृतिक प्रकृति के साथ-साथ उसकी जैविक प्रकृति पर भी जोर दिया। डार्टमथ कॉलेज के स्नातक और यूनियन थियॉलॉजिकल सेमिनरी के छात्र, जार्ज सिल्वेस्टर मॉरिस उन बहुतेरे युवा उदारवादी पादरियो में से थे जिन्होने धर्मपीठ को अपनाने के बजाय जर्मनी में अपना अध्ययन जारी रखना पसन्द किया और इस निर्णय के फलस्वरूप ईसाई पादरियो का कार्य हमेशा के लिए छोड़ कर अपने को दर्शन के अध्यापन मे लगाया। उन पर हाले नगर के उलरिकी और बर्लिन में ट्रेण्डेलेनबुर्ग का प्रभाव पड़ा। इनसे उन्होने छद्म-ईसाई हीगेलवादी धर्मशास्त्र के बजाय, एक वास्तविक 'अस्तित्व के विज्ञान' मे, अरस्तू की तत्वमीमासा द्वारा प्रबुद्ध परात्परवाद में सत्य की खोज करना सिखाया। १८६८ में अमरीका वापस आने के बाद कई वर्ष तक वे बौद्धिक और शैक्षिक दृष्टि से टटोलने मे ही लगे रहे। वे आधुनिक साहित्य और भाषाएँ पढाने के लिए १८७० में मिशिगन गये, किन्तु अमरीका में भाववाद की एक विशिष्ट धारा के सस्थापक के रूप में उनकी भूमिका १८७८ में ही निश्चित हुई, जब उन्होने मिशिगन और जॉन्स हॉपकिन्स दोनो मे ही पढ़ाना आरम्भ किया।

वे जर्मनी से कॉण्ट के पदार्थो की क्रियावादी व्याख्या और भाववाद में गति,

इसी व्यापक अर्थ मे कर रहे थे।) मनोविज्ञान 'एक केन्द्रीय विज्ञान' क्यो है, इसे समझाते हुए डुई ने लिखा—

"अन्य सभी विज्ञानो का सम्बन्ध तथ्यो या घटनाओ से होता है, किन्तु 'ज्ञान' का जो तथ्य उन सभी मे होता है, उसके बारे मे किसी ने कुछ नही कहा है। उन्होने तथ्यो को केवल 'विद्यमान' तथ्य माना है, जबकि वे 'ज्ञात' तथ्य भी है। किन्तु ज्ञान मे आत्म या मन का सन्दर्भ निहित है। ज्ञान एक बौद्धिक प्रक्रिया है, जिसके मानसिक नियम हैं। यह आत्मा द्वारा अनुभव की गयी क्रिया है। अतः भौतिक विज्ञान के सारे 'सार्विक' तथ्यो में, कुछ 'व्यक्तिगत' क्रिया पूर्वमान्य रही है। ये तथ्य सारे ही ऐसे तथ्य हैं, जो किसी मन को ज्ञात हैं और इस कारण किसी न किसी रूप मे मनोविज्ञान के क्षेत्र में आते हैं। अत यह विज्ञान मात्र अन्य विज्ञानो के समकक्ष एक विज्ञान ही नही है, यह एक केन्द्रीय विज्ञान है, क्योकि इसकी 'विषय-वस्तु', ज्ञान, उन सभी मे विद्यमान है।..

हम मानसिक प्रक्रियाओ की एकता...और इस कारण उनकी अन्तिम व्याख्या, इस तथ्य मे (पाते हैं) कि मनुष्य एक आत्म है; कि आत्म का सार-तत्व सकल्प की आत्म-निर्धारक क्रिया है, कि यह सकल्प एक वस्तुकारक क्रिया है, जो अपना वस्तुकरण करके सार्विक बन जाती है। इस क्रिया का फल है 'ज्ञान'। वस्तुकृत सकल्प विज्ञान है। वस्तुकारक क्रिया बुद्धि है। यह सकल्प या क्रिया, स्वय अपने कार्यों का विवरण भी 'अपने' समक्ष रखती है। यह स्वय अपने लिए आन्तरिक है। वस्तुपरक सार्विक परिणाम इसके साथ ही व्यक्ति की चेतना के माध्यम मे भी विद्यमान रहता है। इस क्रिया का यह व्यक्ति-पक्ष भावना है। क्रिया की प्रगति या बाधा की अभिव्यक्ति के रूप मे यह खुशी या पीडा है। वास्तविक सिद्धि के एक सहचर के रूप में, इसमें अन्तर्वस्तु है और यह गुणात्मक है।

"जो क्रिया व्यक्तिपरक भी है और वस्तुपरक भी, जो व्यक्ति और समष्टि को सयोजित करती है, जिसकी प्रेरक भावना है और फल ज्ञान है और जो साथ ही इस ज्ञात वस्तु को अनुभूत विषय मे परिवर्तित करती है, वह सकल्प है, मानसिक जीवन की एकता है।.

"मन सृष्टि का एक निष्क्रिय दर्शक नही रहा, वरन् उसने कुछ परिणाम उत्पन्न किये है, और कर रहा है। ये परिणाम वस्तुपरक हैं, उनका अध्ययन सभी वस्तुपरक ऐतिहासिक तथ्यो की भाँति किया जा सकता है और स्थायी हैं। ये हमारे लिए सर्वाधिक निश्चित, बँधे हुए और सार्विक सकेत हैं कि मन किस प्रकार काम करता है। भाषा और विज्ञान जैसे तत्व, बुद्धि के क्षेत्र मे मन की ऐसी वस्तुपरक अभिव्यक्तियां हैं। सकल्प के क्षेत्र में सामाजिक और राजनीतिक

मस्थाएँ है। भावना के क्षेत्र में कला है। सम्पूर्ण आत्म के क्षेत्र मे धर्म है। भाषा-विज्ञान, विज्ञान का तर्कशास्त्र, इतिहास, समाजशास्त्र आदि इन विभिन्न विभागो का वस्तुपरक रूप मे अध्ययन करते है और उनके तत्वो को जोडने वाले सम्बन्धो का पता लगाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु इनमें से कोई भी विज्ञान इस तथ्य को ध्यान में नही रखता कि विज्ञान, धर्म, कला आदि सारे ही, स्वय अपने ही नियमो के अनुसार अपने को निरूपित करते हुए मन या आत्म की उत्पत्ति हैं और इस कारण, इनका अध्ययन करने में हम केवल चेतन-आत्म की मूल प्रकृति का ही अध्ययन करते है। मानवी ज्ञान, क्रिया और सृजन के इन व्यापक विभागो मे ही हम आत्म के बारे मे सर्वाधिक जानकारी प्राप्त करते है और उनके अन्वेषण कार्य के द्वारा ही हम उसके क्रिया-कलाप के नियमो को सर्वाधिक स्पष्ट रूप मे व्यक्त होते पाते हैं।"[1]

डुई ने 'आउटलाइन्स ऑफ एथिक्स' (नीतिशास्त्र की रूपरेखा—१८६१) में सकल्प के वस्तुपरक मनोविज्ञान को और आगे विकसित किया। डुई जब नीतिशास्त्र सम्बन्धी अपनी विचार-व्यवस्था को सशोधित कर रहे थे, उन्ही दिनो जेम्स की 'साइकॉलॉजी' मे प्रतिपादित उपकरणवाद का ज्ञान हुआ और फल-स्वरूप तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र के प्रति अपनी जीव-वैज्ञानिक दृष्टि के विस्तृत भाववादी आधार का परित्याग करके, उन्होने अधिक प्रकृतिवादी और कम क्लिष्ट शब्दावली अपनायी।

अन्त मे हम भाववाद की उस धारा पर आते हैं, जिसे हमने 'परम भाववाद' कहा है, यद्यपि यह सज्ञा उसे उपयुक्त रूप में व्यक्त नही करती। इसमें जोसिया रॉयस द्वारा प्रस्तुत परम सिद्धान्त के भिन्न रूप और उनके द्वारा अन्य धाराओ की विशेषताओ को अपनाने के क्रमिक प्रयास आते है, ताकि वे ईश्वर का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत कर सकें—खिचड़ी रूप नही। हार्वर्ड मे रॉयस स्वय ही एक धारा बन गये थे और यद्यपि उन्होने भाववादियो का कोई गुट नही तैयार किया, किन्तु उनकी अपनी विवेचना इतनी स्पष्ट और प्रभावकारी थी कि उसने कई देशो मे कई प्रकार के दार्शनिको पर गम्भीर प्रभाव डाला। उनकी चर्चा हम एक अलग खण्ड मे करेंगे।

जोसिया रॉयस

बर्कले मे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के द्वार खुलने (१८७३) के दो वर्ष बाद ही जोसिया रॉयस नामक एक लाल बालो वाला लडका, जिसके चेहरे

१. जान डुई, 'साइकॉलॉजी' (न्यूयार्क, १८८७), पृष्ठ ८, ४२३, ११-१२।

पर धूप के दाग पडे हुए थे, वहाँ से ए० बी० की (स्नातकीय) उपाधि लेकर, अध्ययन के लिए जर्मनी जा रहा था। 'ऐशिलस के प्रामेथियस का धर्मशास्त्र' शीर्षक उनके निबन्ध ने वहाँ बस्ती बसाने वाले कुछ समृद्ध लोगो को इतना अधिक प्रभावित किया कि वे उन्हे इतना काफी कैलिफोर्निया का स्वर्ण देने को तैयार हो गये जिससे वे जर्मनी मे शेलिंग, शोपेनहॉर, और फ्लीडरर का अध्ययन करते हुए और गॉटिन्जेन मे लॉटज़े का भाषण सुनते हुए दो वर्ष बिता सके। वे ऐसे समय पर अमरीका वापस लौटे कि जॉन्स हॉपकिन्स की सर्वप्रथम शिक्षा-वृत्तियो में से एक उन्हे मिल गयी। उन्होने एक कॉण्टवादी समस्या पर अपना प्रबन्ध लिखा, और मॉरिस ने दर्शन के इतिहास मे उनकी परीक्षा ली। डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने के बाद (१८७८) वे तर्कशास्त्र और अलकारशास्त्र के शिक्षक के रूप मे कैलिफोर्निया वापस आये। कुछ वर्षों मे ही, उन्होने फिर पूर्व की यात्रा की, इस बार हार्वर्ड में साहित्य और दर्शन पढाने के लिए। सभी लोग तत्काल उनसे प्रभावित हुए और तीन वर्ष के अन्दर ही अध्यक्ष इलियट ने उन्हे लावेल भाषणमाला के भाषण देने के लिए निमन्त्रित किया। इसके लिए उन्हे एक हज़ार डालर मिलने थे। भाषणमाला के सरक्षक श्री लावेल ने युवक रॉयस को समझाया कि भाषण चूँकि धर्म पर होने थे, अत: अनुबन्ध पक्का होने के पहले उन्हे एक सरल मत-वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने होगे। इस पर रॉयस ने घोषणा की कि वे धन के लिए किसी मत पर हस्ताक्षर नही करेंगे, और लॉवेल भाषण देने के बजाय वे 'कैलिफोर्निया, एक स्टडी ऑफ अमेरिकन कैरेक्टर' (कैलिफोर्निया; अमरीकी चरित्र का एक अध्ययन) शीर्षक एक निबन्ध तैयार करने मे लग गये। इस निबन्ध का अन्तिम अश उद्धृत करने योग्य है—

"राज्य या सामाजिक व्यवस्था ही ईश्वरीय है। हम सब केवल मिट्टी है, सिवाय जहाँ तक समाज-व्यवस्था हमे जीवन देती है। अगर हम उसे अपना साधन, अपना खिलौना मानें, और अपनी निजी समृद्धि को ही एकमात्र लक्ष्य बनाएँ, तो शीघ्र ही यह समाज-व्यवस्था हमारे लिए दुष्ट बन जाती है। हम उसे गन्दी, पतित, भ्रष्ट और अनाध्यात्मिक कहते हैं और पूछते है कि हम इससे हमेशा के लिए कैसे बच सकते हैं। किन्तु अगर हम फिर मुड कर केवल अपनी ही नही, वरन् समाज-व्यवस्था की सेवा करते हैं तो हम शीघ्र ही पाते हैं कि हम जिसकी सेवा कर रहे है वह शारीरिक रूप में केवल हमारी अपनी उन्नत आध्यात्मिक नियति है। 'यह' कभी भी सचमुच गन्दी या भ्रष्ट या अनाध्यात्मिक नही होती। 'हम' ही ऐसे होते है, जब हम अपने कर्तव्य [illegible] ।"[1]

---

१. जोसिया रॉयस, 'कैलिफोर्निया, ए स्टडी ऑफ अमेरिकन कैरेक्टर' (बोस्टन १८८६) पृष्ठ ५०[illegible] ।

एक रोमानी भाववादी के लिए यह आरम्भ कितना उपयुक्त था। उनका बडा सिर और ऊँचा माथा प्रॉमेथियस, शेलिंग और शोपेनहॉर से भरा हुआ था, और इसी मन.स्थिति मे उन्होने अपना पहला आलकारिक, दार्शनिक धर्मोपदेश लिखा, जिसका शीर्षक था 'दी रेलिजस आस्पेक्ट ऑफ फिलॉसफी' (दर्शन का धार्मिक पक्ष)।

इस रचना मे निराशावाद और सशयवाद का चतुर, द्वन्द्वात्मक उपयोग किया गया है। इसके तर्क के दो भाग है—निराशावाद की 'नैतिक' समस्या और निर्णय की तार्किक समस्या। नैतिक शका कैसे सम्भव है ? त्रुटि कैसे सम्भव है ? वे शोपेनहॉर के निराशावाद से आरम्भ करते हैं, जो अन्तिम विश्लेषण में, इस तथ्य से उत्पन्न नैतिक निराशा प्रमाणित होता है कि किसी विशिष्ट आदर्श का हर तार्किक आत्मा द्वारा स्वीकृत होना 'वाछनीय' है, इसे प्रमाणित करना असम्भव है। किन्तु इस शका की कडवी घूंट पीते ही उन्हे पता चला कि 'मामले का सत्य शका मे ही छिपा है।' कोई विशिष्ट परम 'वाछनीयता' खोजने में उसकी असफलता खोजने वाले को निराशावादी बनाती है, इस तथ्य मे ही निहित है कि उसमे यह नैतिक सकल्प या माँग है कि सभी विशिष्ट आदर्शो मे 'समरसता लाना वाछनीय' है। ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसे नैतिक संघर्ष निराशावादी बनाता है, नैतिक शान्ति की अच्छाई अपने आप मे स्पष्ट होगी। अतः आनुभविक निराशावाद इसी कारण सम्भव है कि निराशावाद की घटना मे ही एक परम आदर्श का आग्रह किया जाता है। इस परम आदर्श को वे इस प्रकार निरूपित करते हैं—इस प्रकार जियो जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारा और तुम्हारे पडोसी का जीवन एक ही हो।

यह सद्भावना के कॉण्टवादी नीति-शास्त्र का एक पुनर्वक्तव्य है। बाद में उन्होने निष्ठा के दर्शन के रूप मे इसे पुनर्निरूपित किया जिसका निष्काम नियोग है कि, निष्ठा के प्रति निष्ठावान् रहो। निम्नलिखित उक्तियो के द्वारा वे इस सूत्र को ठोस अन्तर्वस्तु प्रदान करने की चेष्टा करते है—(१) व्यक्ति के रूप मे सुखी होने की चेष्टा मत करो—कोई विशिष्ट वस्तु अन्तिम नहो हो सकती। (२) सारे जीवन को सगठित करो। आने वाली नैतिक मानवता के जीवन के लिए ऐसा कार्य उपलब्ध करो जो इतना व्यापक और निश्चित हो कि उस दोषरहित स्थिति मे, चाहे मनुष्यो का जीवन कितना भी समृद्ध और बहुमुखी क्यो न हो, हर मनुष्य के जीवन का हर क्षण उस एक उच्चतम निर्वैयक्तिक कार्य की पूर्ति में लगे।[1] सगठन को सम्पूर्ण रूप में उपलब्धि विज्ञान और राज्य में

---

१. जोसिया रॉयस, 'दी रेलिजस आस्पेक्ट ऑफ फिलॉसफी' (बोस्टन, १८८५), पृष्ठ २११।

होती है। राज्य के बारे मे वे किसी प्रशावासी जर्मन) या कैलिफोर्नियावासी के से उत्साह से बात करते है। कला सगठन का केवल एक दोषपूर्ण माध्यम है, क्योकि कलाकार वैयक्तिकता को विकसित करते है।

यह नैतिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने के बाद रॉयस अब धर्मशास्त्रीय सशयवाद की ओर मुडते है। क्या ईश्वर है ? इस प्रश्न के दो अर्थ हो सकते हैं। इसका अर्थ हो सकता है कि क्या सृष्टि का कोई सृजनकर्त्ता और सचालक है, अर्थात् क्या कोई परम शक्ति है ? या इसका अर्थ हो सकता है—क्या कोई परम आधार-सिद्धान्त, कोई परम सत्य है ? शक्ति के रूप मे ईश्वर का उन्हे कोई प्रमाण नही मिलता। वाह्य शक्तियो के समग्र विश्व के आधार-सिद्धान्त निरूपित करना बिल्कुल आवश्यक नही हैं, उसके बारे मे पूर्ण शका की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कोई एक परम कारण, अपने परिणाम के साथ एकरूप होगा। अत कारणो का वाह्य विश्व मूलत. बहुत्ववादी है, सघर्ष, शका, विघटन और विकास, अच्छाई और बुराई, निरन्तर विरोध का क्षेत्र है।

किन्तु आधार-सिद्धान्तो के क्षेत्र में हमारे सामने वैसी ही स्थिति आ जाती है, जैसी नैतिक आदर्शो के क्षेत्र मे। परिमित त्रुटि की स्वीकृति मे परम सत्य निहित है। यह उनके जॉन्स हॉपकिन्स मे प्रस्तुत निबन्ध का मुख्य विषय है। कारण, कि त्रुटि कैसे सम्भव है ?

"हम अपने महान् हास्य-लेखक की अब सुपरिचित बात को लें कि दो व्यक्तियो के बीच हर वार्त्ता में छह व्यक्ति भाग लेते हैं। अगर जॉन और थॉमस आपस मे बात कर रहे है, तो वास्तविक जॉन और थॉमस, क्रमश. अपने सम्बन्ध में उनके विचार, एक-दूसरे के सम्बन्ध में उनके विचार, ये सब उस बातचीत मे भाग लेते है। हम इनमे से चार व्यक्तियो पर विचार करें, अर्थात् वास्तविक जॉन और थॉमस, थॉमस की दृष्टि में जॉन, और जॉन की दृष्टि में थॉमस। जब जॉन निर्णय करता है, तो किसके बारे मे सोचता है ? स्पष्टत उसके बारे में जो उसके विचारो की वस्तु बन सकता है, अर्थात् 'अपने' थॉमस के बारे में। किसके बारे में वह गलती कर सकता है ? अपने थॉमस के बारे मे ? नही, क्योंकि उसे वह बहुत अच्छी तरह जानता है। वास्तविक थॉमस के बारे में ? नही, क्योकि.. अपने विचार मे वास्तविक थॉमस से उसका कोई सम्बन्ध नही, कारण कि वह थॉमस कभी उसके विचार का कोई अग बनता ही नही। 'किन्तु', कोई कह सकता है, 'यहाँ कोई तर्कदोष अवश्य होगा, क्योकि हम निश्चित हैं कि जॉन वास्तविक थॉमस के बारे में गलती कर सकता है।' हम कहते हैं कि हाँ, सचमुच वह ऐसा कर सकता है, किन्तु यह तर्कदोष हमारा नहीं है। सामान्य बुद्धि से यह गलती हुई है। सामान्य बुद्धि ने कहा है—थॉमस कभी भी [illegible]

के विचारो के नही होता, फिर भी जॉन, थॉमस के बारे मे बडी भूल कर सकता है। इस गुत्थी को हम कैसे सुलझायें ?

"कोई वर्त्तमान विचार और कोई बीता विचार वस्तुत अलग होते है, जैसे जॉन और थॉमस अलग थे। हर एक का अर्थ वह वस्तु होता है जिसे वह सोचता है। उनका कोई सामान्य लक्ष्य कैसे हो सकता है ? क्या वे सदैव के लिए भिन्न विचार नही होते, जिनमे हर एक का अपना अलग लक्ष्य होता है ? किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि तथ्य की वस्तुओ के सम्बन्ध मे त्रुटि के अस्तित्व को बोधगम्य बनाने के लिए, हमें यह अबोधगम्य मान्यता स्वीकारनी होगी कि इन दो भिन्न विचारो का एक ही लक्ष्य है और ये एक ही हैं।

"या तो त्रुटि जैसी कोई चीज ही नही है, जो स्पष्टत एक अन्तर्विरोधपूर्ण वक्तव्य है, या फिर चेतन विचार की एक असीम एकता है, जिसमे सारा सम्भव सत्य विद्यमान है।"[1]

दूसरे शब्दो मे, कोई विचार अपने प्रति सच या झूठ नही हो सकता, केवल किसी अन्य विचार के प्रति हो सकता है और यह कड़ी अनन्त चली जाती है। अतः अगर कोई विचार गलत है, तो वह ऐसा केवल इस कारण है कि एक असीम निर्णायक है। अन्य भाववादियो को सत्य की सम्भावना के बारे में चिन्ता हुई थी। एक रोमानी प्रतिभा ही यह देख सकी कि भाववादी सिद्धान्तो के आधार पर त्रुटि की उपलब्धि भी उतनी ही कठिन है, जितनी सत्य की।

क्या त्रुटि 'वास्तविक' हुए बिना 'सम्भव' नही हो सकती ? या, परिवर्त्तित रूप मे, यह द्वन्द्वात्मकता क्या मात्र इतना ही प्रमाणित नही करती कि परम सत्य की 'सम्भावना' असीम रूप में दूरस्थ है ? जायस के अनुसार, नही। इसलिए, कि 'मात्र' सम्भावना कोई सम्भावना है ही नही। जो स्थितियाँ त्रुटि को सम्भव बनाती हैं, उनका वास्तविक होना आवश्यक है। और चूँकि असीम निर्णायक त्रुटि की सम्भावना की एक आवश्यक शर्त्त है, अत. 'त्रुटि' वास्तविक है, तो वह भी वास्तविक होगा। अतः, रॉयस ने लगभग आनन्दोन्मादपूर्ण उत्साह के साथ और अपनी कैलिफोर्निया की आलकारिकता का पूर्ण उपयोग करते हुए कहा—"असीम त्रुटि और बुराई वास्तविक है और एक व्यापक असीम विचार अनन्त रूप में उन्हे ऐसा निर्णीत करता है। इस धार्मिक अन्तर्दृष्टि में मन विश्राम कर सकता है।" रॉयस अच्छी तरह समझते हैं कि यह 'परम' चर्चा या ईश्वर नही है, किन्तु यह 'दर्शन का धार्मिक पक्ष' है। यह रोमानी निराशावाद और परम एकता का मेल है। यह वह औपचारिक समरसता है, जो सबको सम्भव बनाती है।

1. वही, पृष्ठ ४०८, ४१६-४२०, ४२४।

सकल्प या उद्देश्य, वस्तु-करण या वाह्य सिद्धि की माँग करते हैं। हमारे वाह्य तात्पर्य या विचार हमारे आन्तरिक तात्पर्य की पूर्त्तियो या सन्तुष्टियो के रूप में गृहीत होने की माँग करते हैं। अत जिसे हम वाह्य विश्व कहते है, उसका अस्तित्व उस आदर्श या लक्ष्य के रूप में है, जिसकी ओर हमारे उद्देश्य हमे खीचते हैं। व्यक्तिकरण किये हुए लक्ष्यो की वस्तुपरक पूर्त्ति ही यथार्थ है।

यह सब जर्मन भाववाद के पुन प्रतिपादन से अधिक विशेष कुछ नही है, सिवाय इसके कि इसमे परम सकल्प पर जोर दिया गया है और विलियम जेम्स के चयनात्मक ध्यान के सिद्धान्त को धर्मशास्त्र का रूप दे दिया गया है। इगलिस्तान मे एफ० एच० ब्रैडले भी उसी द्वन्द्वात्मकता से जूझ रहे थे, जो रॉयस को परेशान कर रही थी और ब्रैडले के इस कथन ने रॉयस को काफी उद्वेलित किया कि असीम पूर्णांत आदर्श या अमूर्त्त है, उसे अस्तित्व मे नही पाया जा सकता। दूसरे शब्दो मे, अधिकाश दार्शनिको की भाँति, ब्रैडले अचानक ऐसी स्थिति मे आकर उलझन मे पड गये जिसमे असीम प्रतिगमन निहित था। इसके विपरीत, असीम को समस्या के रूप मे नही, वरन् निश्चयात्मकता के आधार के रूप मे देखकर रॉयस उसके प्रति बडे उत्साहपूर्ण रहे थे। अब रॉयस के लिए यह प्रदर्शित करना कठिन हो गया कि असीम का वास्तविक अस्तित्व सम्भव है।

किन्तु यहाँ आकर चार्ल्स पीयर्स ने रॉयस पर कृपा की और एक ऐसा परामर्श दिया जिसने उनके दर्शन मे मौलिक परिवर्त्तन कर दिया। पीयर्स ने जो कुछ कहा उसका तात्पर्य था—रॉयस, तुम गणितीय तर्कशास्त्र का अध्ययन क्यो नही करते? इससे तुम्हारी समस्या स्पष्ट होगी और तुम्हारी दार्शनिक व्यवस्था मे कसाव आयेगा। रॉयस ने यह सलाह मान ली और उन्हे वही कुछ मिल गया जिसकी उन्हे आवश्यकता थी - असीम श्रेणी का गणितीय विचार और व्याख्या के समूह का विचार। इन विचारो के आधार पर उन्होने अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था को पुन निरूपित किया। 'दी वर्ल्ड ऐण्ड दी इण्डिविजुअल' (विश्व और व्यक्ति) के पहले खण्ड के पूरक निबन्ध में उन्होने यही कार्य किया। पीयर्स के सुझावो के आधार पर उन्होने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि असीम, अस्तित्व में 'अनाकिरना' का चिह्न नही है, वरन् 'दोषरहित व्यवस्था' का, अर्थात् एक 'सुव्यवस्थित श्रेणी' का चिह्न है।

उदाहरण के लिए, पूर्ण सख्याओ का अनुक्रम ले—पृथक् सख्याओ की इस असीम श्रेणी को परम में स्थित व्यक्ति आत्मो की श्रेणी मान लें। किन्ही दो पूर्ण सख्याओ के बीच भिन्नो की एक असीम श्रेणी को रखना सम्भव है, इस प्रकार की दो पूर्ण सख्याओ को जोडने वाली भिन्नो की श्रेणी, पूर्ण सख्याओ की श्रेणी के गठन की व्याख्या करती, या इसे पुनर्निर्मित करती है। ऐसी श्रेणी

आत्म-बिम्बित या 'अपनी व्याख्या स्वयं करने वाली' होती है। यह असीम इस कारण नही है कि अनन्त है, वरन् अपने गठन में ही असीम है, अर्थात् इसके सदस्य सम्पूर्ण के गठन के सन्दर्भ मे एक-दूसरे की व्याख्या करते है। ऐसी अपनी व्याख्या स्वय करने वाली स्थितियो या श्रेणियो का अस्तित्व सम्भव है और ये केवल गणितीय निर्मितियां ही नही होती। रॉयस ने कहा कि उदाहरण के लिए, ऐसे नकशे मे, जिसमे अंकित वस्तुओ में वह नक्शा भी सम्मिलित है, नक्शो की एक असीम श्रेणी निहित है। इसी प्रकार विचार के विचार, आदर्श के आदर्श, वाछनीयताओ की वाछनीयता और ज्ञान के ज्ञान मे। ऐसी स्थितियां केवल गणितीय दृष्टि से सुव्यवस्थित श्रेणी के अस्तित्व सम्बन्धी उदाहरण हैं। फिर पूर्ण सख्याओ की अपनी श्रेणी को लें। कल्पना करें कि उनमे से दो, बीच के पदो (भिन्नो) के द्वारा एक-दूसरे से सम्पर्क की चेष्टा करते है। यद्यपि सम्पर्क की यह असीम श्रेणी उन्हें एकतावद्ध होने मे रोकती है, किन्तु पूर्ण सख्याएँ किस प्रकार एक-दूसरे से सम्बद्ध है, इसका यह वास्तविक वर्णन करती है। इसी प्रकार व्यक्ति त्रिसूत्रीय रीति से व्याख्या के एक समूह मे सम्बद्ध होते हैं। 'क', 'ख', की व्याख्या 'ग' से करता है। यह त्रिसूत्रीय सम्बद्धता असीम है और यथार्थ का मूल प्रतिरूप है।

इस प्रकार रॉयस, ज्ञान की परम्परागत समस्या से—और उसकी विचार और वस्तु, उद्देश्य और लक्ष्य के सम्बन्ध की द्वैतवादी समस्या से—अपने तर्क को हटा कर, बिल्कुल भिन्न भूमि पर, भाषा और प्रतीको के सामाजिक प्रयोग की भूमि पर ले गये। ज्ञान की समस्या को ज्ञान-मीमासा के द्विसूत्रीय सम्बन्धो से हटाकर, व्याख्या के त्रिसूत्रीय सम्बन्धो पर ले जाकर, रॉयस भाववादी दर्शन की एक नयी और महत्वपूर्ण पुन रचना में सफल हुए। इस अवधारणा मे उन्हे न केवल पीयर्स से, वरन् हॉविसन के 'ईश्वर के नगर' के सिद्धान्त से भी सहायता मिली।

अब उन्होने साफ-साफ देखा कि ज्ञान सामाजिक है, और अगर यथार्थ का वही गठन प्रदर्शित करना हो, तो वह भी सामाजिक होगा। उन्होंने अन्तिम सत्य के सहयोगी प्रयास मे लगे हुए वैज्ञानिको के असीम समुदाय के पीयर्स के सिद्धान्त को ज्यो का त्यो लेकर उसे एक तत्व-मीमासा का रूप दे दिया। विश्व, व्यक्तियो का, अपनी व्याख्या स्वय करने वाला समुदाय है।

"व्याख्या की किसी प्रक्रिया मे, अवश्यमेव ही, व्याख्या के कार्यो का एक असीमित क्रम सम्मिलित होता है। जिनकी इस प्रकार परस्पर व्याख्या होती है, उन सभी आत्मो मे एक अनन्त विभिन्नता भी इसमे निहित है। ये आत्म मिल कर अपनी सारी विभिन्नताओं सहित, एक ही 'व्याख्या के समूह' का जीवन

यूरोपीय दृष्टि वाले पाठक को याकी लोगो की पुरानी चतुराई प्रतीत होगा। फिर भी, यह इस अर्थ मे शिक्षाप्रद है कि इसमे एक निर्भय और अन्तर्भावनाशील भाववादी द्वारा अपने विचार को बदलते हुए यथार्थो के अनुरूप परिवर्तित करने की योग्यता व्यक्त होती है।

तब से अब तक

भाववाद की धाराएँ अब अलग-अलग और स्पष्ट नही है। पिछले दिनो प्रकाशित ऐसी महत्वपूर्ण रचनाएँ तो हैं, जो मुख्यत' इनमे से किसी एक धारा की परम्परा को आगे ले जाती है, किन्तु पिछले दिनो भाववादियो के नेताओ ने अपने परम्परागत आधार छोड दिये है, और वे इस हद तक भाववाद की पुन रचना कर रहे हैं कि 'भाववाद' शब्द भी धुँधला पड गया है और भाववाद से आगे जाने की इच्छा भाववादियो ने बहुधा व्यक्त की है। रॉयस के काल के बाद, व्यवस्थाओ में एक सामान्य जकडाव आया है और किसी भी 'वाद' को अधिक गम्भीरता से न लेने की प्रवृत्ति आयी है। अब, जितने भाववादी है, लगभग उतने ही प्रकार के भाववाद है और इतनी विविधता मे जो इतिहासकार प्रवृत्तियाँ और उद्गामी एकरूपताएँ खोजना चाहे, उसे पैगम्बर बनना पडेगा। ऐसी परिस्थितियो मे, जो पाठक अमरीकी भाववाद का पिछला इतिहास जानना चाहे, उसके लिए ज्यादा अच्छा होगा कि आगामी पृष्ठो मे सामान्य प्रवृत्तियो का पता लगाने के प्रयास की ओर ध्यान देने के बजाय, तत्काल साहित्य की ओर मुड जाये, और वहाँ 'तथ्यो' की उलझन में डालने वाली भीड का सामना करे। जिस व्यक्ति ने इसके अतीत पर नजर डाली हो, उसकी अपेक्षा वर्तमान व्यवस्था उस व्यक्ति के लिए अधिक बोधगम्य होगी जो भविष्य में देख सकता है। फिर भी, कुछ सामान्य निष्कर्ष परीक्षणात्मक सत्य के रूप मे प्रस्तुत किये जा सकते है, 'भावी अनुभव मेरी सहायता करे'—जैसा रॉयस ने जेम्स के [illegible] के सम्बन्ध में कहा था।

पिछले दिनो के भाववादी साहित्य [illegible] द की [illegible] ों की चेष्टा तक दिखाई देती है। [illegible] [illegible] सनाएँ [illegible] सद

[illegible] कनिंघम, जी [illegible]

रचनाएँ दे [illegible]

और आकस्मिक ज्ञान-मीमासा से मुक्त करने की आकाक्षा का फल है, जिसने लॉक के समय से ही इसे दूषित कर रखा है, और जिसे उदाहरणार्थ, वूडिन 'दार्शनिक रोग, मनोविज्ञान-रोग' कहते हैं। परिकल्पनात्मक और गत्यात्मक भाववाद की धाराएँ तथाकथित वाह्य विश्व की समस्याओ का तिरस्कार करती थी और उनके अनुयायी ऐसे आलोचको[1] से अधिकाधिक रुष्ट प्रतीत होते है, जो समझते है कि भाववाद, इंग्लिस्तानी तत्ववाद से या जर्मन घटना-क्रिया-विज्ञान से भी, जुडा हुआ है। उनमे से बहुतो के लिए भाववाद उतना ही प्राचीन और व्यापक है, जितना प्लेटोवाद और कुछ के लिए '(विशेषत: अर्वन और हाल मे कैलिफोर्निया के नव-पूर्वविद् ऐल्डस हक्सले), 'शाश्वत दर्शन' कहलाने वाली, प्लेटोवाद और अरस्तूवाद की एक आग्ल-कैथोलिक सश्लिष्टि। किसी 'शाश्वत दर्शन' की ऐतिहासिक सत्यता सम्बन्धी विशिष्ट विवाद को छोडें, तो भी, भाववाद को आधुनिक दर्शन की एक धारा मात्र से अधिक व्यापक रूप मे देखने का और इसे वस्तुपरक मन की युगो-पुरानी खोज का ही एक रूप मानने का व्यापक प्रयास है।

वस्तुपरक मन के सिद्धान्त का, जो निश्चय ही भाववादियो का एक मुख्य विषय रहा है, विभिन्न धाराओ के तर्कशास्त्रियो और तत्व-मीमासको ने प्रतिभापूर्ण रीति से विकास किया है, जिसके फलस्वरूप यह एक अपेक्षतया सचयी, फलदायक और स्वतन्त्र दार्शनिक अन्वेषण और सिद्धान्त बन गया है। इसने तर्कनावाद को एक नया जीवन और आलोचनात्मक आधार प्रदान किये है और सार-तत्व विज्ञान से तर्कशास्त्र के सम्बन्ध की पुरातन समस्या का पुन. परीक्षण करने के लिए न केवल भाववादियो को, वरन् यथार्थवादियो, व्यवहारवादियो, वस्तुनिष्ठावादियो को भी बाध्य किया है। दूसरे शब्दो मे, पदार्थो के कॉण्टवादी सिद्धान्त की अमरीकी आलोचनाएँ एक ऐसी तत्वमीमासा के पुनर्जीवन मे फलीभूत हुई है, जो ज्ञान-मीमासात्मक विवादो से अपेक्षतया मुक्त है।

कोहेन, ल्युइस, मैक्गिवेरी, पेरी, सेवरी, श्मिट, ह्वाइटहेड और वुडब्रिज जैसी आलोचनात्मक बुद्धियो की, जिनके प्रारम्भिक विचार कॉण्ट के अध्ययन मे ओत-प्रोत थे और जिनकी विचार-व्यवस्थाएँ प्राकृतिक ज्ञान के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि के सशोधन के रूप मे है—दार्शनिक 'साहसिकताओ' से पता चलता है कि अगर हम उनके नैतिक विचारो के धुँधले कोनो मे ध्यान से देखें, तो भाववादी परम्परा को अब भी पहचाना जा सकता है, किन्तु अपनी मुख्य रचनाओं में

---

१. उदाहरण के लिए कुमारी काल्किन्स जैसे मानसिकतावादियो और कुछ वैयक्तिकतावादियो की रचनाओ को और पेरी, प्रेट, मॉन्टेगू और अन्य यथार्थवादियो की ज्ञान-मीमासात्मक आलोचनाओ को देखिए।

आठवां अध्याय

•

मौलिक अनुभववाद

व्यवहारवादी बुद्धि

जब विलियम जेम्स ने मनोविज्ञान को एक प्राकृतिक विज्ञान बनाना चाहा, तो अमरीकी दार्शनिको को एक तेज झटका लगा। अपनी 'आलोचनात्मक' मताग्रही नीद में, वे प्राकृतिक और नैतिक विज्ञान के वैपरीत्य के आदी हो गये थे, जैसे सारी पाठ्य पुस्तको का रीतिगत आधार होने के अतिरिक्त, यह आस्था का अटल आधार भी हो। युरोप मे इगलिस्तान के सवेदनावाद (यह सिद्धान्त कि सारे विचार सवेदना से उत्पन्न होते हैं—अनु०) और फ्रान्स तथा जर्मनी के गत्यात्मक मनोविज्ञान ने इस विचार के लिये द्वार खोल दिया था कि बुद्धि की अवधारणा एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में की जा सकती है। किन्तु डार्विन भी, जो अन्तरात्मा और भावनाओ सम्बन्धी अपनी रचना में मनो-जीवविज्ञान के क्षेत्र मे गवेषणा आरम्भ कर रहे थे, अत्यधिक सतर्क थे। जेम्स १८६८ में डार्विन, हेल्महोल्ट्ज़, चारकॉट, और अन्य प्रकृतिवादियो से प्रेरणा ले युरोप से लौटे थे। किन्तु उन पर भी कॉण्ट का प्रभाव इतना काफी था कि नैतिकता के आधार प्राग्-आनुभविक होने पर उनका विश्वास बना रहा। किन्तु बुद्धि, आत्मा का जीवन, मानसिक क्रिया, यह क्षेत्र जो अपनी उद्देश्यवादी प्रकृति के कारण नैतिक विज्ञान के अधीन रखा गया था, उस कलाओ के क्षेत्र को अब जीव-विज्ञान में समाहित होना था। अब तर्क-बुद्धि की व्याख्या पशु-बुद्धि को स्वाभाविक सन्तान के रूप में की जानी थी। 'गत्यात्मक' भाववादियों ने भी इस विचार का विरोध किया। उनके मतानुसार कोई तार्किक आदर्श या नैतिक लक्ष्य, 'जो सारी प्रक्रियाओं की व्याख्या करता है, उन्हें अर्थ देता और सयुक्त करता है', उसका आधार 'यथार्थ की तार्किक और आध्यात्मिक सरचना में' ही हो सकता है। अगर हम 'भौतिक कारणों को तार्किक उद्देश्य के सन्दर्भ में समझें', तभी हम 'पदार्थ के गठन में ही

नैतिक लक्ष्यो को' समाविष्ट कर सकते हैं। भौतिक विज्ञान, मनुष्य को यान्त्रिक बनाने और प्रकृति से उसकी दिव्यता छीनने की चेष्टा मे, केवल विज्ञान को अमानवी बनाता है।[1] और जे० एच० हिस्लॉप ने सामान्य विश्वास को सशक्त रीति से व्यक्त किया, जब उन्होने लिखा – 'विकासवाद व्याख्यात्मक है, नीतिशास्त्र विधि-निर्मायक है।...क्या हम मात्र शक्ति के आधार पर मनुष्य जाति के लिये विधि-निर्माण कर सकते हैं?...इसमें सन्देह नही कि वस्तुएँ जैसी हैं, उनका निर्धारण करने मे शक्ति के वास्तविक प्रभाव का वर्णन प्रकृतिवादी सिद्धान्त बहुत अच्छा करता है।[2]" किन्तु 'शिशुओ और जंगलियो के मस्तिष्क को टटोल कर... और तब मनुष्य की 'प्रकृति' के सिद्धान्त की घोषणा करना, जिसमे सारी 'प्रकृति' बाहर ही छूट जाती है', हर उच्च विश्वास का विध्वंस करने वाला कार्य है। "विषय की इस दृष्टि से, हमे इसकी चिन्ता नही कि जंगलियो के व्यवहार वास्तव में क्या हैं। हम फिर भी इसकी जाँच कर सकते हैं कि उन्हे क्या वहीं होना चाहिये जो वे है।"[3] "सचमुच, विज्ञान हमें सद्गुण, कर्त्तव्य या भलाई की वैधता के बारे मे कुछ नही बता सकता...उनका औचित्य, अन्तिम विश्वलेषण में, एक अजेय चेतना मे है कि उनका हम पर अधिकार है, उनकी हम पर सत्ता है।"[4] भाववादी तर्क यह था कि जो कुछ हमारी नैतिक प्रकृति के लिए सच है, वह हमारी तार्किक प्रकृति के लिए भी सच है और इस कारण मनोविज्ञान सामान्य रूप में वैधता की हमारी 'अजेय चेतना' पर ही आधारित हो सकता है।

इन परिचित और पूर्णत. संगत आपत्तियो को जीव-वैज्ञानिक और आनुवंशिक अनुभववादियो की नयी धारा ने अनसुना कर दिया। उनका मन का प्राकृतिक विज्ञान इससे सम्बन्धित नही था कि हमें क्या सोचना चाहिये, वरन् इससे कि हम कैसे सोचते हैं और जो कुछ हम विश्वास करते हैं, वह क्यो,

---

१. यहाँ उद्धृत अंश और प्रस्तुत विचार जॉन डुई के 'एथिक्स ऐण्ड फिजिकल सायन्स' से लिये गये हैं—'ऐण्डोवर रिव्यू', खण्ड सात (१८८७) पृष्ठ ५७३-५८१।

२. जे० एच० हिस्लॉप, 'इवॉल्यूशन ऐण्ड एथिकल प्राब्लेम्स'' 'ऐण्डोवर रिव्यू,' खण्ड नौ (१८८८), पृष्ठ ३४८-३६६।

३. ये दो उद्धरण जे० एच० हिस्लॉप द्वारा शुरमॅन की रचना, 'एथिकल इम्पोर्ट ऑफ डार्विनिज्म' की समीक्षा से लिये गये हैं, 'ऐण्डोवर रिव्यू' खण्ड नौ, (१८८८), पृष्ठ २०३-२०६।

४. जे० जी० शुरमॅन, 'दी एथिकल इम्पोर्ट ऑफ डार्विनिज्म' (न्यूयार्क, १८८७), पृष्ठ २६४।

चाहे हमारे विश्वास तर्कसगत हो या मूर्खतापूर्ण, वैध हो या अवैध। यह नया मनोविज्ञान अब आदर्शात्मक नही होगा, मानसिक स्वास्थ्य के नियम प्रतिपादित नही करेगा। यह लाक्षणिक होगा, मनुष्यो को बतायेगा कि उनके मन किस प्रकार काम करते है, उस समय भी जब वे ठीक से काम नही करते। इन मनोवैज्ञानिको मे विलियम जेम्स दर्शन के लिए विशेष महत्वपूर्ण वन गये।१८७८ में, हार्वर्ड में उनका पाठ्य-क्रम, जिसका शीर्षक पहले था, 'शरीर-क्रियात्मक मनोविज्ञान—हर्बर्ट स्पेन्सर के मनोविज्ञान के सिद्धान्त, अब दर्शन ४। मनोविज्ञान—बुद्धि पर टेन के विचार' बन गया। उन्होने आरम्भ में बडे दावे नही किये। अध्यक्ष इलियट के समक्ष नये पाठ्य-क्रम का समर्थन करते हुए उन्होने लिखा—

"विकास सिद्धान्त से और पुरातत्व, स्नायुतन्त्र और वोधेन्द्रियो के तथ्यो से मनुष्य का एक वास्तविक विज्ञान अब निर्मित हो रहा है। अभी भी इसका व्यापक भौतिक प्रसार हो चुका है, पत्र-पत्रिकाएँ ऐसे निवन्धो और लेखो से भरी रहती हैं, जो न्यूनाधिक इससे सम्वन्धित होते हैं। प्रश्न यह है कि क्या छात्रो को पत्रिकाओ के सहारे और पूर्णत साहित्यिक पद्धति में शिक्षित अध्यापक जो कुछ शिथिल ध्यान इस विषय पर दे सकते है, उसी के सहारे छोड़ दिया जाये ? या कि कॉलेज ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करे जिसका वैज्ञानिक प्रशिक्षण उसे पूरी तरह इस योग्य बनाता हो कि वह प्राकृतिक इतिहास के सारे तर्कों के वल को पहचान सके और साथ ही, अधिक अन्तर्मुखी प्रकार के लेखको से उसका परिचय उसे कुछ उन अपरिष्कृत तर्कों से बचाये जो मात्र, प्रयोगशाला की दृष्टि रखने वालो में सामान्यत मिलते हैं ?

"मेरी अपनी बात से विल्कुल अलग, मेरा यह दृढ विश्वास है कि कालेज में एक जीवन्त विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान के शिक्षण की व्यवस्था किसी ऐसे व्यक्ति के माध्यम से नही हो सकती, जो स्नायविक शरीर-क्रिया-विज्ञान के तथ्यों से भलीभाँति परिचित न हो। दूसरी ओर कोई मात्र शरीर-क्रिया-वैज्ञानिक स्वय अपने विषय के मनोवैज्ञानिक अशो की सूक्ष्मता और कठिनता को पर्याप्त रूप में नही समझ सकता, जब तक उसने मनोविज्ञान को उसकी पूर्णता में पढाने, या कम से कम उसका अध्ययन करने की चेष्टा न की हो। अत. एक व्यक्ति में इन दो 'अनुशासनो' का मेल, सर्वाधिक स्वाभाविक प्रतीत होता हैं।"[1]

शीघ्र ही उन्होने अपने प्रयोगात्मक अनुभववाद को, अर्थात् विकासवाद, शरीर-क्रिया-विज्ञान और अन्तर्दर्शन के अपने मेल को, स्वय दार्शनिक विचारों पर भी

---

१. राल्फ वार्टन पेरी, 'दी थॉट ऐण्ड कैरेक्टर ऑफ विलियम जेम्स' (बोस्टन, १९३५) खण्ड दो, पृष्ठ ११।

लागू करना आरम्भ किया। वे 'तार्किकता की भावना' को लाक्षणिक जांच के लिये अपनी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला मे ले गये। उन्हे यह पूछने की धृष्ट और विचलित करने वाली आदत थी कि आस्था की हठपूर्वक मान्य इतनी अधिक वस्तुएँ क्यो हैं, जिनके लिए प्रमाण, या वस्तुपरक वैधता बहुत कम हो सकती है। और, जब वे स्वय सत्य को मनोवैज्ञानिक रूप देने लगे और पूछने लगे कि हम वैधता में कैसे विश्वास करने लगते हैं, या किसी स्थापना की प्रामाणिकता से कब सन्तुष्ट होते है, तो यह धृष्टता ही व्यवहारवाद (प्रैग्मैटिज़्म) का दर्शन बन गया। उन्होने ये सवाल भौतिकवाद की दृष्टि से नही, वरन् 'सामान्य-बुद्धि' की दृष्टि से उठाये थे। उन्हे आशा थी कि इस प्रकार वे अपने इस विश्वास के लिये प्रयोगात्मक प्रमाण एकत्र कर सकेंगे कि 'मानव मन हमेशा तथ्यो की व्याख्या अपने नैतिक हितो के अनुसार करता रहा है और हमेशा करता रह सकेगा।"[1] तर्क-बुद्धि की नैतिकता के प्रति अधीनता के इस पुन. प्रतिपादन से रूढ़िवादियों को कैसे सन्तोष मिलता, जबकि स्वय नैतिकता को तर्कना के सर्वोपरि स्थान से च्युत करके मानवी 'हितो' के बीच छोड दिया गया था।

इस व्यवहारवाद की पूर्व-भूमिकाएं भी थी। १८६४ मे ही[2] एफ० ई० ऐवट ने सवेदनावाद के नाम-सिद्धान्त (कि सारी अमूर्त्त धारणाएँ केवल नाम होती हैं—अनु०) की आलोचना की थी और कहा था कि सम्बन्धो की वस्तुपरकता का मनुष्य को प्रत्यक्ष अनुभव होता है और यह कि वैधता के सिद्धान्त, सामान्य रूप मे, समझ के मात्र प्राग्-अनुभव रूप नही हैं, वरन् अनुभव के फल है। वे केवल अन्त प्रज्ञा मे स्कॉटी सामान्य-बुद्धि के विश्वास को दोहरा नही रहे थे। वे एक आधारभूत, यथार्थवादी ज्ञान-मीमासा प्रस्तुत कर रहे थे, जिसके अनुसार मन न तो एक निश्चेष्ट 'निरूपण की क्रिया' है, न घटनाओ को आदेशित करने वाली सृजनात्मक क्रिया, वरन् वह सम्बन्धित-वस्तुओ के साथ 'क्रिया और प्रतिक्रिया' में लगा हुआ है। उन्होने कहा कि इससे उत्पन्न 'मनोधारणाएँ', 'मानसिक दृष्टि या सम्बन्धो का प्रत्यक्ष-ज्ञान' थी। अत. सार्विकताओ या वस्तुपरक सम्बन्धो की अवधारणा, पृथक् घटनाओ की संश्लिष्टि की प्रक्रिया के द्वारा न होकर, सम्बन्धित वस्तुओ के प्रयोगात्मक विश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा होती है। इस प्रकार एक सघटित, जीव वैज्ञानिक मनोविज्ञान के मूल विचार ऐवट में विद्यमान थे, किन्तु

---

१. १८७७ के एक सार्वजनिक भाषण मे। देखिए, पेरी की पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ २७।

२. एफ० ई० ऐवट, 'दी फिलॉसफी ऑफ स्पेस ऐण्ड टाइम.' 'नार्थ अमेरिकन रिव्यू' खण्ड ६६ (१८६४), पृष्ठ ६४-११६।

उनका पर्याप्त विकास करने के लिए न उनके पास वैज्ञानिक साधन थे, न मनोवैज्ञानिक रुचि ही थी। उनके लिए ज्ञान का यह यथार्थवादी सिद्धान्त केवल 'वैज्ञानिक देववाद' और सघटनात्मक ब्रह्माण्ड-दर्शन की भूमिका था। अतः कॉण्ट की ऐसी आलोचना के साथ चेतना और मन के एक अधिक विध्यात्मक, जीव-वैज्ञानिक सिद्धान्त को जोड़ने का काम एडमण्ड मॉण्टगोमरी जैसे प्रकृतिवादियों के हिस्से में आया। हैमिल्टन की तत्व-मीमासा पर ऐबट के मित्र चॉन्सी राइट की निर्भरता को हिलाने में ऐबट के तर्क असफल रहे थे, किन्तु जे० एस० मिल द्वारा हैमिल्टन की आलोचना और डार्विन की रचना 'ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़' (जातियों का उद्गम) ने उन्हें हिला दिया। १८७३ में वे डार्विन के साथ 'मनो-प्राणि-विज्ञान' की चर्चा कर रहे थे, जब डार्विन ने उनसे यह बार-बार उठने वाला प्रश्न किया कि वस्तुएं मन में हैं, ऐसा कब कहा जा सकता है? राइट ने अपने उत्तम निबन्ध, 'दी इवॉल्यूशन ऑफ सेल्फ-कान्शसनेस'[1] (आत्म-चेतना का विकास) में मानसिक प्रक्रियाओ और मन शक्तियो को एक जीव-वैज्ञानिक ढाँचा प्रदान करने का मौलिक किन्तु परिकाल्पनिक प्रयास किया।

जिस प्रकार ऐबट यथार्थवाद को राइट से नही मनवा सके, उसी प्रकार राइट 'लगभग नित्य' की चर्चाओ में सी० एम० पीयर्स से जीव-वैज्ञानिक उपयोगितावाद को स्वीकार नही करा सके। फिर भी, पीयर्स ने समस्या को देखा और वे सार्विकताओ का स्वय अपना एक व्यवहारवादी सिद्धान्त विकसित कर रहे थे। बर्कले के फ्रेज़र सस्करण की समीक्षा में इसका सर्वप्रथम सकेत मिला कि प.यर्स के विचार किस दिशा में जा रहे हैं।[2] यहाँ पीयर्स ने ऐसी स्थापनाएँ प्रस्तुत की जो कई पीढ़ियो तक विवाद का विषय बनी रही और जिनका व्यवहारवाद के इतिहास में आधारभूत महत्व है—(१) ज्ञान की वैधता के प्रश्न को एक वैज्ञानिक समस्या के रूप में आगमन की पद्धति से देखा और सुलझाया जा सकता है, (२) प्रयोगात्मक सत्यापन, निरीक्षकों में अन्ततोगत्वा सहमति होने के विश्वास पर आधारित है, और ज्ञानियो के समुदाय द्वारा अन्ततोगत्वा मान्य सार्विकताएँ ही यथार्थ और सत्य हैं, (३) कॉण्ट के इस सिद्धान्त की व्याख्या, कि यथार्थ वस्तु मन द्वारा निर्धारित होती है, इस अर्थ में की जानी चाहिये कि वस्तुओ के हमारे अनुभव में वस्तुपरक दृष्टि से वैध सार्विकताएँ, 'मानसिक क्रिया'

---

१. इसकी चर्चा छठें अध्याय में 'परिकल्पनात्मक जीव-विज्ञान' के अन्तर्गत देखिए।

२. चार्ल्स एस० पीयर्स, 'दी वर्क्स ऑफ जॉर्ज बर्कले,' 'दी नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू, खण्ड, ६३ (१८७१), पृष्ठ ४४९-४७२।

के एक समुदाय की सामान्य उत्पत्तियाँ हैं, अप्रज्ञेय कारण नही, (४) गणितीय तर्कशास्त्र के द्वारा यथार्थवाद को पुनर्जीवित करके विज्ञान को नाम-सिद्धान्त, व्यक्तिवाद और भौतिकवाद के दोषो से मुक्त करना है, (५) दर्शन और गणित को अपना मन्दगति लालित्य छोड़ कर, समुदाय के यथार्थ को प्रमाणित करने की समस्या मे अपने को लगा कर व्यावहारिक रूप ग्रहण करना चाहिये।

आठवें दशक में, राइट, पीयर्स, जेम्स, ऐबट और तथाकथित 'मेटाफिज़िकल क्लब' के कुछ अन्य सदस्यो के बीच इन स्थापनाओ पर लम्बी बहसें हुई। इस क्लब की बैठको का वर्णन करते हुए पीयर्स ने लिखा—

"सम्भव है कि हमारे कुछ पुराने साथी अब ऐसी युवा-सुलभ मूर्खताओ का सार्वजनिक प्रकाशन पसन्द न करें, यद्यपि उस समूह में कोई दुर्गुणमय तत्व नही था। किन्तु मेरा विश्वास है कि जस्टिस होल्म्स इस बात से बुरा नही मानेंगे कि उनकी सदस्यता को हम गर्व से याद करते हैं, न श्री जॉसेफ वार्नर ही बुरा मानेंगे। निकोलस सेन्ट जॉन ग्रीन, एक कुशल और विद्वान् वकील, तथा जरमी बेन्थाम के शिष्य, सबसे अधिक रुचि लेने वाले सदस्यो में थे। जीवन्त और सप्राण सत्य पर से पिटे-पिटाए सूत्रो का आवरण हटाने में उनकी असाधारण शक्ति, हर जगह लोगो का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करती थी। विशेषत. वे बहुधा विश्वास की बेन द्वारा प्रस्तुत इस परिभाषा को लागू करने के महत्व पर ज़ोर देते थे, कि (विश्वास) 'वह है जिस पर मनुष्य कार्य करने को तैयार हो'। इस परिभाषा के बाद, व्यवहारवाद बहुत दूर नही रह जाता। अत मैं उन्हें व्यवहारवाद के पितामह के रूप में देखता हूँ।...राइट, जेम्स, और मै, वैज्ञानिक दृष्टि के व्यक्ति थे। तत्व-मीमासको के सिद्धान्तो को आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मानने के बजाय हम उनके वैज्ञानिक पक्ष का निरीक्षण करते थे। हमारे विचार का स्वरूप निश्चय ही इंगलिस्तानी था। हममें से केवल मै ही, कॉण्ट के माध्यम से, दर्शन की भूमि पर आया था और मेरे विचारो मे भी इंगलिस्तानी स्वर आ रहा था।

"...हमारी तत्व-मीमासात्मक कार्यवाहियाँ सारी ही पंख लगे शब्दो मे हुई थी (और वह भी अधिकाश तेज़ पख)। अन्त में, यह सोच कर कि हमारा क्लब कही कोई भौतिक 'स्मारिका' छोड़े बिना ही विघटित न हो जाये, मैंने एक छोटा सा निबन्ध तैयार किया, जिसमे मैंने कुछ ऐसे मत व्यक्त किये, जिन्हें मैं व्यहारवाद के नाम पर बराबर प्रतिपादित करता आ रहा था। इस निबन्ध का ऐसी अप्रत्याशित उदारता से स्वागत हुआ कि लगभग छह वर्ष बाद, महान् प्रकाशक श्री डब्ल्यू० एच० ऐपिल्टन के निमन्त्रण पर मैंने इसे कुछ विस्तार देकर 'पॉपुलर

सायन्स मन्थली' के नवम्बर १८७७ और जनवरी १८७८ के अंको में देने का साहस किया।''[1]

इन तीन 'विज्ञान के व्यक्तियो' में वस्तुनिष्ठावाद के मार्ग से सबसे कम विचलित राइट हुए और इस कारण पीयर्स ने उन्हे 'तीक्ष्ण पर छिछला व्यक्ति' कहा।[2] वे अपने इस सूत्र पर टिके रहे कि ''विज्ञान मे अमूर्त सिद्धान्तो के विकास का औचित्य और कुछ नही है, सिवाय प्रकृति के हमारे मूर्त ज्ञान के विस्तार में उनकी उपयोगिता के।''[3]

किन्तु उन्होने स्वीकार किया कि जहाँ धर्मशास्त्रीय और तत्वमीमासात्मक परिकल्पनाओ की उपयोगिता पूर्णत. नैतिक या व्यावहारिक होती है, वहाँ वैज्ञानिक अमूर्तनो की उपयोगिना सज्ञानात्मक हा सकती है, इस सीमा तक कि उनके 'परिणामो का ऐन्द्रिय सत्यापन हो सकता है, या ये परिणाम ऐसे विचारो से सयुक्त होते है, जिनका सत्यापन सम्भव होता है।'[4] यह सिद्धान्त केवल अनुभववाद के मूल सिद्धान्त का पुनर्प्रतिपादन है, जिसमे विचारो के उद्गम की समस्या के वजाय, विचारो के सत्यापन की समस्या पर आग्रह किया गया है। किन्तु राइट परम्परागत अनुभववाद से काफी आगे वढ गये, जव उन्होंने व्यक्ति और वस्तु (सब्जेक्ट ऐण्ड ऑब्जेक्ट) के अन्तर की ठोस उपयोगिता का प्रश्न उठाया और कहा कि यह अन्तर 'अन्त प्रज्ञात्मक' नही है, 'जैसा कि अधिकाश तत्वमीमासक मानते है', वरन् 'एक समुदाय के सदस्यो के वीच सम्पर्क' के सामाजिक उद्देश्यो के लिये 'निरीक्षण और विश्लेषण द्वारा किया गया वर्गीकरण' है।[5] यह एक नया, स्पष्टतः निरुपित, मौलिक अनुभववाद था। दुर्भाग्यवश

---

१. चार्ल्स हार्टशॉर्न और पॉल वीस द्वारा सम्पादित, 'कलेक्टेड पेपर्स ऑफ चार्ल्स सैण्डर्स पीयर्स' (कैम्ब्रिज १९३१-३५), खण्ड ५, पृष्ठ ७-८।

२. राल्फ वार्टन पेरी, 'दी थॉट ऐण्ड करेक्टर ऑफ विलियम जेम्स' (वोस्टन, १९३५), खण्ड २, पृष्ठ ४३९।

३. 'दी फिलॉसफी ऑफ हर्वर्ट स्पेन्सर' (१८६५), चान्सी राइट, 'फिलॉसॉफिकल डिस्कशन्स' (न्यूयॉर्क, १८७७) में पुनर्मुद्रित, पृष्ठ ५६। उन्होने आगे कहा—''गणितीय यान्त्रिकी और कानून जिन विचारों पर आधारित हैं, प्राकृतिक इतिहास के आकृति-विज्ञान से सम्बद्ध विचार, और रसायन के सिद्धान्त ऐसे ही कार्यकारी विचार हैं—सत्य के मात्र सारांश नहीं, वरन् उसे प्राप्त करने वाले'—('स्टडीज इन दी हिस्टरी ऑफ आइडियाज' न्यूयॉर्क, १९३५, खण्ड ३, पृष्ठ ४९८)।

४. राइट, 'फिलॉसॉफिकल डिस्कशन्स', पृष्ठ ४३।

५. 'इवॉल्यूशन ऑफ सेल्फ कान्शसनेस' वही, पृष्ठ २०७-२१२।

इसे निरूपित करने के शीघ्र बाद ही राइट की मृत्यु हो गयी और कोई नही कह सकता कि अगर वे और कुछ समय जीवित रहते तो इसका विकास पीयर्स की दिशा मे करते, या जेम्स की दिशा मे।

पीयर्स ने भी उसी वस्तुनिष्ठावादी सूक्ति से आरम्भ किया, जिस पर राइट ने ज़ोर दिया था—'किसी वस्तु का हमारा विचार उसके सवेद्य प्रभाव का हमारा विचार 'होता है' और अगर हम सोचते हैं कि हमारा विचार कुछ अन्य होता है, तो हम धोखे मे है और विचार के साथ होने वाली मात्र सवेदना को विचार का ही एक अग मानने की भूल करते है। ऐसा कहना निरर्थक है कि विचार के एकमात्र कार्य से असम्बद्ध उसका कोई अर्थ होता है।' अत किसी वस्तु की हमारी अवधारणा यह विचार करने से स्पष्ट हो सकती है कि हमारी वस्तु के 'क्या प्रभाव है, जिनकी व्यावहारिक प्रासगिकता सोची जा सकती हो।' 'हाउ टु मेक आवर आइडियाज़ क्लीयर' (अपने विचारो को स्पष्ट कैसे करें—१८७८), शीर्षक अपने अब प्रसिद्ध लेख मे पीयर्स अगर इसके आगे न जाते, तो उनमे और राइट के वस्तुनिष्ठावाद में विशेष अन्तर न होता। किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य यह दिखाना था कि इन वस्तुनिष्ठावादी सन्दर्भो मे भी, 'अमूर्त्तनो' और सार्विकताओ के यथार्थ और उनकी उपयोगिता को समझाया जा सकता है।

"हर अन्य गुण की भाँति, यथार्थ भी उन विशिष्ट सवेद्य प्रभावो मे होता है, जो उसमें भाग लेने वाली वस्तुएँ उत्पन्न करती हैं। यथार्थ वस्तुओ का एकमात्र प्रभाव विश्वास उत्पन्न करना होता है, क्योकि उनके द्वारा उद्दीपित सारी सवेदनाओ का चेतना में विश्वासो के रूप मे उद्गम होता है। अत प्रश्न यह है कि सच्चे विश्वास (या यथार्थ मे विश्वास) और झूठे विश्वास (या कल्पना मे विश्वास) के बीच अन्तर कैसे किया जाये। अब.. सच और झूठ के विचारो का सम्बन्ध, अपने पूर्ण विकास में, केवल मत निश्चित करने की प्रयोगात्मक पद्धति से होता है।...

"चूँकि विश्वास कार्य का एक नियम है, जिसके प्रयोग मे और अधिक शका तथा और अधिक विचार सम्मिलित होते है, अत. विश्वास एक विराम-बिन्दु होने के साथ साथ ही एक नया प्रस्थान-बिन्दु भी होता है। इसी कारण मैंने विश्वास को विश्राम-स्थित विचार कहा है, यद्यपि विचार मूलत एक क्रिया होता है। विचार करने का 'अन्तिम' परिणाम होता है इच्छा-शक्ति का प्रयोग और विचार अब इसका अग नही रह जाता। किन्तु विश्वास केवल मानसिक क्रिया का क्रीडा-क्षेत्र है, विचार द्वारा हमारी प्रकृति पर डाला गया प्रभाव है, जो भविष्य के विचारण को प्रभावित करेगा।

"आदत का निर्माण विश्वास का सार-तत्व है। विभिन्न विश्वासो की

विशिष्टता कार्य की विभिन्न रीतियाँ होती है, जिन्हे ये विश्वास उत्पन्न करते हैं। अगर विश्वासो मे कोई अन्तर इस प्रसंग मे नही होता, अगर वे कार्य का वही नियम उत्पन्न करके उसी शका का समाधान करते हैं, तो उनकी चेतना किस प्रकार होती है, इससे सम्बन्धित कोई अन्तर उन्हे भिन्न विश्वास नही बना सकता। उसी प्रकार, जैसे किसी धुन को भिन्न सप्तको में बजाने पर भिन्न धुनें नही बन जाती।"[1]

दूसरे शब्दो में पीयर्स सोचते थे कि उन्होने यह प्रमाणित कर दिया था कि चेतना या भावना की किसी विशिष्ट स्थिति से भिन्न, किसी अवधारणा, सार्विकता या विचार को व्यावहारिक रूप में विश्वास की आदतो के सन्दर्भ में परिभाषित किया जा सकता था और यह कि ये विश्वास की आदतें स्वय व्यावहारिक रूप में कार्य की आदतें हैं। आदत किसी सामान्य विचार की जैवीय प्रतिमूर्त्ति होती है। सार्विकताओ के यथार्थ की वह व्याख्या, पीयर्स को व्यवहारवाद का केन्द्रीय सिद्धान्त प्रतीत होती थी। उनकी रुचि एक अति विशिष्ट प्रकार की 'क्रिया' मे थी—सामान्यीकरण की क्रिया।

"मैंने इसे पहले की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझ लिया है कि मात्र पशु-शक्ति के प्रयोग के रूप में क्रिया सब का उद्देश्य नही है, वरन् जिसे हम सामान्यीकरण कह सकते हैं—ऐसी क्रिया जो विचार को नियमित करती और उसका वास्तविकीकरण करती है, जो (विचार) क्रिया के बिना अविचारित रह जाता है।...ऐसा बहुत-कुछ है जिसके फलस्वरूप मैं पहले से भी अधिक यह मानता हूँ कि अवधारणा का एकमात्र वास्तविक अर्थ अलग-अलग कार्य में होता है। किन्तु पहले से भी अधिक मैं अब यह देख पाता हूँ कि कार्य की मात्र स्वेच्छ शक्ति मूल्यवान नही होती, वरन् विचार को वह जो जीवन प्रदान करता है, वह मूल्यवान होता है।"[2]

पीयर्स ने आग्रह किया कि एकमात्र अन्तर्भावनाशील और पूर्णता तक जाने वाला व्यवहारवाद वही था जो 'याद रखे'—

"जिन व्यावहारिक तथ्यो की ओर यह ध्यान खींचता है, वे, अन्तिम रूप में, एकमात्र अच्छा कार्य यही कर सकते हैं कि ठोस रूप में तार्किकता के विकास को आगे बढ़ायें। अतः इस अवधारणा का अर्थ किन्हीं व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं में

---

१. जस्टस बुचलर द्वारा सम्पादित, 'दी फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ पीयर्स; सेलेक्टेड राइटिंग्ज' (न्यूयॉर्क, १६४०) पृष्ठ ३६-३७, २८-२६।

२. पेरी की पुस्तक, खण्ड दो, पृष्ठ २२२।

बिल्कुल भी नही है, वरन् इसमे है कि ये प्रतिक्रियाएँ किस प्रकार उस विकास में योग देती हैं।"[1]

किन्तु जेम्स सर्वप्रथम एक व्यक्तिवादी थे और वे इसमें पीयर्स से सहमत नही हो सके कि 'इस अवधारणा का अर्थ किन्ही व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओ में बिल्कुल भी नही है।' उन्होने व्यवहारवाद का अपना एक संस्करण निरूपित किया। इसका पहला प्रकाशित आभास १८७८ में 'ब्रूट ऐण्ड ह्यूमन इण्टलेक्ट' (पशु और मानव बुद्धि) शीर्षक एक लेख में मिला, जो 'जर्नल ऑफ स्पेकुलेटिव फिलॉसफी' मे प्रकाशित हुआ। फिर, इगलिस्तान मे समानान्तरवाद पर चल रहे विवाद में भाग लेने के लिये लिखे गये, और 'माइण्ड' में प्रकाशित लेख 'आर वी ऑटोमेटा ?' (क्या हम स्वचालित यन्त्र हैं) मे, पहले लेख के वैज्ञानिक तर्क को उन्होने अधिक दार्शनिक और विवादात्मक रूप दिया। इन लेखो में जेम्स पर चॉन्सी राइट का प्रभाव स्पष्ट है, यद्यपि जेम्स ने उनका जिक्र नाम लेकर नही किया और अपने इस मत का औचित्य प्रतिपादित करने के लिये, कि भावना या चेतना में उपयोगिता होती है, उन्होने अपने दृष्टिकोण को डार्विनवादी कहा।

"मैने यह दिखाने की चेष्टा की है कि सारी तर्कना मन की इस योग्यता पर निर्भर करती है कि जिस घटना के बारे में तर्क किया जा रहा हो, उसकी पूर्णता को आंशिक खण्डो या तत्वो में विभाजित कर सके और उनमें से उस विशिष्ट तत्व को चुन सके जो हमारी विशिष्ट सैद्धान्तिक या व्यावहारिक समस्या में हमें उचित परिणाम तक ले जा सके। किसी अन्य समस्या को किसी अन्य परिणाम की आवश्यकता होगी और उसके लिये किसी अन्य तत्व को चुनना होगा। प्रतिभाशाली व्यक्ति वह होता है जो हमेशा सही स्थान पर उँगली रख कर सही तत्व को चुन लेता है—अगर समस्या सैद्धान्तिक हुई, तो सही 'तर्क' को, व्यावहारिक हुई तो सही 'साधन' को। मै यह प्रदर्शित कर चुका हूँ कि समानता द्वारा साहचर्य, प्रस्तुत वस्तुओं को उनके तत्वो में विभाजित करने मे महत्वपूर्ण सहायक होता है। किन्तु यह साहचर्य केवल उसी चयन का न्यूनतम है, जिसका अधिकतम है सही तर्क को चुनना।...तर्कना उस चयनात्मक क्रिया का ही एक रूप है, जो मानसिक स्वत.स्फूर्ति का वास्तविक क्षेत्र प्रतीत होती है।.

"मन की स्वत.स्फूर्ति वस्तुपरकता के किसी नये अ-संवेदनात्मक गुण को

---

१. हार्टशॉर्न और वीस की पुस्तक में उद्धृत, खण्ड ५, पृष्ठ २। जे० एम० बाल्डविन द्वारा सम्पादित 'डिक्शनरी ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी ऐण्ट साइकॉलॉजी' में पीयर्स के लेख 'प्रैग्मैटिक ऐण्ड प्रैग्मैटिज़्म' से।

कल्पित कर लेने में नही होती। यह केवल इसका निर्णय करने मे होती है कि वह विशिष्ट सम्वेदना कौन सी होगी जिसकी अपनी वस्तुपरकता शेष सभी की वस्तुपरकता से अधिक वैध मानी जायेगी।...

"ये मानसिक कार्य सवेदना के सर्वप्रथम आरम्भ होने के समय ही चलने लगते है और इसके अतिरिक्त, सवेदना के सरलतम परिवर्त्तनो से भी, सभी कोटियो की चेतना सम्बद्ध होती है—समय, स्थान, संख्या, वस्तुपरकता और कारणता। ऐसा नही है कि पहले स्वय संवेदना की निश्चेष्ट क्रिया हो और उसके बाद मन द्वारा वस्तुपरकता के गुणो की उत्पत्ति या प्रक्षेप ('अनुमिति') हो। सव, संवेद्यगुणो के साथ इकट्ठा ही आते हैं और अस्पष्टता से स्पष्टता को उनकी प्रगति ही एकमात्र प्रक्रिया है, जिसकी मनोवैज्ञानिको को व्याख्या करनी है।

"प्रयोगशालाओ में शिक्षित व्यक्तियो मे यह इच्छा निश्चय ही वडी तीव्र होती है कि उनके भौतिक तर्कों का भावना जैसे असगत तत्वो से घालमेल न हो। वे सामान्यत: चेतन घटनाओ को मूलत इतना अस्पष्ट और वायवी वताते है कि जैसे उनका अस्तित्व भी सन्देहास्पद हो। मैने एक वडे ही बुद्धिमान जीव-वैज्ञानिक को कहते हुए सुना, 'अव समय आ गया है कि वैज्ञानिक व्यक्ति, वैज्ञानिक अन्वेपण मे चेतना जैसी किसी वस्तु की मान्यता का विरोध करे।' सक्षेप मे, भावना अस्तित्व का 'अवैज्ञानिक' अर्द्धांश है और कोई भी व्यक्ति जो 'वैज्ञानिक' कहलाना पसन्द करता है, वडा प्रसन्न होगा अगर उसे अपने मनोवाछित अध्ययन मे शब्दो की अमिश्रित समरूपता प्राप्त हो जाये। इसके वदले में उसे केवल एक द्वैत स्वीकार करना पडेगा, जो मन को अस्तित्व का स्वतन्त्र स्थान देने के साथ-साथ ही उसे कारणात्मक निष्क्रियता मे निर्वासित कर देता है, जहाँ से उसके द्वारा किसी दखल या हस्तक्षेप का कोई भय नही रह जाता।

"किन्तु सामान्य-बुद्धि की भी अपनी सौन्दर्यात्मक माँगें हो सकती हैं और उनमें एकता की आकाक्षा भी हो सकती है। वस्तुओ की प्रकृति मे एक अन्तिम और अविवेचनीय द्वैत इतना ही असन्तोषजनक हो सकता है जितनी बहुजातीय शब्दो को लेकर काम करने की मजबूरी।...

"और अब, ऐसी प्रतियोगी सौन्दर्यात्मक आवश्यकताओ के बीच फैसला कौन करेगा?...दोनो, एक समान ही, सम्भव की धारणाएँ हैं और हमारे ज्ञान की वर्तमान स्थिति में, इनमें से किसी एक की सत्यता का स्वीकार करना, एक अत्यधिक अवैज्ञानिक कार्य होगा।"[1]

---

१. विलियम जेम्स, 'आर० वी० आटोमेटा?,' 'माइण्ड, (क्वार्टर्ली रिव्यू ऑफ साइकॉलॉजी एण्ड फिलॉसफी लण्डन, ४, १८७९) पृष्ठ १२, ११, ११ रम. २-३, ३।

यह जेम्स के मनोविज्ञान के साथ-साथ उनकी 'विश्वास-की-इच्छा' और उनके व्यवहारवाद का भी सार है। उन्होने कहा कि प्रमस्तिष्क लचीला या निदेशित होने वाला होता है और चेतना स्पष्टत. निदेशन करने के लिये, विवेक के लिये होती है। इसका अनिवार्य परिणाम है कि प्रमस्तिष्क और चेतना के लिए इकट्ठा काम करना 'आवश्यक' है। यद्यपि नैतिक रूप में वे परस्पर-क्रिया के सम्बन्ध में निश्चित थे, किन्तु अपने 'मनोविज्ञान' मे उन्होने इसे एक वैज्ञानिक प्रश्न मानना स्वीकार नही किया और इसे अपने विचार के तत्वमीमासात्मक विभाग मे रखा—एक सुविधाजनक ढंग, जिसका अपने 'मनोविज्ञान' मे उन्होने बहुधा उपयोग किया।

जिन दिनो वे ये लेख लिख रहे थे, उन्ही दिनो उन्होने जॉन्स हॉपकिन्स में अन्योन्यक्रियता पर कुछ भाषण भी दिये और उनके अन्त में कहा—

"एक वैज्ञानिक व्यक्ति और एक व्यावहारिक व्यक्ति, दोनो ही रूपो मे मैं इससे पूरी तरह इनकार करता हूँ कि विज्ञान मुझे यह मानने को बाध्य करता है कि मेरी अन्तरात्मा कोई मरीचिका या बहिष्कृत वस्तु है और मुझे विश्वास है कि आज के प्रमाणो को देखने के बाद आपका भी यह स्वाभाविक विश्वास अधिक दृढ हो जायेगा कि आपके सुख और दुख, प्रेम और घृणा, आकाक्षाएँ और प्रयास, जीवन के रणक्षेत्र में वास्तविक योद्धा है, सघर्ष के मात्र नि शक्त, पगु दर्शक नही।"[1]

---

१. पेरी की पुस्तक, खण्ड २, पृष्ठ ३१। इन भाषणो के समय जेम्स 'अशान्त और अनींदे' थे। उन्हे चिन्ता थी कि जिस लड़की से उन्होंने विवाह का प्रस्ताव किया था, वह निश्चय करके प्रस्ताव स्वीकार करेगी या नहीं। जब अन्त में प्रतीक्षित उत्तर आ गया और अपनी अ-स्वचालित प्रेमिका के साथ उनका विवाह हो गया, तो दोनो ने मिल कर 'आर वी ऑटोमेटा ?' शीर्षक लेख 'माइण्ड' पत्रिका को भेज दिया। स्वचलता और भौतिकवाद का प्रश्न १८९८ मे व्यवहारवाद के प्रसग मे फिर उठा जब जेम्स ने स्वीकार किया कि उन्होने 'स्वत. भावना' को ध्यान मे नहीं रखा था। स्वचालित प्रेमिका' के असन्तोष-जनक होने का दृष्टान्त देकर उन्होने (कैलिफोर्निया के भाषण मे) भौतिकवादी और देववादी ब्रह्माण्ड-दर्शन के व्यावहारिक अन्तर सम्बन्धी अपनी विवेचना को संशोधित किया। सी० सी० एवरेट ने इस समस्या की ओर उनका ध्यान खींचते हुए एक अन्य उदाहरण का प्रयोग किया—'हम एक मानवी-हृदय वाली मुर्गी की कल्पना करे। मुझे ऐसा लगता है कि इस रूप के नतीजे जो मुर्गी होगी, उसमे इससे काफी अन्तर पड जायेगा कि उसे माँ-मुर्गी ने सेया, या उसे

इस परिणाम पर पहुँचते ही, उन्होने इसे विचार के अधिकतम परिकल्पनात्मक रूपों पर लागू किया और 'रिफ्लेक्स ऐक्शन ऐण्ड थीइज्म' (सहज-क्रिया और देववाद) शीर्षक निबन्ध लिखा ! इसमें इनका अपना व्यवहारवाद अपने विशिष्ट रूप में प्रस्तुत हुआ—

"हमारी प्रकृति का संकल्प विभाग...अवधारण विभाग और भावन विभाग दोनो पर प्रभावी होता है। या, सीधी-सादी भाषा में, प्रत्यक्ष-ज्ञान और विचारण केवल आचरण के लिए होते हैं। मुझे विश्वास है कि आधुनिक शरीर-क्रियात्मक अन्वेषण की सम्पूर्ण धारा हमें जिस ओर ले जाती है, उसके आधारभूत निष्कर्षों मे इसे भी एक मानना गलत नही होगा। अगर पूछा जाये कि पिछले वर्षों मे मनोविज्ञान को शरीर-क्रिया-विज्ञान की बड़ी देन क्या रही है, तो मुझे विश्वास है कि हर सक्षम अधिकारी व्यक्ति का यही उत्तर होगा कि उसका प्रभाव अन्यत्र कही भी इतना गम्भीर नही रहा जितना इस व्यापक और सामान्य दृष्टिकोण के लिए विशाल मात्रा मे उदाहरण, सत्यापन और समैक्य प्रस्तुत करने में।"[1]

यद्यपि १८९५ में 'समर स्कूल ऑफ एथिक्स' में उनका 'दी विल टु बिलीव' शीर्षक भाषण चौदह वर्ष बाद हुआ, किन्तु इसमें उन्होने पहले लेख के सकल्पवाद और 'दिव्य-ज्ञान-विरोध' को पुन प्रतिपादित करने के अतिरिक्त, विशेष कुछ नहीं कहा। फिर भी, पहले लेख और कुछ अन्य लेखो के साथ १८९७ मे इसके प्रकाशन का बड़ा ज़बरदस्त प्रभाव पडा। उनके मित्रो को भी यह लेख पसन्द नही आया। उन्होने इसे क्रिया-के-लिए-क्रिया के समर्थन और जो कुछ विश्वास करना चाहो उस पर विश्वास करने की वकालत के रूप मे देखा। पीयर्स के अनुसार, जिन्हे यह पुस्तक समर्पित की गयी थी, यह 'एक बहुत ही

अण्डे सेने की मशीन में गरम रखा गया—चाहे अण्डे सेने की मशीन से उसे वह सब कुछ मिल जाये जो उसे माँ-मुर्गी से मिल सकता हो। भौतिकवाद के साथ गया एक कठिनाई यह नहीं है कि वह विश्व को एक अण्डे सेने की मशीन में परिवर्तित कर देता है ?' (जेम्स को पत्र, २६ अक्टूबर, १८९८। पेरी की पुस्तक में प्रकाशित, खण्ड २, पृष्ठ ४६४) इस प्रश्न पर, 'माइण्ड एण्ड बिहेवियर' (कोलम्बस, ओहियो, १९२४) में ई० ए० सिंगर की और 'दी मीनिंग ऑफ़ ट्रुथ' (न्यूयॉर्क, १९०९) पृष्ठ १८९ एन, में विलियम जेम्स की विवेचना भी देखिए।

१. विलियम जेम्स, 'दी विल टु बिलीव एण्ड अदर एसेज इन पॉपुलर फिलॉसफी' (न्यूयॉर्क, १८९७) पृष्ठ ११४।

अतिशयोक्तिपूर्ण वक्तव्य' था, जैसे वक्तव्य 'किसी गम्भीर व्यक्ति को बहुत अधिक हानि पहुँचाते हैं।' उन्होने जेम्स को एक यथासम्भव सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है और 'मात्र क्रिया' का विरोध करने के बाद अन्त में कहा—

"जहाँ तक 'विश्वास' और 'अपना मन बनाने' की बात है, अगर उनका अर्थ इससे अधिक कुछ हो कि हमारी एक कार्यप्रणाली है और उस प्रणाली के अनुसार हम आचरण का कोई विशिष्ट वर्णन करने की चेष्टा करेंगे, तो मैं समझता हूँ कि उनसे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है।"[1]

जेम्स के मित्र जॉन जे० चैनमैन ने लिखा—

"जो व्यक्ति आपके बताये उपायो से आस्था का औचित्य सिद्ध करता है, उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन ठीक ही है। वह अपने आप को सन्तुष्ट कर लेता है। उसकी झोपड़ी उसके जीवन भर चल जायेगी। उसके पास किसी प्रकार का अलकतरा या आशाएँ होती हैं, जो उसके अन्दर आस्था को बनाये रखेंगी और उसे उड़ जाने से रोकेंगी। किन्तु वह उसे कभी किसी अन्य व्यक्ति तक पहुँचा नही पायेगा, उसे किसी अन्य व्यक्ति में जगा या उत्पन्न नही कर पायेगा।...ऐसा कह कर, हम कुछ घुमा फिरा कर यही कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति मे आस्था है ही नही। जिस आस्था की आप बात करने लगते हैं, वह इस प्रकार पुष्ट की गयी है और उचित ठहराई गयी है, बाँध-बूँध कर और सिलवटें निकाल कर उसे हर जगह चलाने की चेष्टा की गयी है—मैं उसे आस्था नही कहता! यकीनन, मै उसे आस्था नही कहता!...

"यह सारी झंझट क्यो—कोई मनुष्य विश्वास करता है या नही, इससे 'अन्तर' क्या पड़ता है? यह प्रश्न इतना महत्वपूर्ण क्यो है कि इस पर बहस की जाये?...मै समझता था कि...विश्वास और आचार के सम्बन्ध (का विचार)... दुनिया के अस्वीकृत विचारो मे से है, जैसे ज्योतिष या जमीन मे पानी का पता लगाने वाली घड़ी—ऐसी वस्तु जिसमे सत्य का कोई तत्व है जो शायद अन्वेषण के योग्य हो, किन्तु जो (इस समय) अपनी व्यक्त त्रुटि के कारण तिरस्कृत है। स्वयं अपने अध्ययन के फलस्वरूप मै यह विश्वास करने लगा हूँ कि ऐसे मनुष्य हो सकते हैं, जो कुछ मामलो में कभी-कभी अपने धार्मिक विश्वासो के रूप से प्रभावित होते हैं और अगर कोई विशिष्ट मताग्रह न होता, तो उनके कार्य और भावनाएँ वैसी न होती जैसी कि होती हैं। किन्तु यह बड़ी दुर्लभ और बड़ी उलझी हुई घटना है और निस्सन्देह, बड़ी तेजी से लुप्त हो रही है।"[2]

१. पेरी की पुस्तक, खण्ड २, पृष्ठ २२२।

२. वही, पृष्ठ २३६।

वैयक्तिक तत्व पर जोर देना चाहते थे। किन्तु उनका दुर्भाग्य था कि इसका प्रतिपादन वे गलत जगह पर कर रहे थे। कॉर्नेल मे, जहाँ वे १८६३ से १८६७ तक शिक्षक रहे, ऐसा वैयक्तिक भाववाद इष्ट नही था और वे ऑक्सफोर्ड वापस चले गये। वहाँ भी यह इष्ट नही था, किन्तु वहाँ यह अधिक आकर्षक और हलचल पैदा करने वाला था। अपने अन्तिम वर्षो मे, जो उन्होने दक्षिणी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय मे बिताये, वे इतने मानववादी वन चुके थे कि वहाँ जमे हुए वैयक्तिकतावादी दैववादी उनसे प्रसन्न नही हो सकते थे। 'ऐक्जियम्स ऐज़ पॉस्टुलेट्स' पर उनके प्रथम महत्वपूर्ण निबन्ध ने अनुभववादी तर्क को एक प्रयोगवादी मोड दिया। 'ऐतहासिक और मनोजातीय' दृष्टि से कॉण्ट के पदार्थो की ओर तथाकथित आवश्यक प्राग्-अनुभव सत्यो की अलोचना करने के बजाय, और उन्हे अतीत अनुभव तथा विकासात्मक सघर्ष द्वारा प्रमाणित मानने के बजाय, उन्होने उनको 'दार्शनिक मन की समस्याएँ' या प्रयोगात्मक जाँच के लिए उपयुक्त स्थापनाएँ माना। वे इस अर्थ में प्राग्-आनुभविक है कि वे विशिष्ट अनुभवो का फल नही हैं। ये 'माँग'-अभिधारणाएँ हैं, जो आत्म या पूर्ण के रूप मे कार्यरत जीव समग्र विश्व के समक्ष प्रस्तुत करता है।

''जब हम 'सारे ज्ञान के अस्तित्व मे निहित प्रागनुभव सिद्धान्तो' की बात करते है, तो हमारा तात्पर्य 'तार्किक रूप मे' निहित से होता है या 'मनोवैज्ञानिक रूप मे ?' अर्थात्, वह 'तार्किक' विश्लेषण' का फल है, या 'मानसिक तथ्यो का ? जिस 'प्राथमिकता' की बात कही जाती है, वह 'समय मे' प्राथमिकता (मानसिक तथ्य) है, या 'विचार मे' प्राथमिकता (तार्किक व्यवस्था) ? या, भयानक बात है, क्या यह सम्भव है कि 'प्रागनुभव' जैसा कि इसका प्रयोग होता है, थोड़ा-बहुत दोनो है, या बारी-बारी मे दोनो है और यह कि हमारे स्वयंतथ्यो का सारा प्राग-आनुभविक विवरण इस आधारभूत सभ्रम पर आधारित है ? .

''न तो प्राग् आनुभविक विवरण धार्य है, न अनुभववादी। दोनो असन्तोषजनक प्रमाणित हुए है। पहला इस कारण कि उसने स्वयंतथ्यो को हमारे मानसिक सगठन के मात्र पशु तथ्यो के रूप मे प्रस्तुत किया (या तो पूर्णत असम्बद्ध या केवल अपने बीच सम्बन्धित), और दूसरे ने एक पूर्णतः निश्चेष्ट मन पर पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि मे असम्भव अनुभव की काल्पनिक छापो के रूप मे।

''मूलत दोनो विवरणो की असफलता का कारण एक ही है। दोनो ही एक ऐसे बुद्धिवाद से दूषित है, जो हमारी प्रकृति का अपमान है और जिसके फलस्वरूप हमारी प्रकृति के नैसर्गिक [illegible] के सम्बन्ध मे उसकी दृष्टि [illegible] है। इस सामान्य बुद्धिवाद के [illegible] निर्णीत [illegible] नहीं [illegible], जो [illegible] सामने आ जाता है, जब हम [illegible]

अमूर्त दृष्टिकोणों को छोड कर, अपने सम्पूर्ण अनुभव के साथ अपने सम्बन्ध को समझने की चेष्टा करते है—यह तथ्य कि सप्राण जीव-गठन 'एक इकाई के रूप में कार्य करता है।' या, इस केन्द्रीय तथ्य के पक्षो को अलग-अलग प्रस्तुत करने के लिये, जिसकी अनुभववाद और प्रागनुभववाद अपने-अपने ढँग से गलत व्याख्याएँ करते है, हम कह सकते हैं कि 'जीव-गठन सक्रिय है और जीव-गठन एक है'।

"विचार को क्रिया की सन्तान के रूप में देखना चाहिए, ज्ञान को जीवन की और बुद्धि को सकल्प की सन्तान के रूप मे। मस्तिष्क को, जो बौद्धिक चिन्तन का साधन बन गया है, जीवन की आवश्यकताओ के प्रति अनुकूलताएँ लाने वाला सूक्ष्मतम, अन्तिम और सर्वाधिक सशक्त अग मानना होगा।

"जब हम अनुभव को उसकी सम्पूर्णता मे समझने की चेष्टा करते हैं, तो हमे अपने आपको उस मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के बोझिल अमूर्त्तनो से ऊपर रख कर देखना चाहिये, जो अपनी वैधता की सीमाओ का उल्लघन कर गया है। स्वयतथ्यो को मूलत अभिधारणाओ के रूप मे देख कर, जिनकी निर्मिति एक अन्ततोगत्वा व्यावहारिक लक्ष्य के लिए हुई है, हम अपनी प्रकृति के विभिन्न कार्यों के बीच कृत्रिम रीति से उत्पन्न की गयी खाइँ को पाटते है और बुद्धिवाद की त्रुटियो को दूर करते है। हम स्वयतथ्यो को मनुष्य की आवश्यकताओ से उत्पन्न कारक के रूप मे, उसकी आकाक्षाओ द्वारा प्रेरित, उसके सकल्प द्वारा स्वीकृत, सक्षेप में उसकी भावनात्मक और सकल्पात्मक प्रकृति द्वारा पालित और पोषित देखते हैं।"[1]

ऐसा तार्किक सिद्धान्त स्पष्टत जेम्स के व्यवहारवाद के निकट था और शिलर इसे अच्छी तरह समझते थे। उन्होने लिखा—

"व्यावहारिक अभिधारणा उनके 'विश्वास के सकल्प' के सिद्धान्त का वास्तविक तात्पर्य है, जिसे बडे गलत रूप में समझा गया है। भविष्य मे हमे 'क्या करना चाहिये,' यह सिद्धान्त इसका प्रबोधन उतना नही है, जितना इसका विश्लेषण कि अतीत मे हमने क्या किया है।' और इस सिद्धान्त के आलोचको ने अधिकाश 'विश्वास के सकल्प' में जोडी गयी सारभूत बात 'अपने जोखिम पर' की उपेक्षा की है। इस बात को जोड देने पर, मान्य विश्वास के व्यावहारिक परिणामो के अनुभव द्वारा उसकी जाँच करने की पूरी गुजाइश बनी रहती है।"[2]

---

१. हेनरी स्टुर्ट द्वारा सम्पादित, 'पर्सनल आइडियलिज्म फ़िलॉसॉफिकल एसेज़ बाइ एट मेम्बर्स ऑफ़ दी युनिवर्सिटी ऑफ़ ऑक्सफोर्ड' (लन्दन, १६०२), पृष्ठ ७२, ८४, ८५, ८६।

२. वही, पृष्ठ ६१ एन।

वस्तु उसे प्रिय नही । और तीसरे, उसका सीधा सा खुला इरादा सत्य के पुराने नाम और ढँग के अन्तर्गत व्यापार चलाते रहने का है । उसका कहना है कि 'आखिरकार, क्या हम सब को ही उधार-मूल्य प्रिय नही है' ?"[१]

उत्तर मे जेम्स ने, बौद्धिक आराम या 'नैतिक छुट्टियो' के आधार पर, उन लोगो के लिए किसी परम प्रतिमान के व्यवहारवादी मूल्य की अनुमति दे दी, जिन्हे कभी-कभी, या अन्तिम रूप से विश्राम की आवश्यकता थी । किन्तु उन्होने यह स्वीकार नहो किया कि 'तार्किक रूप मे' कोई 'परम' आवश्यक है ।

"यह बताते हुए कि मैं स्वय परम मे विश्वास क्यो नही करता फिर भी यह देख कर कि इससे उनको 'नैतिक छुट्टियाँ' मिल सकें, जिन्हे उनकी आवश्यकता है और (अगर नैतिक छुट्टियाँ प्राप्त करना अच्छा है तो) इस हद तक इसे सच समझ कर, मैंने इसे एक समाधानकारक शान्ति-चिह्न के रूप मे अपने शत्रुओ के समक्ष रखा । किन्तु उन्होंने, जैसा कि ऐसी भेंटो के साथ सामान्यत होता ही है, इस भेंट को पैरो तले कुचल दिया और उलट कर देने वाले पर टूट पडे । अवधारणाओ के अर्थ के व्यवहारवादी परीक्षण का प्रयोग करते हुए, मैंने यह प्रदर्शित कर दिया था कि परम की अवधारणा का 'अर्थ' और कुछ नही, केवल छुट्टी देने वाला, ब्रह्माण्डीय भय को दूर करने वाला, है । जैसा मैंने दिखाया, जब कोई कहता है कि 'परम का अस्तित्व है,' तो उसकी वस्तुपरक घोषणा सिर्फ इतनी ही होती है कि 'सृष्टि की विद्यमानता के समक्ष, सुरक्षा की भावना का कुछ औचित्य' है और यह कि सुरक्षा की भावना को विकसित करने मे अगर कोई निरन्तर समझ-बूझ कर इनकार करता है, तो वह अपने भावनात्मक जीवन की ऐसी प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करता है, जिसे भविष्यदर्शी मान कर उसका आदर किया जा सकता है ।

"ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे परमवादी आलोचक ऐसे किसी चित्र मे स्वय अपने मनो की कार्यप्रणाली नही देख पाते । फलस्वरूप मै केवल माफी मांग कर अपनी भेट वापस ले लेता हू । अब 'परम' किसी भी रूप में सत्य 'नहीं' है और मेरे आलोचको के निर्णय के अनुसार, उस रूप में तो बिल्कुल भी नहीं, जो मैंने उसे प्रदान किया था ।"[२]

'सत्य' और 'सत्यता' में अन्तर करके और यह मान कर कि उनका बराबर 'सत्यता' से मतलब था, वे सत्य की 'अमूर्त' प्रकृति के पतन पर सामर्ष और

---

१ जोसिया रायस 'दी फिलॉसफी ऑफ लायल्टी' (न्यूयार्क, १९०८), पृष्ठ ३३१-३३२, ३४६-३४७ ।

२. जेम्स, 'दी मीनिंग आफ ट्रूथ', पृष्ठ ८-१० ।

भाववादियो के आगे हार मानने वाले थे, जब डुई ने उन्हे नीचे लिखी कडी चेतावनी दी—

"किसी व्यवहारवादी का यह कहना कि प्रश्न 'लगभग पूर्णत शास्त्रीय' है, क्या विरोधियो को बहुत अधिक आलोचना का अवसर नही दे देता ? दूसरी ओर, अगर यह एक लगभग पूर्णत शास्त्रीय प्रश्न है, तो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि 'सत्यता' बहुत अधिक महत्वपूर्ण विचार है, जैसा कि अन्तिम पैरा मे सकेत मिलता है । मै इस सम्बन्ध मे आपको लिखने का साहस न करता, अगर मुझे निश्चित रूप में यह जानकारी न होती कि ये दोनो पैरा उन लोगो के मार्ग मे बाधक रहे है, जिन्होने अपना मन नही बनाया था और व्यवहारवाद के विरोधियो के लिए प्रसन्नता का कारण रहे है ।

"यह लिखने मे मेरा मुख्य उद्देश्य उपयुक्तता का प्रश्न उठाना है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्ट्राग का लेख बडी स्पष्टता के साथ आपके आलोचको के सम्भ्रम को सामने लाता है, 'सत्य' और 'सत्यता' के बीच अन्तर करके आप जिसका उत्तर देने की चेष्टा कर रहे है । 'क्या यह सच है कि मार्च १८१४ के अन्तिम दिन नेपोलियन प्रॉवेन्स में उतरा ?' अगर इसका कुछ अर्थ है, तो इसका इन दो मे से कोई एक अर्थ ही हो सकना है—(क) क्या यह 'वक्तव्य', 'विचार' या 'विश्वास' कि नेपोलियन इस प्रकार उतरा सच है ? या (ख) क्या नेपोलियन का उतरना (मात्र अस्तित्व का तथ्य) सत्य है । अब, जहाँ तक मै समझता हूँ, अन्तिम परिणति तक जाने वाला तर्कनावादी (जैसे रॉयस) मानता है कि मात्र अस्तित्व का तथ्य, तथ्य 'रूप मे' स्वय ही सत्य की 'प्रकृति' का एक रूप है, अर्थात्, वह पहले से ही, कम से कम बाह्य रूप मे, एक सत्य व्यवस्था (और इसलिए बौद्धिक व्यवस्था) में समाहित एक तत्व है । अब, स्ट्रॉग (और आपके बहुतेरे अन्य आलोचक) इसे 'नही' मानते, जैसे आप स्वय नही मानते । स्ट्राग का कथन 'सच है कि नेपोलियन उतरा' केवल घुमा-फिरा कर कही गयी यही बात हो सकती है कि विचार या विश्वास सच है ।' अब, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अगर हम आलोचको को (जो परम-भाववादी प्रकार के नही हैं), केवल पशु अस्तित्वो या घटनाओ (जो निश्चय ही 'सत्य' नही हैं) और इन अस्तित्वो सम्बन्धी . बौद्धिक वक्तव्यो (केवल जिनसे ही सच-झूठ की प्रकृति सम्बन्धित है) के अन्तर के प्रश्न पर पकडे, तो हम उन्हे दिखा सकते हैं कि सम्भ्रम उनमे है, और यह कि सत्य (मात्र सत्यता ही नही), आलोच्य अस्तित्व के 'प्रभावो' और आलोच्य बौद्धिक स्थिति या उक्ति के 'प्रभावो' का सम्बन्ध हो सकता है ।

"आप मेरे इस कथन के लिये मुझे क्षमा करें, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि बेहतर समझ के लिये, किसी आलोचक की यह बात मान लेना कि घटना

वही है जो सत्य, उसी बात को मान लेना है जिसमे आलोचक का सम्भ्रम स्थित है और उस सम्भ्रम को प्रोत्साहित करके आप उसी बेहतर समझ को रोकते है, जो आपका लक्ष्य है।"[१]

यह एक कुशल मीमासक की उत्तम विवादात्मक सलाह थी। किन्तु जेम्स के लिए यह बहुत अधिक थी। सारे 'सत्य' सम्बन्धी विवाद से वे ऊबने लगे थे। उन्होने कहा कि उनके लिए व्यवहारवाद केवल एक पद्धति-सम्बन्धी भूमिका थी, जिससे उनके असली दर्शन—मौलिक अनुभववाद पर फलदायक चर्चा हो सके। जो उनके लिए केवल एक 'चर्चा चलाने की पद्धति' थी, शिलर और डुई अगर उसमे से किसी दर्शन का निर्माण करना चाहे तो करें।

" 'सत्य' से 'हमारा तात्पर्य क्या है ?' यह किस रूप मे ज्ञात है ? ये ऐसे प्रश्न है, जिन पर अगर चर्चा आरम्भ हो जाये, तो हर पक्ष दूसरे पक्ष का आदर कुछ अधिक करने लगे। विचार के इस सारे ढँग के जनक के रूप मे मेरा नाम जिस ढँग से घसीटा गया है, उस पर मुझे हँसी आती है। मै स्वीकार करता हूँ कि इसमें उन आशिक विचारो को आगे बढाया गया है, जो मैने व्यक्त किये हैं। किन्तु मेरे लिये 'व्यवहारवाद' चर्चा चलाने की एक पद्धति (यह सच है कि एक सर्वोच्च पद्धति) से अधिक कभी कुछ नही रहा और आपने व डुई ने इस अवधारणा को जो व्यापक क्षेत्र प्रदान किया है, वह मेरे अधिक भीरु दार्शनिक विचारण की सीमा से आगे बढ गया है। मै इसका स्वागत करता हूँ, इसकी प्रशसा करता हूँ, किन्तु मैं अभी इसके कुछ अगो को निरूपित नही कर सकता। परन्तु मेरे अन्दर यह विश्वास जरूर है कि उन्हे सफलतापूर्वक निरूपित किया जा सकता है और यह कि दार्शनिक मनुष्य के लिये वह एक महान् दिन होगा।

"निश्चय ही, मै बडी गीली, धीमी जलने वाली बारूद हूँ और अन्य लोगो का लिहाज बहुत ज्यादा करता हूँ, क्योकि मै स्वीकार करता हूँ कि इन लोगो को पढने के बाद ही (इसी तात्पर्य मे आपने जो कुछ लिखा है, उसके और पापमय विश्व को फैसला सुनाने वाले आपके स्वर के बावजूद), ऐसा प्रतीत होता है कि मै जीवन और पुनरुद्धारण के लिए कार्यक्रम के पूर्ण महत्त्व को और उसके 'महान्' परिप्रेक्ष्य को, तथा मानववाद के 'सभी वस्तुओ' का नवीकरण करने वाले चरित्र को समझ पाया हूँ और रात की हवा मे हिल कर जीवन का आभास देने वाले कौवाहँकान के वस्त्रो की तरह, सारे बुद्धिवाद के निष्प्रयोजन को और बुद्धिवादी मूर्त्तियो की पूजा करने वाले सभी लोगो की हठधर्मिता और प्राणहीनता को भी समझ पाया हूँ। . इस नये महान् युग के जन्म मे ... जिसमे जीवन, धर्म और दर्शन एक साथ है ... होता निश्चित हो सकता है।

१. पेरी की पुस्तक, खण्ड २, पृष्ठ ५३० ५३२ ।

"लोगो को यह दिखाना महत्वपूर्ण है कि अवधारणाओ का कार्य व्यावहारिक होता है, किन्तु शुरू-शुरू मे ही यह सुन कर आदमी उलझन में पड जाता है कि ऐसा करने मे आप जिन अवधारणाओ का प्रयोग करते हैं, वे स्वयं ही तरल होते है। और आखिरकार, हमारे अनुभव को अब तक उनमें से 'कुछ' को व्यवहारवादी घनता मे प्रतिष्ठित कर देना चाहिये था। इस प्रकार मै शैक्षणिक रीति से वह दरार डालता हूँ, जिसे आगे बढा कर आप (शिलर) और डुई सारी ज्ञानमीमासा को चीरने मे लगे है। हम दोनो की ही पद्धतियो के लिये स्थान है, किन्तु आपकी टीकाओ और आलोचनाओ का परिणाम यह होगा कि मै कथन के अपने रूपो की अनन्तिमता को अधिक स्पष्ट रूप मे स्वीकार करूँ।''

'लोगो को यह दिखाना कि अवधारणाओ का कार्य व्यावहारिक होता है,' सचमुच जॉन डुई और उनकी शिकागो धारा के लिये महत्वपूर्ण था। डुई का ध्यान आरम्भ से ही व्यवहार के तर्कशास्त्र पर केन्द्रित रहा था और जेम्स की 'साइकॉलॉजी' में उन्होने वह उपकरणवादी तर्कशास्त्र पाया जिसने उनके नीतिशास्त्र के सिद्धान्त में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन कर दिया। १८९१ में डुई की पुस्तक 'आउटलाइन्स ऑफ' ए क्रिटिकल थियरी ऑफ एथिक्स' (नीतिशास्त्र के एक आलोचनात्मक सिद्धान्त की रूपरेखा) के प्रकाशन के बाद, जेम्स को लिखे गये उनके एक पत्र से पता चलता है कि अपने आप को 'उपदेशात्मक नीतिशास्त्र' से मुक्त करने मे जेम्स ने किस प्रकार उनकी सहायता की थी।

"सिद्धान्त और व्यवहार दोनो में ही, वर्त्तमान उपदेशात्मक ढाँचा इतना बडा है और इतना वजनदार है कि पुस्तक की सफलता की मुझे कोई आशा नही है। किन्तु जब आप जैसा एक आदमी भी वह कुछ कहता है जो आपने मुझे लिखा, तो पुस्तक सफल हो गयी।

"किन्तु, जैसा आपने कहा है, अगर कोई व्यक्ति कानून के बजाय, पहले से ही, मान्य सिद्धान्त के अधीन नही रह रहा है, तो उसे सम्बोधित किये गये शब्द हवा की तरह होते है। वह समझता नही कि आपका तात्पर्य क्या है और अगर समझ ले तो विश्वास नही करेगा कि आप का वह तात्पर्य है। उठती हुई पीढी में ही आशा प्रतीत होती है। मै देखता हूँ कि मेरे कई छात्रो में काफी भूख है। बोझ के नीचे से निकलने और अपने जीवन मे विश्वास करने के किसी अवसर का वे बडे उत्साह से स्वागत करते हैं। ..

"मुझे याद नही मैंने आपको बताया था या नही कि मेरे पास इस वर्ष चार स्नातको की एक कक्षा थी, जो आपके मनोविज्ञान का अध्ययन कर रहे थे और

१. वही, पृष्ठ ५०२, ५०५, ५१२।

हम सव को उसमे वडा आनन्द आया । मुझे विश्वास है कि आप को वडा सन्तोप हो, अगर आप देख सके कि आप की पुस्तक हमारे लिए कहाँ तक मानसिक स्वतन्त्रता की उद्दीपक होने के साथ-साथ पद्धतियाँ और सामग्रियाँ प्रदान करने वाली रही है ।''[1]

जव कि जेम्स इस प्रकार एक 'मनोवैज्ञानिक नीतिशास्त्र' निरूपित करने मे डुई की सहायता कर रहे थे, जो उपदेशो के वजाय वास्तविक, सक्रिय आकाक्षाओ पर आधारित था, फ्रैंकलिन फोर्ड नामक एक पत्रकार ने उन्हे वताया कि सामाजिक परिप्रेक्ष्य से भी किस प्रकार वुद्धि और नैतिकता को प्रयोगात्मक अन्वेषण के एक विपय के रूप मे लिया जा सकता था । डुई ने अपनी १८६१ मे प्रकाशित रचना 'एथिक्स' की भूमिका मे विशेप रूप से, 'एक आदर्श क्रिया के रूप मे, वास्तविक परिग्रह के विरुद्ध, आकाक्षा के विचार की ओर' ध्यान खीचा । 'क्षमता और वातावरण सहित, व्यक्तित्व का कार्यरूप मे विश्लेपण, विज्ञान और कला के सामाजिक सन्दर्भो की विवेचना (जिसके सम्बन्ध मे मै अपने मित्र श्री फ्रैंकलिन फोर्ड का ऋणी हूँ) ।'[2] गत्यात्मक भाववाद के आधार पर वडी मेहनत और वडी गूढता के साथ उन्होने जो विचार-व्यवस्था निर्मित की थी, अव उन्होने उसे पूरी तरह त्याग दिया और दो भागो में नीतिशास्त्र की एक नयी व्यवस्था (और पाठ्य-क्रम) निरूपित की—मनोवैज्ञानिक नीतिशास्त्र और सामाजिक नीतिशास्त्र । इसी नीतिशास्त्रीय व्यवस्था की दोहरी सन्दर्भ योजना के अन्तर्गत डुई और उनके सहयोगियो ने प्रसिद्ध 'स्टडीज इन लॉजिकल थियरी' (तर्कशास्त्र के सिद्धान्त की विवेचनाएँ—१६०३) की अवधारणा की, जिसका प्रकाशन उपकरणवाद की शिकागो धारा के उदय का आरम्भ-विन्दु था ।

मिशिगन और शिकागो मे डुई और अन्य लोगो द्वारा भाववाद की जो जीव-वैज्ञानिक और विकासवादी पुन. रचना हो रही थी, उसे हम पहले ही देख चुके है ।[3] डुई विचार को क्रिया के रूप मे और विचार के नियमो को गति या क्रिया के नियमो के रूप मे देखने के अभ्यस्त थे । उन्होने द्वन्द्वात्मक शब्दावली मे निर्णय के मध्यस्थता कार्य को भी निरूपित किया था । जब मार्ग-तत्वो की उद्देश्यवादी प्रकृति के सिद्धान्त को लेकर जेम्स की 'साइकालाजी' प्रकाशित हुई और सार्विकताओ के आदतो में स्थित होने का सिद्धान्त लेकर पीयर्स के लेख

१. वही, पृष्ठ ५१८ ।

२. पेरी की पुस्तक मे उद्धृत, पृष्ठ ५१८ एन ।

३. इनकी चर्चा, छठे अध्याय में 'प्राकृतिक सामाजिक विज्ञान' और सातवें अध्याय में 'भाववाद की धाराएँ' के अन्तर्गत देखिए ।

सामने आये, तो डुई ने समझ लिया कि कार्य के 'नियामक विचारो' के रूप मे पदार्थो की व्याख्या का सामान्यीकरण करके, उसे सभी विचारो पर लागू किया जा सकता है। सभी विचार उद्देश्यात्मक या उपकरणात्मक होते हैं। इस स्थापना के विश्लेषण को अब आनुवंशिक परिकल्पना की भूमि से हटा कर आनुभविक मनोविज्ञान की भूमि पर ले जाया जा सकता था। डुई इस प्रकार अब अनुभव की 'मध्यस्थता' का वर्णन 'प्रतिवर्त्त-चाप की अवधारणा' के सन्दर्भ में करने को और क्रिया की भाववादी तत्व-मीमासा को छोड कर, निर्णय-कार्य के शरीर क्रियात्मक विश्लेषण को अपनाने के लिए तैयार थे। इस सिद्धान्त को व्यवस्थित रूप में सर्व-प्रथम डुई ने अपने लेख 'लॉजिकल कण्डिशन्स ऑफ ए साइण्टिफिक ट्रीटमेण्ट ऑफ मोरालिटी' (नैतिकता की वैज्ञानिक विवेचना की तार्किक शर्तें) में, मीड ने अपने लेख 'डेफिनिशन ऑफ दी साइकिकल' मानसिक की परिभाषा) मे और ए० डब्ल्यू मूर ने अपने लेख 'सम लॉजिकल आस्पेक्ट्स ऑफ परपज़' (उद्देश्य के कुछ तार्किक पक्ष) मे एक साथ ही प्रतिपादित किया। इनमे से मूर की दृष्टि सर्वाधिक प्रत्यक्ष और सरल थी। उन्होने कहा कि, रॉयस और जेम्स दोनो ही विचारो की सोद्देश्यता को मानते हैं, किन्तु वे इसको व्याख्या करने मे असफल रहते हैं कि जब 'बेचैनी और असन्तोष' का, 'सगतिहीन, उलझन में डालने वाले, पशु यथार्थ' का अनुभव, 'परिपूर्ण अर्थ' के अनुभव में रूपान्तरित हो जाता है, तो वस्तुत होता क्या है। विस्तार में उन्होने रॉयस की आलोचना की कि वे अपनी समस्या को ध्यानपूर्वक हल करने के बजाय, अस्पष्ट रीति मे परम अनुभव का सहारा लेते हैं।

"मानवी अनुभव का यह पूर्णत 'खण्ड'-चरित्र, अपेक्षतया उस विघटित स्थिति का एक अमूर्त्तन, है, जिसमे अनुभव अस्थायी रूप से पड जाता है। फिर, इस तथ्य की उपेक्षा करके कि अनुभव खण्डित इसीलिए होता है कि फिर से सम्पूर्ण बने, इस अमूर्त्तन को एक निश्चित गुण के रूप मे पुन प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। परम व्यवस्था, अन्तिम परिपूर्त्ति के साथ भी ऐसा ही है। यह भी पूर्ण बनने के कार्य का, पूर्ण बनाने और परिपूर्ण करने के कार्य का, जो 'सन्तुष्टि के विरामो' के बीच व्यक्त होता है, एक अमूर्त्तन है, जिसे दर्वी व्यक्तित्व का रूप दे दिया गया है। .

"बेचैनी शून्य में नही उत्पन्न होती। किन्तु यह क्रिया ऐसी स्थिति में क्यो आ जाती है जिसे 'अनिश्चित बेचैनी' और असन्तोष कहा जाय ?

"एक तार्किक चर्चा मे, मनो-शरीर क्रियात्मक और जीववैज्ञानिक सिद्धान्तो का समावेश, बहुतो को अरुचिकर तो लगेगा, किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि इस बिन्दु पर आकर प्रश्न का प्रत्यक्ष रीति से सामना करने पर, मैं कोई अन्य उपाय

नही देखता और मुझे ऐसा लगता है कि इस बिन्दु पर आकर, महान् तत्ववादियो के भय ने ही तर्कशास्त्र को इतने वर्षो तक बियावान में भटकाये रखा है।...

"अत इस कारण ही कि इस बेचैनी की प्रतिक्रिया में, विचार 'एक योजना के रूप मे' प्रक्षेपित और निर्मित होता है, विचार की परिपूर्ति इस बेचैनी से सम्बद्ध होगी। जब बेचैनी के इस आधार-द्रव्य से उत्पन्न, उद्देश्य या योजना रूपी विचार परम व्यवस्था की आकाक्षा करने लगता है और अपने नीचे स्तर के पूर्व-वृत्त की उपेक्षा करने या उसे अस्वीकार करने की चेष्टा करता है, तभी परिपूर्ति सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है। ये कठिनाइयाँ हर उस महत्वाकाक्षा के सामने आती हैं, जो ऐसी वस्तुओ की आकाक्षा करता है, जो उसकी वशागत शक्तियो और उपकरणो के लिए विजातीय होती है।

"निश्चय ही हम (यथार्थ को) 'विचारो की एक निश्चित परम व्यवस्था' मे नही खोजेंगे जो 'प्रेम और आशा, आकाक्षा और सकल्प, आस्था और कार्य की वस्तु' है, 'लेकिन कभी भी वर्त्तमान प्राप्ति की नही'। बल्कि प्रेम और आशा करने, आकाक्षा और सकल्प करने, विश्वास और कार्य करने में ही हम उस यथार्थ को पायेंगे, जिसके लिए 'तथ्य रूप मे विश्व' और 'विचार रूप में विश्व', दोनो का ही अस्तित्व है।"[1]

डुई के लेख, 'दी लॉजिकल कण्डिशन्स ऑफ ए साइण्टिफिक ट्रीटमेण्ट ऑफ मोरालिटी' मे परम भाववाद का विरोध कम था और तथ्य-निर्णय तथा मूल्य-निर्णय सम्बन्धी कॉण्टवादी द्वैत को तोडने का प्रयास अधिक। उन्होने इस सिद्धान्त का विकास किया कि विचारो या सार्विकताओ को, निर्णय करने की आदतो या योजनाओ के रूप में, अनुभव मे स्थित देखा जा सकता है और यह कि विचारो की प्रकृति सम्बन्धी यह कार्यात्मक दृष्टि न केवल कार्य और निर्णय के बीच, वरन् वैज्ञानिक निर्णय और नैतिक निर्णय के बीच भी निरन्तरता पर विशेष आग्रह करती है। उन्होने खास तौर पर पीयर्स के सिद्धान्त का जिक्र किया कि 'भिन्न मार्गों पर' चल कर वह उन्ही परिणामो पर पहुँचता है।

"निर्णय करने वाले की आदतो और आवेगी प्रवृत्तियो के माध्यम से ही . विज्ञान की व्यापक स्थापनाएँ या सार्विकताएँ प्रभावी हो पाती है। उनकी अपनी कोई कार्य-प्रणाली नहीं होती।

"जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस सिद्धान्त की ओर सर्वप्रथम ध्यान खींचने वाले और इसके आधारभूत तार्किक महत्व पर जोर देने वाले थे चार्ल्स सी०

१. जॉन डुई, 'स्टडीज इन लॉजिकल थियरी' (शिकागो, १९०३), पृष्ठ

पीयर्स थे (देखिए, 'मोनिस्ट' खण्ड दो, पृष्ठ ५३४-३६,५४८-५६)। श्री पीयर्स इसे निरन्तरता के सिद्धान्त के रूप मे प्रस्तुत करते है—कोई अतीत विचार उसी हद तक कार्य कर सकता है, जहाँ तक उसका मानसिक रूप मे उससे नैरन्तर्य हो जिस पर वह कार्य करता है। सामान्य विचार, केवल एक जीवित और फैलती हुई भावना है और आदत किसी विशिष्ट मानसिक नैरन्तर्य के कार्य करने की विशिष्ट प्रणाली का वक्तव्य है। मै उक्त परिणाम पर इतने भिन्न मार्गो से चल कर पहुँचा हूँ कि श्री पीयर्स के वक्तव्य की अग्रता और उसके अधिक सामान्यीकृत तार्किक चरित्र का महत्व किसी प्रकार कम किये बिना, मै अनुभव करता हूँ कि मेरे अपने वक्तव्य का मूल्य बहुत कुछ एक स्वतन्त्र पुष्टि का सा है।

"सभी व्यापक वैज्ञानिक स्थापनाओ, सभी नियम-वक्तव्यो, सभी समीकरणो और सूत्रो का चरित्र पूर्णत. आदर्शक होता है। उनके अस्तित्व का एक मात्र औचित्य, उनके मूल्य की एक मात्र कसौटी, व्यक्तिगत मामलो के वर्णनो का नियमन करने की उनकी क्षमता होती है। यह मत कि ये शीघ्रलिपि के रजिस्टर या अमूर्त वर्णन होते हैं, उक्त मत का खण्डन करने के बजाय उसकी पुष्टि करता है। शीघ्रलिपि में, और अयथार्थ वक्तव्य प्रस्तुत ही क्यो किया जाये, अगर यथार्थ के साथ सम्बन्ध में वह उपकरण का कार्य नही करता?..

"अगर हम वैज्ञानिक निर्णय को एक कार्य के रूप मे स्वीकार करते हैं, तो मान्य विज्ञानो की सामग्री के तर्क और आचार के तर्क के बीच कोई सीमारेखा खीचने का कोई प्राग-अनुभव कारण नही रह जाता।...

"निस्सन्देह, यहाँ प्रस्तुत दृष्टिकोण निश्चित रूप में व्यवहारवादी है। किन्तु व्यवहारवाद के कुछ रूपो में अभिप्रेत अर्थों के सम्बन्ध मे मैं पूर्णत निश्चित नही हूँ। कभी-कभी उनकी यह मंशा प्रतीत होती है कि तर्कनापरक और तर्कसगत वक्तव्य एक सीमा तक ठीक होते हैं, किन्तु उसकी निश्चित बाह्य सीमाएँ होती हैं, जिसके फलस्वरूप नाजुक अवसरो पर ऐसे विचारो का अवलम्बन करना पड़ता है, जो निश्चित ही अ-तर्कनापरक और अ-तर्कसगत प्रकार के होते हैं और इस अवलम्बन को चुनाव और 'क्रिया' के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार व्यावहारिक और तार्किक एक-दूसरे के विरोधी हो जाते हैं। मैं जो कुछ स्थापित करने की चेष्टा कर रहा हूँ, वह इसके बिल्कुल विपरीत है। अर्थात् यह कि जो तार्किक है, वह व्यावहारिक की अन्तर्निहित या अगीय अभिव्यक्ति होता है और इस तरह, व्यावहारिक रूप मे कार्य करते समय वह स्वयं अपने तार्किक आधार और लक्ष्य की परिपूर्त्ति करता है। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि जिसे हम 'विज्ञान' कहते है, 'बाहरी' नैतिक विचार उसे मनमानी रीति से सीमित करते हैं और इसके फलस्वरूप विज्ञान का नैतिक क्षेत्र में प्रवेश नही

हो सकता, वरन् इसके बिल्कुल विपरीत मेरा तात्पर्य है कि विज्ञान अनुभूत वस्तुओ के विश्व के साथ हमारे सम्बन्धो को नियन्त्रित करने की प्रणाली है और इस कारण ही नैतिक अनुभव को ऐसे नियमन की बहुत अधिक आवश्यकता है और 'व्यावहारिक' से मेरा तात्पर्य केवल अनुभूत मूल्यो मे नियमित परिवर्त्तन से है।''[1]

फिर 'स्टडीज इन लॉजिकल थियरी' मे डुई ने विचारो के इस उपकरणवादी सिद्धान्त को तार्किक वस्तुओ के सिद्धान्त पर लागू किया। उन्होने अपने तर्क को लॉट्ज़े की रचना 'लॉजिक' की आलोचना के रूप मे प्रस्तुत किया। वे यह स्पष्ट करना चाहते थे कि लॉट्ज़े द्वारा विचार और उसकी विषय-वस्तु के मौलिक अलगाव की वस्तुपरक भाववादियो ने जो आलोचना की थी, उससे सहमत होते हुए भी वे उनके इस निष्कर्ष से सहमत नही थे कि विचार ही यथार्थ का 'निर्मायक' है। उन्होने यह दर्शित किया कि विचारो, अमूर्तनो या 'तार्किक वस्तुओ' की अनुभव मे विशिष्ट भूमिका है, अर्थात्, वे सम्भ्रमित क्रियाओ का स्पष्टीकरण करते है। इस प्रकार, बिना इस भाववादी सिद्धान्त को स्वीकार किये कि विचार ही यथार्थ है, वे लॉट्ज़े के विचार बनाम यथार्थ के द्वैत से बच सके। डुई और उनके सहयोगियो के लिये इसका अर्थ था, न केवल भाववाद से, वरन् सभी प्रकार की तत्वमीमासा से ज्ञान के सिद्धान्त की मुक्ति। इन्हे बुद्धि का एक विज्ञान प्राप्त हो गया था।

अगर विलियम जेम्स १९३८ मे डुई की पुस्तक 'लॉजिक, दी थियरी आफ इन्क्वायरी' (तर्क शास्त्र, अन्वेषण का सिद्धान्त) का प्रकाशन देखने को जीवित रहते, जिसमे ज्ञान के प्रयोगवादी सिद्धान्त को पूर्णतम अभिव्यक्ति मिली है, तो शायद वे इस ग्रन्थ को उस 'अमर रचना' के सन्निकट पाते, जिसे लिखने के लिए वे जीवित नही रहे। डुई की 'लाजिक' मे जेम्स की कई विशिष्टियाँ मौजूद हैं। जेम्स ने लिखा—

''अगर मै कर सकूँ, तो एक अन्य अमर रचना लिखना और प्रकाशित करना चाहता हूँ, जो 'प्रैग्मैटिज्म' से कम लोकप्रिय किन्तु अधिक मौलिक होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी इसे ('प्रैग्मैटिज्म' को) ठीक तरह नही समझता— कहा जाता है कि यह इंजीनियरो, बिजली के कारीगरो और डाक्टरो के उपयोग के लिए बनाया गया दर्शन है, जबकि वस्तुतः, जिसने वास्तविक [illegible] [illegible] को

---

१. जॉन डुई, 'लॉजिकल कन्डिशन्स ऑफ ए साइन्टिफिक ट्रीटमेन्ट ऑफ मोरालिटी' (शिकागो, १९०३), पृष्ठ [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।

तैयार थे, जानने के कार्य के उससे अधिक सूक्ष्म और बारीक सैद्धान्तिक विश्लेषण से इसका विकास हुआ।"[1]

अनुभव और प्रकृति

जब विलियम जेम्स मनोविज्ञान के अपने 'प्राकृतिक विज्ञान' के निरूपण मे लगे थे, तो वे जानबूझ कर तत्वमीमासा की समस्याओ को अलग रखते रहे—स्वय अपने मन से नही, जहाँ वे दृढ रूप मे स्थित थी, वरन् मन के अपने विज्ञान से। सर्वप्रथम, उनका इरादा रीत्यात्मक अर्थ में अनुभववादी होने का था, और अपनी रचना 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलॉजी' (मनोविज्ञान के सिद्धान्त) के पाठक को वे समय-समय पर सूचित करते रहे कि वे कुछ ऐसी समस्याओ को जिन्हे आनुभविक प्रमाण द्वारा सुलझाया नही जा सकता, 'रचना के अन्त के लिये' स्थगित कर रहे थे। किन्तु जब वे अन्त पर आये और अपना अन्तिम तत्वमीमासात्मक अध्याय 'नेसेसरी ट्रूथ्स ऐण्ड दी एफेक्ट्स ऑफ एक्स-पीरिएन्स' (आवश्यक सत्य और अनुभव के प्रभाव) लिखा, तो सभी स्थगित समस्याओ की विवेचना सम्भव नही थी। अधिक से अधिक वे इतना ही कर सकते थे कि अनुभव मे उठने वाली समस्याओ को प्राकृतिक तथ्य सम्बन्धी समस्याएँ बनाने के लिए उन्हे जिस रूप मे ढालना आवश्यक था, उसे बतायें। इस 'दार्शनिक' समस्या को उन्होने इस प्रकार निरूपित किया—

"हम वस्तुओ की आनुभविक व्यवस्था और उनकी तुलना की तर्कनापरक व्यवस्था में (अन्तर करते हैं) और यथासम्भव हम पहले को दूसरे में रूपान्तरित करने की चेष्टा करते हैं क्योंकि वह हमारी बुद्धि के अधिक अनुकूल है ।

"वस्तुओ का ऐसे शब्दो मे समावेश, जिनके बीच ऐसे वर्गीकरणात्मक सम्बन्ध, अपने दूरस्थ और बीच के व्यवहारो सहित कायम हो, वस्तुओ को एक अधिक तर्कनापरक योजना के अन्तर्गत लाने की एक रीति है . ।

"इस प्रकार प्रागनुभव या अन्त प्रज्ञात्मक रूप में आवश्यक सत्यो का एक बडा समूह है। सामान्यत., ये केवल 'तुलना' के सत्य होते हैं और सर्व-प्रथम ये मात्र मानसिक पदो के बीच सम्बन्धो को व्यक्त करते हैं। किन्तु प्रकृति इस प्रकार कार्य करती है जैसे उसके कुछ यथार्थ इन मानसिक पदों से एकरूप

---

१. पेरी की पुस्तक, खण्ड दो, पृष्ठ ४६८।

हो। जहाँ तक वह ऐसा करती है, हम प्राकृतिक तथ्य के सम्बन्ध में प्राग-अनुभव स्थापनाएँ कर सकते है। विज्ञान और दर्शन दोनो का लक्ष्य है कि ऐसे पहचाने जा सकने वाले पदो की सख्या बढ़ाये। अभी तक भावनात्मक प्रकार के मानसिक पदो की अपेक्षा, यान्त्रिक प्रकार के मानसिक पदो की प्राकृतिक वस्तुओ के साथ एकरूपता दर्शित करना ज्यादा आसान साबित हुआ है।

"तार्किकता की अधिकतम व्यापक अभिधारणा यह है कि विश्व, 'किसी' आदर्श व्यवस्था के अनुरूप, पूरी तरह तार्किक रूप मे बोधगम्य है। दर्शनो का सारा युद्ध आस्था के इस प्रश्न पर है।"[1]

इस प्रकार जेम्स एक 'आदर्श व्यवस्था' निर्मित करने के प्रयास के साथ 'दर्शनो के युद्ध' में प्रवेश करने को तैयार थे, ऐसी व्यवस्था जो यान्त्रिक व्यवस्था से अधिक व्यापक हो और परम दैववाद की व्यवस्था से कम कठोर हो। इस व्यवस्था को उन्होने 'मौलिक अनुभववाद' कहा। इसका लक्ष्य एक रीतिविधान बनना नही था, वरन् 'मानसिक पदो से एकरूप देखी जा सकने वाली' प्रकृति की एक व्याख्या बनना था।

अ-आनुभविक, 'तत्वमीमासात्मक' समस्याओ को साफ करने के लिए उन्होने व्यवहारवाद निकाला। इसका उद्देश्य 'दार्शनिक चर्चा' को सुविधा और स्पष्टता प्रदान करना था। दुर्भाग्यवश, इसका परिणाम उलटा ही हुआ। यह विवाद का एक और प्रश्न बन गया, जिन आस्थाओ की प्रामाणिकता जाँची नही जा सकती, उनका 'औचित्य सिद्ध करने की एक और योजना बन गयी। रीत्यात्मक विवाद के सम्भ्रमो और उलझनो के बीच, जहाँ तक हो सकता था, जेम्स ने अपनी दार्शनिक व्यवस्था को आगे बढ़ाया।

व्यवहारवाद से अधिक गम्भीर बाधा थी, चेतना की प्रकृति की समस्या, जो उनके समकालीन अन्य लोगो की भाँति जेम्स को भी बार-बार परेशान करती रही और जिसे वे कभी इस प्रकार हल नहो कर पाये कि उससे उन्हे स्वयं सन्तोष होता। चेतना के 'कार्य' का विश्लेषण उन्होंने पर्याप्त रूप मे कर लिया था। चेतना 'लक्ष्यो के लिए लड़ने वाली' है या कम से कम 'ऐसी प्रतीत होती थी'। लेकिन चेतना का 'अस्तित्व — वह क्या हो सकता था? इस समस्या के साथ उनके सघर्ष का उनका अपना विवरण विवादपूर्ण ढंग से प्रदर्शित करता है कि मौलिक अनुभववादी होना कितना कठिन है। उन्हे चेतना का वर्णन एक 'धारा' के रूप मे, निरन्तर चलने वाली वस्तु के रूप मे करने मे सफलता

१. विलियम जेम्स, 'दी प्रिंसिपल्स आफ साइकालॉजी (न्यूयार्क, १८९०), पृष्ठ ६३६, ६७७।

मिली थी, जिसके हिस्से अगागि रूप में सम्बन्धित थे और इस कारण जिससे एक 'अग' के रूप में कार्य करने की अपेक्षा की जा सकती थी। किन्तु जब उन्होने इस एकीकृत मानसिक क्रिया का मेल भौतिक विश्व के साथ बिठाने की चेष्टा की, जिसके तत्व आगपिक थे और जिसके सम्बन्ध 'वाह्य' थे तो उन्होने देखा कि उनका यह कार्य दुष्कर था।

"कणिकात्मक या यान्त्रिक दर्शन के सिद्धान्तो के अनुसार, अलग-अलग अणु, या अधिक से अधिक जीव-कोष ही, एकमात्र यथार्थ हैं। 'मस्तिष्क' मे उनका सग्रह सामान्य बोली की एक कल्पना है। ऐसी कल्पना किसी भी मानसिक स्थिति के वस्तुपरक रूप मे यथार्थ प्रतिरूप का स्थान नही नही ले सकती। केवल कोई सचमुच भौतिक तत्व ही ऐसा कर सकता है। किन्तु आणविक तथ्य ही एकमात्र असली भौतिक तथ्य है। फलस्वरूप, ऐसा प्रतीत होता है कि अगर हम कोई प्राथमिक मनो-भौतिक नियम बनाना ही चाहे, तो हमें पीछे जाकर पुन मनो तत्व सिद्धान्त[1] जैसी किसी वस्तु का सहारा लेना पडेगा, क्योकि अगणिक तथ्य, 'मस्तिष्क का एक तत्व होने के कारण, स्वभावत. सम्पूर्ण विचारो के बजाय, विचार के तत्वो के अनुरूप प्रतीत होता है।

"तब हम क्या करें? इस बिन्दु पर आकर, बहुतेरे लोग अज्ञेय के रहस्य को सोत्साह स्वीकार करके और ऐसे सिद्धान्त के हाथो अपनी उलझनो को अन्तिम रूप से सौंपने मे जैसी हमसे अपेक्षा की जाती है, उस तरह 'चकित' होकर चैन की साँस लेंगे। अन्य लोग प्रसन्न होगे कि जिस परिमित और अलगावपूर्ण दृष्टिकोण को लेकर हमने आरम्भ किया था, उसके अन्तर्विरोध अन्तत' सामने आ गये हैं और वह शीघ्र ही हमे द्वन्द्वात्मक रीति से किसी 'उच्चतर संश्लिष्ट' की ओर ले जायेगा, जिसमे असगतियाँ परेशान करना बन्द कर देती हैं और तर्क विश्राम की स्थिति में आ जाता है। यह एक स्वभावगत दोष हो सकता है, किन्तु बौद्धिक पराजय मे आनन्द लेने के ऐसे तरीको का सहारा मैं नही ले सकता। इनसे केवल आध्यात्मिक बेहोशी उत्पन्न होती है। इससे अच्छा है कि हमेशा तीखी धार पर रहे, समस्या को सुलझाने के अन्तहीन प्रयास में लगे रहे।..."[2]

"यथासम्भव ईमानदारी और धीरज के साथ, मै वर्षो तक इस समस्या मे लडता रहा। इस कठिनाई के सम्बन्ध मे स्वय अपने मन मे उठने वाले विरोधी विचारो से और टिप्पणियो व यादियो से मैंने सैकड़ो सफे भर डाले। कई

---

१. मनो-तत्व सिद्धान्त—यह सिद्धान्त कि मानसिक अस्तित्व का कोई आद्यरूप ही यथार्थ है, और भौतिक द्रव्य उसी का एक पक्ष है। —अनु०

२. वही, खण्ड एक, पृष्ठ १७८-१७९।

चेतनाएँ, एक ही समय में, एक चेतना कैसे हो सकती हैं ? एक और वही एक तथ्य, अपना अनुभव इतनी भिन्न रीतियो से कैसे कर सकता है ? सारा संघर्ष व्यर्थ हुआ। मैने अपने को गतिरोध की स्थिति मे पाया। मैंने देखा कि मेरे सामने दो ही रास्ते थे। या तो मै 'आत्मा के बिना मनोविज्ञान' को अन्तिम रूप से त्याग दूँ, जिसके साथ मेरी सारी मनोवैज्ञानिक और कॉण्टवादी शिक्षा ने मुझे बाँध रखा था, अर्थात्, संक्षेप मे, मानसिक स्थितियो के ज्ञान के लिए मै आध्यात्मिक कारको को वापस ले आऊँ, कभी अलग-अलग तो कभी संयुक्त रूप मे। या फिर मै स्पष्टत. स्वीकार कर लूँ कि समस्या का हल असम्भव है और तब या तो अपने बुद्धिवादी तर्कशास्त्र को, एकरूपता के तर्कशास्त्र को छोड दूँ और तर्कना के किसी उच्चतर (या निम्नतर) रूप को स्वीकारूँ, या अन्ततः इस तथ्य का सामना करूँ कि जीवन तार्किक दृष्टि से अ-तर्कनापरक है।...

"जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैने अपने को 'इस तर्कशास्त्र को' साफ-साफ, प्रत्यक्ष रूप में और हमेशा के लिए 'छोड देने को' मजबूर पाया। मानव जीवन में इसकी एक अनश्वर उपयोगिता है, किन्तु यह उपयोगिता यथार्थ की सारभूत प्रकृति से हमारा सैद्धान्तिक परिचय कराने की नही है।...

"मैं अभी भी मुक्त न होता, इतने हल्के दिल से तर्कशास्त्र को अधीनता का स्थान न देता, या दर्शन के अधिक गम्भीर क्षेत्र से हटा कर उसे सरल मानवी व्यवहार के जगत् मे अपना उपयुक्त और आदरणीय स्थान लेने को न भेजता, अगर मै एक अपेक्षतया युवा और अत्यधिक मौलिक फ्रासीसी लेखक, प्रोफेसर हेनरी बर्गसन से प्रभावित न होता। उनकी रचनाएँ पढ़ कर ही मैं साहसी बना हूँ।...

"मेरे अपने विचार को इतने दिनो तक शिकजे में जकड रखने वाली विशिष्ट बुद्धिवादी कठिनाई को...यह समझ पाने की असम्भवता कि 'तुम्हारा' अनुभव और 'मेरा' अनुभव, जो अपनी 'इस रूप में' परिभाषा के अनुसार एक-दूसरे के प्रति सचेत नही हैं, फिर भी, किस प्रकार, उसी समय एक विश्व-अनुभव के सदस्य हो सकते हैं, जिसकी स्पष्ट परिभाषा यह है कि उसके सारे अंग इकट्ठा चेतन या ज्ञात हैं।"[1]

जेम्स की द्विविधा इस कारण इतनी अभेद्य हो गयी थी कि उन्होंने 'साइकॉलॉजी' और 'प्लूरलिस्टिक यूनिवर्स' के बीच के बीस सालों में, इस मान्यता का परित्याग कर दिया था—जो 'साइकॉलॉजी' के समय 'हर दार्शनिक

---

१. विलियम जेम्स, 'ए प्लूरलिस्टिक यूनिवर्स' (न्यूयॉर्क, १९०९), पृष्ठ २०६, २०७-२०८, २१२, २१४, २२१।

विचारधारा की आधारभूत मान्यता' थी—कि चेतन अस्तित्व का एक अलग प्रकार है और इसके स्थान पर चेतना के एक सम्बन्धात्मक सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। 'साइकॉलॉजी में भी इसके संकेत मिलते है कि इस रूढ मान्यता के सम्बन्ध मे उन्हें शंका थी। समान्तरवाद की द्विविधा से बचने की सम्भावना उन्होने इस नये 'पिछले दरवाजे' मे देखी थी कि वे अस्तित्व के दोनो प्रकारो के एक-दूसरे के लिए वाह्य होने से इनकार करें। किन्तु वे यह निश्चय नही कर पाये कि दोनो में प्रथम कौन है। 'साइकॉलॉजी' मे वे पूरी पुस्तक मे ही बारी-बारी से कार्यात्मक जीव-वैज्ञानिक दृष्टि और अन्तर्मुखी, 'विचार की धारा' वाली दृष्टि अपनाते हैं। दोनो 'ही आनुभविक दृष्टियाँ थी, किन्तु उनमें सगति तभी तक थी जब तक जेम्स ने 'दार्शनिक' प्रश्नो को अलग रखा और यह मानते रहे कि उनका सम्बन्ध एक वस्तुनिष्ठ, प्राकृतिक विज्ञान से है। हर पाठक जानता था और पाठको से अधिक स्वयं जेम्स जानते थे कि कभी न कभी उन्हें तत्व-मीमासा के प्रश्न पर राय बनानी पडेगी।

निश्चय १९०४ मे उनके लेख "डज़ कान्शसनेस एक्ज़िस्ट" (क्या 'चेतना' का अस्तित्व है ?) में प्रकट हुआ। यह लेख उनकी पुस्तक 'एसेज़ इन रैडिकल एम्पिरिसिज्म' (मौलिक अनुभववाद के निबन्ध) का प्रारम्भिक अध्याय था। यहाँ भी जेम्स स्वय अपना इतिहास वताते है :—

"जैसा आपको कुछ उन लेखो से पता चलेगा जो मैं पिछले दिनो आपको भेजता रहा हूँ, मैं मनोवैज्ञानिक रीतियो से बिल्कुल अलग होकर काम करने लगा हूँ। मेरी रुचि एक तत्वमीमासात्मक व्यवस्था ('मौलिक अनुभववाद') मे है, जो मेरे अन्दर निर्मित होती रही है। वस्तुत इतनी रुचि मुझे पहले कभी किसी चीज़ मे नही रही। . ."[1]

"पिछले वीस वर्षो से मेरे मन मे 'चेतना' के अस्तित्व रूप के बारे में शका रही है। पिछले सात या आठ वर्षो से मैं उसके अनस्तित्व की वात अपने छात्रो के समक्ष रखता रहा हूँ और अनुभव के यथार्थो में उसके व्यावहारिक पर्याय बताने की चेष्टा करता रहा हूँ। मेरा ख्याल है अब समय आ गया है कि इसे खुलेआम और सर्वत्र त्याग दिया जाये।

"चेतना' का अस्तित्व है, इससे सीधे इनकार करना, देखने में इतना अनर्गल प्रतीत होता है—क्योकि 'विचारो' का अस्तित्व है, इससे इनकार नही किया जा सकता—कि मुझे भय है कि कुछ पाठक मेरी बात इसके आगे नही पढेंगे। मैं

---

१ राल्फ बार्टन पेरी, 'दी थॉट ऐण्ड कैरेक्टर ऑफ विलियम जेम्स' (बोस्टन, १९३५), खण्ड २, पृष्ठ ३८७।

तत्काल ही बता दूँ कि इस शब्द से किसी अस्तित्व का बोध होने को ही मैं अस्वीकार करता हूँ, किन्तु पूरे जोर के साथ आग्रह करता हूँ इससे एक कार्य का बोध होता है।...

"मौलिक होने के लिए, कोई अनुभववादी अपनी निर्मितियो मे किसी ऐसे तत्व को सम्मिलित नही कर सकता जो प्रत्यक्ष रूप में अनुभूत न हो और न किसी प्रत्यक्ष रूप मे अनुभूत तत्व को छोड सकता है। ऐसे दर्शन के लिए 'अनुभवो को जोड़ने वाले सम्बन्धो का स्वय भी अनुभूत सम्बन्ध होना आवश्यक है और किसी भी प्रकार के अनुभूत सम्बन्ध की व्याख्या उतने ही 'यथार्थ' रूप में करनी आवश्यक है, जैसे व्यवस्था में किसी अन्य वस्तु की'।...

"अब, बावजूद इसके कि सयोजक और वियोजक सम्बन्ध अनुभव के पूर्णतः समंग भागो के रूप में प्रस्तुत होते हैं, साधारण अनुभववाद में हमेशा यह प्रवृत्ति होती है कि वह वस्तुओ के सयोजनो को छोड़कर, वियोजनो पर ही सर्वाधिक आग्रह करता है।...

"यहाँ नैरन्तर्य एक निश्चित प्रकार का अनुभव है। उतना ही निश्चित जितना विच्छेद-अनुभव, जिससे बचना मै उस समय असम्भव पाता हूँ, जब मैं अपने किसी अनुभव से आपके किसी अनुभव मे सक्रमण करना चाहूँ। इस मामले मे मुझे चल कर फिर रुकना पड़ता है, जब मै एक जी गयी वस्तु से एक अन्य केवल अवधारित वस्तु को गुजरता हूँ।"[1]

वस्तुत. जेम्स ने किया यह था कि उन्होने चेतना में नैरन्तर्य के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को विस्तार दे कर, उसे 'वस्तुओ और विचारो' के बीच अस्तित्व में नैरन्तर्य का तत्वमीमासात्मक सिद्धान्त बना दिया। जिस सामान्य विश्व मे हम लोगो का अस्तित्व वस्तु और विचारक दोनो रूपो मे होता है, उसे उन्होंने 'शुद्ध अनुभव के विश्व' के रूप मे देखा, अनुभव का ऐसा विश्व जो साथ ही, अलग से किसी का अनुभव नहीं था। व्यवहारवादी तर्क के प्रयोग से उन्हे 'तटस्थ' अनुभव की ऐसी अभिधारणा का समर्थन करने में सहायता मिली।

"आपकी वस्तुएं बारम्बार वही होती हैं जो मेरी। अगर मैं आप से पूछता हूँ कि आपकी कोई वस्तु 'कहाँ' है, मिसाल के लिए हमारा पुराना मेमोरियल हाल, तो आप 'अपने' हाथ से, जिसे मैं देखता हूँ, 'मेरे' मेमोरियल हाल का इंगित करते हैं। अगर आप अपने विश्व में किसी वस्तु को परिवर्तित करते है, मिसाल के लिए, मेरी उपस्थिति में मोमबत्ती बुझाते हैं, तो 'मेरी' मोमबत्ती

---

१. विलियम जेम्स, 'एसेज इन रैडिकल एम्पिरिसिज्म' (न्यूयार्क, १९१२), पृष्ठ ३, ४२, ४२-४३, ४४।

'अपने-आप' बुझ जाती है। आपके अस्तित्व का अनुमान मै इसी से लगाता हूँ कि आप मेरी वस्तुओ को बदलते है। अगर आपकी वस्तुओ का मेरी वस्तुओ से सम्मिलन नही होता, अगर वे उस एक ही स्थान पर नही होती जहाँ मेरी हैं, तो उनका विध्यात्मक रूप मे कही अन्यत्र होना प्रमाणित करना पड़ता। किन्तु उनका कोई अन्य स्थान निर्देशित नही किया जा सकता। अतः उनका स्थान एक ही होगा, जैसा कि प्रतीत होता है।

"अत. व्यवहार मे, हमारे मन वस्तुओ के जगत् में मिलते हैं, जो उनके लिये सामान्य होती है।"[1]

अगर मौलिक अनुभववाद केवल यह सामान्य-बुद्धि का यथार्थवादी दृष्टिकोण होता कि 'हमारे मन वस्तुओ के जगत् में मिलते हैं' तो उसमे एक तत्वमीमासा के रूप में उतनी नवीनता न होती, जितनी व्यवहारवादी पद्धति में है, जिसके द्वारा उसका समर्थन किया गया है। किन्तु जेम्स के लिए, मन के भावित हुए बिना उसका 'प्रत्यक्ष अनुभव' नही किया जा सकता था। उनके अनुभववाद में भावना-जगत् का चरम स्थान था और चेतना के अस्तित्व मे अपने विश्वास का परित्याग कर देने के बाद भी, उन्होने क्रिया, प्रयास और सम्बन्ध की 'भावनाओ' पर ज़ोर दिया। उन्होने भावात्मक अनुभव के क्षेत्र पर ज़ोर दिया, क्योकि परम्परागत रूप में प्रकृतिवादी इसे वस्तु-जगत् से अलग रखते थे और इस कारण कि वे रॉयस के इस मत से सहमत थे कि 'वर्णन के विश्व' की अपेक्षा 'परिबोध के विश्व' में अनुभव का एकीकरण अधिक तत्काल हो सकता था।

" 'विश्व' निश्चय ही 'सम्पूर्ण' विश्व है, जिसमे हमारी मानसिक प्रतिक्रिया भी शामिल है। विश्व से अगर हम इसे 'निकाल दें' तो वह एक अमूर्त्तन रह जाता है, किन्ही उद्देश्यो के लिए उपयोगी, किन्तु हमेशा आवरित हो सकने वाला। शुद्ध प्रकृतिवाद निश्चय ही अधिक व्यापक उद्देश्यात्मक या परिबोधक निर्धारणो में, आवरित हो सकने वाला होता है। अधिकाश व्यक्ति उसे इस प्रकार घेरने की चेष्टा करते हैं। आप इस प्रकार बात करते हैं जैसे सत्य के दृष्टिकोण से ऐसे प्रयोग पहले से ही त्याज्य हो किन्तु हम व्यवहारवादी न केवल इन्हे उचित समझते हैं, वरन् यह भी कहते हैं कि स्वय प्राकृतिक विश्व की संरचना को उन्हे परिबोधात्मक सत्य के समकक्ष लाकर ही समझा जा सकता है।"[2]

अब उन्होने चेतना के एक 'मातृ-समुद्र' में निजी अनुभव के विलय या चेतन के 'सयोजन' के अर्थ मे 'मनो के मिलने' की मनोवैज्ञनिक सम्भावना को देखा।

---

१. वही, पृष्ठ ७९।

२. पेरी की पुस्तक, खण्ड २, पृष्ठ ४७६।

उन्होने सर्व-मनोवाद को हमेशा गम्भीरता से लिया था और अब उन्हें भय था कि कही उनकी स्थिति मानसिक एकतत्ववाद की न हो जाये, जिसमें वैयक्तिकता का उसी प्रकार पूर्ण लोप हो जाता है, जैसे भाववादियो के 'परम अनुभव' में या निर्वाण के समुद्र मे। मनो के 'सयोजन' को स्वीकार करने के बाद वे अपनी 'बहुत्ववादी सृष्टि' और व्यक्तिवाद का समर्थन कैसे कर सकते थे? क्या उनकी नैरन्तर्य की तत्व-मीमासा उनके नैतिक दर्शन के अनियततत्ववाद को खतरे में डाल रही थी?

"परम वैसा असम्भव अस्तित्व नही है जैसा मै कभी सोचता था। मानसिक तथ्य, एक ही समय में, अलग-अलग और इकट्ठे, दोनो रूपो में कार्य करते हैं। और हम परिमित मनो को, साथ-साथ ही, एक अतिमानवी बुद्धि में एक-दूसरे की सह-चेतना हो सकती है। केवल, परम की ओर से बलात्-आवश्यकता के अत्युक्तिपूर्ण दावो का ही प्रागनुभव तर्क के द्वारा खण्डन करना आवश्यक है। सादृश्य या आगमन के आधारो पर अपनी सम्भाव्यता प्रस्तुत करने की चेष्टा करने वाली स्थापना के रूप में, यह उचित है कि हम परम के पक्ष को धैर्य से सुनें।...

"जो कुछ भी विशिष्ट, वैयक्तिक और अस्वास्थ्यकर है, उसके प्रति तर्कनावाद के तिरस्कार के बावजूद, वह सारा प्रमाण जो हमारे पास है, हमे बडी तेजी से इस विश्वास की ओर ले जाता प्रतीत होता है कि किसी प्रकार का अतिमानवी जीवन है, जिसके साथ हम अनजाने मे ही सह-चेतन हो सकते हैं। सृष्टि मे हम वैसे ही हो सकते है जैसे हमारे पुस्तकालयो मे कुत्ते और बिल्लियाँ, जो किताबो को देखते हैं और बातचीत सुनते हैं, किन्तु इस सब के अर्थ का उन्हे जरा भी ज्ञान नही होता।"[1]

विलियम जेम्स अन्त तक इस प्रकार परिकल्पनाएँ करते रहे। उनका अनुभववाद उनकी आश्चर्यजनक कल्पना और अत्यधिक सहिष्णुता द्वारा संस्कारित था। कोई भी 'तार्किक दृष्टि से' सम्भव वस्तु, गम्भीरता से विचार करने योग्य सुझाव के रूप मे इन्हें आकर्षित करती थी। उनके अनुभव की अपेक्षा, उनका मन था जिसने उनके विश्व को उन्मुक्त रखा।

पीयर्स की नैरन्तर्य की अनुभववादी तत्व-मीमासा ने जेम्स की तत्व-मीमासा से बिल्कुल भिन्न दिशा ली। उनकी दार्शनिक व्यवस्था अनुभव का तत्व-मीमासात्मक विवरण नही थी, वरन् वैज्ञानिक अन्वेषण की भूमिका के रूप में, अनुभव का एक नक्शा थी। उन्होंने इसे पदार्थों के परम्परावादी निगमन के स्थान पर

---

१. जेम्स, 'एसेज इन रैडिकल एम्पिरिसिज्म : ए प्लुरलिस्टिक यूनिवर्स', खण्ड २, पृष्ठ २९२-२९३, ३२९।

रखा। उन्होने इसे घटना-क्रिया-विज्ञान, या दृश्यमान-परीक्षण कहा। पीयर्स की शब्दावली में,मन की कोई भी वस्तु घटना या दृश्यमान् है, उसका यथार्थ चाहे जो भी हो। अनुभव के सर्वाधिक सामान्य लक्षणो का निरीक्षण, स्वय अनुभव द्वारा ही हम पर आरोपित एक अनुशासन है, क्योंकि भविष्य के उपद्रवो का पूर्वानुमान लगाने और उन्हे शासित करने के लिए, तथ्य हमें अपने मनोराज्य जगत् का पुनर्निर्माण करने को वाध्य करते हैं।

"हम दो ससारो मे रहते हैं, एक तथ्य का ससार और दूसरा मनोराज्य का ससार। हममे से हर एक यह सोचने का अभ्यस्त है कि वह अपने मनोराज्य के संसार का जनक है। उसके आदेश देते ही, वह ससार विना प्रतिरोध और विना प्रयास के अस्तित्व में आ जाता है और यद्यपि यह बात सत्य से इतनी दूर है कि मुझे भय है कि पाठक के श्रम का अधिकाश मनोराज्य के ससार में ही लग जाता है, फिर भी, प्रथम अनुमान के रूप मे यह सत्य के काफी निकट है। इस कारण हम मनोराज्य के जगत् को आन्तरिक जगत् कहते हैं और तथ्य के जगत् को वाह्य जगत्। इस वाह्य जगत् मे, हममे से हर एक केवल अपनी ऐच्छिक पेशियो का ही स्वामी होता है, अन्य किसी वस्तु का नही। किन्तु मनुष्य चतुर है और इसे अपनी आवश्यकता से कुछ अधिक बना लेता है। इसके आगे, वह अपने ऊपर सन्तुष्टि और अभ्यास का आवरण डाल कर, कठोर तथ्य की नोकों से अपनी रक्षा करता है। इस आवरण के विना, वह अपने आन्तरिक जगत् को वहुधा वुरी तरह अस्त-व्यस्त पाता और वाहर से विचारो के कठोर अतिक्रमण उसके आदेशो को उलट देते। हमारी विचार-प्रणालियो के ऐसे वलात् सशोधन को मैं तथ्य-जगत् या 'अनुभव' का प्रभाव कहता हूँ। किन्तु ये अतिक्रमण क्या हो सकते हैं, इसका अनुमान लगा कर और हर ऐसे विचार को अपने आन्तरिक जगत् से बाहर रख कर, जिसके इस प्रकार अस्त-व्यस्त हो जाने की सम्भावना हो, वह अपने आवरण की मान्यता कर लेता है। अनुभव के कुसमय पर आने की प्रतीक्षा करने के वजाय, वह उसे ऐसे समय उत्तेजित करता है जव उससे कोई हानि नही हो सकती और अपने आन्तरिक जगत् के शासन में तदनुसार परिवर्त्तन कर लेता है।"[1]

घटना-क्रिया-विज्ञान, दर्शन के तीन अगो मे प्रथम है और निम्नलिखित योजना के अनुसार विज्ञानो से सम्वन्धित है—

---

१. चार्ल्स हार्टशॉर्न और पॉल वीस द्वारा सम्पादित, कलेक्टेड पेपर्स ऑफ़ चार्ल्स सैण्डर्स पीयर्स (कैम्ब्रिज, १९३१-३५), खण्ड १, पृष्ठ ३२१।

सैद्धान्तिक विज्ञान

१. अन्वेषण (निरीक्षण के विज्ञान)

(क) गणित (काल्पनिक वस्तुओ का निरीक्षण)

(ख) दर्शन (सामान्य निरीक्षण, अर्थात् साधारण निरीक्षण जिसमें किन्ही विशेष उपकरणो या प्रविधियो की आवश्यकता नही होती)

(१) आवश्यक (सार्विक अनुभव का निरीक्षण)

(क) घटना-क्रिया-विज्ञान

(ख) आदर्शक विज्ञान (तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौन्दर्य-शास्त्र)

(ग) तत्व-मीमासा (जिसे पुराने लोग 'भौतिकी' कहते थे, सामान्य प्राकृतिक विज्ञान)

(२) 'मार्मिक रूप मे महत्वपूर्ण सत्य और भावुक अनुदारता', 'मार्मिक रूप मे महत्वपूर्ण विषयो के सम्बन्ध में सारी बुद्धिपूर्ण बात अतिसामान्य होगी, उनके बारे में सारे तर्क असगत होगे और उनका सारा अध्ययन संकीर्ण और गन्दा होगा ।

२. समीक्षा

व्यावहारिक विज्ञान

''शिक्षण-शास्त्र, सुनारी, शिष्टाचार, कबूतरबाजी, हिसाब-किताब, घडीसाजी, सर्वेक्षण, नौकाचालन आदि...मै स्वीकार करता हूँ कि इसकी बहुरंगी भीड मुझे बिल्कुल सम्भ्रमित कर देती है ।''[1]

सार्विक अनुभव के सर्वाधिक सार्विक पक्षो के सामान्य निरीक्षण से हमें तीन पदार्थ मिलते हैं—गुण, तथ्य और विचार, जिन्हे पीयर्स सुविधा के लिए प्रथमता, द्वितीयता और तृतीयता कहते हैं ।

पीयर्स के पदार्थ-सिद्धान्त के चिह्न तो १८६० में भी देखे जा सकते हैं, जब उन्होंने गणित में बिम्बो, सूचकों और प्रतीको के बीच अन्तर किया और १८६७ में भी, जब उन्होंने 'लक्षणों' का वर्गीकरण गुणों, सम्बन्धों और निरूपणों में किया ।[2] किन्तु अपने व्यवस्थित घटना-क्रिया-विज्ञान का आरम्भ उन्होंने १८६०

---

१. वही, खण्ड १, पृष्ठ ६७७, २८३ ।

२. वही, खण्ड १, पृष्ठ ५६०-५६७ । पीयर्स ने इसका वर्णन किया है कि युवावस्था में किस प्रकार अपने गणितज्ञ पिता की प्रेरणा से उन्होंने कांट के पदार्थों के सिद्धान्त का अध्ययन किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि कांट का यह कथन सही था कि विचारों के पदार्थ इस प्रकार से औपचारिक तर्कशास्त्र पर निर्भर होते हैं और फिर किस प्रकार अरस्तू और [illegible] के अध्ययन

के लगभग किया, जब उन्होने 'ए गेस ऐट दी रिडिल' (पहेली बूझने की एक चेष्टा) शीर्षक रचना का मसौदा तैयार किया। इस मसौदे के आरम्भ मे उन्होने कहा, "और यह पुस्तक अगर कभी लिखी गयी और अगर मै ऐसा करने की स्थिति में हुआ तो शीघ्र ही लिखी जायेगी, तो काल के जन्मो मे से एक होगी।"[1] उन्ही की शब्दावली का प्रयोग करते हुए, इस पहले मसौदे को हम प्रसव-पीड़ा कह सकते है। इसमे वे बहुतेरी चतुर परिकल्पनाएँ प्रस्तुत करते हैं और हेत्वनुमान से लेकर जीव-द्रव्य तक हर प्रकार की विशिष्ट विषय-वस्तु पर अपने तीन पदार्थों को लागू करते हैं। किन्तु शताब्दी के अन्तिम दशक में उन्होने गणित के तर्कशास्त्र के सम्बन्ध मे इस सिद्धान्त को अधिक व्यवस्थित रूप में विकसित किया। १६०२ में घटना-क्रिया-विज्ञान उनके 'सूक्ष्म तर्कशास्त्र' (माइन्यूट लॉजिक) का एक प्रमुख अंग बना और १६०३ में उन्होने उसे 'व्यवहारवाद सम्बन्धी भाषण' (लेक्चर्स ऑन प्रैग्मैटिज्म) में स्थान दिया।

पीयर्स का दृश्यमान् परीक्षण (या घटना-क्रिया-विज्ञान) वह नही है जिसे आजकल सामान्यतः घटना-क्रिया-विज्ञान के रूप में जाना जाता है। यह किसी विशिष्ट विषय-वस्तु का घटना-क्रिया-विज्ञान नही है, दृश्य-घटनाओ का घटना-क्रिया-विज्ञान तो बिल्कुल ही नही है। यह 'जो प्रकट होता है उसका कथन' नही है, वरन् 'जो प्रतीत होता है उसका अध्ययन' है। यह किसी दी हुई वस्तु का वर्णन, या किसी तथ्य का आग्रह नही है, वरन् एक विश्लेषण है। अन्य घटना-क्रिया-विज्ञानो से यह इस अर्थ मे मिलता है कि इसमे यथार्थ का कोई सिद्धान्त सम्मिलित नही है। अपने सिद्धान्त का विस्तृत विकास करते हुए पीयर्स ने घटनाओ के पूर्णत. आकारी विश्लेषण और उनके वस्तुपरक विश्लेषण में अन्तर किया। एकसूत्र, द्विसूत्र और बहुसूत्र ये आधारभूत आकारी गठन हैं, किन्तु बहुसूत्रो को सयोजित त्रिसूत्रो में विश्लेषित किया जा सकता है। एकसूत्र व्यक्ति हैं। द्विसूत्र ध्रुवीय सम्बन्धी होते हैं। त्रिसूत्र व्याप्तियाँ होते हैं। उदाहरण के लिए, मै एक गणितीय मिसाल दूँ जिसका प्रयोग पीयर्स ने नही किया है।

के द्वारा वे एक तार्किक और तत्वमीमासात्मक रहस्यवाद पर पहुँचे। उनका निबन्ध 'ऑन ए न्यूलिस्ट ऑफ कैटेगोरीज' (पदार्थोंकी नयी सूची पर) अमेरिकन ऐकेडेमी ऑफ आर्टर्स ऐण्ड सायन्सेज की १८६७ की 'प्रोसीडिंग्स' (कार्यवाही) मे छपा था। १८६३ मे उनका इरादा उसे अपनी रचना 'ग्राण्ड लॉजिक' का पहला अध्याय बनाने का था।

१. वही, खण्ड १, पृष्ठ १८१ एन०। छठे अध्याय मे 'ब्रह्माण्डीय दर्शन' के अन्तर्गत भी देखिए।

अगर क, ख, ग तीन बिन्दु हों, तो ये बिन्दु एकसूत्र हैं, क ख, ख ग और क ग रेखाओं के अन्तिम बिन्दु, जोड़ों में, द्विसूत्र हैं और क ख ग त्रिकोण का क्षेत्रफल त्रिसूत्र है। जब इन गठनात्मक अन्तरों की, जो सार्विक रूप में किसी भी घटना पर लागू किये जा सकते हैं, किसी घटना के वस्तुपरक 'तत्वों' के रूप में व्याख्या की जाये, तो उनसे हमें गुण, तथ्य और नियम के आधारभूत 'तत्वमीमांसात्मक' अन्तर प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, अपनी गुणात्मक अद्वितीयता में भावनाएँ व्यक्ति हैं, घटनाएँ या तथ्य नहीं। इस रूप में वे शाश्वत हैं, दुहरायी जा सकने वाली हैं, 'मात्र सम्भाव्य जिनकी सिद्धि आवश्यक नहीं' हैं, तार्किक दृष्टि में सामान्य नहीं हैं, सुख या पीड़ाएँ नहीं हैं, वे घटित न होने वाली, मात्र 'ऐसापन' हैं। 'मात्र सम्भाव्यता बिना किसी सिद्धि के चल जाती है।'[1] किन्तु तथ्य, घटनाएँ, अस्तित्व, अपनी प्रकृति में द्विसूत्रीय, ध्रुवीय होते हैं, उनमें संघर्ष, तनाव, संकल्प का समावेश होता है। विचार या अर्थ त्रिसूत्री होते हैं, उनमें निरूपण, आदत, सामान्यता का समावेश होता है। इस प्रकार हम तत्व-मीमांसात्मक दृष्टि से 'होने' के तीन मूल प्रकार देख सकते हैं—सम्भवता, अस्तित्व और सामान्यता।

कहीं-कहीं पीयर्स ने सुझाया कि पदार्थों का विकास एक-दूसरे से हुआ और इस प्रकार अपने घटना-क्रिया-विज्ञान को अपने विकास सिद्धान्त से जोड़ने की चेष्टा की।

"जब मैं कहता हूँ कि शून्यता, एकसूत्र की सम्भवता है, कि [illegible], द्विसूत्र की सम्भवता है, आदि, तो ऐसे कथनों का स्वर हीगेलवादी प्रतीत होता है। निस्सन्देह, उनकी आन्तरिक प्रकृति वही है। ऐसे अंशों में मैं एक विकास-क्रम के अनुसार चलता हूँ—सम्भवता से वास्तविकता का विकास होता है। हीगेल भी ऐसा ही करते हैं। हर पदार्थ पर वे पिछले पदार्थ से चल कर जैसे 'अगला!' पुकार कर पहुँचते हैं। अगले को लाने की और उसके आने पर उसे पहचानने की उनकी प्रक्रिया क्या (है), वह चाहे जितनी भी महत्वपूर्ण बात हो, अपेक्षया एक विस्तार की बात है, जिसमें मैं कभी उस महान् आदर्शवादी से सहमत होता हूँ और कभी मेरा मार्ग उनसे भिन्न होता है। ऐसा इस कारण कि मेरी अपनी प्रणाली तर्कशास्त्र के यथातथ्य सिद्धान्त के अधिक [illegible] परीक्षण या परिष्कार है (जिनमें हीगेल का युग, विशेषतः उनका अपना देश और स्वयं भी अधिक वे स्वयं निश्चित रूप में दुर्बल थे)। फलस्वरूप मेरी प्रणाली का रूप अधिक व्यापक है, उसमें वैभिन्य की ऐसी क्षमता है जिससे वह अपने का मूल [illegible]

---

१. वही, खण्ड १, पृष्ठ ३०४।

के किसी विशेष रूप के अनुकूल बना सके। अभी उसे निरूपित करने का समय नही है। मै उसका प्रयोग करता हूँ। पाठक अगर ऐसा कर सकता है, तो सहमति से उसका अनुसरण करता है।"[1]

इन पंक्तियो की व्याख्या सम्भवत पीयर्स द्वारा हीगेल की 'फेनॉमिनॉलॉजी' (घटना-क्रिया-विज्ञान) से एक कदम आगे जाने के अर्द्ध-गम्भीर प्रयास के रूप में करनी चाहिये। अपनी श्रेष्ठ विनोदप्रियता मे पीयर्स अपने जीवन के अन्त तक अपने पदार्थों से खिलवाड़ करते रहे। ये पदार्थ एक उत्तम खिलौना प्रमाणित हुए। सम्भवत हम उनके साथ अधिक न्याय करेंगे अगर हम उनके घटना-क्रिया-विज्ञान को परिकल्पनात्मक रीति से उसके सम्भव प्रयोगो मे देखें, बजाय इसके कि तत्वमीमासा के जगल मे उनके बहुसख्यक अभियानो को सिद्धान्त के एक सीधे, सरल राजमार्ग का रूप देने की चेष्टा करें। पीयर्स को 'निर्देशक सिद्धान्त' बड़े प्रिय थे, किन्तु ये उन्हें किन दिशाओ में ले जाते थे, इसके प्रति वे अत्यधिक उदासीन प्रतीत होते थे।

मौलिक अनुभववाद के तत्वमीमासाको मे एक अन्य 'सृजनात्मक बुद्धि' जॉर्ज एच० मीड की थी।[2] मीड सर्वप्रथम एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक थे। उन्होने मन को व्यक्ति चेतना के सन्दर्भ मे नही, वरन् सामाजिक कार्यो के सन्दर्भ में देखना सीखा था। उनके लिए इस लोभ मे पड जाना आसान था कि जिसे वे 'सम्पूर्ण यथार्थ को अनुभव के अन्तर्गत लाने की विशाल आयोजना' कहते थे, उसमें (अपने शिक्षक) रॉयस जैसे भाववादियो का अनुसरण करें और एक परम समुदाय के गठन पर आधारित, यथार्थ का एक सिद्धान्त निर्मित करें। किन्तु उन्होने इसके बिल्कुल विपरीत कार्य किया। उन्होने समुदायो और मनो के उद्गम की व्याख्या, प्राकृतिक उद्गम की अधिक सामान्य प्रक्रिया के एक उदाहरण के रूप मे की। उनके मतानुसार, यथार्थ और अनुभव दोनो को ही अस्तित्वमय रूप में समझना होगा और 'अस्तित्व मे होने' का अर्थ है, कालिक वर्त्तमान में होना, जिसका एक अतीत और एक भविष्य हो। कालिक वर्त्तमान, अस्तित्व का चरम रूप और स्थल है और 'विश्व, घटनाओ का विश्व है।' 'होने' का अर्थ है—नवीनताओ का अन्तहीन उद्गम, प्राकृतिक घटनाओ और गुजरते हुए परिप्रेक्ष्यो में भाग लेना, अस्तित्व में आने का सकटपूर्ण अस्तित्व। ऐसे सक्रमणशील और बहुत्वपूर्ण वर्त्तमान, प्रकृति की किसी शाश्वत व्यवस्था में

---

१. वही, खण्ड १, पृष्ठ ४५३।

२. उनके मनोविज्ञान का विवरण छठें अध्याय मे 'आनुवंशिक सामाजिक दर्शन' के अन्तर्गत देखिए।

घटित नही होते। प्रकृति अपनी सम्पूर्णता मे अबोधगम्य है और शाश्वत वर्त्तमान एक अन्तर्विरोधी शब्द है। अत अस्तित्व और ज्ञान की वस्तुपरकता को, यहाँ और अभी, परिप्रेक्ष्यो की पारस्परिकता या सम्बद्धता मे खोजना होगा। चूँकि अनुभव न तो परम है और न व्यक्तिपरक, अत सापेक्षता के सिद्धान्त में वस्तुपरकता को जिस अर्थ में लिया जाता है, उस अर्थ में अनुभव वस्तुपरक हो सकता है। यह सम्बन्धात्मक भी है और तरल भी, अगीय भी है और कालिक भी।

मीड के अनुसार, यथार्थकालिक परिप्रेक्ष्यों' या 'स्थितियो' का एक समुच्चय है, जिसमे हर स्थिति उतनी ही चरम है जितनी अन्य कोई। और हर अस्तित्व किसी ऐसी नवीनता या 'विरोधी तथ्य' के सन्दर्भ में परिभाषित होता है, जिसके एक वस्तुपरक व्यवस्था में समाहित हो सकने के पहले पूर्वागत परिप्रेक्ष्यो की पुन.रचना आवश्यक होती है। हर स्थिति या वर्त्तमान का अपना अतीत होता है, जिसके अस्तित्व रूप मे अपरिवर्त्तनीय होने पर भी, जिसकी निरन्तर पुनर्व्याख्या और पुनरुपलब्धि होती रहती थी। हर वर्त्तमान का अपना भविष्य भी होता है, जिसका पूर्वानुमान लगाने की वर्त्तमान चेष्टा करता है, किन्तु जो अस्तित्व में आने पर नयी घटनाएँ, नये परिप्रेक्ष्य लाता है, और इस तरह नयी स्थितियाँ उत्पन्न करता है। इस प्रकार, जीवन केवल एक स्थिति के बाद दूसरी होता है, और इससे भी बुरा, एक स्थिति में दूसरी स्थिति होता है। हर घटना कई परिप्रेक्ष्यो के सापेक्ष होने के कारण उलझ जाती है। जब कभी घटनाएँ कई वर्त्तमानो की क्रियाओ में भाग लेती हुई पुन प्रस्तुत होती है, तो समुदाय और अनुभव की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। अनुभव के समुदायो के दो मूल आयाम होते है—कालिक आयाम, भविष्य की दृष्टि में अतीत का पुनर्निरीक्षण होने के कारण, मानसिक होता है। और दिक्-आयाम या 'दूरी' का आयाम, 'क्रिया-कौशल का क्षेत्र' होता है। अतीत की पुन रचना के द्वारा, और एक जीव-गठन के कार्यों में दूरस्थ वस्तुओ के गृहीत होने के द्वारा बहुत परिप्रेक्ष्यों का प्रक्रम निर्मित होता है। यह प्रक्रम एक वर्तमान के लिए अपने आप को उसी रूप में देखना सम्भव बनाता है, जिस रूप में उसे दूसरे देखते है और इस प्रकार आत्म-ज्ञान की प्राप्ति को सम्भव बनाता है। 'क्रिया-कौशल के क्षेत्र' में ऐसी वृद्धि से प्राकृतिक प्रक्रियाओ में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है। घटनाएँ प्रतीकात्मक प्रतिक्रियाएँ बन जाती है, समूह सामाजिक वातावरण बन जाता है और व्यक्ति मानव बन जाते हैं। इस प्रकार, प्राकृतिक प्रक्रियाओ में बुद्धिगत अनुभव का उदगम मात्र एक ऐसी घटना है जो किसी प्राकृतिक 'स्थिति' में उल्लेखनीय परिवर्तन कर देती है, किन्तु उसको उसके प्राकृतिक और प्रारम्भिक चरित्र से पूरी तरह नष्ट नहीं करती।

"सहरूपान्तरी विश्व,...किसी सम्भव क्रिया के सन्दर्भ मे प्रतिक्रिया के सगठन को उत्तर देता है। उस क्षेत्र के अन्तर्गत कोई गतिशील वस्तु, अगर वह ध्यान की वस्तु है, समंजन की अभिवृत्ति उत्पन्न करती है। वस्तु की स्थिति मे हर परिवर्त्तन के साथ, भूदृश्य की एक सकेतित समरूपी पुन. रचना होती है। पुन: रचना की मात्रा उन सकेतित प्रतिक्रियाओ की मात्रा पर निर्भर होती है, जो गतिशील वस्तु से उत्पन्न होती हैं।...

"हम एक ऐसे विश्व मे रहते हैं जिसका अतीत, उसके वैज्ञानिक विवरण मे होने वाले हर परिवर्त्तन के साथ बदलता है। फिर भी हममें यह प्रवृत्ति होती है कि हम अपने जैविक और सामाजिक जीवन का अर्थ ऐतिहासिक सस्थाओ के बँधे हुए रूपो में और अतीत की घटनाओ के क्रम में देखते हैं। हम परिवार, राज्य, चर्च और स्कूल को उन रूपो के द्वारा समझना पसन्द करते हैं जो इतिहास ने उनके सामाजिक गठनो को प्रदान किये हैं, बजाय इसके कि इन संस्थाओ के इतिहास का अर्थ उन कार्यों और सेवाओ मे देखें जो हमारा सामाजिक विज्ञान प्रदर्शित करता है।

"किन्तु सामाजिक सस्थाओ का सारा विकास धर्मशास्त्रीय व्याख्या से दूर हट गया है और उसने जीवन का अर्थ अतीत या भविष्य के बजाय वर्त्तमान मे पाया है। व्यवहारवाद के प्रकार की तत्वमीमासा, एक स्वाभाविक अमरीकी उत्पत्ति थी। प्रकृति की समझ के द्वारा शक्ति के सकल्प के साथ यह पूर्णत समरस है।"[1]

सामाजिक कार्यों और नैतिक आचरण पर आग्रह मीड की अधिकाश तत्वमीमासा की विशेषता है। किन्तु आधुनिक प्राकृतिक विज्ञान में सापेक्षता के विकास से, और ह्वाइटहेड, रसेल, मैक्गिलवैरी की विचार-व्यवस्थाओ जैसी प्रकृतिवादी यथार्थवाद की व्यवस्थाओ की रचना से उन्हे प्रेरणा मिली कि अपने 'कार्य के दर्शन' को भौतिक विज्ञान पर लागू करें। 'दी फिलॉसफी ऑफ दी प्रेज़ेण्ट' (वर्तमान का दर्शन) शीर्षक अपने कारस भाषणों में, जो उनकी मृत्यु के कुछ बाद १९३२ मे प्रकाशित हुए, उन्होने ह्वाइट हेड की रचना 'प्रोसेस ऐण्ड रियलिटी' (प्रक्रिया और यथार्थ) का एक व्यवहारवादी रूपान्तर प्रस्तुत किया। अपने मौलिक सापेक्षवाद का अधिक विस्तृत विश्लेषण उन्होंने कुछ उत्तम लेखो मे किया, जिनमें मुख्य थे, 'दी एक्सपेरिमेण्टल बेसिस ऑफ नेचुरल सायन्स' (प्राकृतिक विज्ञान का प्रयोगात्मक आधार) और 'दी प्रोसेस ऑफ माइण्ड' इन

---

१. जॉर्ज हर्बर्ट मीड, 'दी फिलॉसफी ऑफ दी ऐक्ट' (शिकागो, १९३८), पृष्ठ २२८, ६२६।

नेचर' (प्रकृति में मन की प्रक्रिया) इन लेखो को पढना बहुत ही कठिन है, क्योकि इनमें न केवल शिकागो धारा के प्रारम्भिक काल की मनगढ़ 'कार्यात्मक' भाषा दिखाई देती है, बल्कि वैज्ञानिक पद्धति की ऐसी नयी अवधारणाओ की तलाश भी परिलक्षित होती है, जो न्यूटन द्वारा 'प्रकृति के द्विभाजन' और यथार्थवादियो द्वारा अनुभव के अमूर्त्तन, दोनो को निष्प्रभावित कर सकें। किन्तु अपनी सारी कठिनाइयो और गवेषणात्मक भटकावो के बावजूद, ये लेख किसी मौलिक अनुभववादी द्वारा भौतिकी के लिए एक तत्व-मीमासा निर्मित करने का सर्वाधिक पूर्णता तक जाने वाला प्रयास हैं।

मीड ने प्राकृतिक विज्ञान के लिए जो कुछ करने का प्रयास किया, डुई ने 'एक्सपीरिएन्स ऐण्ड नेचर' (अनुभव और प्रकृति) शीर्षक अपने कारुस भाषणो में (१९२५) वही प्रयास प्रकृति के साथ मनुष्य के अधिक सामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में किया। मानव अस्तित्व के सर्वाधिक 'व्यावहारिक' और सामान्य विषय, जिन्हें पीयर्स ने अत्यधिक 'सम्भ्रमित करने वाले' कह कर छोड दिया, और जिनका मीड ने इस तरह परिष्कार किया कि उनका रूप ही बदल गया, उनकी विवेचना इन भाषणो मे असाधारणत प्रत्यक्ष, अनौपचारिक और आकर्षक रीति से की गयी है। डुई के भाषणो को तत्वमीमासात्मक-व्यवस्था कहना कठिन है, किन्तु मानव जीवन के जितने पक्षो के साथ जैसा न्याय उनमे किया गया है, वैसा मौलिक अनुभववाद को किसी अन्य अमरीकी की देन मे अब तक नही किया गया है।[1] स्वय प्रकृति का वर्णन करने की कोई चेष्टा नही की गयी है, और इस कारण ऐसे लोग हमेशा ही रहेगे जो मानव अस्तित्व के उनके दर्शन की व्याख्या, व्यक्तिनिष्ठावाद से दूषित एक प्रकृति-सिद्धान्त के रूप मे करेंगे। किन्तु जॉर्ज एस० मॉरिस और मिशिगन के अन्य आदर्शवादियो की भाँति डुई भी तथाकथित 'बाह्य' विश्व के अस्तित्व को पहले से मान कर चलते थे, और उन्होने प्रकृति के अस्तित्व को कभी किसी गम्भीर शका का विषय नही माना था। १९०६ में ही डुई ने जेम्स को लिखा था कि उनका 'ज्ञान का उपकरण-

---

१. 'यद्यपि डुई की पुस्तक अविश्वसनीय रूप में खराब ढंग से लिखी गयी है, किन्तु कई बार पढ़ने के बाद, मुझे लगा कि उसमें ब्रह्माण्ड की [illegible] के साथ [illegible] की एक ऐसी भावना है, जो अनुपम है। मुझे ऐसा लगा कि ईश्वर में अगर अभिव्यक्ति की क्षमता न होती, किन्तु वह यह [illegible] इच्छा होती कि ब्रह्माण्ड [illegible] है तो वह इसी प्रकार बोलता।'—[ओलिवर वेंडेल होम्स [illegible] द्वारा सम्पादित 'होम्स-[illegible]' (कैम्ब्रिज [illegible]) [illegible], खण्ड २, पृष्ठ [illegible]।]

सिद्धान्त स्पष्टत. अन्तर्विरोध पूर्ण है, अगर ऐसे स्वतन्त्र अस्तित्व नही हैं जिन्हे विचार ध्यान में रखते हैं और जिनके रूपान्तरण के लिए वे कार्य करते हैं।' उन्होने आगे कहा, "मै न जाने कितनी बार कह चुका हूँ कि सज्ञानात्मक स्थितियो और उद्देश्यो के पहले और बाद मे अस्तित्व होते हैं और 'इनका सारा अर्थ' (सज्ञानात्मक स्थितियो और उद्देश्यो का) इसमे है कि स्वतन्त्र अस्तित्वो के नियन्त्रण और पुनर्मूल्याकन में वे किस प्रकार हस्तक्षेप करते हैं।"[1] फिर भी डुई के विचार धीरे-धीरे प्रकृतिवाद की ओर मुडे। इस अर्थ में नही कि उन्होने प्रकृति का कोई सिद्धान्त निरूपित किया, वरन् इस अर्थ में कि मानव आस्तित्व के अपने सिद्धान्त के सार-तत्वीय अभिप्रायो को उन्होने अधिकाधिक समझा। १६०७ मे उन्होने जेम्स को लिखा—

"मेरे अपने मत कही अधिक प्रकृतिवादी है और ये न केवल बुद्धिवादी और एकतत्ववादी भाववाद के, वरन् नैतिक आदर्शों को छोड़ कर, सभी प्रकार के भाववाद के विरुद्ध मेरी प्रतिक्रिया है। मुझे लगता है कि इस प्रश्न पर मै शिलर की अपेक्षा आपके अधिक निकट हूँ, किन्तु मै निश्चित रूप से नही कह सकता। दूसरी ओर, अपने पिछले लेखन में शिलर उस अच्छे परिणाम पर जोर देते प्रतीत होते है, जो किसी विचार की कसौटी होता है—अच्छा, स्वयं अपनी प्रकृति मे उतना नही, जितना इसमे कि चाहे जो भी विचार हो, उसकी माँग की पूर्ति कहाँ तक होती है। और यहाँ मै आपकी अपेक्षा उनके अधिक निकट प्रतीत होता हूँ।"[2]

जिसे डुई और मीड 'सक्रिय प्रक्रिया' कहते थे, वह उन्हे इतनी व्यापक और प्रकृति तथा मानवी अनुभव दोनो को अपने मे समेटने वाली प्रतीत होती थी, कि उसके सम्पूर्ण रूप का कोई सिद्धान्त न आवश्यक था, न सम्भव।

"मै ऐसा सोचे विना नही रह सकता कि क्रिया का कोई पर्याप्त विश्लेपण तथ्य-जगत् और विचार जगत् को स्वय सक्रिया प्रक्रिया के ही दो अनुरूपी वस्तुपरक कथनो के रूप मे प्रस्तुत करेगा—अनुरूपी इस कारण कि हर एक को अपना एक कार्य करना रहता है, जिसे करने में उसे दूसरे की सहायता की आवश्यकता पडती है। सक्रिय प्रक्रिया स्वय किसी सम्भव वस्तुपरक कथन के परे होती है (चाहे तथ्य के सन्दर्भ में, या विचार के), महज इस कारण कि ये वस्तुपरक कथन अन्तत. उसके अपने कार्य-कलाप से सम्बद्ध होते हैं—उसके लिए होते है। प्रत्यक्ष-ज्ञानात्मक, या अवधारणात्मक, किसी भी प्रकार के वस्तुगत

१ पेरी की पुस्तक, खण्ड २, पृष्ठ ५३२।

२. वही, पृष्ठ ५२८-५२६।

बुराई की समस्या का अनुभव करे और जो उसकी चिन्ता अच्छाई की समस्या से अधिक करें। यह तत्वमीमासा नही, नैतिकता का प्रभाव है जो हममें गलतियो की चेतना और उनके लिये उत्तरदायी होने की भावना उत्पन्न करता है, जबकि घटनाओ के अधिक नियमित और सन्तोषप्रद क्रम को हम एक वस्तुपरक व्यवस्था के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु वास्तव में, सारे कार्य जैव-गठन और उसके वातावरण दोनो के होते हैं। कर्त्ता और वस्तु मे, उद्दीपन और प्रतिक्रिया में किया गया कोई अन्तर क्रिया को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से किया गया गौण अन्तर होता है। कारिन्दगी कभी यहाँ मानी जाती है, कभी वहाँ। किन्तु प्रकृति मूलतः न स्वतन्त्रकर्त्ताओ से बनी होती है, न निष्क्रिय संहतियों से, वरन् गतियो से, परस्पर-क्रियाशील, व्यवहाररत पिण्डो से बनी होती है।

ऐसे विश्व को सम्पूर्ण रूप मे सघटित या जीवित, बुद्धिपूर्ण या सोद्देश्य कहना निरर्थक है। यह बारी-बारी से और कही-कही यह सब होता है। किन्तु अपने आप मे, यह जो कुछ भी होता है, समय-समय पर होता है और सम्पूर्ण रूप में इसे कोई अर्थ नही प्रदान किया जा सकता। अर्थ, उद्देश्य, विचार, मन, ये प्राकृतिक क्रिया की अन्य विशिष्ट उत्पत्तियो के साथ निरन्तर उत्पन्न किये जाते रहते हैं। अत मन को, अन्य क्रियाओ के साथ उसके प्राकृतिक सम्बन्धो या कार्यों मे, एक विशिष्ट प्रकार की क्रिया के रूप में समझना चाहिये। अन्तत, मन को उसकी सापेक्ष क्रिया मे, अर्थात् उसके वातावरण में समझना चाहिये। फिर मन का विशिष्ट कार्य क्या है ? डुई के अनुसार, क्रियाओ के परिणामो का पूर्वानुमान लगा कर उन्हे पुनर्निर्देशित करना मन का कार्य है। मन केवल अपना रास्ता खोजती हुई प्रकृति है, स्वयं अपने अँधेरे में स्वय अपने प्रकाश से टटोलती हुई, अपने को परखती हुई, स्वयं अपने लिये पता लगाती हुई कि वह क्या कर सकती है, क्या नही। संक्षेप में, मन का क्रिया-क्रम मनुष्य के साथ-साथ प्रकृति के लिए भी महत्वपूर्ण होता है। तर्कबुद्धि न तो प्रकृति की सामग्री है, न उसका प्राथमिक गठन। तर्कबुद्धि एक प्राकृतिक विकास है, जीवन का एक रूप है। किन्तु जीवन स्वयं अन्य अस्तित्वो के बीच एक अनिश्चित अस्तित्व बना रहता है।

"हम जिस प्रकृति के चाहे जितने भी दुर्बल अग हैं, उसके प्रति निष्ठा की माँग है कि हम अपनी आकाक्षाओ और आदर्शों का पोषण करें, जब तक हम उन्हे बुद्धि में परिवर्तित नही कर लेते, प्रकृति द्वारा प्रदत्त सम्भव उपायो और साधनो के सन्दर्भ में उन्हे सशोधित नही कर लेते। जब हम अपने विचार का अधिकतम प्रयोग कर लेते है और वस्तुओ के गतिशील असन्तुलित सन्तुलन मे अपनी तुच्छ शक्ति लगा देते हैं, तो हम जानते हैं कि चाहे विश्व हमें नष्ट कर

दे, किन्तु हम भरोसा कर सकते हैं, क्योकि अस्तित्व मे जो कुछ अच्छा है, हमारा भाग्य उसके साथ जुड़ा हुआ है। हम जानते हैं कि ऐसा विचार और प्रयास, बेहतरी के अस्तित्व में आने की एक शर्त्त हैं। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, यही एकमात्र शर्त्त है, क्योकि केवल यही हमारे क़ाबू मे है। इससे अधिक की माँग करना बचपना है। किन्तु इससे कम की माँग करना उतना ही अहकारपूर्ण पतन है, उसी हद तक विश्व से आपको काट लेना है, जैसे यह अपेक्षा करना कि विश्व हमारी हर इच्छा को स्वीकार और सन्तुष्ट करे। ईमानदारी के साथ अपने-आप से इतना माँगने का अर्थ है कल्पना की हर क्षमता को गतिशील बनाना और कार्य में हर कौशल और साहस को प्राप्त करना।"[1]

आनुभविक आमूल-परिवर्त्तनवाद

अमरीकी सस्कृति में व्यवहारवाद और प्रयोगवाद के व्यावहारिक प्रयोगो का कुछ न कुछ विवरण देना उचित प्रतीत होता है, क्योकि इन प्रयोगो की जानकारी के बिना दर्शन मे इस आन्दोलन के व्यावहारिक अर्थ का पता नही चलेगा। ऐसे विवरण का आरम्भ विज्ञानो मे ज्ञान के सिद्धान्त के उपयोग से आरम्भ करना चाहिये, क्योकि इस आन्दोलन की सर्वाधिक तात्कालिक निष्ठा तर्कशास्त्र और वैज्ञानिक पद्धति के एकीकरण में थी। अपनी सामाजिक रुचियो और राजनीतिक विश्वासो में इन अनुभववादियो की आमूल-परिवर्त्तनवादी दृष्टि में इतनी विभिन्नता थी कि इन्हे किसी विशिष्ट सामाजिक कार्यक्रम के विचार-दार्शनिक कहना असगत होगा। एकमात्र रुचि जिसमें ये सचमुच सहभागी थे और जो इनके विवादो को व्यावहारिक एकता प्रदान करती थी, दर्शन और विज्ञान के एकीकरण की थी। दर्शन को अपनी समस्याएँ प्रयोगात्मक निरूपण और सत्यापन के लिये प्रस्तुत करनी थीं और विज्ञान को कार्यपद्धति की दृष्टि से आत्म-चेतन या दार्शनिक बनना था। किन्तु उन विभिन्न रीतियो की विवेचना, जिनके द्वारा गणित, जीव-विज्ञान, मनोविज्ञान और भौतिकी ने व्यवहारवादी कार्य-पद्धति को अपना लिया है, या अधिक प्राविधिक भाषा में, इन विज्ञानो में 'आचरणवाद' (बिहेवियरिज्म) और 'सक्रियावाद' (ऑपरेशनलिज्म) के इतिहास या चित्रण इतना कठिन और विशेषज्ञतापूर्ण होगा कि इस पुस्तक के पाठों पर

---

१. वही, पृष्ठ ४२०-४२१।

उसे लादना उचित नही। इतना काफी होगा कि हम उपर्युक्त विज्ञानो मे ऐसी अवधारणाओ और स्थापनाओ से मुक्त करने की, जो प्रयोगशाला मे बेकार हो, और उपयोगी अमूर्त्तनो को पीयर्स द्वारा सुझाये गये सन्दर्भों मे परिभाषित करने की सामान्य प्रवृत्ति को देख ले। इस प्रकार अमरीकी विज्ञान मे वाहर से लाये गये, अधिक निकट अतीत के तार्किक वस्तुनिष्ठावाद के आन्दोलन की नीव पड़ी, जिसने व्यवहारवादी आन्दोलन के कुछ पक्षो को प्राविधिक विस्तार प्रदान किया है और कुछ अन्य पक्षो को भ्रष्ट किया है। व्यवहारवादियो ने कभी भी जैसा सोचा था, उससे अधिक 'विज्ञान की एकता' के प्रवर्त्तन के लिये इसने चेष्टा की है और वैज्ञानिक तर्कशास्त्र का आग्रह तथ्यात्मक प्रयोगशीलता से हटा कर शाब्दिक या भाषा के जोड़-तोड पर लगाया है। इसमे व्यवहारवाद का वस्तुनिष्ठावाद अधिक पराकाष्ठावादी हो गया है और अनुभववाद इतना तार्किक हो गया है कि 'मौलिक' नही रह गया।

पिछले दिनो के वैज्ञानिक इतिहास की अपेक्षा, धर्म मे व्यवहारवाद के प्रयोग का इतिहास ज्यादा आसानी से बताया जा सकता है, क्योकि यहाँ उसका प्रभाव उलटा पड़ा था—इसका प्रभाव प्रविधि-विरोधी, लोकप्रिय और भावुक था। जेम्स ने जिस हल्के ढग से उनकी 'गम्भीरतम' समस्याओ को खत्म कर दिया, उससे धर्मशास्त्री और दार्शनिक दोनो ही वडे क्षुब्ध हुए। वे आस्था को अधिक तर्कसंगत और धर्मशास्त्र को अधिक दार्शनिक बनाना चाहते थे। जेम्स की यह पूर्वमान्यता थी कि धर्म स्वतःस्फूर्त्त रूप मे जिस प्रकार जिया जाता है, उसमें मूलत. कुछ अगर अलौकिक नही तो 'अतिपूर्ण' और अधि-तार्किक होता है। वह तर्कनापरक प्रतीत हो, इसके सारे प्रयास असफल सिद्ध होगे। निश्चय ही यह विश्वास उन्होने शुरू-शुरू में अपने पिता से प्राप्त किया और यद्यपि उन्होंने अपने पिता के एकत्ववाद और 'समाजवाद' का परित्याग कर दिया, किन्तु उनके पादरियत-विरोध, तर्कनावाद के विरोध और नैतिकता-विरोध पर उनका विश्वास वना रहा।

"१८७४ में ही उन्होने बेञ्जामिन पॉल ब्लड की रचना 'ऐनेस्थेटिक रेवेलेशन' (सवेदनहारी दिव्य-ज्ञान) पढी थी और उसके वाद के उनके सारे विचार में वह एक आधार-शिला बनी रही। उनके अपने जीवनकाल में लिखित और प्रकाशित अन्तिम रचना में इसी लेखक की प्रशसा थी और उसका शीर्षक था 'ए प्लूरलिस्टिक मिस्टिक' (एक वहुतत्ववादी रहस्यवादी)। १८८८ में उन्हें एडमण्ड गर्नी के 'हाइपॉथेटिकल सुपरनैचुरलिजम' (परिकल्पनात्मक अलौकिकवाद) ने आकर्षित किया था, जिसमें 'प्रकृति की वर्त्तमान व्यवस्था से निरन्तर एक

अदृश्य व्यवस्था' का विचार प्रस्तुत किया गया था और यहाँ से १६०२ के 'खण्ड' या 'स्थूल' अलौकिकवाद को एक स्वाभाविक सक्रमण है।"[1]

धर्मशास्त्रीय ज्ञान के प्रति उनकी सामान्य अवज्ञा उनके प्रारम्भिक लेख 'रिफ्लेक्स ऐक्शन ऐण्ड थीइज्म' (सहज-कार्य और दैववाद) में ही स्पष्ट थी, किन्तु १६०२ तक, जब उन्होने अपने प्रसिद्ध गिफोर्ड भाषण 'दी वेराइटीज ऑफ रेलिजस एक्सपीरिएन्सेज' (धार्मिक अनुभव के विभिन्न रूप) लिखे, वे अपने विश्वासो मे अधिक मताग्रही हो गये थे।

"दर्शन का तर्क...है...कि धर्म को एक सार्विक रूप मे विश्वसनीय विज्ञान मे परिवर्त्तित किया जा सकता है।...तथ्य (है) कि किसी भी धार्मिक दर्शन ने विचारको के समूह को सचमुच आश्वस्त नही किया।...

"पूरी उदास ईमानदारी से मैं समझता हूँ कि हमें यह मान लेना चाहिये कि पूर्णतः बौद्धिक प्रक्रियाओ के द्वारा प्रत्यक्ष धार्मिक अनुभव के कथनो की सत्यता प्रदर्शित करने का प्रयास सर्वथा निष्प्रयोजन है।...

"अत मै समझता हूँ कि हमे मताग्रही धर्मशास्त्र से निश्चयात्मक विदा ले लेनी चाहिये। पूर्ण ईमानदारी से, हमारी आस्था को इस अधिपत्र के बिना ही काम चलाना होगा। मै फिर कहता हूँ कि आधुनिक भाववाद ने इस धर्मशास्त्र से हमेशा के लिये विदा ले ली है। क्या आधुनिक भाववाद आस्था को ज्यादा अच्छा अधिपत्र प्रदान कर सकता है, या आस्था को अब भी स्वय अपनी गवाही पर ही निर्भर करना होगा ?...

"सब कुछ कहने-सुनने के बाद, क्या प्रिन्सिपल केर्ड ने—और उनका ज़िक्र मै केवल उस सारी विचार-पद्धति के एक उदाहरण के रूप में कर रहा हूँ—भावना और व्यक्ति के प्रत्यक्ष अनुभव के क्षेत्र के परे जाकर, निष्पक्ष तर्कबुद्धि मे धर्म की नीव डाली है ? क्या उन्होने सबल तर्को के द्वारा धर्म को सार्विक बनाया है, उसे निजी आस्था से सार्वजनिक नैश्चित्य बनाया है ? क्या उन्होने उसके अभिवचनो को दुरुहता और रहस्यमयता से निकाल लिया है ?

"मुझे विश्वास है कि उन्होने ऐसा कुछ नही किया, वरन् उन्होने केवल अधिक सामान्यीकृत शब्दावली में व्यक्ति के अनुभवो की पुन पुष्टि कर दी है। और फिर, मेरे लिये प्राविधिक रूप में यह प्रमाणित करना आवश्यक नहीं है कि परात्परवादी तर्क धर्म को सार्विक नही बनाते, क्योकि मै इस सीधे-सादे तथ्य की ओर इशारा कर सकता हूँ कि अधिकाश विद्वान, धार्मिक दृष्टि रखने वाले विद्वान् भी, उन्हे विश्वसनीय मानने से दृढतापूर्वक इनकार करते हैं।...

---

१. राल्फ बार्टन पेरी, 'दी थॉट ऐण्ड कैरेक्टर ऑफ विलियम जेम्स' (बोस्टन, १६३५), खण्ड २. पृष्ठ ३३४।

"दर्शन शब्दो में जीवित रहता है, किन्तु सत्य और तथ्य उभर कर ऐसी रीतियो से हमारे जीवन में आते हैं, जो शाब्दिक निरूपण की सीमाओ से वाहर चली जाती हैं। प्रत्यक्ष-ज्ञान के जीवित कार्य में हमेशा कुछ ऐसा होता है जो झलकता और झिलमिलाता है, लेकिन पकड मे नही आता और जिसके लिए विमर्श वडी देर से आता है। कोई इसे उतनी अच्छी तरह नही जानता जितना दार्शनिक। उसे अपनी अवधारणात्मक वन्दूक से नयी शब्दावलियो की बौछार करनी पडती है, क्योकि यह उद्योग ही उसके व्यवसाय का दण्ड है, लेकिन मन ही मन वह इसके खोखलेपन और अप्रासंगिकता को जानता है।...

"धर्म का एक आलोचनात्मक विज्ञान शायद ..अन्ततोगत्वा उतनी ही सामान्य जन-स्वीकृति प्राप्त कर ले, जितनी किसी भौतिक विज्ञान को प्राप्त होती है। निजी रूप में अ-धार्मिक व्यक्ति भी सम्भवत इसके निष्कर्षों को भरोसे के आधार पर स्वीकार कर लें, बहुत कुछ वैसे ही जैसे अन्धे व्यक्ति आज दृष्टि सम्बन्धी तथ्यो को स्वीकार कर लेते हैं—उनसे इनकार करना उतना ही मूर्खतापूर्ण प्रतीत हो सकता है। किन्तु सर्वप्रथम, दृष्टि-विज्ञान के लिए देखने वाले व्यक्तियो द्वारा अनुभूत तथ्य प्रस्तुत करने पडते हैं और उनकी प्रामाणिकता की निरन्तर जाँच करनी पड़ती है। अतः धर्म का विज्ञान अपनी मौलिक सामग्री के लिए निजी अनुभव के तथ्यो पर निर्भर होगा और अपनी सारी आलोचनात्मक पुन. रचनाओं में उसे निजी अनुभव के साथ मेल विठाना होगा। ठोस ज़िन्दगी से वह अपने को कभी अलग नही रख सकेगा।"[1]

यहाँ धर्मशास्त्र और दर्शन को उपकरण या 'मध्यस्थ' भी नही माना गया है, वरन् धार्मिक अनुभव की सारभूत विविवता, निजता, और अ-तर्कनापरकता के प्रत्यक्ष रूप में विरुद्ध माना गया है।

"धर्म को जीवित रखने वाली वस्तु अमूर्त्त परिभाषाओ और तार्किक रूप मे सम्बधित विशेषणो की व्यवस्थाओ से भिन्न है और धर्मशास्त्र के सकायो और प्रोफ़ेसरो से विल्कुल अलग है। ये सारी चीज़ें बाद की उत्पत्तियाँ हैं, ऐसे ठोस धार्मिक अनुभवो के समूह में जुड़ जाने वाले गौण तत्व हैं, जो सामान्य निजी मनुष्यो के जीवन में पीढी दर पीढ़ी अपना नवीकरण करने वाली भावना और आचरण से अपने को परस्पर सम्बद्ध करते हैं। अगर आप पूछें कि ये

---

१. विलियम जेम्स, 'दी वेराइटीज़ ऑफ रेलिजस एक्सपीरिएन्स, ए स्टडी इन ह्यूमन नेचर' (न्यूयॉर्क, १९०२), पृष्ठ ४५४ एन०, ४५५, ४४८, ४५३-४५४, ४५६-४५७, ४५६।

अनुभव क्या हैं, तो ये अदृश्य के साथ वार्त्ताएँ हैं, स्वर और दृष्टियाँ हैं, प्रार्थना के उत्तर हैं, हृदय के परिवर्त्तन हैं, भय से मुक्ति हैं, सहायता का पहुँचना है।"[1]

अत. जेम्स के 'धार्मिक अनुभव' का सहारा लेने का मतलब था धार्मिक विश्वासो के बौद्धिक पक्षो और सस्थागत धर्म के परम्परागत पक्षो का परित्याग। जेम्स केवल धार्मिक अनुभवो की विविधता को ही नही, वरन् धार्मिक चेतना की असामान्यता को उसके 'असवेद्यता' के गुरण को धर्म का सारभूत तथ्य मानते थे। उन्होने 'बीमार आत्माओ' के नैदानिक मामले मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ उठाने के लिए नही, वरन् यह दिखाने के लिये प्रस्तुत किये कि 'मन का स्वास्थ्य' धर्म के लिए असामान्य है। इस कारण उन्होने यह माना कि किसी भी असली धर्म के साथ किसी प्रकार का 'स्थूल अलौकिकतावाद' किसी प्रकार की दैववादी तत्व-मीमासा या ब्रह्माण्ड-दर्शन ज़रूर जुडा रहेगा। और इस कारण, किसी ऐसे ईश्वर मे विश्वास को, जिसके गुरण मूलतः 'नैतिक' या मानवी अनुभव से सम्बद्ध हो, धार्मिक अनुभव का एक आवश्यक तत्व मान कर उसका समर्थन किया जा सकता है, यद्यपि वह किसी तर्कनापरक धर्मशास्त्र का आधार नही बन सकता।

धर्म के मामलो में डूई का अनुभववाद इतना 'अतिपूर्ण' नही है। जेम्स की भाँति उनका विश्वास है कि अनुभव में एक धार्मिक गुरण होता है जो संस्थागत धर्मो के परम्परागत विश्वासो और आचारो से अपेक्षतया स्वतन्त्र होता है। किन्तु वे 'धार्मिक मूल्यो' को सभी प्रकार के ब्रह्माण्ड-दर्शन और अलौकिकता से मुक्त रखना चाहते हैं। वे मानववादी हैं। "धार्मिक मूल्यो को मैं जिस रूप में देखता हूँ, उसमें और धर्मो में जो विरोध है उसे मिटाया नही जा सकता। इन मूल्यो की विमुक्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण होने के कारण ही धर्मो के मतो और सम्प्रदायो से उनका सम्बन्ध-विच्छेद आवश्यक है।"[2] वे मानवी अनुभव का

---

१. 'कलेक्टेड एसेज़ ऐण्ड रिव्यूज़' (न्यूयार्क, १६२०), में 'फिलॉसॉफिकल कॉन्सेप्शन्स ऐण्ड प्रैक्टिकल रिज़ल्ट्स' पर जेम्स के कैलिफोर्निया में दिए गये भाषण से, पृष्ठ ४२७-४२८।

२. जॉन डुई, 'ए कॉमन फेथ' (न्यू हैवेन, १६३४); पृष्ठ २८। उनके जीवन सम्बन्धी उनकी पुत्री का निम्नलिखित वक्तव्य भी देखे—श्रीमती डुई की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है—"उनका स्वभाव गम्भीर रूप में धार्मिक था, किन्तु किसी चर्च के मताग्रह को उन्होने कभी स्वीकार नहीं किया। उनके पति ने उनसे ही यह विश्वास ग्रहण किया कि धार्मिक दृष्टिकोण प्राकृतिक अनुभव से ही उत्पन्न होता है, और यह कि धर्मशास्त्र तथा धर्म संगठनात्मक संस्थाओं ने

धार्मिक तत्व निजी चेतना की असामान्यताओ मे नही, वरन् 'सहभागी अनुभव' में खोजते हैं। वे धार्मिक आस्था को ऐसी वस्तु मानते हैं जो मनुष्यों में सामान्य हो सकती है और होनी चाहिये। मनुष्य जो कुछ यथार्थ रूप में इकट्ठा अनुभव करते हैं और जिसे इकट्ठा आदर्श मानते है, उन्हे सम्बद्ध करने के मौलिक उद्यम से धार्मिक आस्था मनुष्यो मे एकता लाती है। विश्वास करने वालो की इस एकता के प्रतीक और वास्तविकता तथा आदर्श की आशिक एकता के नाम के रूप में ईश्वर, स्वीकृति के बजाय निष्ठा का पात्र है। अतः डुई न्यूनतम धर्मशास्त्र और ब्रह्माण्ड-दर्शन तथा अधिकतम प्रकृतिवादी उदारवाद से सन्तुष्ट हो जाते हैं।

धार्मिक अनुभववादी आमूल-परिवर्तनवाद के अन्य कई महत्वपूर्ण रूपो की चर्चा की जा सकती है, किन्तु जेम्स और डुई के इन दो उदाहरणो से पता चल जाता है कि व्यवहारवाद ने किस प्रकार आस्था के एक सिद्धान्त को पुनःप्रतिष्ठित करने के साथ-साथ सभी परम्परागत सस्थाओ, सत्ताओ, धर्मशास्त्रो और मतो को अविश्वसनीय सिद्ध करना चाहा। किन्तु आस्था के व्यवहारवादी सिद्धान्त से भी अधिक महत्वपूर्ण यह धारणा रही है कि धार्मिक अनुभव भावनात्मक, तात्कालिक, रहस्यात्मक होता है, जिसे मनोविज्ञान या सम्भवतः मानव-विज्ञान के सन्दर्भ मे समझा जा सकता है और वह समग्र सृष्टि के बजाय मानव-प्रकृति और मानवी 'समंजनो' पर प्रकाश डालता है।

धर्म और देववाद में जेम्स की निरन्तर रुचि के कारण, जो निश्चय ही व्यवहारवाद की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण था, उनके कुछ अधिक 'कठोर-प्रवृत्ति' के मित्र उनसे दूर हो गये। ये मित्र नैतिक दर्शन से भावना को निकाल देना चाहते थे और व्यवहारवाद को राजनीतिक और आर्थिक यथार्थवाद का सा ठोस रूप देना चाहते थे। इनमे सर्वाधिक स्पष्ट-वक्ता जस्टिस ओलिवर वेण्डेल होल्म्स थे, जिन्होने बहुत पहले हार्वर्ड में हुई तत्वमीमासात्मक चर्चाओ में मे कइयो मे भाग लिया था, जेम्स की 'साइकॉलॉजी' का स्वागत किया था और जो कानूनी व्यवहारवाद के मान्य नेता बन गये थे। किन्तु जब जेम्स की रचना, 'प्रेग्मैटज्म' प्रकाशित हुई तो उन्होने अपने मित्र सर फ्रेडरिक पोलॉक को लिखा—

"मै समझता हूँ कि विलियम जेम्स के प्रशसनीय और सुलिखित, जीवन के आयरी प्रत्यक्ष-ज्ञान से भिन्न, उनकी अधिकाश परिकल्पनाओ के समान व्यवहारवाद भी एक मनोरजक पाखण्ड है। मुझे ये सारी परिकल्पनाएँ अवचेतन में की गयी

उसे आगे बढ़ाने के बजाय गतिहीन बना दिया था।"—[जेन एम० डुई, 'बायग्रफी ऑफ जॉन डुई,' पी० ए० शिल्प द्वारा सम्पादित 'दी फिलासफी ऑफ जॉन डुई' में, (एवांसटन, इलिनॉयस, १९३९), पृष्ठ २१।]

प्रार्थना को उनके उत्तर के ही रूप प्रतीत होती हैं—ओझा का यह वादा कि अगर आप रोशनी कम कर दें तो वह चमत्कार दिखायेगा। जैसा मैं बहुधा कह चुका हूँ, सत्य से मेरा तात्पर्य उसी से होता है जिसे सोचे बिना मै न रह सकूँ। . बहुत दिन पहले लिखा गया एक उदाहरण दूँ, तो मुक्त सकल्प के पक्ष मे विलियम जेम्स का तर्क भी मुझे उसी कोटि का प्रतीत हुआ था जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है। वह तर्क स्वतन्त्र विचार वाले एकत्ववादी पादरियो और महिलाओ को प्रसन्न करने वाला था। मुझे हमेशा ब्रूक्स आडम्स की एक बात याद आती है कि दार्शनिको को आराम से रहने वाले वर्ग ने यह प्रमाणित करने के लिए भाड़े पर लगा रखा है कि सब कुछ ठीक है। मै भी समझता हूँ कि सब कुछ ठीक 'है' किन्तु बिल्कुल भिन्न कारणो से।...सारी बात का लक्ष्य और उद्देश्य धार्मिक है।...अगर यह निष्कर्ष न होता, तो मैं समझता हूँ हम उनसे इस विषय पर कभी कुछ न सुनते। सारी बात का महत्व इसी को मान कर मै उसे नमस्कार करता हूँ।"[1]

किन्तु जस्टिस होल्म्स में उनकी अपनी भावुकता थी—जीवन के सघर्ष की महिमा, निर्णायक कार्य का मूल्य, अन्तिम अर्थों की तलाश की व्यर्थता।

"जीवन क्रिया है, अपनी शक्तियो का प्रयोग। उनकी सीमा तक उनका प्रयोग हमारा आनन्द और कर्तव्य है। अतः यही लक्ष्य है जिसका औचित्य अपने आप में है।"[2]

"जीवन को अपने-आप मे एक लक्ष्य समझें। जो कुछ है, कार्यात्मकता है—जिसे हम उच्चतर प्रकार की कार्यात्मकता कहते हैं, उसी मे हमारी अधिकतम प्रसन्नता है। मैं सोचता हूँ कि क्या विचार, अँतड़ियो से ज्यादा महत्वपूर्ण होता है।"[3]

ऐसा 'मात्र जैविक उत्तेजना का यशोगान' जेम्स को उतना ही अप्रिय था जितना जेम्स की धार्मिक परिकल्पनाएँ होल्म्स को थी।

"मुझे यह विचित्र बचपना लगता है, और वेण्डेल हमेशा यह भूल जाते हैं कि उनके अपने शब्दो में, कर्तव्यशील लोग भी उनके नियम की पूर्ति करते हैं। वे भी कठिन जीवन बताते हैं और अपने विरोधी शैतानो से अपने सघर्ष का

---

१ एम० डीवुल्फ हॉवे द्वारा सम्पादित 'होल्म्स-पोलॉक लेटर्स' (कैम्ब्रिज, १९४१), खण्ड १, पृष्ठ १३८-१४०।

२ ओलिवर वेण्डेल होल्म्स, 'स्पीचेज' (न्यूयॉर्क, १९१३), पृष्ठ ८५।

३. 'होल्म्स-पोलॉक लेटर्स', खण्ड २, पृष्ठ २२।

आनन्द लेते हैं। अत उन्हे अलग छोड़ दें !...मात्र उत्तेजना एक अप्रौढ आदर्श है, सर्वोच्च-न्यायालय के अधिकृत अनुमोदन के अयोग्य है।"[1]

होल्म्स ने जिस भावुक, परुष व्यक्तिवाद का प्रचार किया, वह याकी लोगो के लिए कोई नया दर्शन नही था और उसका व्यवहारवाद से कोई प्रत्यक्षसम्वन्ध नही था। किन्तु जव उन्होने कानूनी निर्णय मे उसका आलोचनात्मक प्रयोग किया, तो उन्होने विधिशास्त्र का एक हलचल मचा देने वाला सिद्धान्त निर्मित किया, जिससे कानूनी व्यवहारवाद या यथार्थवाद के नाम से प्रसिद्ध महत्वपूर्ण आन्दोलन आरम्भ हुआ। होल्म्स ने जेम्स के 'दिव्य-ज्ञान विरोध' को सामान्य कानून पर लागू किया।

"कानून का जीवन.. तर्कशास्त्र नही रहा, अनुभव रहा है। मनुष्य जिन नियमो द्वारा शासित हो, उनका निर्धारण करने में हेत्वनुमान की अपेक्षा समय की अनुभूव आवश्यकताओ का प्रचलित नैतिक और राजनीतिक सिद्धान्तो का, सार्वजनिक नीति की घोपित या अव्यक्त अन्तःप्रज्ञाओ का, यहाँ तक कि उन पूर्वग्रहो का भी जो अन्य मनुष्यो के साथ-साथ न्यायाधीशो में भी होते हैं, बहुत अधिक हाथ रहा है।"[2]

ऐसे अनुभववाद को प्रस्थान-विन्दु बना कर उन्होने १८९७ में कानून की अपनी प्रसिद्ध व्यवहारवादी परिभाषा निरूपित की कि (क़ानून) 'अदालतो के माध्यम से सार्वजनिक शक्ति के घटन का पूर्व-कथन' है। और उसी श्रेष्ठ भाषण, 'दी पाथ ऑफ दी लॉ' (कानून का मार्ग) मे उन्होने आगे कहा—

"मुझे वहुधा सन्देह होता है कि अगर कानून से नैतिक महत्व का हर शब्द बिल्कुल निकाल दिया जाए, और अन्य शब्द अपना लिये जाएँ जो कानूनी विचारो को क़ानून के वाहर के प्रभावो से विल्कुल मुक्त रख कर प्रस्तुत करें, तो क्या इससे लाभ नही होगा। हम इतिहास के काफी वडे हिस्से के पुराने जडीभूत अभिलेखो को और नैतिक सम्बन्धो से प्राप्त वहुताश को खो देंगे किन्तु अनावश्यक सम्भ्रम से अपने को मुक्त कर लेने में, विचारो की स्पष्टता की दृष्टि से हमे वडा लाभ होगा।...न्यायिक निर्णय की भाषा मुख्यतः तर्कशास्त्र की भापा होती है और तार्किक पद्धति और रूप, निश्चय और स्थिरता की उस आकाक्षा को सन्तुष्ट करते हैं, जो हर मानव मन में होती है। किन्तु तार्किक रूप के पीछे विधि-निर्माण के प्रतियोगी आधारो के सापेक्ष मूल्य और महत्व सम्वन्धी निर्णय होता है।...विधि-निर्माण की नीति के प्रश्न पर एक छिपा हुआ, अर्द्ध-चेतन संघर्ष

---

१. पेरी की पुस्तक, खण्ड २, पृष्ठ २५१।

२. ओलिवर वेण्डेल होल्म्स, 'दी कॉमन लॉ' (बोस्टन, १८८१), पृष्ठ १।

होता है और अगर कोई ऐसा सोचता है कि निगमन के द्वारा या हमेशा के लिए इसे सुलझाया जा सकता है, तो मै केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे विचार से वह सैद्धान्तिक गलती करता है।...

"कानून अपने लिए मनुष्य की गम्भीरतम मूल-प्रवृत्तियो से ज्यादा अच्छा औचित्य नही मांग सकता।..

"दर्शन उद्देश्य नही प्रदान करता, किन्तु वह मनुष्यो को दिखाता है कि जो कुछ वे पहले से ही करना चाहते हैं, उसे करना मूर्खता नही है।"[1]

कानूनी दर्शन मे यह मौलिक सकल्पवाद केवल कानून के प्राचीन निगमन सिद्धान्त की आलोचना ही नही था, जिसे विधि-शास्त्र की ऐतिहासिक और विकासवादी धारा ने पहले ही समाप्त कर दिया था। यह न्यायिक कार्यपद्धति की अवधारणात्मक परिभाषा सम्बन्धी पीयर्स की उक्ति का प्रभावकारी प्रयोग था। होल्म्स की परिभाषा के अनुसार, किसी कानून का अर्थ निर्धारित करने के लिये जज उसके आनुभविक परिणामो की ओर ध्यान दे सकता था। जिसे समाज-शास्त्रीय विधि-शास्त्र कहा गया, उसके लिये इससे द्वार खुल गया और अदालतें स्पष्टतः सरकारी नीति की एजेन्ट बन गयी। विधि-निर्माण मे समूहवादी प्रवृत्तियो के प्रति होल्म्स का अपना दृष्टिकोण 'दोषान्वेषणपूर्ण तीखेपन' का था। किन्तु उनमे इतनी काफी सहिष्णुता थी कि जब ये प्रवृत्तियाँ विधान-मण्डल की इच्छा को स्पष्ट रूप में व्यक्त करती, तो वे उन्हे लागू करते, यद्यपि एक नागरिक के रूप मे वे उन्हे अत्याचारपूर्ण कह कर उनकी निन्दा करते। वे अपनी 'तर्कबुद्धि' को लोगो की 'गम्भीरतम मूल-प्रवृत्तियो' के विरुद्ध खडा करने को तैयार नही थे और न वे इसे अपना नैतिक कर्त्तव्य समझते थे कि जनसामान्य के 'मनोवेगो' को रोकें, जैसा कि सयम और सन्तुलन का पुराना सिद्धान्त सिखाता था। निजी रूप मे वे नीतिज्ञता के विरोधी थे और मानते थे कि कानून को धर्म-दण्ड की गुरुता, पादरियत के आवरण और धर्मपीठो मे उसकी विशेषाधिकारयुक्त स्थिति से मुक्त करके वे क़ानून की सच्ची सेवा कर रहे थे ताकि उसे बाजार की समतल जमीन पर दृढ़ उपयोगितावादी आधार पर खडा किया जा सके।[2]

---

१. ओलिवर वेण्डेल होल्म्स, 'कलेक्टेड लीगल पेपर्स' (न्यूयार्क, १६२०), पृष्ठ १७६-१८३, २००, ३१६। अन्तिम उद्धरण 'नेचुरल लॉ' (प्राकृतिक नियम) पर उनके निबन्ध से लिया गया है।

२. किन्तु निजी रूप में वे एक भद्र पुरुष का सस्कार-युक्त जीवन ही बिताते रहे। उस कठिन परिश्रम के प्रति वे स्वयं तिरस्कार का अनुभव करते थे, भावी जजों के लिए जिसकी व्यवस्था उनके अपने सिद्धान्त कर रहे थे। सर फ्रेडरिक

यह कार्य सैद्धान्तिक क्षेत्र मे रोस्को पाउण्ड और व्यवहार में जस्टिस ब्रैण्डीस और जस्टिस कारडोजो के हिस्से मे आया कि एक समाजशास्त्रीय विधि-शास्त्र का विकास करें, जिसके सन्दर्भ मे नैतिक सिद्धान्त और सामाजिक नीति एक-दूसरे का समर्थन कर सकें।

"सिद्धान्तो, नियमो और प्रतिमानो के ठोस मामलो में परीक्षण की प्रक्रिया के द्वारा, जज वास्तविक कानून बनाता है। वह उनके व्यावहारिक प्रयोग को देखता है और बहुतेरे कारणो के अनुभव से धीरे-धीरे पता लगाता है कि उनका प्रयोग किस प्रकार करे जिससे उनके द्वारा न्याय कर सके।...

"सुनीति के विकास के द्वारा कानून मे नैतिकता का प्रवेश, विधि-निर्माण की उपलब्धि नही, वरन् अदालतो का कार्य था। व्यापारियो के चलनो का कानूनो में समावेश, अधिनियमो के द्वारा नही हुआ, वरन् न्यायिक निर्णयो के द्वारा हुआ। एक बार वैधानिक विचार और न्यायिक निर्णय की धारा के किसी नये मार्ग पर मुड़ने के बाद, न्यायिक अनुभववादी की हमारी ऐंग्लो-अमरीकी पद्धति हमेशा

पोलॉक के नाम एक पत्र के निम्नलिखित अंश, उनकी निजी गुरुता और उनके लोकतान्त्रिक विधि-शास्त्र के विरोध को व्यक्त करते हैं—"गर्मियो में मैं जो काम करता हूँ, उनके सम्बन्ध में ब्रैण्डीस ने उस दिन मुझे एक बड़ी तीखी बात कही। उन्होंने कहा, आप अपना दिमाग़ सुधारने की बात करते हैं, किन्तु आप उसका प्रयोग केवल उन विषयों पर करते हैं, जिनसे आप परिचित हैं। आप किसी नई चीज़ के लिए प्रयास क्यो नहीं करते, तथ्य के किसी क्षेत्र का अध्ययन क्यो नहीं करते? मैसाचुसेट्स के वस्त्र उद्योगो को ले ले और सम्बन्धित रपटो का पर्याप्त अध्ययन करने के बाद आप लॉरेन्स जा सकते हैं और कुछ जान सकते हैं कि वास्तव मे है क्या। मुझे तथ्यो से नफरत है। मैं हमेशा कहता हूँ कि मनुष्य का मुख्य लक्ष्य सामान्य स्थापनाओ का निरूपण करना है—फिर यह जोड़ देता हूँ कि सारी सामान्य स्थापनायें मूल्यहीन होती है। बेशक, सामान्य स्थापना केवल तथ्यो को पिरोने का धागा होता हैं और मुझे इसमे सन्देह नही कि अगर मैं उनमें पैठूँ, तो मेरी अनश्वर आत्मा को लाभ होगा, अपने कार्य के सम्पादन में भी मुझे लाभ होगा। लेकिन मैं इस ऊब से बचता हूँ—बल्कि ऐसा कहूँ कि इस या उस चीज़ को पढने का अवसर खोना नहीं चाहता, जिसे एक भद्र-पुरुष को मरने के पहले पढ़ लेना चाहिए। मुझे याद नहीं कि मैंने कभी मकियावेली की रचना 'प्रिन्स' पढ़ी हो—और मैं (ईश्वरीय) निर्णय के दिन की बात सोचता हूँ।"—('होल्म्स-पोलॉक लेटर्स', खण्ड २, पृष्ठ १३-१४)।

पर्याप्त सिद्ध हुई है। हमारे सामान्य कानून मे ऐसे साधन हैं कि नये आधार-सूत्रो को लेकर वह न्याय की आवश्यकताओ की पूर्त्ति के लिये उन्हे विकसित करे, और परिणामो को एक वैज्ञानिक व्यवस्था में ढाले। इसके अतिरिक्त, उसमें नये आधारो को ग्रहण करने की शक्ति है जैसा उसने सुनीति (ईक्विटी) के विकास मे और व्यापारिक नियमो को समाविष्ट करने मे किया। वस्तुत. लगभग अनजाने ही, हमारी कानूनी व्यवस्था मे आधारभूत परिवर्त्तन होते रहे हैं, हमारी निर्णय विधि मे एक परिवर्त्तन होता रहा है। हमारी विधि-निर्माण नीति में परिवर्त्तन इतना स्पष्ट होने के पहले ही हम उन्नीसवी शताब्दी के व्यक्तिवादी न्याय से जिसे कानूनी न्याय का अर्थपूर्ण नाम दिया गया था, आज के सामाजिक न्याय की ओर बढ़ रहे थे।"[1]

यहाँ दृष्टिकोण जेम्स और होल्म्स के सकल्पवाद से कुछ हट कर ड्यूई और टफ्ट्स, ब्रैण्डीस और कारडोजो के सामाजिक नीतिशास्त्र पर आ गया है। कानून का अस्तित्व, 'उस सघर्ष मे जो जीवन है', विभिन्न शक्ति-सकल्पो की सेवा के लिये नही, वरन् उस कला के द्वारा, जो शासन है, आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये है।

"विधि-शास्त्री मानवी सकल्पो के बजाय मानवी आवश्यकताओ या आकाक्षाओ के सन्दर्भ मे सोचने लगे। वे सोचने लगे कि उन्हे केवल सकल्पो मे समानता या समरसता नही लानी थी, वरन् आवश्यकताओ की पूर्त्ति में अगर समानता नही, तो कम से कम समरसता लानी थी। वे दावों या आवश्यकताओ या आकाक्षाओ का तुलन या सन्तुलन और समाधान करने लगे, उसी प्रकार जैसे पहले वे सकल्पो का सन्तुलन या समाधान करते थे। वे सोचने लगे कि कानून का लक्ष्य अधिकतम स्वाग्रह नही, वरन् आवश्यकताओ की अधिकतम पूर्त्ति है। फलस्वरूप कुछ समय तक वे नीतिशास्त्र, विधिशास्त्र और राजनीति की समस्या को मुख्यत मूल्याकन की समस्या, हितों के सापेक्ष मूल्य की कसौटियाँ खोजने की समस्या मानते रहे। विधि-शास्त्र और राजनीति मे उन्होंने देखा कि हमे न्यायिक या प्रशासकीय सरकारी कार्य के द्वारा हितो को प्रभावी बनाने की सम्भावना की व्यावहारिक समस्याओ को भी जोडना होगा। किन्तु पहला प्रश्न यह था कि किन आवश्यकताओ को मान्यता दी जाये—किन हितो को स्वीकार और सुरक्षित किया जाये। ऐसी आवश्यकताओ, दावो और हितो की सूची तैयार करने के बाद, जिनका आग्रह किया जा रहा है और जिनके लिये कानूनी सुरक्षा

---

१. रोस्को पाउण्ड, 'दी स्पिरिट ऑफ दी कॉमन लॉ' (बोस्टन, १६२१), पृष्ठ १७६, १८४-१८५।

माँगी जा रही है, हमें उनका मूल्याकन करना था, जिन्हें मान्यता देनी थी उनका चयन करना था और अन्य मान्य हितो की दृष्टि में, उन सीमाओ का निर्धारण करना था, जिनके अन्दर उन्हे प्रभावी बनाना था और पता लगाना था कि क़ानूनी कार्यवाही की अन्तर्निहित सीमाओ की दृष्टि में, कहाँ तक हम उन्हें कानून द्वारा प्रभावी बना सकते हैं।"[1]

"हम अमरीकी न केवल सामाजिक न्याय से बँधे हैं, उन चीज़ो से बचने के अर्थ में जिनसे कष्ट और हानि होती है, जैसे धन का असमान वितरण, वरन् हम मूलत लोकतन्त्र से बँधे है। जिस सामाजिक न्याय के लिए हम प्रयास कर रहे हैं, वह हमारा मुख्य लक्ष्य नही, वरन् हमारे लोकतन्त्र की एक घटना है। यह कहना अधिक उचित होगा कि यह लोकतन्त्र का फल है—शायद उसकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति—किन्तु यह लोकतन्त्र पर ही आधारित है, जिसमें जनता द्वारा शासन निहित है और इस कारण, जिस लक्ष्य के लिये हमें प्रयास करना है, वह जनता द्वारा शासन की उपलब्धि है, जिसमें राजनीतिक लोकतन्त्र के साथ-साथ औद्योगिक लोकतन्त्र भी निहित है।...

"कोई ऐसा व्यक्ति क्या सचमुच स्वतन्त्र हो सकता है, जिसे निरन्तर यह खतरा हो कि उसे मात्र जीवन-निर्वाह के लिये स्वय अपने प्रयास और आचरण से भिन्न किसी वस्तु या व्यक्ति पर निर्भर होना पड़े ? आर्थिक निर्माता की सगति स्वतन्त्रता के साथ तभी होती है, जब अनुपोषण का दावा अधिकार पर आधारित हो, अनुग्रह पर नही। .

"व्यक्ति की स्वतन्त्रता सफल लोकतन्त्र की उतनी ही आवश्यक शर्त्त है, जितनी उसकी शिक्षा। अगर शासन ऐसी स्थितियो की अनुमति देता है, जो नागरिको के बहुसख्य वर्गों को आर्थिक दृष्टि से पराधीन बनाती हैं, तो राज्य को चाहिये कि स्वयं उसकी कमियो से उत्पन्न बोझ को किसी रूप में स्वय अपने ऊपर लेकर, या तो ऐसा करके कि दूसरे उसे अपने ऊपर ले लें, पराधीनता की ज़बर्दस्त बुराई को कम से कम करे।...

"स्वतन्त्रता प्राप्ति का मूल्य आमतौर पर बहुत अधिक होता है।"[2]

अमरीकी कानून के इस अनुभववादी आन्दोलन के वामपक्ष में तथाकथित यथार्थवादियो का एक समूह है, जो नैतिक सिद्धान्तो, 'विधीय अभिधारणाओं',

---

१. रोस्को पाउण्ड, 'ऐन इण्ट्रोडक्शन टु दी फिलॉसफी ऑफ लॉ' (न्यू हैवेन, १६२२), पृष्ठ ८६-६०।

२. अल्फ्रेड लीफ द्वारा सम्पादित, 'दी सोशल ऐण्ड एकॉनमिक व्यूज़ ऑफ मिस्टर जस्टिस ब्रैण्डीस' (न्यूयार्क, १६३०), पृष्ठ ३८२, ३६६।

और अन्य प्रकार की 'परात्परवादी बकवास' से मुक्त, कानून के एक वस्तुपरक विज्ञान की आकाक्षा रखता है। उन्हे आशका है कि सामान्य सुख के उपयोगितावादी सिद्धान्तो की आड में, समाजशास्त्रीय विधि-शास्त्र के समर्थक चुपके-चुपके कुछ सामान्य सामाजिक लक्ष्यो को, लोकतान्त्रिक मताग्रहो को, कानूनी व्यवस्था के सिद्धान्तो को और अन्य नैतिक कसौटियो को ले आना चाहते हैं, जो वास्तव में आनुभविक नही हैं। वे एक 'आदर्शक विज्ञान' चाहते हैं, जो सामान्य लक्ष्यो और मूल्यो पर नही, वरन् मनुष्यो के वास्तविक लक्ष्यो और हितो पर निर्मित हो। उनका आग्रह आपराधिक कानून की अपेक्षा दीवानी कानून पर अधिक है और वे कानून को समस्याओ को किसी वकील की सी दृष्टि से देखते हैं—न्यायिक निर्णयो के पूर्वानुमान की समस्याओ के रूप में। वे आश्वस्त होना चाहते हैं कि विधि-शास्त्र में जो भी कानूनी नियम या नैतिक मूल्य सम्मिलित किये जाएँ, वे केवल प्रतिद्वन्द्वी दावो को सुलझाने की व्यावहारिक प्रक्रिया के उपकरण हो, उनका आनुभविक सत्यापन हो सके और वे केवल प्रासंगिक रूप में कही गयी बातें न हो, जो किसी निर्णय के बाद उसे आकर्षण तो प्रदान करें, लेकिन कोई बौद्धिक कार्य न करती हो।

क़ानून के प्रति व्यवहारवादी दृष्टियो में जो विभिन्नता दिखाई देती है, वैसी ही विभिन्नता राजनीति के प्रति व्यवहारवादी दृष्टियो की समीक्षा करने पर सामने आती है। विलियम जेम्स स्वभाव से और दार्शनिक रूप में व्यक्तिवादी थे। उन्हे 'विशालता' अपने आप मे अप्रिय थी, अधिकतम स्थानीय राजनीति के अतिरिक्त सारी राजनीति से अरुचि थी, साम्राज्यवाद से आवेशपूर्ण घृणा थी, यहाँ तक कि 'कुतिया-देवी सफलता' से भी नफरत थी। वे वीरता और मेहनती जीवन में विश्वास करते थे, लेकिन इन गुणो को बिल्कुल निजी रूप मे और छोटे पैमाने पर लेते थे। बहुसख्यक छोटे-छोटे निजी सघर्ष करने वालो से उन्हे सहानुभूति थी और उनकी वे सहायता करते थे, किन्तु, साम्राज्यवाद के विरुद्ध सघर्ष के अतिरिक्त, बड़े पैमाने के राजनीतिक प्रश्नो और सघर्षो मे उन्होने दार्शनिक रुचि बहुत कम प्रदर्शित की। इसके विपरीत डुई ने अपना नीतिशास्त्र बहुत-कुछ अपने काल के मुख्य राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नो के सन्दर्भ में विकसित किया था। वे 'जनता और उसकी समस्याओ' मे इतना अधिक उलझे रहे हैं कि कभी-कभी शिकायतें हुई हैं कि वे निजी व्यक्तियो में विश्वास ही नही करते। किन्तु डुई का सामाजिक दर्शन उनके आत्म-सिद्ध के नीतिशास्त्र पर आधारित है और जिसे वे 'नया व्यक्तिवाद' कहते हैं, वह यह विश्वास है कि किसी व्यक्ति को 'प्रभावी स्वतन्त्रता' प्रदान करने के लिए और अपने विशिष्ट हितो और आवश्यकताओं के अभिप्रायो को व्यावहारिक समझ प्रदान करने के लिये, सामूहिक कार्य और

सार्वजनिक अनुभव आवश्यक हैं। वे लोकतान्त्रिक समाजवाद के मुख्य अमरीकी व्याख्याता और संरक्षक बन गये है।

किन्तु, हमारे इतिहास की दृष्टि से, व्यवहारवादी दार्शनिको के राजनीतिक मतो से अधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक चिन्तन की वे व्यवहारवादी आदतें हैं जो व्यावहारिक राजनीतिज्ञो मे न्यूनाधिक स्वत.स्फूर्त ही विकसित हो गयी है, यहाँ तक कि पिछले दिनो के अमरीकी सामाजिक अनुभव के एक चेतन विचार-दर्शन का निर्माण हो गया है। यह विचार-दर्शन अभी एक सुनिर्मित व्यवस्था मे गठित तो नही हुआ है, फिर भी इसे एक विशिष्ट अमरीकी सामाजिक सिद्धान्त के रूप में पहचाना जा सकता है। हमारे उद्देश्यो के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस सिद्धान्त को एक मत-समूह की अपेक्षा एक सामाजिक शक्ति के रूप मे ज्यादा आसानी से पहचाना जा सकता है। किन्तु हम मोटे तौर पर प्रयोगात्मक रूप मे इसकी मुख्य विशेषताओ का चित्रण कर सकते हैं, यह याद रखते हुए कि इनके, बिना पूर्व सूचना के तो नही, किन्तु 'स्थिति' से जरा सी भी चेतावनी मिलने पर ही परिवर्तित हो जाने की सम्भावना है। सर्वप्रथम, इस विचार-दर्शन की यह नकारात्मक प्रमुख विशेषता है कि इसने कोई इतिहास-दर्शन निरूपित नही किया और यह असफलता इसके व्यवहारवादी स्वभाव का मुखर प्रमाण है। अमरीकी इतिहास की आर्थिक व्याख्या भी, जिसने मार्क्सवादियो की प्रेरणा से इतिहासकारो में कुछ प्रगति की थी और यह सम्भावना थी कि उससे अमरीकी राजनीति को परम्परागत इतिहासो की अपेक्षा अधिक यथार्थपूर्ण परिप्रेक्ष्य प्राप्त होगा, ऐसा प्रतीत होता है कि बीयर्ड और अपने अन्य मित्रो द्वारा (जल्दबाजी मे) छोडी जा रही है। और इतिहास की यह व्याख्या भी, सामान्य इतिहास की एक दार्शनिक रूपरेखा होने के बजाय, इतिहासकारो का एक प्राविधिक औजार ही रही है। हीगेलवादी उत्साह के ह्रास के बाद, न तो मार्क्सवादी इतिहास-दर्शन ने और न किसी अन्य इतिहास-दर्शन ने ही, अमरीकी सामाजिक दर्शन पर कोई गम्भीर प्रभाव डाला है। अमरीकी काल्पनिक-समाजवादी और अमरीकी बन चुके ईसाई दार्शनिक कभी-कभी जन-मानव पर छा जाते हैं, किन्तु सब मिला कर, वे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करने में उतने प्रभावशाली नही हैं—जितने एक ओर 'मानव प्रकृति' सम्बन्धी प्रभावी चिन्ता में और दूसरी ओर प्रगति मे आस्था में अपना योग देने में। पिछले दिनो प्रगति में अमरीकी आस्था इतिहास पर नही, वरन् अपने मानवी और प्राकृतिक प्रसाधनो पर हमारे विश्वास पर आधारित रही है। इससे हम राजनीतिक व्यवहारवाद के दूसरे लक्षण पर आ जाते हैं—मुख्यत' यह शक्ति का, या ऐसा कहें कि शक्तियो का बहुतत्ववादी, अवसरवादी सिद्धान्त है। डुई ने सामान्यतः दर्शन के लिए जो कुछ कहा था,

यह विशिष्ट रूप मे पिछले दिनो के अमरीकी राजनीतिक दर्शन की भावना को परिलक्षित करता प्रतीत होता है।

"अगर अमरीकी दर्शन अमरीका की अपनी आवश्यकताओ और सफल कार्य के उसके अपने निहित सिद्धान्त को चेतना के स्तर पर नही ले आता, तो वह बहुत पहले ही लकडी हो चुके ऐतिहासिक चारे को चबाते रहने, या परित्यक्त लक्ष्यो (प्राकृतिक विज्ञान मे परित्यक्त) की ओर से सफाइयाँ देने मे, या एक शास्त्रीय, आयोजनात्मक नियम-निष्ठता में खो जायेगा।"[1]

इस दर्शन का मुख्य केन्द्र शिकागो था। वहाँ डुई, टफ्ट्स, मीड और वेवलेन द्वारा विकसित सामाजिक मनोविज्ञान का विवरण हम पहले दे चुके हैं।[2] उन्होने लोकतन्त्र के एक सिद्धान्त का निरूपण मात्र शासन के एक रूप की शकल मे नही, वरन् साहचर्यपूर्ण जीवन की एक पद्धति के रूप में किया। यह सिद्धान्त इन विचारो पर आधारित था कि वैयक्तिकता और स्वतन्त्रता स्वय सामाजिक उत्पत्तियाँ है और लोकतान्त्रिक समाज वह है जो अपनी सस्थाओ को, अपने सदस्यो को बौद्धिक और भावनात्मक विकास का अवसर देने के आधारभूत लक्ष्य के अधीन रखता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये वह उनके चिन्तन 'सहभागी के क्षेत्रो' को अधिक व्यापक बनाता है, सचार और सार्वजनिक अभिव्यक्ति के साधनो में वृद्धि करता है और सभी को सामाजिक और भौतिक नियन्त्रण की प्रक्रियाओ में उत्तरदायित्वपूर्ण भाग प्रदान करता है। इस आदर्श को डुई ने शिक्षा सुधार पर लागू किया, जेन ऐडम्स ने नगर समाज और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के सुधार पर, वेवलेन और एयर्स ने औद्योगिक प्रबन्ध और निहित स्वार्थों के सुधार पर। शासन-सिद्धान्त के रूप में इस दर्शन को आर्थर एफ० बेण्टले और शिकागो की त्रिमूर्ति—चार्ल्स इ० मेरियम, एच० डी० लासेल और टी० वी० स्मिथ ने अधिक प्राविधिक और व्यवस्थात्मक विस्तार प्रदान किया। स्मिथ ने विशेष रूप में यह प्रदर्शित किया है कि व्यवहारवादी दर्शन को किस प्रकार समानता के सिद्धान्त, समझौते की कला, और 'लोकतान्त्रिक अनुशासन' के नीति शास्त्र पर लागू किया जा सकता है। दबाव गुटो' की परस्पर प्रक्रिया के सन्दर्भ मे राजनीति को निरूपित करने में बेण्टले, बीयर्ड और मेरियम अगुआ रहे हैं और इस प्रकार, उन्होने एक ऐसे समाज में जिसमें वर्ग अस्पष्ट हैं, किन्तु सघर्ष निरन्तर चलते है, वर्ग-सघर्ष की मार्क्सवादी धारणाओं के स्थान पर एक व्यावहारिक, बहुतत्ववादी धारणा प्रस्तुत की। 'प्रयोगात्मक

---

१. जॉन डुई और अन्य, 'क्रिएटिव इण्टेलिजेन्स' (न्यूयॉर्क, १९१७), पृष्ठ ६७।

२. छठे अध्याय में 'आनुवंशिक सामाजिक दर्शन' के अन्तर्गत देखिए।

अर्थशास्त्र' के रूप में टगवेल और 'न्यू डील' (१६२६ की मन्दी के बाद, राष्ट्रपति रूजवेल्ट के शासन मे १६३२ से चलाया गया सामाजिक और आर्थिक सुधार का कार्यक्रम अनु०) के अन्य प्रतिपादक इस दर्शन को वाशिंगटन ले गये, जहाँ इसे व्यावहारिक प्रयोग की अग्नि-परीक्षा से गुज़रना पड़ा।

मौलिक व्यवहारवाद जब इन बहुत कुछ अव्यवस्थित सामाजिक कलाओ से ललित कलाओ की ओर मुड़ा, तो एक कही अधिक नाजुक कार्य उसके सामने आया। कलात्मक क्रिया-कलाप का विश्लेषण करने और यह दिखाने के प्रयासो मे कि ललित कलाएँ और 'परिणति-अनुभव' के अधिकतम कल्पनामय आनन्द किस प्रकार नित्य-प्रति के जीवन की चिन्ताओ से जुडे हुए हैं, जॉन डुई और ऐल्बर्ट सी० बार्नेस ने आनुभविक और व्यवहारवादी विश्लेषण का अन्तिम प्रयोग किया। बार्नेस ने बताया कि कलाकार, जिसके लिये कला एक कौशल या सृजन की पविधि है और भावक, जो दूसरो की कला-कृतियो का आनन्द लेता है, दोनो के ही लिए किस प्रकार विश्लेषणात्मक बुद्धि, अनुशासन और सम्प्रेषणीयता आवश्यक है। अतः सौन्दर्यात्मक अनुभव उतना ही बौद्धिक और सामाजिक है, जितना वैज्ञानिक या मशीनी अनुभव। डुई ने इस सिद्धान्त का अधिकतम उपयोग किया, क्योंकि इससे उन्हे यह दिखाने का उत्तम अवसर मिल गया कि साध्यो का उपभोग और लक्ष्यो का प्रयास किस प्रकार सम्बद्ध है।

"जब कलात्मक वस्तुएँ उद्गम की स्थितियो और अनुभव की क्रिया, दोनो से अलग कर दी जाती है, तो उनके चारो ओर एक दीवार खडी कर दी जाती है, जिससे उनकी वह सामान्य अर्थसत्ता लगभग ओझल हो जाती है, जो सौन्दर्य-शास्त्र के सिद्धान्त का विषय है। कला को एक अलग क्षेत्र मे डाल दिया जाता है, जहाँ अन्य हर प्रकार के मानवी प्रयास, अनुभव और उपलब्धि की सामग्रियो और लक्ष्यो से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। अत' जो व्यक्ति ललित कलाओ के दर्शन पर लिखने बैठता है, उसकी एक प्राथमिक जिम्मेदारी हो जाती है। यह ज़िम्मेदारी है, अनुभव के परिष्कृत और घनीभूत रूपो, जो कला-कृतियाँ हैं और सार्विक रूप मे अनुभव मानी जाने वाली नित्य-प्रति की घटनाओ, कार्यों और पीडाओ के बीच निरन्तरता को पुन. स्थापित करना।"[१]

"हम उपयोगी कलाओ और ललित कलाओ के सम्बन्ध के बारे में ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, जो अलगाववादी सौन्दर्यशास्त्रियो के अभिप्राय के ठीक विपरीत है, अर्थात् ललित कला का चेतन रूप में किया गया निर्माण अपने आप में, विशिष्टत उपयोगी गुण वाला होता है। यह शिक्षा के लिये चलायी गयी

---

१. जॉन डुई, 'आर्ट ऐज़ एक्सपीरिएन्स' (न्यूयॉर्क, १६३४), पृष्ठ ३।

प्रयोग की एक पद्धति है। इसका अस्तित्व एक विशेष उपयोग के लिये है। वह उपयोग है प्रत्यक्ष-ज्ञान की पद्धतियो का एक नया प्रशिक्षण। सफल होने पर, ऐसी कला-कृतियो के निर्माता वैसी ही कृतज्ञता के पात्र हैं, जैसी हम सूक्ष्मदर्शी या ध्वनिवर्द्धक यन्त्रो के आविष्कारको के प्रति अनुभव करते हैं। अन्ततोगत्वा, वे हमारे निरीक्षण और उपभोग के लिये नयी वस्तुएँ प्रस्तुत करते है। यह एक सच्ची सेवा है। किन्तु सम्भ्रम और दम्भ की संयुक्ति का युग ही इस विशेष उपयोगिता की पूर्ति करने वाली कृतियो को ललित कला का अलग नाम देगा।"[२]

इस अन्तिम उद्धरण से और वस्तुत डुई के अधिकाश लेखन से ऐसा लगता है कि सब वस्तुएँ 'शिक्षा के लिए चलायी जाती हैं।' उन्होने कहा कि 'दर्शन शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त है।' और हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि कलाएँ शिक्षा का सामान्य व्यवहार हैं। निस्सन्देह, मन के जीवन को इस प्रकार शिक्षा की एक प्रक्रिया कहना, 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग बडे व्यापक अर्थ मे करना है। किन्तु, मौलिक अनुभववाद की दृष्टि से, यह मात्र संयोग नही है कि शिक्षा को इतने व्यापक अर्थ में समझा जाये। जैसा अपनी प्रारम्भिक और सर्वाधिक प्रभावशाली पुस्तको मे से एक, 'स्कूल ऐण्ड सोसायटी' (स्कूल और समाज) मे डुई ने कहा था, कक्षा का अनुशासन केवल मानव जीवन के आधारभूत अनुशासन का एक प्रारम्भिक सोपान है। सीखने मे शास्त्रीय कुछ भी नही है और इस प्रक्रिया की कोई सीमाएँ नही बाँधी जा सकती।

"हमारी वर्त्तमान शिक्षा ..अत्यधिक विशेषतापूर्ण, एकागी और सकीर्ण है। यह ऐसी शिक्षा है जो लगभग पूर्णत' सीखने की मध्ययुगीन धारणा से प्रभावित है। अधिकाश यह केवल हमारी प्रकृतियों के बौद्धिक पक्ष को, सीखने की जानकारी एकत्र करने की हमारी आकाक्षा को और शिक्षण के प्रतीको पर नियन्त्रण प्राप्त करने की इच्छा को ही आकर्षित करती है। उपयोगिता या कला के रूप में बनाने या करने की, सृजन या उत्पन्न करने की प्रवृत्तियां और आवेगो को यह आकर्षित नही करती। शारीरिक प्रशिक्षण, कला और विज्ञान के सम्बन्ध में आपत्ति की जाती है कि ये प्राविधिक है, इनमें मात्र विशेषता की प्रवृत्ति है यह तथ्य ही इसका बडा से बड़ा सम्भव प्रमाण है कि एक विशेषतापूर्ण लक्ष्य प्रचलित शिक्षा का नियन्त्रण करता है। अगर शिक्षा को लगभग पूरी तरह मात्र बौद्धिक प्रयास, मात्र अध्ययन ही न मान लिया गया होता, तो इन सारी सामग्रियो और पद्धतियो का स्वागत होता, इनका अधिकतम सत्कार किया जाता।

---

२. जॉन डुई, 'एक्सपीरिएन्स ऐण्ड नेचर' (शिकागो, [illegible]) [illegible] ३६२।

"अध्ययन के व्यवसाय के प्रशिक्षण को संस्कृति का प्रतिरूप माना जाता है, उदार शिक्षा माना जाता है, जबकि कारीगर, सगीतज्ञ, वकील, डाक्टर, किसान, व्यापारी या रेल कम्पनी के प्रबन्धक के प्रशिक्षण को पूर्णतः प्राविधिक और व्यावसायिक माना जाता है। फलस्वरूप हम अपने चारो ओर 'सुसस्कृत' लोगो और 'मजदूरो' का विभाजन, सिद्धान्त और व्यवहार का अलगाव देखते हैं।...हमारे शिक्षा-जगत् के नेता शिक्षा के लक्ष्य और साध्य के रूप में सस्कृति की, व्यक्तित्व के विकास की बातें करते हैं, जबकि स्कूलो के शिक्षण से गुजरने वालो का बहुत बड़ा बहुमत इसे केवल संकीर्ण रूप में व्यावहारिक औजार मानता है, जिसकी मदद से वह एक सीमित जिन्दगी बिताने भर को रोटी कमा सके। अगर हम अपने शैक्षणिक लक्ष्य और साध्य को इतने अलगावपूर्ण ढंग से न देखें, ऐसे लोगो को आकर्षित करने वाली क्रियाओ को भी शैक्षणिक प्रक्रियाओ में सम्मिलित करें, जिनकी मुख्य रुचि करने और बनाने में होती है, तो अपने सदस्यो पर स्कूलो का प्रभाव अधिक जीवन्त, अधिक दीर्घ और अधिक सस्कार-युक्त हो जायेगा।...

"सक्रिय कार्यों का, प्रकृति के अध्ययन, प्रारम्भिक विज्ञान, कला और इतिहास का समावेश, मात्र प्रतीकात्मक और औपचारिक ज्ञान को गौण स्थान पर रखना, स्कूल के नैतिक वातावरण में, छात्र और अध्यापक के सम्बन्ध में, अनुशासन सम्बन्धी परिवर्त्तन, अधिक सक्रिय, अभिव्यजनात्मक और आत्म-निर्देशक तत्वो का समावेश—ये सब मात्र सयोग नही हैं, वरन् अधिक व्यापक सामाजिक विकास की आवश्यकताएँ है।

"अगर हम एक बार जीवन मे विश्वास करे,...तो सभी कार्य और उपयोग . तो सारा इतिहास और विज्ञान...कल्पना के और उसके द्वारा (जीवन की) समृद्धि और व्यवस्था के...विकास के उपकरण और सस्कार की सामग्रियाँ बन जायेंगे। जहाँ हम आज केवल बाह्य कर्म और बाह्य उत्पत्ति देखते हैं, वहाँ, सारे दृश्य परिणामो के पीछे मानसिक दृष्टिकोण का पुनस्समंजन है, अधिक व्यापक और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि है, बढती हुई शक्ति का अनुभव है और अन्तर्दृष्टि तथा क्षमता दोनो को ही विश्व तथा मनुष्य के हितो से एकरूप मानने की तत्पर योग्यता है। अगर सस्कृति केवल ऊपरी पॉलिश नही है, पीतल पर सोने का पानी चढ़ाना नही है, तो वह कल्पना की व्यापकता, लचीलेपन और सहानुभूति की अभिवृद्धि है, जब तक कि वह जीवन जिससे व्यक्ति जीता है, प्रकृति और समाज के जीवन से अनुप्रेरित न हो जाये।"

१. जान डुई, 'दी स्कूल ऐण्ड सोसायटी' (शिकागो, १६००), पृष्ठ ४१-४४, ७२-७३।

डुई की विचार-व्यवस्था मे 'लोकतन्त्र' और 'शिक्षा' लगभग पर्यायवाची हैं और दोनो ही शब्दो का उद्देश्य यह व्यक्त करना है कि मौलिक अनुभववाद के सिद्धान्तो पर चलने का क्या अर्थ है।

"लोकतन्त्र यह विश्वास है कि मानवी अनुभव में ऐसे लक्ष्यो और पद्धतियो को जन्म देने की योग्यता है जिनके द्वारा और अधिक अनुभव व्यवस्थित समृद्धि में विकसित हो सके। अन्य हर प्रकार का नैतिक और सामाजिक विश्वास इस विचार पर आधारित है कि अनुभव पर किसी प्रकार का वाह्य नियन्त्रण—अनुभव की प्रक्रिया के बाहर की किसी 'सत्ता' का नियन्त्रण—किसी न किसी विन्दु पर आवश्यक होता है। लोकतन्त्र यह विश्वास है कि अनुभव की प्रक्रिया किसी विशेष उपलब्ध परिणाम से अधिक महत्वपूर्ण होती है। फलस्वरूप, उपलब्ध विशेष परिणाम अन्तत वही तक मूल्यवान् होते हैं, जहाँ तक उनका उपयोग चल रही प्रक्रिया को समृद्धि और व्यवस्थित वनाने के लिये होता है। अनुभव की प्रक्रिया मे शैक्षिक होने की क्षमता है, अत लोकतन्त्र में आस्था और अनुभव तथा शिक्षा मे आस्था, एक ही हैं। सारे साध्य और मूल्य, जो चल रही प्रक्रिया से कटे हुए होते है, रुकावट और जकडाव वन जाते हैं। वे लाभ का उपयोग मार्ग को उन्मुक्त करने और नये तथा वेहतर अनुभवो की ओर निर्देश करने में, करने के वजाय वाँधने की चेष्टा करते हैं।

"अगर कोई पूछे कि इस प्रसग में अनुभव का अर्थ क्या है, तो मेरा उत्तर है कि अनुभव वातावरण की स्थितियो के साथ, विशेषत मानवी वातावरण के साथ, व्यक्ति मनुष्यो की अन्योन्य-क्रिया है, जो वस्तुओ की यथास्थिति का ज्ञान वढा कर आवश्यकता और आकाक्षा की पूर्त्ति करती है। सम्प्रेषण और सहभाग के लिए यथास्थिति का ज्ञान ही एकमात्र ठोस आधार है। अन्य सारे सम्प्रेषण का अर्थ है किन्ही व्यक्तियो के मत के प्रति किन्ही अन्य व्यक्तियो की अधीनता। आवश्यकता और आकाक्षा—जिनसे उद्देश्य और ऊर्जा के निर्देशन का विकास होता है—वर्त्तमान अस्तित्व के आगे जाती हैं और इस कारण ज्ञान और विज्ञान के भी आगे जाती हैं। वे निरन्तर अनखोजे और अनुपलब्ध भविष्य का मार्ग उन्मुक्त करती हैं।"[१]

---

१ जॉन डुई, 'दी फिलॉसफ़र ऑफ दी कामन मैन' (न्यूयॉर्क, १६४०), में 'क्रिएटिव डेमॉक्रेसी-दी टास्क विफोर अस,' पृष्ठ २२७।

नवाँ अध्याय

नये प्रकृतिवाद और यथार्थवाद का उदय

विलियम जेम्स के दो दर्शन

जेम्स की पुस्तक 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलॉजी' के दो बडे-बडे खण्डो के पाठक का ध्यान रचना के सगठन की असम्बद्धता की ओर जाता है। निश्चय ही, उन दिनो (१८६०) मनोविज्ञान एक शिशु-विज्ञान ही था और तब तक उसका कोई परम्परागत ढाँचा नही था, फिर भी, अध्यायों के अनुक्रम के प्रति लेखक की उदासीनता स्पष्ट है। हर अध्याय अपने आप में एक निबन्ध के रूप में है, और उनमें से कई वस्तुत. लेखो के रूप में प्रकाशित भी हुए थे। किन्तु बहुसख्यक पाद-टिप्पणियो का पाठक देखेगा कि लगभग हर अध्याय मे ही लेखक ने कुछ समस्याएँ उठाई हैं और कहा है कि वैज्ञानिक उद्देश्यो के लिये इनका हल अनावश्यक या असम्भव है। दर्शन में इन समस्याओ की परिकल्पनात्मक या तत्वमीमासात्मक प्रासगिकता के कारण, वे अन्तिम अध्याय मे इनकी चर्चा करने के इरादे से इन्हे स्थगित कर देते हैं। अपने-आप मे यह कोई विशेष आश्चर्य की बात नही, क्योकि विक्टोरिया-कालीन दृश्य-घटनावादी सामान्यत. ऐसा करते थे, उसी प्रकार जैसे इधर घटना-क्रिया-वैज्ञानिक कुछ तत्वमीमासात्मक प्रश्नो को सामान्यत 'इकट्ठा' कर देते हैं। बहुतेरे दार्शनिक पाठक इस ढग से धोखे में पड़ गये और उन्होने जेम्स की रचना के अधिकाश को मात्र अनुभववाद कह कर छोड़ दिया और जेम्स के दर्शन की रूपरेखा अन्तिम अध्याय में खोजनी चाही। किन्तु यह एक गम्भीर भूल है, क्योकि 'नेसेसरी ट्रुथ्स ऐण्ड दी एफेक्ट ऑफ एक्सपीरिएन्स' (आवश्यक सत्य और अनुभव का प्रभाव) शीर्षक अन्तिम अध्याय मे, जेम्स द्वारा उठाये गये परिकल्पनात्मक प्रश्नो में से केवल एक की ही चर्चा है। इसे उन्होने 'मनो-उत्पत्ति' की समस्या कहा है, यह प्रश्न कि मानसिक गठन का मूल बीजातीत है या आनुभविक। प्रश्न इस पर वे अपना मत तत्काल

प्रकट कर देते है[1], जिसका साराश यह है—परात्परावादी 'तथ्य' के प्रश्न पर सही हैं, और प्रकृतिवादी 'कारण' के प्रश्न पर सही है। प्रकृतिवादियो से उनका तात्पर्य डार्विनवादियो से था। जैविक गठनो को समझाने के लिये, हर्वर्ट स्पेन्सर द्वारा अप्रौढ़ रीति से 'जाति के अनुभव' का सहारा लेने की जेम्स ने जो आलोचनाएँ की, यह अध्याय भी उनमे से एक है। जेम्स 'कारण' की एक डार्विनवादी व्याख्या के पक्ष मे हैं, अर्थात्, मनुष्य का पदार्थीय मानसिक और नैतिक गठन उन बहुतेरे सम्भव 'स्वत स्फूर्त्त परिवर्त्तनो' में से एक है, जो घटना-क्रम मे सयोगवश हुए और यह अपनी उपयोगिता के कारण वचा रहा। ऐसे डार्विनवादी 'कारण' स्पष्टतः प्रकृतिवादी व्याख्याएँ नही हैं, वरन् विकासवादी अभिधारणाएँ हैं। इस प्रकार, यह सारी चर्चा इसका एक और उदाहरण है कि एकरूपता में और अनुभव में साहचर्य के नियम की न्यूनाधिक यान्त्रिक क्रिया में स्पेन्सर के विश्वास की अपेक्षा, जेम्स प्रकृति के परिवर्त्तनो की 'स्वत. स्फूर्त्ति' में डार्विनवादी विश्वास के पक्ष में थे। अपने मनोविज्ञान में जेम्स जिन सकल्पवादी पदार्थों का प्रयोग करने के अभ्यस्त थे, उनके लिये प्रकृति मे स्वत. स्फूर्ति उन्हे एक अपेक्षतया वैज्ञानिक स्थापना प्रतीत होती थी। अनुभव में विचार के कार्यात्मक स्थान सम्बन्धी अपने पुराने लेख के विषय को फिर से उठाकर वे अपने सारे दर्शन का साराश प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं।[2] इसमे वे चार आधारभूत शब्दो के सम्बन्ध परिभाषित करने की चेष्टा करते हैं—

१ यथार्थ या तथ्य, जिसका अस्तित्व 'द्रव्यमय आकाश' के रूप में है,

२ अनुभव, प्रस्तुत, बिना (विचार के) चयनात्यक कार्य के 'खण्ड अनुभवो की अराजकता' या 'हमारे अनुभव की पशु व्यवस्था,'

३. विचार, जो संकल्प के हित में (२) को विचार के प्राग्-आनुभविक गठन में बैठाता है,

४. सकल्प, मनुष्य के 'निश्चित वैयक्तिक उद्देश्य, अधिमान्यताएँ'।

'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलॉजी' मे (२), (३) और (४) के परस्पर सम्बन्धो की विवेचना है। इस पुस्तक में जेम्स ने (१) और (४) के सम्बन्ध की चर्चा नही की है, जो उनके जन सामान्य को सम्बोधित लेखो और भाषणो का विषय है, और जिसमे निजी रूप से उनकी आधारभूत नैतिक रुचि थी। (१),

---

१. विलियम जेम्स, 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलॉजी' (न्यूयॉर्क. १८९०), खण्ड २, पृष्ठ ६१८।

२, वही, खण्ड २, पृष्ठ ६३४ और 'दी विल टु विलीव' (न्यूयॉर्क १९०८) मे पुनर्मुद्रित निवन्ध सम्बन्धी पाद-टिप्पणी।

यथार्थ या तथ्य के सिद्धान्त को, न केवल 'साइकॉलॉजी' में, वरन् अपने सारे लेखन में जेम्स ने इतना ही कह कर टाल दिया है कि वे अस्तित्व को मान कर चलते हैं, या वे एक सरल-विश्वासपूर्ण, सामान्य-बुद्धि यथार्थवादी हैं, या कि 'भाववादी प्रश्न' को वे उठा ही नही रहे हैं।[1] उनकी दार्शनिक समस्याओ का विषय भी केवल (२), (३) और (४) के साथ (१) के तथ्य सम्बन्ध हैं।

किन्तु यह तथ्य-विश्लेषण 'मन' के दो बिल्कुल भिन्न विवरणो मे बँट जाता है, हर एक अपने मे पूर्ण, जो इस पर निर्भर है कि वे अपना विश्लेषण (२) से आरम्भ करते है, या (४) से। (२) पर आधारित दर्शन को उनका 'मन का अन्तर्दर्शनवादी सिद्धान्त' या 'चेतना का घटना-क्रिया-विज्ञान' कहा जा सकता है। 'साइकॉलॉजी' मे इसका आरम्भ सातवें और आठवें अध्याय में रीति-विधान सम्बन्धी प्रारम्भिक चर्चा के बाद नवें अध्याय से होता है। 'विचार की धारा' (दी स्ट्रीम ऑफ थॉट) शीर्षक यह अध्याय १८८४ मे ही 'ऑन सम ओमिशन्स ऑफ इण्ट्रॉस्पेक्टिव साइकॉलॉजी' (अन्तर्दर्शनात्मक मनोविज्ञान की कुछ कमियाँ) नाम से प्रकाशित हो चुका था। इस निबन्ध मे प्रतिपादित विषय किन परिस्थितियो में उनके दिमाग मे आया, इसकी चर्चा उन्होने स्वय बाद में की है।

"कई वर्ष पहले, जब टी० एच० ग्रीन के विचार अत्यधिक प्रभावशाली थे, उनके द्वारा अग्रेजी 'सवेदनावाद' की आलोचना मुझे काफी परेशान करती थी। उनका एक शिष्य विशेषत मुझसे हमेशा कहता—'हाँ! सचमुच, 'शब्दो' का मूल सम्भवत सवेदनात्मक हो सकता है। लेकिन 'सम्बन्ध' क्या है, सिवाय सवेदनाओ पर ऊपर से आने वाले शुद्ध रूप में बुद्धि के, और एक उच्चतर प्रकृति के कार्यों के?' मुझे अच्छी तरह याद है कि एक दिन यह समझ कर मुझे अचानक कितनी राहत मिली थी कि कम से कम दिक्-सम्बन्ध उन शब्दो के सजातीय हैं जिनके बीच वे मध्यस्थता करते है। शब्द स्थान थे, और सम्बन्ध बीच मे आने वाले अन्य स्थान थे।"[2]

स्थान के प्रत्यक्ष-ज्ञान सम्बन्धी अध्याय मे और पुस्तक के इस सारे अंश में जेम्स का ध्यान स्पष्टत उस समस्या पर है जो अग्रेजी भाववाद की केन्द्रीय समस्या है, अर्थात्, सम्बन्धो को प्रस्तुत करने के लिये कैसे सम्बन्धित किया जा सकता है? जेम्स का सीधा सा उत्तर था कि सम्बन्ध और शब्द दोनो ही प्रस्तुत होते हैं। उन्होने 'सापेक्षता की भावना' पर जोर दिया। इस आधार पर उन्होने

---

१. देखिए, 'दी मीनिंग ऑफ ट्रुथ' (न्यूयॉर्क, १९०९), पृष्ठ ५० एन०, १९५।

२. वही, पृष्ठ ३२२ एन।

दसवाँ अध्याय 'दी कान्शसनेस ऑफ सेल्फ' (आत्म-चेतना) निर्मित किया, जिसमें उन्होने यह विचार विकसित किया कि 'गुज़रता हुआ विचार ही विचारक है ।' इसके बाद पन्द्रहवें से उन्नीसवें अध्याय तक की परिणति उनके 'यथार्थ के प्रत्यक्ष-ज्ञान' के सिद्धान्त में होती है । इस क्रम के अन्तिम, इक्कीसवें अध्याय में वे विश्वास के भावनात्मक पक्ष को उठाते हैं—वे कहते है कि कोई विश्वास एक दृष्टिकोण होता है । यहाँ वे स्पष्ट रूप में टेन का अनुसरण करते है । अन्त में वे चर्चा का साराश इस रूप मे प्रस्तुत करते हैं कि 'विश्वास और ध्यान एक ही तथ्य हैं । किसी क्षण में हम जिसकी ओर ध्यान देते हैं, वह यथार्थ होता है ।[1] इस चर्चा को पढने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ जेम्स निरन्तर एक मनोवैज्ञानिक है और वे यथार्थ की चर्चा ऊपर दिये विश्लेषण में (१) के अर्थ में नही, वरन् चेतना में यथार्थ के अर्थ या प्रत्यक्ष-ज्ञान के अर्थ में कर रहे हैं ।

इस प्रकार 'साइकॉलॉजी' के इस मध्य-भाग में चेतना का एक परस्पर सम्बद्ध विवरण है, जिसका आरम्भ प्रस्तुत की 'पशु-व्यवस्था' या 'बड़े, फैले, शोर भरे सभ्रम' से होता है, और जिसकी परिणति विश्वास के मनोविज्ञान में होती है, जिससे बाद में उनके व्यवहारवाद का विकास हुआ । मन का यह सारा विवरण प्रस्तुत के रूप में मन सम्बन्धी आन्तरिक, तात्कालिक दृष्टि पर ध्यान केन्द्रित करता है और इसमें मूलतः उसका विस्तृत निरूपण है जिसे आजकल 'प्रस्तुत की सोद्देश्यता' कहा जाता है । वे 'परिचय ज्ञान' और 'सम्बन्ध ज्ञान' या तर्कनात्मक ज्ञान के अन्तर के सन्दर्भ मे अपनी स्थिति स्पष्टत निरूपित करते है ।[2]

इन शब्दो में, उनके मन के सिद्धान्त को परिचय ज्ञान के 'सम्बन्ध में ज्ञात' क्या है, इसका विवरण कहा जा सकता है । इस दृष्टिकोण से मन 'विचारक और गुज़रते हुए विचार' की एकरूपता है । और सारा विचारण किसी न किसी प्रकार का दृष्टिकोण या भावना है । दूसरे शब्दो में, चेतना के ऐसे विज्ञान की परिणति भावनाओ के स्वरूप के विश्लेषण में होती है, उनके कारणों या परिणामो के विश्लेषण में नही । जेम्स का यह सिद्धान्त भावनात्मक जीवन का एक घटना-क्रिया-विज्ञान है, जिसमें विश्वास करने और जानने के दृष्टिकोणों पर ज़ोर दिया गया है ।

किन्तु जेम्स की 'साइकॉलॉजी' मे एक और दर्शन भी है, जिसे हम उनका प्रकृतिवाद या क्रियावाद कह सकते हैं । एक से छह, ग्यारह से चौदह, और बाइस से छब्बीस, इन अध्यायो में उनके द्वारा मानसिक कार्यों के जीव-वैज्ञानिक विवरण

---

१. 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलॉजी', खण्ड २, पृष्ठ [illegible] एन० ।

२. वही, खण्ड १, पृष्ठ १८५-२२१ ।

की सम्बद्ध विवेचना है, जिसकी परिणति सकल्प की प्रकृतिवाद विवेचना मे होती है। वे कहते है कि 'मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान है ।'[१] 'लक्ष्यो की प्राप्ति का प्रयास' मानसिक कार्यों की उनकी जीव-वैज्ञानिक परिभाषा है ।[२] फिर मस्तिष्क के कार्य के शरीर-क्रियात्मक विश्लेषण के वाद 'आदत' सम्बन्धी उनका प्रसिद्ध अध्याय आता है। वे कहते हैं कि जैव आदतें 'जैव सामग्रियो के लचीलेपन' के कारण होती हैं ।[३] तव वे आदत को प्रयत्न से जोडते है, और अपनी विशिष्ट उक्ति निर्मित करते हैं, जो उनके नीतिशास्त्र की एक आधारभूत स्थापना है—'प्रयत्न की मन:शक्ति को जीवित रखें ।'[४] इससे वे ध्यान के जीव-विज्ञान पर और तर्कना के पूरे सिद्धान्त पर आ जाते हैं, जिसकी परिणति अवधारणा और तर्कना सम्बन्धी दो अध्यायो में होती है। इस सिद्धान्त में महत्वपूर्ण मत यह है—'सार-तत्व का एकमात्र अर्थ उद्देश्यवादी है ।'[५] यह दर्शन पशु-बुद्धि या चातुर्य के तर्क-बुद्धि में विकास का सिद्धान्त है । इसमे कहा गया है कि मन का व्यावहारिक रूप मे कार्य करना सामान्यीकरण की आदतो पर और कार्य के लिये प्रासगिक सार-तत्वो का चयन करने की योग्यता पर निर्भर है । यहाँ मन उपर्युक्त (१) के अर्थ मे एक प्राकृतिक तथ्य या 'यथार्थ' है और उसकी क्रिया (४) द्वारा नियन्त्रित एक प्रकार का जीवन या कार्य है किन्तु (४) अर्थात् सकल्प भी इसी जीव-वैज्ञानिक तथ्यो के लचीलेपन के तथ्यो के क्षेत्र में हैं। जेम्स की साइकॉलॉजी के इस अश में स्पष्टत: पशु-बुद्धि और मानवी तर्क-बुद्धि के सम्बन्ध में एक विकासवादी दृष्टि है ।

जेम्स ने 'साइकॉलॉजी' के अन्तिम अध्याय मे मन के इन दो विल्कुल भिन्न सिद्धान्तो को सम्बद्ध करने का प्रयास किया है—चेतना का घटना-क्रिया-विज्ञान (जिसकी परिणति मानसिक रूपो की प्रागनुभव प्रकृति के समर्थन में होती है) और बुद्धि का जीव-विज्ञान (जिसकी परिणति प्राकृतिक स्वत स्फूर्ति में उनके विश्वास में होती है) ।

कई वर्षों तक जेम्स दोनो दर्शनो पर बहुत-कुछ स्वतन्त्र रूप मे कार्य करते रहे, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कभी-कभी उन्हें अनुभव होता था कि वे वडे गहरे फँस गये है। जिन दो दृष्टिकोणो से जेम्स वँधे हुए थे, उनके आधारभूत

---

१. वही, खण्ड १, पृष्ट १८३ ।

२. वही, खण्ड १, पृष्ठ ५, ११ ।

३. वही, खण्ड १, पृष्ठ १०५ ।

४ वही, खण्ड १, पृष्ठ १२६ ।

५. वही, खण्ड २, पृष्ठ ३३५ ।

अन्तर के सम्बन्ध में जेम्स की चेतना का एक दयनीय उदाहरण उनके द्वारा भावनात्मक आधार पर 'स्वचालित यन्त्र सिद्धान्त' की अलोचना मे मिलता हैं। वे मन की एक पूर्णतः यान्त्रिक व्याख्या पर गम्भीरता से विचार कर रहे थे, जब (अपने मधुमास के बीच) उन्हे यह ख्याल आया कि कोई स्वचालित प्रेमिका, यान्त्रिक दृष्टि से सर्वथा निर्दोष होने पर भी पारस्परिक सवेदना, बोध या आन्तरिकता के अभाव मे पूर्ण या सन्तोषजनक प्रेमिका नही होगी। उस समय और उसके बाद बार-बार उन्होने कहा कि उद्देश्य या मन का एक पूर्णत प्रकृतिवादी दर्शन कभी भी 'मनुष्यो' के लिए सतोषजनक नही होगा, वैज्ञानिको को वह चाहे जितना विश्वसनीय लगे।

अन्त में, अपने दर्शन में निहित टकराव के सम्बन्ध मे उनकी चिन्ता ने यह निर्णय करने की असमर्थता का रूप लिया कि विचारो का सयोजन हो सकता है या नही। उनके सामने द्विविधा थी कि वे या तो मानसिक अणुओ में विश्वास करें, या सर्वमनोवाद में, जबकि दोनो को ही वे अपने अनुकूल नही पाते थे। यहाँ बर्गसन ने यह विश्वास दिला कर उनकी रक्षा की कि उनका भाववादी 'एकरूपता का तर्क' एक त्याज्य 'बुद्धिवाद' था।

किन्तु जेम्स यहाँ रुके नही। यह मान कर कि चेतना स्वयं कोई अस्तित्व न होकर एक अमूर्त्तन है, उन्होने मन के एक सम्बन्धात्मक सिद्धान्त का विकास किया, जिसे उन्होने 'शुद्ध अनुभव' का दर्शन कहा, यद्यपि परवर्त्ती यथार्थवादियो ने उसकी व्याख्या 'वस्तुपरक सापेक्षवाद' के रूप में की। किन्तु इस नये यथार्थवाद पर नज़र डालने से पहले, जिसकी ओर जीवन के अन्तिम वर्षो मे जेम्स का झुकाव था, हमे इस विकास के विवरण को बीच में ही छोड़ कर, देखना होगा कि जेम्स के एक छात्र ने उनके मनोविज्ञान के विरोधी विचारो को किस प्रकार एक व्यवस्थित द्वैतवाद में विकसित किया।

सान्तायना का व्यवस्थित द्वैतवाद

कुछ अमरीकी यथार्थवादी अब भी सान्तायना के शब्दो का प्रयोग आप्त-वाक्यो की तरह करते हैं, इसलिए नही कि वे एक यथार्थवादी दार्शनिक थे, वरन् इसलिए कि उनकी काव्यात्मक आलकारिकता यथार्थवादी उपदेशो के लिए अति उत्तम सामग्री है। उन्होने यथार्थवादी आन्दोलन को मार्गदर्शन की व्यापकता और उत्साह, दोनो ही प्रदान किये। उन्होने अमरीकी यथार्थवाद के लिए एक

लिखने के बाद उन्होने प्रकृति को अधिक गम्भीरता से और मनुष्य के मामलो को कम गम्भीरता से लेना सीखा। उन्होने कहा कि इन्द्रिय-वेदन से प्रकृति का उदय बताने में उनका तात्पर्य प्रकृति सम्बन्धी विचार से था, क्योकि प्रकृति कभी किसी वस्तु से उदित नही होती।

"स्केप्टिकिज्म ऐण्ड ऐनिमल फेथ' (१६२३) में जीव-वैज्ञानिक प्रकृतिवाद और अन्तर्दर्शनात्मक अनुभववाद का यह सारा मिश्रण, जो जेम्स की और प्रारम्भिक काल मे सान्तायना की विशेषता है, लुप्त हो जाता है। यहाँ प्रस्तुत और विश्वस्त के बीच एक बहुत ही साफ अलगाव है। चेतना के अस्तित्व के सम्बन्ध में जेम्स के परवर्ती सन्देहो की स्वय अपनी व्याख्या करते हुए वे साफ कहते है कि 'किसी भी प्रस्तुत वस्तु का अस्तित्व नही है।' मानव मन ('साइके', सान्तायना की शब्दावली में एक नया और महत्वपूर्ण शब्द) के दो मूलतः भिन्न कार्य होते हैं—प्रस्तुत की अन्तःप्रज्ञा और अप्रस्तुत में पशु आस्था। मात्र परिचय या तात्कालिकता, किसी भी अस्तित्व का ज्ञान नही है। फिर भी, इसकी अपनी उपयुक्त वस्तुएँ होती है, अर्थात्, सारतत्व। यहाँ समानता द्वारा साहचर्य का सारा सिद्धान्त, जिस पर उन्होने और जेम्स ने सार-तत्व के प्रत्यक्ष-ज्ञान सम्बन्धी अपनी उद्देश्यवादी दृष्टि को आधारित किया था, समाप्त हो जाता है। उसके स्थान पर यह घटना-क्रियात्मक प्रतिपादन है कि किसी आधार-सामग्री की उपस्थिति मात्र में, बिना किसी विश्वास के, कोई पहचानी जा सकने वाली वस्तु निहित होती है। शुद्ध अन्तःप्रज्ञा के ऐसे कार्य मे एक आध्यात्मिक अनुशासन आवश्यक है, क्योकि सामान्यत मन अपनी पशु-आस्था या मूल-प्रवृत्ति को व्यक्त किये बिना नही रहता। सार-तत्वों मे उद्देश्यवादी रुचि की सामान्य या 'पशु' आदतो का मुकाबला करने के लिये, सान्तायना अब तटस्थता या मनन की आदतो के विकास पर ज़ोर देते हैं। अब उन्हे ऐसा प्रतीत होता था कि केवल अस्तित्व के प्रसंग में सार-तत्वो के बारे मे सोचने का अर्थ है अनुदारता से विज्ञान के पक्ष मे कल्पना का, पशु आस्था के प्रयोग के पक्ष में सार-तत्व के उपभोग का बलिदान करना।

दूसरी ओर, 'स्केप्टिकिज्म ऐण्ड ऐनिमल फेथ' मे वे बताते है कि उन्होने सर्वप्रथम 'पद्धति सम्बन्धी सकोच के कारण' अन्त.प्रज्ञा की चर्चा करना आवश्यक समझा। उनका मौलिक सशयवाद मुख्यतः रीतिविधान सम्बन्धी है, प्राकृतिक ज्ञान के सिद्धान्त में चेतना से ही छुटकारा पाने का एक ढग है। तदनुसार, हम देखते है कि उनकी विचार-व्यवस्था का 'पशु आस्था' वाला भाग बडा ही कट्टर 'आचरणवाद' (बिहेवियरिज्म) है, जैसा कि ऐसे सिद्धान्तो को अमरीका में कहा जाने लगा है। संशयवाद को रीतिविधान सम्बन्धी श्रद्धाजलि देने के बाद, ह्यूम की भाँति, वे जिस आस्था के कार्य की ओर मुडते हैं, वह

केवल जेम्स के समान, पशु बुद्धि का कार्य होने के अर्थ में ही 'पशु' नही है। सान्तायना के लिए अब यह मुद्राओ, सचारो, सामाजिक यान्त्रिकियो की एक व्यक्त, वस्तुपरक व्यवस्था है। अपने ज्ञान और दूसरो के ज्ञान, दोनो के ही लिये, कार्यों या भौतिक गतियो के माध्यम से ही दृष्टिकोण सज्ञानात्मक वनते हैं। इस कारण कि सारतत्वो की चेतना या शुद्ध अन्त प्रज्ञा मे आत्म-चेतना निहित नही है। जिस प्रकार अन्त'प्रज्ञात्मक ज्ञान का सिद्धान्त पूरी तरह सार-तत्वो के आन्तरिक सम्बन्धो पर आधारित है, उसी तरह अस्तित्व सम्बन्धी ज्ञान पूरी तरह प्राकृतिक वस्तुओ के बीच वाह्य सम्वन्धो पर आधारित है। पशु आस्था और अस्तित्व सम्वन्धी ज्ञान के सान्तायना के आचरणवादी सिद्धान्त ने ही अमरीकी यथार्थवाद और नये प्रकृतिवाद के साहित्य में विशेष योग दिया है।

किन्तु सान्तायना स्वय अन्त तक अपने व्यवस्थित द्वैतवाद को विकसित करते रहे और सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनो मे ही तटस्थ जोवन और व्यावहारिक ज्ञान में लिप्ति के वैपरीत्य को तीव्रतर करते रहे। वे अधिकाधिक एक सन्यासी का सा जोवन विताने लगे और अधिकाधिक 'शक्तियो और प्रभुत्वो' से अपनी मुक्ति से आनन्दित हुए। अपनी अन्तिम पुस्तको मे से एक, 'दी आइडिया ऑफ क्राइस्ट इन दी गॉस्पेल्स' (धर्म-सिद्धान्तो मे ईसा सम्वन्धी विचार) में उन्होने 'रूपान्तरित' उद्धारक को चित्रित करने की अपनी वडी पुरानी इच्छा को सन्तुष्ट किया। इसमें उन्होने ईसा के जीवन के उस अग को लिया है जो 'पुनर्जीवन' और 'स्वर्गारोहण' के वीच मे आता है, जव सान्तायना के शब्दो मे, 'उनका एक पैर धरती पर था और दूसरा स्वर्ग में।' ऐसा जोयन सान्तायना को न केवल दिव्य, वरन् मानवी दृष्टि से भी अति उत्तम प्रतीत होता है।

"क्या अब ऐसा प्रतीत नही होने लगा कि नग्न आत्मा का एकाकीपन शायद एकाकी न हो ? जिस अनुपात में हम अपने पशु अधिकारो और दायित्वो का परित्याग करते है, उस सीमा तक क्या हम अधिक ताजी और स्वास्थ्यवर्द्धक वायु मे साँस नही लेने लगते ? क्या ऐसा नही हो सकता कि हर वस्तु का परित्याग हर वस्तु को परिशुद्ध कर दे और हर वस्तु को उसके वास्तविक यथार्थ रूप मे हमें वापस कर दे और साथ ही हमारे सकल्पो को भी परिशुद्ध करते हुए, हमे उदार बनने की क्षमता प्रदान करे।"[१]

अमरीका मे भी इस प्रकार के सन्तो जैसे सम्बोधन की व्यापक प्रतिक्रिया होती है, किन्तु ऐसे आकर्षणो के समक्ष समर्पण करते समय हम अमरीकी यथार्थवाद की भावना से बहुत दूर होते है।

---

१ स्पिनोजा के सम्मान मे दिये गये एक भाषण 'अल्टिमेट रेलिजन' से।

मनों का व्यवहारवादी मिलन

१६०४ के अपने निवन्ध 'क्या चेतना का अस्तित्व है' में, और 'मौलिक अनुभाववाद' पर अपने वाद के निबन्धो मे विलियम जेम्स ने उस द्वैतवादी दर्शन का साफ शब्दो में खण्डन किया, जिसे एक 'नव-कॉण्टवादी' के रूप में उन्होंने मान्यता दी थी। और साथ ही, व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ के अन्तर का, जिसे वे द्वैतवाद का अन्तिम दुर्ग समझते थे, ध्वंस करने में लग गये। अपने सम्बन्धो के अनुसार, वही 'वस्तुएँ' या 'पद' व्यक्तिपरक या वस्तुपरक रूप में कार्य कर सकते हैं। चेतना के वारे मे सम्बन्धात्मक दृष्टि अपनाने के बाद, जेम्स अब सरल-विश्वासपूर्ण यथार्थवादी नही थे। 'अस्तित्व के द्रव्यमय आकाश' और 'ऐन्द्रिक अनुभव की अव्यवस्था' के बीच सामान्य-बुद्धि का अन्तर करने के बजाय, उन्होंने एक नये पदार्थ का आविष्कार किया, जो अपने में दोनो को ही समाविष्ट करे और जो परिभाषा से न वस्तुपरक हो, न व्यक्तिपरक। इस 'तटस्थ' सत्ता को उन्होने 'शुद्ध' अनुभव कहा। अनुभववादी दृष्टि से उन्होने इसे द्रव्य के स्थान पर रखा।

चेतना के संयोजन के किसी बोधगम्य सिद्धान्त की आवश्यकता स्वीकार करने के वाद से, जेम्स इस दिशा मे परिकल्पनाएँ करते रहे थे। 'शुद्ध अनुभव' का यह नया पदार्थ उनकी समस्या को हल करता प्रतीत हुआ, क्योकि मानसिक स्थितियो को अन्तरो मे सयोजित करने के रूपक से उत्पन्न कठिनाइयो को वे अब सम्बन्धात्मक व्यवस्थाओ में रूपान्तरित कर सकते थे। जैसा उन्होने भाववाद के विरुद्ध अपने प्रारम्भिक निवन्धो में कहा था, सम्बन्धो के वस्तुपरक यथार्थ रहते हुए भी, उनका व्यक्तिपरक अनुभव किया जा सकता था। अब वे अपने विचार की धारा के सिद्धान्त की पुनर्व्याख्या, सन्दर्भों या सम्बन्धात्मक व्यवस्थाओ की विविधता के सिद्धान्त के सन्दर्भ मे कर सकते थे। इन सम्बन्धात्मक व्यवस्थाओ में 'शुद्ध' या तात्कालिक अन्तर्वस्तु, भिन्न सज्ञानात्मक उद्देश्यो के लिये व्यवस्थित की जा सकती थी। किन्तु 'शुद्ध' या तात्कालिक अनुभव का रूपक उनके यथार्थवाद के लिए दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ। इसके फलस्वरूप उन्होने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस तटस्थ क्षेत्र की व्याख्या भावनात्मक अनुभव के सन्दर्भ में की। भावनाएँ, विचार नही होती, और इस कारण परम्परागत अर्थ में मानसिक नही होती। जेम्स ने उन्हें 'भावात्मक तथ्य' कहा, और यह तर्क दिया कि इन तथ्यो का अधिकतम तत्वमीमासात्मक महत्व है, क्योकि ये तर्कनात्मक ज्ञान और विज्ञान की अवधारणाओ की अपेक्षा 'यथार्थ के अधिक निकट' होते हैं। भावनाओ

के सारवान् होने के सिद्धान्त के पीछे काफी बड़ी पृष्ठभूमि थी। इन ... को समझते हुए, जेम्स ने अपने मौलिक अनुभववाद के स्वच्छन्दतावादी लक्ष्यार्थों को समझा। कुछ तत्वमीमासको ने, जिनमे ह्वाइटहेड प्रमुख थे, इस विचार का वैज्ञानिक उपयोग करने की चेष्टा की। किन्तु अमरीकी यथार्थवादियो के विशाल बहुमत ने, इसके व्यक्तिपरक और स्वच्छन्दतावादी दोषो के कारण इसे अस्वीकार किया। वे 'तटस्थ एकत्ववाद' की भाषा ज्यादा पसन्द करते थे।

इस बीच मे, यह समझकर कि शुद्ध अनुभव का यह सिद्धान्त अनुभववाद के पहले से ही सम्भ्रमित खेमे मे अधिक सम्भ्रम उत्पन्न कर रहा था, जेम्स के कुछ मित्र, विशेषत सी० ए० स्ट्राग और डिकिन्सन मिलर, व्यवहारवादी पद्धति से प्राप्त एक सुझाव लेकर उनकी रक्षा को आये। उन्होने जेम्स से आग्रह किया कि वे मनोवैज्ञानिक के रूप मे तात्कालिकता सम्बन्धी अपनी व्यस्तता को छोडें और 'सामान्य वस्तुओ' के एक व्यवहारवादी सिद्धान्त का विकास करें। उन्होने जेम्स का ध्यान इस तथ्य की ओर खीचा कि एक प्रारम्भिक लेख मे उन्होने स्वय बताया था कि कई मनो मे किस प्रकार सामान्य वस्तुएँ हो सकती हैं। व्यवहारवादी आधारो पर, क्यो न ऐसा माना जाये कि विश्व का सामान्य प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है। यह सामान्य विश्व, भावनाओ या विश्वासो का विश्व उतना नही है, जितना अपने प्रत्यक्ष-ज्ञान की वस्तुओ के स्थान-निर्देश के लिये प्रयुक्त बहुतेरे निरीक्षको का एक सयुक्त सन्दर्भ। और स्थान-निर्देशन की इस प्रक्रिया की व्याख्या वस्तुपरक रीति से, सामाजिक रीति से की जा सकती है। जेम्स ने यह सुझाव सोत्साह स्वीकार किया और अपने मौलिक अनुभववाद में इसे समाविष्ट करने की चेष्टा की। जब आपके मोमबत्ती बुझाने पर मेरी मोमबत्ती भी बुझ जाती है, तो हम ऐसा क्यो न कहें कि हमारी एक सामान्य मोमबत्ती है ? जेम्स ने कहा कि हमारी मोमबत्तियो के इस तरह आचरण करने पर हमारे मन मिलते हैं। जेम्स के दर्शन में चेतना के सयोजन सम्बन्धी उनकी चिन्ताओ का स्थान अब मनो को व्यवहारवादी मिलन की इस व्याख्या ने ले लिया। और विचित्र बात है कि इस सिद्धान्त को उन्होने 'प्राकृतिक यथार्थवाद' कहा। इससे उनके कई मित्रो और अनुयायियो को व्यवहारवादी पद्धति के साथ यथार्थवाद को जोड़ने मे सहायता मिली, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जेम्स स्वयं अपने व्यवहारवाद और अपने 'प्राकृतिक यथार्थवाद' के सम्बन्ध को नहीं देख पाये।

फिर भी, जेम्स और उनके साथी यथार्थवादियो के लिए, सिद्धान्त के इस मोड़ का सामान्य प्रभाव यह हुआ कि उनके दर्शन भौतिक विज्ञानो के अधिक निकट आ गये। जेम्स ने इस ओर सकेत किया कि हमारे प्रत्यक्ष-ज्ञान की वस्तुएँ

मनों का व्यवहारवादी मिलन

१६०४ के अपने निवन्ध 'क्या चेतना का अस्तित्व है' में, अ
अनुभाववाद' पर अपने वाद के निबन्धो में विलियम जेम्स ने उस
का साफ शब्दो में खण्डन किया, जिसे एक 'नव-कॉण्टवादी' ने
मान्यता दी थी। और साथ ही, व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ है
वे द्वैतवाद का अन्तिम दुर्ग समझते थे, ध्वंस करने में लग गये
अनुसार, वही 'वस्तुएँ' या 'पद' व्यक्तिपरक या वस्तुपरक
हैं। चेतना के बारे में सम्बन्धात्मक दृष्टि अपनाने के
विश्वासपूर्ण यथार्थवादी नही थे। 'अस्तित्व के द्रव्यमय
अनुभव की अव्यवस्था' के बीच सामान्य-बुद्धि का अन्त
एक नये पदार्थ का आविष्कार किया, जो अपने मे
और जो परिभाषा से न वस्तुपरक हो, न व्यक्ति
उन्होने 'शुद्ध' अनुभव कहा। अनुभववादी दृष्टि
पर रखा।

चेतना के संयोजन के किसी बोधगम्य
करने के वाद से, जेम्स इस दिशा मे परिव
का यह नया पदार्थ उनकी समस्या को हल
स्थितियो को अन्तरों में संयोजित करने के
सम्बन्धात्मक व्यवस्थाओ में रूपान्तरित
विरुद्ध अपने प्रारम्भिक निवन्धो में का
हुए भी, उनका व्यक्तिपरक अनुभव
की धारा के सिद्धान्त की
विविधता के सिद्धान्त के सन्दर्भ
मे 'शुद्ध' या तात्कालिक
की जा सकती थी। किन्तु
यथार्थवाद के लिए दुर्भाग्यपूर्ण
दृष्टि से इस तटस्थ क्षेत्र
भावनाएँ, विचार नही हो
होती। जेम्स ने उन्हे
का अधिकतम तत्व
विज्ञान की

भाववाद दृढता से जमा हुआ था। (सातवें अध्याय में, 'भाववाद की धाराएँ' के अन्तर्गत देखिए।) हार्वर्ड मे जोसिया रॉयस अब भी उसके उत्साहपूर्ण समर्थक थे। कॉर्नेल में 'सेज स्कूल ऑफ फिलॉसफी' पनप रहा था और बोज़ाक्वे के युवा शिष्यो को सारे देश में शैक्षिक पदो पर भेज रहा था। नवनिर्मित अमरीकी दार्शनिक सघ का नेतृत्व भी भाववादी था। व्यवहारवादियो से और विलियम जेम्स की महान् लोकप्रियता से परेशान होने के बजाय, भाववादियो ने व्यवहारवादी अपालो से उत्पन्न 'व्यक्तिनिष्ठावाद' और सम्भ्रम का पूरा उपयोग किया और परम भाववाद को दर्शन मे वस्तुपरकता के एकमात्र गढ के रूप मे प्रस्तुत किया। युवा यथार्थवादियो के एक समूह ने अपना अवसर देखा—वे भाववादियो से वस्तुनिष्ठा का झण्डा छीनने को तत्पर हुए।

इस समूह के नेता राल्फ बार्टन पेरी थे। विलियम जेम्स जिस अनुकूल ढग से यथार्थवाद की ओर, विशेषत पेरी द्वारा निरूपित यथार्थवाद की ओर बढे थे, उससे उन्हे बडा सन्तोष मिला था। पेरी दर्शन को अन्तर्दर्शनात्मक मनोविज्ञान और ज्ञान-मीमासा के सन्दर्भ से बाहर निकालने को उत्सुक थे, ताकि उसे अधिक वस्तुपरक विज्ञानो से सम्बद्ध कर सकें, विशेषत. प्राकृतिक विज्ञानो और सम्बन्धो के तर्कशास्त्र के साथ। १९१० के आरम्भ में 'जर्नल ऑफ फिलॉसफी' में प्रकाशित 'दी ईगो-सेण्ट्रिक प्रेडिकामेण्ट' (स्व-केन्द्रिक स्थिति) शीर्षक लेख से उन्होने अपना अभियान आरम्भ किया। यह भाववादी पद्धति से स्वतन्त्रता की घोषणा थी, और इस घोषणा के समर्थन मे जो तर्क दिया गया, उसे सक्षेप में इन प्रकार रखा जा सकता है—

"कर्त्ता (व्यक्ति) के रूप मे स्पष्टत मैं कोई वस्तु खोज रहा हूँ। जो कुछ भी मैं पाता हूँ, वह 'अपने आप ही' मेरी अपनी वस्तु है। अत कोई ऐसी चीज़ नही खोजी जा सकती जो मेरे लिये या किसी अन्य व्यक्ति के लिए 'प्रस्तुत' न हो। हर ज्ञात वस्तु किसी को ज्ञात होगी। ज्ञाता को ज्ञात से अलग करना असम्भव है। इस स्पष्ट तथ्य में ज्ञान की सामान्य प्रक्रिया या स्थिति का वर्णन है, किन्तु जब इसका सामान्यीकरण किया जाता है, जैसा भाववादी करते हैं, तो यह महत्वहीन हो जाता है। इसका अर्थ केवल इतना हो जाता है कि जो कुछ ज्ञात है, वह ज्ञात है। भाववादियो के बावजूद, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सभी वस्तुएँ ज्ञात हैं, या कि उनका अस्तित्व केवल व्यक्तियो की वस्तुओ के रूप मे है। अत ज्ञान की स्थिति में, जिसमे स्व-केन्द्रिक स्थिति [illegible] है और अस्तित्व के अन्य ज्ञात प्रकारो के बीच अन्तर करना आवश्यक है। [illegible] ज्ञात सम्बन्धो मे स्वाधीनता का सम्बन्ध भी है। दूसरे शब्दो में, स्व-केन्द्रिक स्थिति के बावजूद स्वाधीन और पराधीन वस्तुओ के [illegible]

जाने लगे) और 'आलोचनात्मक यथार्थवादियो' का प्रतिद्वन्द्वी समूह, दोनो ही सगठित समूहो या 'धाराओ' के रूप में महत्वपूर्ण नही थे । वडी हद तक, 'सुधार वातावरण' दार्शनिक चर्चा और विचार को वन्धन-मुक्त करने मे विलियम जेम्स की सफलता का परिचायक था । जैसा पेरी ने कहा, ये व्यक्ति जहाँ विलियम जेम्स के विचारो का अनुसरण नही करते थे, वहाँ भी वे 'विलियम जेम्स की भावना के अनुसार' काम कर रहे थे । आन्दोलन का सर्व-वस्तुनिष्ठावाद किसी भी तरह उन्नीसवी शताब्दी के 'विज्ञानवाद' का दुर्बल अवशेष नही था । यह एक नया सृजन था, एक रचनात्मक विद्रोह था ।

वस्तुपरक विश्लेषण के पहले वडे कार्य के रूप मे राल्फ बार्टन पेरी ने यह दिखाना चाहा कि सोद्देश्य व्यवहार का अध्ययन और उसकी परिभाषा जीव-विज्ञान की साधारण निरीक्षणात्मक पद्धतियो से की जा सकती है और उद्देश्यो या अधिमान्यताओ को हमेशा 'वैयक्तिक' तथ्य कहने की जेम्स की आदत का अनुसरण करने का कोई कारण नही है । एक लेखमाला में उन्होने सोद्देश्य और निरुद्देश्य कार्यों के बीच पूर्णत आचारणवादी अन्तर किया । यह कर चुकने के बाद, वे 'निरीक्षित हितो' के सन्दर्भ में मूल्यो का एक सामान्य सिद्धान्त निर्मित करने को तैयार थे । कोई मानवी हित, चाहे सामाजिक हो या नही, स्थायी हो या भंगुर, अन्य हितो या मूल्यो से सम्बन्धित किया जा सकता है । हितो से बाधाओ के साथ मूल्य भी उत्पन्न होते हैं । हितो का टकराव, हितो का सगठन, मूल्यो की व्यवस्था आदि सभी वास्तविक अध्ययन के क्षेत्र थे, जिसमें पेरी ने अपना अधिकाश जीवन लगाया । इस प्रकार पेरी का नीतिशास्त्र और मूल्य का सामान्य सिद्धान्त अमरीकी यथार्थवाद की एक ठोस उपलब्धि वन गये । ये प्रभावकारी रूप मे परम्परागत भाववादी नीतिशास्त्र का सामना करने में समर्थ थे, जिसके अनुसार हितो और मूल्यो को प्रतिपक्षी माना जाता था । पेरी द्वारा हितो की पूर्त्ति के रूप में मूल्यो का व्यवस्थित विश्लेषण न केवल भाववाद को एक सीधी चुनौती है, वरन् उपयोगितावाद को एक वस्तुपरक आधार पर पुनर्निर्मित करने का प्रयास भी है ।

विलियम पेपरेल मॉण्टेगू ने यथार्थवाद को कई चीजें दी, और वे कई अवसरो पर भाववाद और व्यवहारवाद ... विरुद्ध यथार्थवादी तत्वमीमासा और ज्ञान के ... प्रमुख ... किन्तु उनकी सर्वाधिक विशिष्ट देन, जिसपर ... अधिक ... का ,चेतन ऊर्जा का भौतिकवादी सिद्धान्त ... आधा ... स्था ... पंन किया कि ... मे ... की स ... ।' वे चेतना ... ।

के ऐसे सिद्धान्त को यथार्थवाद के सामान्य विकास के लिए महत्वपूर्ण मानते थे, क्योकि वे चेतना के अनस्तित्व के विषय पर जेम्स से असहमत थे और अपने अधिकाश नव-यथार्थवादी सहयोगियो से भी, जो चेतना की सम्बन्धात्मक व्याख्या करते थे, उनका मत भिन्न था। वे इसे एक विशिष्ट, भौतिक ऊर्जा के रूप मे पहचानना सम्भव समझते थे। उन्हें चेतन व्यवहार के कार्यात्मक अध्ययन पर, जैसा कि पेरी ने किया था, कोई आपत्ति नही थी, किन्तु उनका विचार था कि कार्यों की शरीर-क्रियात्मक व्याख्याएँ की जा सकती थी। सामान्यत, मॉण्टेगू और रॉय वुड सेलर्स यथार्थवादी आन्दोलन के भौतिकवादी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु उनके भौतिकवाद एक जैसे नही हैं और आमतौर पर अमरीकी यथार्थवादी विचार मे भौतिकवाद का स्थान गौण है। आन्दोलन को अपनी अन्य देनो के माध्यम से मॉण्टेगू और सेलर्स कही अधिक प्रभावशाली थे—मॉण्टेगू एक परिकल्पनात्मक प्रकृतिवादी के रूप मे और सेलर्स एक संघर्षशील मानववादी के रूप मे।

कथित नवयथार्थवादियो की मनोविज्ञान में कोई विशेष रुचि नही थी और वे ज्ञानमीमासा को बिल्कुल छोड देना चाहते थे। इनके विपरीत 'आलोचनात्मक, यथार्थवादियो का समूह था, जो अब भी प्रत्यक्ष-ज्ञान के मनोविज्ञान और वाह्य विश्व के साथ अनुभव के सम्बन्ध की समस्या में व्यस्त था। इनमे से मैं केवल दो की चर्चा करूँगा, यद्यपि यह समूह शायद नवयथार्थवादी समूह से बडा था, क्योकि उनके कार्य में नवीनता कम थी और वे सहयोग की बात कम करते थे।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान के प्रोफेसर चार्ल्स ऑगस्टस स्ट्राग, जो अब अवकाश ग्रहण करके शान के साथ पेरिस और फीसोल मे रह रहे थे, 'व्हाई दी माइण्ड हैज ए बॉडी' (मन का एक शरीर क्यों है) के लेखक के रूप मे प्रसिद्ध हुए थे। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का यह एक बहुत ही गम्भीर और जानकारीपूर्ण नमूना है। किन्तु दार्शनिको ने इसे बहुत गम्भीरता से नही लिया, कुछ लेखक की सूक्ष्म और व्यग्यपूर्ण विनोदप्रियता के कारण और कुछ इस कारण कि यह एक पूर्णत मनोवैज्ञानिक रचना समझी जाती थी। इनसे उद्विग्न हुए बिना स्ट्राग ने अपने सामाजिक और बौद्धिक अकेलेपन मे प्रत्यक्ष-ज्ञान का एक विस्तृत 'प्रक्षेप' सिद्धान्त निरूपित किया। अपने समकालीनो को इस धारणा से ग्रस्त देख कर कि दृश्य-घटनाएं मात्र आधार-सामग्रियां या उपस्थितियां होती हैं, उन्होने घोषित किया कि वे पचास वर्ष तक अनुयायियो की आशा नही करते— जब तक कि उपस्थिति का विचार क्षय नही हो जाता। परम्परागत दृश्य-घटनावाद के विरुद्ध, उन्होने कहा कि जिसे प्रस्तुत कहा जाता है, वह दर्शन कॉण्टवादियो की धारणा से अधिक शाब्दिक अर्थ में 'गॉटेन्ग' (निर्मित-सामग्री)

है और फ्रेंच शब्द 'रीप्रेज़ेण्टेशन' जैसा व्यक्त करता है, उससे अधिक प्रतीकात्मक है। उन्होने कहा कि हम वस्तुओ का अनुभव अपनी ज्ञानेन्द्रियो 'में' नही करते, वरन् केवल उनके 'माध्यम से' करते है। वस्तुएँ दूरी पर अनुभव की जाती हैं और हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ परिप्रेक्ष्य स्थल में उन्हें इस प्रकार निर्दिष्ट करती हैं कि अगर हमारा शरीर उनसे प्रत्यक्ष सम्पर्क (स्पर्श) करना चाहे, तो वे वही पाई जा सकें जहाँ वे सचमुच हैं। दूसरे शब्दो में, उन्होने ऐन्द्रिक अनुभव को मूलतः प्रेरक प्रतिक्रिया के रूप में देखा, जिसके साथ भौतिक वस्तुओ द्वारा हमारे अन्दर उद्दीपित प्रभावो को एक तीन आयामो वाले परिप्रेक्ष्य-पट पर, जो भौतिक यथार्थ नही है, अन्तरित करने की युक्ति (प्रत्यक्ष-ज्ञान परिप्रेक्ष्य) जुडी हुई है। हम सोचते हैं कि हम वस्तुओ को वही देखते हैं जहाँ वे सचमुच हैं, किन्तु हमारा देखना प्रतीकात्मक है।

जिस प्रकार स्ट्राग का ध्यान दिक्-प्रत्यक्षज्ञान पर केन्द्रित था, उसी प्रकार जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के आर्थर ओ० लवजॉय का ध्यान कालिक प्रत्यक्षज्ञान पर केन्द्रित था। अनुपस्थित को किस प्रकार उपस्थित बनाया जाता है, इस सम्बन्ध में सार्त्र के कुछ विश्लेषणो का पूर्व-रूप उनमें मिलता है। उनके अनुसार अतीत और भविष्य को प्रस्तुत करना अनुभव का मूल कार्य है। अत. अनुभव का क्रम और घटनाओ का क्रम, ये दो बिल्कुल भिन्नकालिक गठन हैं। इस अन्तर्दृष्टि के फलस्वरूप लवजॉय ऐसे समय में एक द्वैतवादी दर्शन के समर्थक बन गये जब अमरीकी दार्शनिको की बहुसख्या द्वैतवाद के विरुद्ध विद्रोह कर रही थी। जिसे वे 'तेरह व्यवहारवाद' कहते थे, प्रथम उन्होने उसकी आलोचना की और यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि व्यवहारवादी सिद्धान्त और सम्भ्रम, ज्ञान की वास्तविक समस्या को टालने का प्रयास थे। अन्त मे उन्होने अपनी मुख्य विवादपूर्ण रचना 'दी रिवोल्ट अगेन्स्ट डुअलिजम' (द्वैतवाद के विरुद्ध विद्रोह) प्रकाशित की, जिसमें उन्होने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया कि द्वैतवाद से बचने के विभिन्न प्रकृतिवादी, प्रयोगवादी और यथार्थवादी प्रयास असफल हुए थे।

चाहे वे असफल थे या नही, किन्तु यह एक तथ्य है कि पिछले दिनों अधिकाश अमरीकी दार्शनिको ने अपना ध्यान ज्ञान की समस्या के उस रूप से हटा लिया है जिसका भाववादियो ने उपयोग और निरूपण किया था और ऐसे कार्यों की ओर मुडे हैं जो उन्हें अधिक रचनात्मक प्रतीत हुए। उन्हे विश्वास हो गया कि प्रत्यक्ष-ज्ञान, बोध-सामग्री, और जिसे स्ट्रांग ने 'चेतना की यान्त्रिकी' कहा था, उसकी वास्तविक समस्याएँ शरीर-क्रियात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए छोड़ी जा सकती हैं। दर्शन के समक्ष अन्य, अधिक आकर्षक और अधिक

सामान्य समस्याएँ थी। यह अमरीकी यथार्थवाद का विशिष्ट दृष्टिकोण है, जो उसे इगलिस्तानी यथार्थवाद से अलग करता है। डुई ने एक बार स्वीकार किया था कि 'हमने समस्या को हल नही किया, हम उसे लाँघ गये।'

अमरीकी यथार्थवाद के अन्य स्रोत

भाववादी समूहो के विरुद्ध छह यथार्थवादियो ने १९१० में जो युद्ध घोषित किया था, उसमें यथार्थवाद की पूर्ण विजय हुई। यथार्थवाद पनपा, अधिकाधिक वैविध्यपूर्ण बना, अन्तर्वस्तु मे अधिक समृद्ध हुआ, समर्थको में सबल हुआ और शैक्षिक जगत् में अधिक प्रभावी हुआ। भाववाद पीछे हटा, उसके समर्थक दो हिस्सो में बँट गये। व्यक्तिनिष्ठ या 'मानसिकतावादी' भाववादी, जो अब भी बिशप बर्कले के सिद्धान्तो मे विश्वास करते थे, सख्या मे बहुत कम रह गये। वे न केवल यथार्थवादियो की वरन् तथाकथित 'परिकल्पनात्मक दार्शनिको,' वस्तुनिष्ठ या 'कॉर्नेल' भाववादियों के सशक्त समूह की आलोचनाओ के भी शिकार हुए। ये परिकल्पनात्मक भाववादी उलझन मे डालने वाली हद तक यथार्थवादी वस्तुनिष्ठा का स्वागत करते थे। वे भी विश्वास करते थे कि मन एक वस्तुपरक गठन है। वे भी प्रत्यक्ष-ज्ञान के मनोविज्ञान से ऊब गये थे। वे अपने मत को तार्किक आधारो पर रखने को तैयार थे। वे स्वीकार करते थे कि निस्सन्देह, वस्तुएँ उनके प्रत्यक्ष-ज्ञान से स्वतन्त्र होती हैं, किन्तु जिन कारणात्मक सम्बन्धो के सन्दर्भ मे हम वस्तुओ को 'अवधारित' करते हैं, क्या वे तार्किक सम्बन्धो से स्वतन्त्र हैं? बहुतेरे यथार्थवादियो को यह मत भाववाद का परित्याग प्रतीत होता था। जैसा जे० बी० प्रैट ने कहा, 'भाववादी ऐसे तार्किक यथार्थवादी निकले' जिनमे बहुतेरे यथार्थवादी सहमत होने को तैयार थे। यद्यपि इस प्रश्न ने यथार्थवादियो को भी विभाजित कर दिया, किन्तु उनमें इन मतभेद को सहने की क्षमता भाववादियो से अधिक थी। इस बीच में व्यवहारवादी आलोचना ने 'परम' के भाववादी सिद्धान्त को कमज़ोर कर दिया था और 'परम' के ह्रास के साथ इस भाववाद की लोकप्रियता भी बहुत-कुछ समाप्त हो गयी, क्योकि इसका 'धार्मिक पक्ष' अब नही रहा। किन्तु भाववाद पर यथार्थवादियो की यह सामरिक विजय उन्हे कोई ठोस कार्यक्रम नही दे सकी, जिन पर वे एक हो सकते। उन्होने तो सोचा था कि युद्ध वर्षो तक चलेगा। अब क्या करें!

जिसे 'बाह्य' विश्व समझा जाता था, उसके एक युद्ध ने १९१८ में

अमरीका को भी समेट लिया। युद्ध ने इस शास्त्रीय सघर्ष को पीछे डाल दिया और अमरीकी दार्शनिको के लिये एक व्यापक सास्कृतिक आधार की उपलब्धि को आवश्यक बना दिया। १९३० के बाद अमरीका में जो यथार्थवाद पनपा, वह एक हद तक १९१० के यथार्थवाद का प्रसार तो था, किन्तु अधिक प्रत्यक्ष रूप में वह सास्कृतिक सकट का फल था, अमरीका द्वारा अपने बौद्धिक और नैतिक साधनो की खोज से उत्पन्न हुआ था। इस सकट ने ऐसी विचारधाराओ में मेल पैदा किया, जिनमें मेल होना असम्भव समझा जाता था और इसने नयी सैद्धान्तिक समस्याओ में सच्ची दार्शनिक रुचि उत्पन्न की, जिनके लिए पुरानी धाराएँ बहुत-कुछ अप्रासगिक थी। ये समस्याएँ विश्व-युद्ध और मन्दी से उत्पन्न तात्कालिक राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ नही थी। एक राष्ट्रीय विचार-दर्शन की उपलब्धि में अमरीकियो को जो कुछ थोडी सी सफलता मिली, उसमें दार्शनिक अभिस्थापन कम से कम था। दोनो विश्व-युद्धो के बीच अमरीकी दार्शनिक जिन समस्याओ की ओर मुडे, वे शायद पहले से भी अधिक परिकल्पनात्मक और सैद्धान्तिक थी—तर्कशास्त्र और भाषा, तत्व-मीमासा और सार-तत्व-विज्ञान, मानववाद और प्रकृतिवाद की समस्याएँ। दार्शनिक विचार की इस उथल-पुथल को 'यथार्थवाद' कहना शायद इस शब्द का अनौचित्यपूर्ण रूप मे ढीला-ढाला प्रयोग हो। किन्तु इसे किसी और 'वाद' की सज्ञा देना और भी कम उपयुक्त होगा। जिस विचार का उदय हुआ, उसका कोई प्राविधिक नाम नही है और उसमे औपचारिक एकता बहुत कम है, किन्तु वर्त्तमान थोडी सी ऐतिहासिक दूरी से भी, यह एक सचमुच अमरीकी चीज़ प्रतीत होती है। यह कोई राष्ट्रीय दर्शन नही है। इसमे राष्ट्रीय आत्म-चेतना नही थी। किन्तु अमरीकी विचारको के बीच यह स्थिति का जायज़ा लेने की एक प्रक्रिया थी। अमरीकी दार्शनिक पहली बार सचमुच इकट्ठे हुए। और यद्यपि उन्होने सहयोगी कार्य बहुत कम किया, किन्तु उन सभी ने, जो कुछ भी सामग्री उनके पास थी उसे लेकर, अमरीका या विश्व के लिए नही, वरन् दर्शन के लिए नये और ज्यादा अच्छे आधार प्रस्तुत करने की चेष्टा की। दार्शनिक अन्वेषण अमरीकी सस्कृति मे, अपने-आप में एक गम्भीर, व्यावसायिक, प्राविधिक उपलब्धि बन गया और अमरीकी दार्शनिको ने इस प्रकार की आत्म-निर्भरता प्राप्त कर ली, जिसकी एमर्सन ने कामना की थी और जिसने उन्हे इस योग्य बनाया कि वे अपने लिये कुछ महत्वपूर्ण आधार और कुछ ऐसे ढांचे भी बना लें, जो सम्भवतः बाहर भी जा सकें।

मेरे लिए और शायद मेरे समकालीन किसी भी व्यक्ति के लिए उस अमरीकी यथार्थवाद का सामान्य चित्रण असम्भव है, जो १९३० के बाद अपने चरम-बिन्दु पर पहुँचा और जो अब किसी अन्य वस्तु में बदलता प्रतीत हो रहा है, मुझे नहीं

मालूम क्या। सम्भव है इन वर्षों मे बड़े परिश्रम से तैयार किये गये इन आधारो का भविष्य मे बहुत कम उपयोग हो। किन्तु विचार की भावी दिशा से यह तथ्य नही बदलेगा कि उन वर्षों मे आधार डाले जा रहे थे। पिछले अध्याय मे जिनकी चर्चा की गयी है, उनके अतिरिक्त अमरीकी यथार्थवाद के अन्य सस्थापको मे से मै केवल चार की चर्चा करूँगा—चार्ल्स एस० पीयर्स (जो मृत्यु के बाद भी, इन वर्षों में दार्शनिक दृष्टि से बड़े जीवन्त बने रहे), एफ० जे० ई० वुडब्रिज, जॉन डुई और जॉर्ज एच० मीड। प्रथम दो ने तर्कशास्त्र और प्राकृतिक नियम के एक यथार्थवादी दर्शन की नीव डाली। अन्तिम दो ने अमरीकियो को एक यथार्थवादी सामाजिक दर्शन प्रदान किया, जिसमे सामाजिक परिवर्त्तन का सिद्धान्त और बुद्धि के सगठन और सम्प्रेषण का सिद्धान्त, दोनो ही थे। प्रथम दो प्रकृतिवादी पक्ष के प्रतिनिधि है, अन्तिम दो मानववादी पक्ष के।

प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र और व्यवहारवादी पद्धति में अपने आधार-निर्मायक कार्य के अतिरिक्त (आठवे अध्याय में 'व्यवहारवादी बुद्धि' के अन्तर्गत देखिए), पीयर्स निश्चय ही पहले अमरीकी यथार्थवादी थे। १८७१ में ही उन्होने जागरूक ढग से ब्रिटिश अनुभववाद के नामवाद का और भाववाद का खण्डन किया था और पदार्थों सम्बन्धी कॉण्ट के कार्य की यथार्थवादी व्याख्या प्रस्तुत की थी। उस समय लगता था कि वे डन्स स्कॉटस के शिष्य है, किन्तु शीघ्र ही प्रतीत होने लगा कि वे किसी के भी शिष्य नही है। अपने कार्य के प्रारम्भ मे ही उन्होने समझ लिया था कि नामवाद और यथार्थवाद के बीच झगड़ा केवल तार्किक ही नही है, नैतिक और सामाजिक भी है। उन्होने सामान्यता का एक सामान्यीकृत सिद्धान्त निर्मित करने की चेष्टा की। प्रत्यक्ष-ज्ञान और व्यक्ति-वस्तु सम्बन्ध से ध्यान हटा कर, सम्प्रेषण, भाषा और तर्कशास्त्र के सिद्धान्त की ओर ले जाने में, पीयर्स द्वारा ज्ञान के त्रिसूत्रीय गठन (जिसके लिए व्याख्या की जाये, जिसकी व्याख्या हो और जो व्याख्या करे) पर किये गये आग्रह का महत्वपूर्ण योग था। सार्थिकताओ के सम्बन्ध मे उनका यथार्थवादी सिद्धान्त यह था कि किसी स्थापना के 'सामान्य' अर्थ को, 'प्रयोगशाला' की स्थितियो मे किये गये विशिष्ट प्रयोगो की एक श्रेणी मे बदला जा सकता है और इस कारण, विचार का सज्ञानात्मक मूल्य वही होगा जो एक प्रयोगात्मक स्थापना के रूप मे उनका मूल्य होगा। इनका मतलब था कि किसी विचार के अर्थ और सत्य दोनो का ही निर्धारण सक्षम अन्वेषको के एक समुदाय को करना होगा—अर्थात् ऐसे लोगो का, जो उसके लिए प्रयोगात्मक कसौटियाँ निर्धारित कर सके। अर्थ का मापन प्रयोगो की एक श्रेणी के द्वारा होगा। सत्य का मापन वैज्ञानिको के समुदाय मे, या उस विचार के प्रयोगात्मक निरीक्षको के बीच सहमति के द्वारा होगा। इस प्रकार

पीयर्स ने अमरीकी यथार्थवाद के दो विषयो की नीव डाली—(१) उन्होने सार्विकताओ के सिद्धान्त को प्राकृतिक विज्ञान के एक अग के रूप में देखा और (२) वे अपनी पदार्थों की व्यवस्था को एक प्रयोगात्मक तत्व-मीमासा मानते थे, अर्थात् वैज्ञानिक कार्यपद्धति का एक औपचारिक विश्लेषण और एक सार-तत्व-विज्ञान, दोनो ही।

फ्रेडरिक जे० ई० वुडब्रिज ने भी यथार्थवाद के इन्ही दो पक्षो पर जोर दिया, यद्यपि वे यथार्थवाद तक एक विल्कुल भिन्न मार्ग से पहुँचे थे। एक नव-कॉण्टवादी के रूप मे प्रशिक्षित होने पर भी, वे अधिकाधिक अरस्तूवादी बन गये। उन्होने आधुनिक शब्दावली में और आधुनिक विज्ञान के लिए, एक 'प्रथम दर्शन' या अस्तित्व के सर्वाधिक सामान्य लक्षणो का सिद्धान्त निरूपित करने का प्रयास किया। ऐसे सिद्धान्त के लिए सर्वाधिक सामान्य ढाँचा उन्होने 'तर्कशास्त्र के क्षेत्र' या 'वार्त्ता के विश्व' को पाया। तर्कशास्त्र और सार-तत्व-विज्ञान की एकता का सशक्त समर्थन करने के कारण, वे यथार्थवादियो के एक ऐसे समूह के नेता वन गये, जो मूलत· तार्किकतावादी न होने पर भी यह मानते थे कि यथार्थवादी दर्शन का आधार ज्ञान के मनोविज्ञान की अपेक्षा तार्किक गठन का सिद्धान्त होना चाहिये।

विषय-वस्तु और सार का अन्तर वुडब्रिज के यथार्थवाद का मूल तत्व है—अरस्तू के शब्दो मे 'टु हाइपोकीमेनॉन' और 'औसिया' का अन्तर। वुडब्रिज ने 'टु हाइपोकीमेनॉन' की व्याख्या प्रस्तुत के रूप में नही की और निश्चय ही प्रस्तुत के 'अधिष्ठान' के रूप में भी नही, वरन् बोली और अन्वेषण की सभी सम्भव वस्तुओ की एक पदसंज्ञा के रूप में की। वार्त्ता का यह विश्व सर्व-व्यापी है और इस कारण इसका गठन सर्वाधिक सामान्य है। इसी के अन्दर अस्तित्व के सारे अन्तर और प्रकार उठते हैं। इस विश्व तक बोली के द्वारा पहुँचा जा सकता है, किन्तु इसमें अन्य पक्ष या ढाँचे भी सम्मिलित हैं, जिन्हे अलग-अलग 'विश्वो' के रूप में पहचानना मनुष्य सीख लेता है, जैसे द्रव्य या पदार्थ का विश्व, प्राकृतिक वातावरण का दृश्य-जगत्, मानवी आशाओ, आशंकाओ और सुख-प्राप्ति के प्रयासो का जगत्, जो मूल्यो का जगत् है। इस प्रकार मानव अस्तित्व के चार आयामो में से तीन वस्तुपरक, यथार्थ गठन हैं।

इन विश्वो में सर्वाधिक व्यापक 'वार्त्ता के विश्व' को वुडब्रिज ने 'बीजातीत मन' कहा।[१] इसका कारण कुछ तो यह था कि उन्होने सान्तायना द्वारा इस

---

१. विशेषत देखिए, 'नेचर एण्ड माइण्ड' (न्यूयॉर्क, १९३७), पृष्ठ १६५, १७१-१७२।

शब्द के प्रयोग को लाभदायक पाया और कुछ यह कि वे यथार्थवादी उद्देश्यो के लिए भाववाद का उपयोग करना चाहते थे। यान्त्रिक जगत्, द्रव्य-जगत् मे, वे प्राकृतिक उद्देश्यवाद और मनुष्य के 'विचार-यन्त्र' की प्रक्रियाएँ, दोनो को स्वीकार करते थे। तीसरी व्यवस्था, दृश्य-जगत्, प्रकाशीय परिप्रेक्ष्य का विश्व है। वुडब्रिज का विश्वास था कि आकाश ज्यामितीय होने की अपेक्षा प्रकाशीय है। या, ज्यादा सही रूप मे कहे तो उनका विश्वास था कि दृष्टि का जगत्, जिसमें समानान्तर रेखाएँ क्षितिज की ओर बढते हुए मिलने लगती हैं, गति के जगत् के समान ही वस्तुपरक है, जिसमे समानान्तर रेखाएँ कभी नही मिलती और उसका सवर्गीय है। गति-जगत् के समान ही, दृश्य-जगत् मे स्थान-निर्देश करने मे परिप्रेक्ष्यो की एक अपरिमित सख्या सम्मिलित होती है, जिनमे से किसी का कोई विशेष स्थान नही होता। कोई परम दृष्टिकोण नही होता, यद्यपि परिप्रेक्ष्यो का गठन अपने आप में परम होता है। इन तीन वस्तुपरक जगतो के विरुद्ध वुडब्रिज ने मानवी-मूल्यो के जगत् को रखा, जिसमे मनुष्य सृजनकर्त्ता है। किन्तु मनुष्य सृजनशील वही तक होता है, जहाँ तक वह अपने मूल्यो को अपने अस्तित्व के अन्य क्षेत्रो से समजित करना सीख लेता है।

पीयर्स और वुडब्रिज के विचारो का मिलन मॉरिस आर० कोहेन के व्यक्तित्व में हुआ। कोहेन स्वय एक योग्य तार्किक और बडे ही प्रभावशाली अध्यापक थे। प्रकृति के दर्शन और मानव-जीवन के दर्शन, दोनो ही रूपो मे वे इन दो व्यवस्थाओ की सश्लिष्टि मे सफल हुए। उनका यथार्थवाद, अमरीकी यथार्थवादी विधिशास्त्र के विकास के लिए विशेषत महत्वपूर्ण था। कोहेन और उनके छात्रो के माध्यम से इस प्रकार का यथार्थवादी प्रकृतिवाद पिछले दिनो के अमरीकी विचार की एक विशिष्ट प्रवृत्ति बन गया। इस प्रवृत्ति मे सामान्यत यथार्थवादी आन्दोलन का तर्कनावादी पक्ष है, जिसका एक लक्ष्य यह है कि तार्किक पद्धतियो और प्रयोगात्मक विज्ञानो के एक सयोजन को सभी समस्याओ पर विशेषत: सामाजिक और नैतिक विज्ञानो पर लागू किया जाये।

जिसे मैंने यहाँ 'यथार्थवाद' कहा है, जॉन डुई का कार्य भी, पीयर्स की भाँति उसकी सीमाओ से बँधा नही है और ज्ञान व तत्वमीमासा के यथार्थवादी सिद्धान्तो के कई प्राविधिक मतो से डुई असहमत थे। फिर भी आन्दोलन को उनकी देन विलियम जेम्स से अधिक थी। वे कभी भी सरल-विश्वासपूर्ण यथार्थवादी नही रहे, जैसा जेम्स अपने को कहते थे और आरम्भ से ही उनका एक यथार्थ का सिद्धान्त था, जिसके फलस्वरूप अनुभव और आनुभविक पद्धति सम्बन्धी उनकी धारणा जेम्स से बिल्कुल भिन्न थी (आठवे अध्याय में 'व्यवहारवादी बुद्धि' के अन्तर्गत देखिए)। मॉरिस और ट्रेण्डेलेनबर्ग का अनुसरण करते हुए [illegible]

हीगेल द्वारा निरूपित विचार के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त की आलोचना की और विश्व को गति के पदार्थों या पुनर्रचनात्मक क्रिया के रूप में देखा । उनका विचार था कि परिवर्त्तन एक चरम यथार्थ है, और अस्तित्व के पदार्थ, अरस्तू के पदार्थों की भाँति, गति के पदार्थ होंगे, जिनमें विचार की गतियाँ भी सम्मिलित होंगी। ट्रेण्डेलेनवुर्ग की भाँति उन्होंने हेत्वनुमान के सिद्धान्त को वास्तविकीकरण के सिद्धान्त के अधीन रखा और वास्तविकीकरण को पुनःरचना के। विशेषतः जेम्स के जीव-वैज्ञानिक मनोविज्ञान की जानकारी के बाद, डुई के लिये 'क्रिया' की प्रकृतिवादी और जीव-वैज्ञानिक परिभाषा करना आसान था । इस प्रकार, डुई के अनुसार, मनुष्य और उसके सारे कार्य, कार्य के एक प्राकृतिक विश्व के अन्तर्निहित अग हैं। यथार्थ का चरम पदार्थ 'कार्यवस्तु' हैं (लातिनी में 'रेस')। मनुष्य 'कार्यवस्तुओ के मध्य में' रहता है। मनुष्य जाति के कार्यों और पीडाओ को परिवर्त्तन के अधिक सामान्य विश्व से अलग नही किया जा सकता और शारीरिक तथा मानसिक कार्यों या क्रिया के वाह्य और आन्तरिक सोपानो के बीच एक व्यावहारिक रेखा से अधिक कोई विभाजन सम्भव नही है।

'अनुभव की सत्तात्मक वस्तु' की यह यथार्थवादी अवधारणा उनके प्रारम्भिक लेखन में भी मिलती है, और अन्तिम लेखन में भी।[1] अपनी बात को तीक्ष्णता प्रदान करने के लिये, अपने अन्तिम वर्षों मे उन्होंने वस्तुओ के बीच परस्पर-क्रिया के परम्परागत विचार के बजाय, वस्तुओ के बीच 'व्यापार' की अवधारणाएं अपनायी। केवल मनुष्य ही अपनी कार्यवस्तुओ का 'व्यापार चलाता' हो, ऐसा नही है, क्योकि शारीरिक कार्य भी समावेश और व्याख्या के कार्य हैं । यथार्थ के इस सिद्धान्त को मानने के कारण उन्होंने कभी भी सामान्य-बुद्धि के विश्व को पूर्व-मान्यता नही दी और तथाकथित वाह्य विश्व के अस्तित्व की समस्या को न स्वीकार करने के लिए आलोचनात्मक कारण दिये ।

विचार की क्रियाओ जैसी विशेष क्रियाओ को विश्व की वस्तुपरक क्रियाओ के अधिक व्यापक आधार-स्थल से वियुक्त कर देने के खतरे पर डुई का निरन्तर आग्रह, एक नीतिज्ञ के रूप मे यथार्थवाद को उनकी देन थी। क्रियाओ का सत्याकरण वोधगम्य है, और समन्वय तथा वस्तुपरक सिद्धि की प्रक्रिया के रूप में उसे उचित ठहराया जा सकता है। किन्तु वे इस खतरे की ओर वार-वार सचेत करते है कि क्रियाओ की प्राविधिक निष्पत्ति और व्यवसायीकरण सचार मे वाधक हो सकते हैं और वियुक्त हितो और मूल्यो को उत्पन्न कर सकते हैं।

---

१. देखिए, जॉन डुई और आर्थर एफ वेण्टले, 'नोइग ऐण्ड दी नोन' (वोस्टन, १९४९), पृष्ठ २७२-२८४।

मूल्याकन की उनकी सामान्य पद्धति यह थी कि वे किसी विशिष्ट हित को सम्बद्ध कार्यो के अधिक व्यापक सन्दर्भ मे रख कर यह भरोसा करते थे कि यह व्यापक सन्दर्भ, विशेष हितो का मूल्याकन करने मे एक कसौटी का काम करेगा। वे नीतिशास्त्र को एक सर्वथा पृथक् विषय-वस्तु के रूप में न पढा कर, मानको के यथार्थवादी परीक्षण के रूप में पढाते थे—ऐसे मानक, जो अभ्यासगत कार्य को नयी परिस्थितियो के अनुकूल बनाने के लिये वास्तविक स्थितियाँ निरन्तर उत्पन्न करती रहती हैं। कानूनी मानको के प्रयोगात्मक परीक्षण की प्रक्रिया में उन्होने विधिनिर्माण-विवाद-न्यायिक निर्णय के परस्पर सम्बन्ध का एक प्रभावी विश्लेषण किया। लोकतन्त्र में उनकी आस्था इस विश्वास पर आधारित थी कि प्रकाशन, अर्थात् सामाजिक सम्बन्धो और सघर्षो के स्रोतो और परिणामो की खुली स्वीकृति, नियन्त्रण का सर्वाधिक प्रभावकारी माध्यम है। उनका नीतिशास्त्र न उक्तियो की नैतिकता थी, न अनुल्लघनीयो की और न परिणामो की उपयोगितावादी गणना ही थी, वरन् ऐसे वास्तविक हितो और मूल्यो की खोज थी, जिन्हे प्रभावी हित और मूल्य उपेक्षित या छिपे हुए पडे रहने देते हैं। इन दबे हुए या डूबे हुए तत्वो को चेतन या सार्वजनिक बना कर, 'बन्द समाज' अपने को एक खुला समाज बना लेता है और परम्परागत मानक वास्तविक आवश्यकताओ के आधार पर सुधारे जाते हैं। विश्लेपण की यथार्थवादी आदतो के कारण डुई 'आदर्शक' नीतिशास्त्र से बचते रहे। उनका विचार था कि शुद्ध मानक नि.शक्त होते है। ऊपर से लादे गये विधानो को वे न्यूनाधिक स्वेच्छ और इस कारण प्रभावहीन मानते थे। दूसरे शब्दो मे, प्रयोगात्मक वैधता पर उनका आग्रह उनके व्यवहारवाद के समान ही उनके यथार्थवाद का भी एक पक्ष था।

शिकागो और मिशिगन विश्वविद्यालयो मे डुई के साथ अपने सहयोग के काल मे, जॉर्ज एच० मीड डुई के इस सामाजिक यथार्थवाद से सहमत थे। किन्तु जब डुई शिकागो छोड़ कर कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे चले गये, तो मीड ने इस सामाजिक दर्शन को इस प्रकार प्राकृतिक प्रक्रिया और इतिहास के एक सामान्य सिद्धान्त में विकसित किया, जिसका डुई ने कभी प्रयास नही किया। इस विचार-व्यवस्था को 'वस्तुपरक सापेक्षवाद' कहा जाने लगा और प्रकृति के यथार्थवादी सिद्धान्त मे इसका प्रमुख योग रहा है।

यह दर्शन परिप्रेक्ष्यो के समन्वय के सिद्धान्त पर आधारित है। जिस प्रकार किसी मुद्रा या सम्पर्क के अन्य प्रयास जैसे 'सामाजिक कार्य' मे, भाग लेने वाले की एक परिप्रेक्ष्य से हट कर दूसरे परिप्रेक्ष्य मे जाने की योग्यता आवश्यक होती है, उसी प्रकार प्राकृतिक प्रक्रियाओ की सर्वसमता परिप्रेक्ष्यो के अन्तरण के योग पर निर्भर होती है। मीड का विचार था कि परिप्रेक्ष्यो के सह-सम्बन्ध का मूल

प्रकार कालिक अनुभव मे मिलता है—वर्त्तमान के एक परिप्रेक्ष्य से दूसरे में जाने के साथ-साथ अतीत की व्याख्या की पुनः रचना। वर्त्तमान के परिवर्त्तित होने के साथ 'नये अतीत हमारे पीछे उदित होते है'। यद्यपि मीड अपने सिद्धान्त को पूरी तरह निरूपित करने के लिये जीवित नही रहे, किन्तु अपनी रचना 'दी फिलॉसफी' ऑफ दी प्रेज़ेण्ट' (वर्त्तमान का दर्शन—१९३२) मे उन्होंने इसकी एक रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने प्राकृतिक ज्ञान को ऐतिहासिक ज्ञान मे समाविष्ट करने की चेष्टा की। आरम्भ में उन्होंने कहा कि 'विश्व एक घटनाओ का विश्व है' और सारी घटनाएँ किसी वर्तमान में घटित होती है। अतीत और भविष्य हमेशा किसी वर्तमान के सापेक्ष होते हैं और जब तक वर्तमान परिवर्त्तित होता रहता है, इतिहास को पुनर्व्याख्या करनी पडेगी। उन्होने ऐतिहासिक ज्ञान में इस 'वस्तुपरक सापेक्षता' को भौतिक विज्ञान में सापेक्षता से जोड़ना चाहा और दिक्-काल में बिन्दु-क्षणो के एक चार आयामो के नैरन्तर्य को एक परम सन्दर्भ-क्षेत्र के रूप में स्वीकार करने के लिये उन्होने सैमुएल अलेक्ज़ेण्डर मिकोव्स्की और ह्वाइटहेड की आलोचना की। एक सच्चा 'उद्गामी विकासवाद' अधिक पूर्ण रूप में सापेक्षवादी होगा, ऐसा उनका दावा था। उक्त नैरन्तर्य उन्हें उसी तरह का अमूर्तन प्रतीत होता था, जैसे कालावधि के अणुओं का सिद्धान्त, जिनसे किसी वर्त्तमान की रचना की जा सकती हो। उनका इरादा ऐतिहासिक और प्राकृतिक दोनो प्रक्रियाओ में 'यथार्थ' वर्त्तमान की विवेचना करने का था। अतः उन्होने दूरी के सापेक्षतावादी सिद्धान्त का स्वागत किया, क्योंकि स्थानिक व्याख्या में ऐसा सापेक्षवाद 'कार्य के क्षेत्र' को या 'कार्य-कौशल के क्षेत्र' को अधिक व्यापक बनाता है, जिसके सन्दर्भ में अतीत और वर्त्तमान सम्बन्धित होते हैं। सभी तथ्य गुज़रने के तथ्य होते हैं और ये तथ्य उसी हद तक 'प्रस्तुत' होते हैं, जिस हद तक वे किसी वर्त्तमान के अतीत या उसके भविष्य से सम्बन्धित होते हैं। तदनुसार, सारा 'होना' गुज़रने के तथ्यो द्वारा उत्पन्न परिवर्तित परिप्रेक्ष्यो के कारण, अतीत का वर्तमान में 'बनाना' होता है।

दूसरे शब्दो में, मीड का वर्त्तमान का दर्शन जेम्स के 'विश्वसनीय वर्त्तमान' के सिद्धान्त का वस्तुपरक प्रतिरूप है। चेतना की धारा में, वर्त्तमान में, घटनाओ की धारा वस्तुपरक रूप में सार्थक हो जाती है, क्योकि इस तरह से परिप्रेक्ष्य उत्पन्न और सह-सम्बन्धित होते हैं।

'सामाजिकता' के सिद्धान्त को भौतिक सापेक्षता के सिद्धान्त के साथ सयुक्त करने के मीड के महत्वाकाक्षापूर्ण प्रयास को अमरीकी यथार्थवाद मे आगे विकसित करने का प्रयास बहुत कम हुआ है। मीड जब इस पर कार्य कर रहे थे, उस समय जैसा प्रतीत होता था, शायद भविष्य के कार्य के लिये यह उतना व्यापक

आधार न प्रमाणित हो। जो भी हो, जिस प्रकार की दार्शनिक सरचना मे अमरीकी यथार्थवाद पड गया, उसके उदाहरण के रूप में इसे यहां अंकित कर देना उचित है। ह्वाइटहेड के दर्शन के प्रभाव ने अमरीकियो के लिए इस प्रकार की सश्लिष्टि को उलझा दिया है। शायद इस दर्शन को भी अमरीकी यथार्थवादी आन्दोलन के एक प्रमुख अंग के रूप में शामिल कर लेना चाहिये। मैंने इस आधार पर इसे शामिल नही किया कि उसकी मुख्य विशेषताएँ इगलिस्तान से आयी है, और मेरा ख्याल है कि इसका वर्त्तमान प्रचलन शायद एक 'गुजरने वाला तथ्य' हो। किन्तु मैं इस समय यह स्वीकार करता हूँ कि यह यथार्थवादी आन्दोलन अभी भी गतिशील है और इसे सम्पूर्ण रूप मे, या इसके परिणाम को अंकित करने का सचमुच अभी समय नही आया है। कहानी अभी और है, जो समय कहेगा और जिसे किसी दिन शायद कोई ऐसा इतिहासकार कहे जो इसे अधिक पर्याप्त परिप्रेक्ष्य मे देख सके।